मार्कण्डेयपुराण प्रथमखण्ड का सूचीपत्र ॥

इति प्रथमभागस्य सूचीपत्रम् ॥



मार्कण्डेय पुराणका माहात्म्य सटीक

मू० अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतन्तथा १ ॥

टी० । इसके अनन्तर माहात्म्य कहता हूं कि अष्टादश पुराण जो ब्रह्मा ने बनाये हैं उनके नाम सुनिये पहला ब्रह्म पुराण १ दूसरा पद्म पुराण २ तीसरा विष्णु पुराण ३ चौथा शिव पुराण ४ पांचवां श्री मद्भागवत् पुराण ५ ॥ १ ॥

मू० तथान्यं नारदीयञ्च मार्कण्डेयंच सप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमन्तथा २ ॥

टी० । छठवां नारद पुराण ६ सातवां मार्कण्डेय पुराण ७ आठवां अग्निपुराण ८ नवां भविष्य पुराण ९ ॥ २ ॥

मू० दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशस्मृतम् ।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कन्दमत्र त्रयोदशम् ३ ॥

टी० । दशवां ब्रह्मवैवर्त्त पुराण १० ग्यारहवां लिङ्ग पुराण ११ बारहवां वाराह पुराण १२ तेरहवां स्कन्द पुराण कहा गया है १३ ॥ ३ ॥

मू० चतुर्दशं वामनञ्च कौर्मं पञ्चदशन्तथा ।
मात्स्यञ्च गारुडञ्चैव ब्रह्माण्डञ्च ततः परम् ४ ॥

टी० । चौदहवां वामन पुराण १४ पन्द्रहवां कूर्म पुराण १५ सोलहवां मत्स्यपुराण १६ सत्तरहवां गरुड़ पुराण १७ अठारहवां ब्रह्माण्ड पुराण १८ ॥ ४ ॥

मू० अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् ।
त्रिसन्ध्यं जपतो नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ५ ॥

टी० । इन अठारहों पुराणों के नामों को जो कोई तीनों सन्ध्यावों में नित्य पाठकरै तो उसको अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिले ५ ॥

मू० ब्रह्महत्यादि पापानि यान्यन्यान्यशुभानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा ६॥

टी०। और ब्रह्महत्या इत्यादि जो पाप हैं व अन्य जो अशुभ हैं उन सब पापों का ऐसा नाश होजाता है जिस तरह हवा के लगने से तृण उड़जाते हैं ६॥

मू० पुष्करे दानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते।
सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्या चाधिगच्छति ७॥

टी०। और इन पुराणों को समाप्त तक पढ़ने या सुनने से सम्पूर्ण वेद पढ़ने से भी अधिक फल मिलता है और इसके सुनने से पुष्करतीर्थ में दान करने का पुण्य मिलता है ७॥

मू० यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथा देवं पितामहम्।
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानांच तर्पणैः ८॥

टी०। और इस पुराण के सुनाने वालेको ब्रह्मा के समान समझकर पूजना चाहिये और गन्ध और पुष्प और वस्त्र इत्यादि से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये॥

मू० यथा शक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादि वाहनम्।
अपूज्यपाठकर्त्तारं श्लोकमेकञ्च शृण्वताम् ९॥

टी०। और यथाशक्ति दान देना चाहिये और राजाओं को चाहिये कि रथ आदि वाहन वाचक को देवैं क्योंकि पाठकर्त्ता को बिना पूजन किये एक श्लोक भी जो कोई सुनता है ९॥

मू० नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचौरः स्मृतो हि सः।
नतस्य वेदाः प्रीणन्ति पितरो नैव पुत्रकैः १०॥

टी०। उसको पुण्य नहीं मिलता है और वह शास्त्रचोर कहलाता है व उसके ऊपर देवता लोग प्रसन्न नहीं रहते हैं और उसके पितर उस पुत्र पर प्रसन्न नहीं होते १०॥

मू० दत्तं श्राद्धं च नेच्छन्ति तीर्थस्नानफलं न च।
अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः ११॥

टी०। और श्राद्ध का पिण्ड भी नहीं ग्रहण करते और उस मनुष्य तीर्थस्नान का फल नहीं मिलता इसलिये याचक का अपमान रके ज्ञानियों को यह शास्त्र नहीं सुनना चाहिये ११ ॥

मू० पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्रउत्तमे ।
मूको भवति जन्मानि सप्तमूर्खः प्रजायते ॥
श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः १२ ॥

टी० जिव सज्जनों को इस उत्तमशास्त्र के पढ़ने पर जो अपमान करता है वह सातजन्मों तक बावला व मूर्ख होता है और जो कोई अच्छे ब्राह्मण से इस शास्त्र को पढ़वाकर सुने और फिर इस सप्तम मार्कण्डेय पुराण की पूजाकरे १२ ॥

मू० सर्वपापविनिर्मुक्त्वा पुनात्येवात्मजं कुलम् ।
पूतो याति निःसन्देहो विष्णुलोकं सनातनम् १३ ॥

टी०। तो वह मनुष्य सब पापों से छूट कर अपने कुलको पवित्र करता है और आप भी पवित्र होकर निस्सन्देह सनातन विष्णुलोक में अन्तकाल को प्राप्त होता है १३ ॥

मू० पुनः सप्तमनुंयावद्भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।
पृथिव्यामेव श्रोता च परं योगमवाप्नुयात् १४ ॥

टी०। फिर जबतक सात मन्वन्तर बीततेहैं तबतक मनोभिलषित भोग पृथ्वी में भोगकर इस पुराण का श्रोता परम योगको प्राप्त होताहै १४ ॥

मू० नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ।
गुरुद्विजातिनिन्दाय तथा भग्नव्रताय च १५ ॥

टी०। यह पुराण नास्तिकों को और शूद्र व वेद निन्दक और गुरू ब्राह्मण के निन्दक को और व्रत त्यागी को न देना चाहिये १५ ॥

मू० मातापित्रोर्निन्दकाय वेदशास्त्रादिनिन्दिने ।
भिन्नमर्य्यादिने चैव तथा वैज्ञातिकोपिने १६ ॥

टी०। और माता, पिताके निन्दक व वेद, शास्त्रके निन्दक तथा अपने कुल की मर्य्याद छोड़ने वाले को और जातिके द्रोही इत्यादिको १६ ॥

मू० एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।
लोभाद्वा यदि वा मोहाद्भयाद्वापि विशेषतः १७॥

टी०। कंठगत प्राण होने पर भी न देना चाहिये लोभ से वा मोहसे अथवा विशेष कर डरसे १७॥

मू० पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्।
पुराणश्लोकसंख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना १८॥

टी०। जो कोई इनलोगों के आगे पढ़े या पढ़ावे वह निश्चय कर नरक में जाता है इस पुराण के श्लोकों की गिन्ती तत्त्व के जानने वालों ने कहा है १८॥

मू० श्लोकानां षट्सहस्राणि तथा चाष्टशतानि च।
श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादशसमाहिताः॥
कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता १९॥

टी०। कि पूर्वकाल में ज्ञानी मार्कण्डेयमुनिने ६९०० छः हजार नौसे श्लोक नियत किये हैं १९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपुराणमाहात्म्यसमाप्तिर्नामसप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः १३७॥

मार्कण्डेयपुराण सटीक की सूचनिका ॥

मार्कण्डेयसमागमे प्रथमतः प्रश्नोत्तरं जैमिनेः शापोऽथाप्सरसस्तथो
त्सुतपता दुर्वासलोकस्ततः । विष्णुर्द्रूपवधो हि किञ्चिन्ननोर्जन्माथसत्प
क्षिणामाख्यानं कथितं च भेदसहितं जैमिनान्तरीयं शुभम् ॥ १ ॥ श्री
कृष्णामृतसत्कथाथ गमितं तीर्थे बलस्योचितं द्रौपद्यात्मजजन्मकीर्ति
कथनं सायाह्नतश्रीपतेः ॥ आख्यानं सुकलावतारकलितं द्वारावतीयं ततो
मोक्षो जैमिनिसंशयस्य च हरिश्चन्द्रान्विता सत्कथा ॥ २ ॥ विश्वा
मित्ररणो वशिष्ठमुनिना तालीतमंत्राभाषणं त्वाख्यानं नरकस्य हैहयकृतं
तेषां च वृत्तं महत् । दत्तात्रेयसमुद्भवः कुवलयाश्वक्षोणिपाख्यानकं प्रा
प्तो चाथ मदालसाऽभिगमने ऽलर्कादिजन्माद्भुतम् ॥ ३ ॥ आचारोद्धरणं
विधिश्च कथितः श्राद्धस्य योगस्थितिः सन्मन्वन्तरविस्तृतामलकथा
यक्ष्माणुविज्ञापनम् ॥ जम्बूद्वीपविनिर्णयोऽथ कथितं कूर्मस्य संवेशनं
वर्षाणामपि वर्णनं बहुविधं विप्रस्य चर्या शुभा ॥ ४ ॥ सृष्टीनां नव
धा कथासुचरिता कल्पान्तकालक्रमः सृष्टिर्यक्षगणस्य पुण्यदकथा रुद्रा
दिसृष्टिः परा । प्रोक्ताः पारिकीर्त्तिता मनुकथास्तास्त्वष्टमे चान्तरे देव्या
दिव्यतमा स्तुतिस्सफलदा ज्ञेया द्विजानां हिता ॥ ५ ॥ उत्पत्तिः प्रण
वस्य तेजसः अतत्रय्यास्समुत्पत्तयः मार्त्तण्डस्य तु जन्म तस्य च परं
माहात्म्यमत्युत्तमम् ॥ पितृस्तोत्रमथानलस्तुतिपरं वैवस्वतीयं यशः
वत्सप्रीचरितं करन्धमकृतं वृत्तं खनित्रस्य च ॥ ६ ॥ आख्यानं सदवीक्षि
तोऽथ मरुतः कीर्त्तिर्नरिष्यन्ततो विख्याता दमभूमिपालकलिता कीर्त्ति
स्स्वकीयाश्रमे ॥ मार्कण्डेयसमागमोऽथ कथितं माहात्म्यमस्योत्तमम् ।
ख्याताद्याबशंससमस्य घटनेत्यस्मिन्पुराणे क्रमात् ॥ ७ ॥ देवनन्दनतृपा

नुज्ञाज्ञयाऽहं चकार तिलकं नृभाषया । बोधहेत्विदमनूह्यचेतसां भूमिदेवरघुराजकोविदैः ॥ ८ ॥ नागाग्न्यङ्कनिशाकरान्वितसमे मासे च राधेवरे पक्षे नीलसमे रमापतितिथौ वारे शुभे भास्करे ॥ टीका प्राकृत भाषयेयममला याता समाप्तिं कृता प्रारब्धेषुगुणाङ्कचन्द्रसहितेऽब्दे मासि या कार्त्तिके ६ ॥

इस पुराणमें जो जो कथा वर्त्तमान हैं वह यह हैं ॥

पहले मार्कण्डेयमुनि और जैमिनि का सत्संग और सम्वाद फिरि वपुअप्सरा के ऊपर दुर्वासामुनि का शाप और कंक के मारेजाने पर विद्युद्रूप राक्षस का मारा जाना और उत्तम पक्षियों का जन्म और उन के जन्मका चरित्र ॥ १ ॥ पश्चात् इसके श्रीकृष्णचन्द्र की अमृतरूपी कथा और बलदेवजी की तीर्थयात्रा और द्रौपदी के पुत्रों का जन्म और माया के साथ परब्रह्म के सब अवतारों की कथा और द्वारिका में रहकर जो चरित्र किये हैं उसका वर्णन और जैमिनिमुनिका सन्देह छूटजाना और हरिश्चन्द्र की सम्पूर्ण कथा ॥ २ ॥ और विश्वामित्र और वशिष्ठ जी का संग्राम और पिता पुत्र का सम्वाद फिर नरकों का वर्णन और हैहयराजा के चरित्र और दत्तात्रेय का जन्म और महाराज कुवलयाश्व की कथा और कुवलयाश्व को मदालसा स्त्री का मिलना और उससे अलर्क इत्यादि का उत्पन्न होना ॥ ३ ॥ और आचार कथन और श्राद्ध का व्यवहार और योग का वर्णन और मन्वन्तरों की विस्तारपूर्वक कथा और यक्षमा की वंशावली और उनसबों के रहने की जगह और जम्बूद्वीप का हाल और कूर्म स्थित सृष्टि का वर्णन और पृथ्वीके भागों का वर्णन और ब्राह्मणों का आचार ॥ ४ ॥ और नौतरह की सृष्टियों का वर्णन और कल्पान्त काल का कर्म्म और यक्षगण और रुद्रइत्यादि की सृष्टि और मनुओं की कथा और आठवें मनुकी कथा में देवी का माहात्म्य ॥ ५ ॥ और प्रणव और तीनों तेजका उत्पन्न और सूर्य्यका जन्म और उनका माहात्म्य और पितृ और अग्निस्तोत्र और वैवस्वतमनुका

वर्णन और वत्सश्री का चरित्र और करन्धम का हाल और खनित्र की सम्पूर्ण कथा ॥ ६ ॥ और कथा अवीक्षित की और महाराज मरुत्त की और राजा नरिष्यन्त के पराक्रम का वर्णन और महाराज दम के स्वयम्बर में राजाओं के साथ संग्राम और मार्कण्डेयमुनिका अपने आश्रम पर आना और अठारहों पुराणमें इस सातवें मार्कण्डेय पुराण का उत्तम माहात्म्य वर्णन ॥ ७ ॥

प्रगटहो कि आज्ञानुसार श्री ३ राजकुमार बाबू देवनन्दनसिंह साहेब रईस आज़म शिवहर दाम अकबालहू के उलथा इस मार्कण्डेयपुराण का देसीभाषा में नागरी और फ़ारसी अक्षरों में सम्वत् १६३८ – ११ वैशाख दिन यतवार को श्री पण्डित रघुराज दुबे ने समाप्त किया ॥

इति ॥



श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणके तर्जुमा होने का कारण ॥

मैं राजकुमार बाबू देवनन्दनसिंह साकिन व मालिक शिवहर ज़िले तिरहुत व ज़िमींदार परगनात बबरा व मेहसी अज़लाअ तिरहुत व चम्पारन् परमेश्वर को ध्यान करके जान व दिल से दुआ करता हूं सर्कार इङ्गिलिशिया क़ैसर हिन्द बहादुर को कि जिसने अपनी अमल्दारी में बिला तरफ़दारी मज़हब के विद्या का ऐसा चर्चा फैलाया और छापे की ऐसी कल निकाली कि साबिक़ में जिन लोगों के घर में एक जिल्द हाथ की लिखी हुई तुलसी कृत रामायण रहती थी तो वह तमाम मज़हबी विद्या का मूल समझते थे और अब उसी लियाक़तवाले लोगों के घरों में श्रीमद्भागवत व देवीभागवत व महाभारत आदि और इससे भी बड़ी बड़ी पुस्तकें जिनका वे लोग पहिले नाम भी नहीं जानते थे मौजूद हैं और जिन ग्रन्थों और पुस्तकों के अर्थ सिवाय पण्डितों और अमीरों के जो कभी उन्हीं पण्डितों से सुन लेते थे दूसरा कोई नहीं जानता था अब उन ग्रन्थों और पुस्तकों के टीका और उल्था होजाने से वे लोग जो थोड़ा भी देवनागरी जानते हैं या उर्दू में हरफ़शिनास हैं उन ग्रन्थों और पुस्तकों के अर्थ से विज्ञ और ख़बरदार हैं चुनांचे एक दिन यही सब वार्त्ता मेरे दरबार में होरही थी उस वक़्त कई पण्डित और दूसरे लोग मौजूद थे पण्डितों ने कहा कि अब मशहूर ग्रन्थों में तो कोई ऐसाही एक दो ग्रन्थ होगा जिसका टीका या उल्था न हुआहो मैंने कहा कि प्राचीन ग्रन्थों में श्रीमार्कण्डेयपुराण जो अठारहों पुराण में सातवां पुराण है जिसका आज तक टीका या उल्था नहीं हुआ और यह बड़े अफ़सोस की बात है यह सुनकर सब कोई एक दूसरे का मुँह देखने लगे तब मैंने श्रीपण्डित रघुराज दुबे जी को जो मेरे गुरूघरायन से हैं और काशी के पढ़े और कालिज से सार्टीफ़िकट पाये हुये हैं मार्कण्डेय पुराण का तर्जुमा लिखादेने को कहा और उन्होंने क़बूल किया तब मैंने शिवनन्दनसिंह मुलाज़िम को आपने ताकीद किया कि हर श्लोकके नीचे तर्जुमा उसका याने असल मतलब बिला रिआयत लफ़ज़ी मानी के देशी ज़बान में जो

हर किसी के समझ में आवै देवनागरी अक्षरों में लिखाजाय और मौलवी सख़ावतअली मुलाज़िम को यह कहदिया गया कि जब एक अध्याय मय तर्जुमा नागरी में लिखा जाय तो फिर वही तर्जुमा हरूफ़ फ़ारसी में श्लोक का नम्बर देकर उसी अध्याय के बाद एक जगह लिख दियाजाय कि हिन्दी और उर्दू जाननेवाले दोनों फ़ायदा उठावैं ग़रज़ इसी क्रम से इस ग्रन्थ का तर्जुमा हुआ और छापागया अब दूसरीबार यह संस्कृत मूल व भाषा टीका देवनागरी अलाहिदा छापागया और उर्दूका तर्जुमा अलाहिदा छापा गयाहै ॥

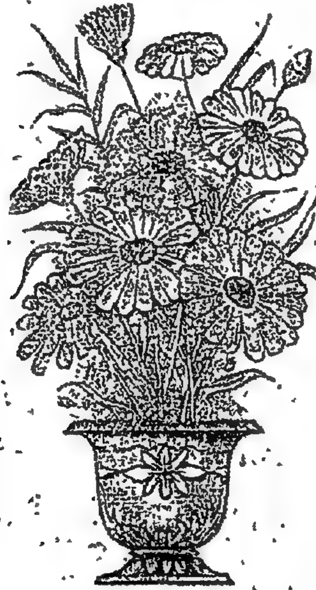
और बुद्धिमानों पर प्रकट हो कि श्रीपण्डित रघुराज दुबे जी ने बतौर मङ्गलाचरण व निर्विघ्न परिसमाप्त्यर्थ इस ग्रन्थ के सप्तशती स्तोत्र इस ग्रन्थ में तेरह अध्याय करके लिखा हुआ है उसके मतलब को सिर्फ़ तेरह श्लोक में इस हिसाब केसाथ कि एक अध्याय का मतलब सिर्फ़ एक एक श्लोक से निकलता है मानो समुद्र को कूज़े में बन्द किया है वह यह है ॥

श्लोक संक्षेप दुर्गा ॥

सावर्णिस्सूर्यसूनुर्म्मनुरिनउदितोयोऽष्टमोऽभून्मनूनाम् मायायास्सोऽनुभावैर्विशदगुणयुतोभागधारीयथासीत् ॥ तद्धेतुन्तज्जनिंवा शृणुबुधसुरथोऽभूद्धरामण्डलेशस्तत्पृष्टामेधसोक्ताद्रुहिणरिपुहराऽजीजनत्सैवकाली ॥ १ ॥ युद्धेदेवासुरेप्रागसुरकुलबलैर्न्निर्जितैस्साधिकारैर्देवैस्सेन्द्रैः पुरोगंविधिमथचलितैर्लब्धवृद्धिर्गतैस्तैः ॥ वृत्तंसर्वन्तदुक्तंमहिषखलकृतंशूलिनंशार्ङ्गिणञ्च क्रुद्धानांतेजसैषामसुरबलहराविर्बभूवेन्दिरैका ॥ २ ॥ सैन्यंदृष्ट्वाहतन्तत्प्रकुपितमसुरश्चिक्षुरोयोद्धुमायाद् देवींसद्यश्शराणांप्रकलितनिकरैश्छादितातेनसद्यः ॥ छित्वाबाणाञ्छरैस्साप्यथयुधिनिहतश्चिक्षुरोमाहिषश्च हाहाकार्य्यासुरेणानरिसुरनिकराहर्षितास्तुष्टुवुस्ताञ्च ॥ ३ ॥ शक्राद्यादेवसङ्घाविबुधरिपुपतौलब्धतेऽनौषुरस्वांस्वाहाद्यास्तत्रसिमूलाऽक्रतुषुबुधजनैरुद्धतातस्त्वमेवम् ॥ दत्त्वाबर्हिर्म्मुखेभ्योनुतिपरिमुदिताभीष्टमन्तर्हिताद्या भूपेतत्प्रोक्तमेषाजनि

खलहतयेऽभूत्पुनस्तच्छृणुष्व ॥ ४ ॥ हत्वादूत्वेष्टभागानधिकृति
रखिलाकारिशुम्भेनशौर्य्याद् देवैस्सर्वैर्निशुम्भेन चक्रुतमतिभिः
संस्तुताभीष्टदात्री ॥ गत्वेत्थंहैममद्रिम्प्रणतिसुखमितोमाङ्गतःकौ
शिकीति दृष्ट्वातांचण्डमुण्डौसुरुचिरनयनांपप्रथुःयाकराजे ॥ ५ ॥
श्रुत्वादूतोक्तवाक्यंप्रकुपितवदनःप्राहधूम्राक्षमीशं दैत्यानांताडि
तान्ताङ्कचविधूतिकलामानयाशुप्रगल्भाम् ॥ हन्तव्यस्तत्सहा
योदितिजरिपुसुरस्सोप्युवाचाम्बिकान्तत् आधावच्चैनमुग्राहुमिति
खकरीभस्मसात्तञ्चकार ॥ ६ ॥ आज्ञप्ताश्चण्डमुख्या गिरि
वरशिखरेलक्षयन्मन्दहास्यां तामाकृष्टासिचापायुधकरसुबलाःको
पयुक्तातताऽम्बा ॥ कालीकल्पान्तकालानलसमवदनाताडयेत्ता
न्क्षणेन चामुण्डाचण्डमुण्डौप्रचरितचरिताहत्यदेवीतिनामैत् ॥
७ ॥ चण्डेदैत्येथमुण्डेप्रबलदलयुतेशम्भुनिर्देशनीतः आयातोर
क्तबीजोरणमतिविमुखान्कम्बुरान्कोभयुक्तः॥दृष्ट्वारक्तौघतोऽस्या
सनगणितभटास्तत्समायातुधानाः पीत्वातद्रक्तबिन्दूनहनसुरहि
तम्पातयामासचाद्या ॥ ८ ॥ शुम्भश्चाऽथोनिशुम्भोऽसुरदलस
हितेपातितेरक्तबीजे कोपंचक्रेनिशुम्भोऽतुलमथसबलःशुम्भश्च
त्याजगाम ॥ कोपाक्रान्तंनिशुम्भंपरशुयुतकरंहन्तुमायान्तमाशु
हत्वादेवीशरौघैःखलमवनितलेऽपातयच्चण्डवीर्य्या ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा
ताम्प्राहशुम्भोविनिहतमनुजंहन्यमानंबलंच दुष्टेऽलन्दुर्विनीतेऽ
सहमिकुरुषेगर्व्वमन्याश्रयात्वम् ॥ मूढैकैवाहमाद्यामनतनुपुगताः
पश्यशक्तीरनन्ता इत्थम्प्रोक्तेऽथशुम्भेमुमुदुरदितिजाःशूलनष्टे
सुरेश्या ॥ १० ॥ देव्यातस्मिन्हतेतैस्सुरारिपुमुकुटेतद्बलेचादिते
यैर्ब्राह्म्याद्याश्शक्तयोयास्त्रियइहसकलास्सात्वमेवैकयेदम् ॥ ब्र
ह्माण्डंव्याप्तमित्थंनुतिपरिमुदितायच्छदाकांक्षितंसा देवेभ्योयद्य
दाबस्तादिममजननंवाधनंनाशयमित्थम् ॥ ११ ॥ व्याभिर्यस्स्तोष्य
तेमांसुरकृतनुतिभिर्नाशयिष्यामितस्य बाधांसर्व्वांकृतायामनश
रदिशुभावार्षिकीभूरिपूजा ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमस्याभगति मन्नु

जस्सर्व्वबाधाविमुक्तः अन्तर्द्धानंगतासासकलदिविषदाम्पश्यता
मित्थमुक्त्वा ॥ १२ ॥ भूपैतत्तेसमुक्तंचरितमतिकृतंसापरैवंप्रभावा
श्रुत्वैवंराजराजस्सपदिसमगमत्तत्तुमम्बेक्षणार्थम् ॥ नद्याःकूले
स्थितस्सन्मितभुगसृजमस्यैददौसोऽपिवैश्यः सावर्णिस्सूर्य्यजा
तोमनुरपिभविताल्ब्धवाञ्छोनरेशः ॥ १३ ॥ स्तोत्रंश्रीसप्तशत्या
स्सृतमिवदधितस्सारमाज्यञ्चकार श्रीमद्राजाधिराजप्रभवसर
सिजद्योतकाहस्करेण ॥ उद्युक्तोऽसौतुदेवाद्यमलपदयुजानन्दना
न्तेननाम्ना ख्यातेनस्यात्सुखाप्त्यैद्विजवररघुराजस्सदापाठका
नाम् ॥ १४ ॥





मार्कण्डेयपुराण सटीक ॥

पहिला अध्याय ॥

श्लोक ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

टी० । श्रीनारायण जी को और नरों में उत्तम नर को और सरस्वती देवी को और व्यास जी को नमस्कार करके बाद जयरूप ग्रन्थ को बयान करता हूं ॥

मू० तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्य्यपृच्छत् १ ॥

टी० । व्यासजीके शिष्यमहातेजस्वी जैमिनिजीने तपस्या व स्वाध्याय में तत्पर महामुनि मार्कण्डेयजी से पूछा १ ॥

मू० भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ।
पूर्णमस्त्यमलैः शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः २ ॥

टी० । हे भगवन्! महाभारत कथा जिसको महात्मा व्यासजी ने कहा है ह अनेकों प्रकार के निर्मल व स्वच्छशास्त्रों से संयुक्त है २ ॥

मू० जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम्।
पूर्व्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ३॥

टी०। जो कथा कि जाति व पवित्रता से संयुक्त व उत्तम शब्दों से शोभित है व पूर्वपक्ष की उक्ति व सिद्धान्तकी सिद्धि से मिली है ३॥

मू० त्रिदशानां यथाविष्णुर्द्विपदाम्ब्राह्मणो यथा।
भूषणानाञ्च सर्वेषां यथा चूडामणिर्वरः ४॥

टी०। और देवताओं में जैसे विष्णु व दो पैरवालों में ब्राह्मण और सब भूषणों में जैसे चूड़ामणि उत्तम है ४॥

मू० यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथामनः।
तथेहसर्व्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ५॥

टी०। और जैसे हथियारों में वज्र व इन्द्रियों में जैसे मन उत्तम है वैसेही यहां सब शास्त्रों में महाभारत उत्तम है ५॥

मू० अत्रार्थश्चैव धर्म्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते।
परस्परानुबन्धाश्च नानुबन्धाश्चते पृथक् ६॥

टी०। और इसमें अर्थ धर्म्म काम मोक्ष चारों पदार्थ अलग अलग वर्णन कियेजाते हैं और वे आपस में मेल सहित तथा सम्बन्ध रहित हैं ६।

मू० धर्म्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम्।
कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ७॥

टी०। व यह उत्तम धर्मशास्त्र और यह श्रेष्ठ अर्थशास्त्र है और यह उत्तम कामशास्त्र तथा श्रेष्ठ मोक्षशास्त्र है ७॥

मू० चतुराश्रमधर्म्माणामाचारस्थितिसाधनम्।
प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेनधीमता ८॥

टी०। महाभाग्यवान् व बुद्धिमान् व्यासजी ने इस में चारों आश्रम के धर्म्मों के इस आचार व स्थिति साधन को वर्णन किया है ८॥

मू० तथा तातकृतंह्येतद्व्यासेनोदारकर्म्मणा।
यथाव्याप्तं महाशास्त्रविरोधैर्नाभिभूयते ९॥

टी०। हे तात। उदार कर्म्मवाले व्यासजीने इसको ऐसा बनाया

कि जिसप्रकार बड़े शास्त्रों के विरोध से तिरस्कृत नहीं है और व्याप्त है ९॥

मू० व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा।
वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का महीकृता १०॥

टी०। श्रीव्यासजी का वचन पानी के प्रवाह के सदृश है कि जो बड़े बड़े बहसों के दरख़्तों को काटकर गिरा देनेवाला है और वह दरिया वेद रूपी पहाड़ से निकली है व उसने पृथ्वी को बिनधूलिवाली किया है १०॥

मू० कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम्।
कथाविस्तीर्णसलिलंकात्स्न्यवेदमहाह्रदम् ११॥

टी०। और उसमें सुन्दर सुन्दर वचन हंसों के समान हैं और बड़े बड़े इतिहास उत्तम कमल सदृश हैं और कथा फैले हुये जलके सदृश हैं और सम्पूर्ण वेद उसका ह्रद याने कुण्ड है ११॥

मू० तदिदम्भारताख्यानं बह्वर्थंश्रुतिविस्तरम्।
तत्त्वतोज्ञातुकामोऽहंभगवंस्त्वामुपस्थितः १२॥

टी०। हे भगवन्! मैं इस महाभारत की कथा को जो बहुत अर्थोंवाली और वेदवादों से विस्तारवाली है उसको तत्त्व से जानने की इच्छावाला मैं आपके पास आया हूं १२॥

मू० कस्मान्मानुषताम्प्राप्तो निर्गुणोऽपिजनार्दनः।
वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् १३॥

टी०। परमेश्वर जो निर्गुण भी और जगत्के उत्पत्ति और पालन व संहार का हेतु है वह किसलिये आदमी के शरीरमें अवतार लेकर वासुदेव याने वसुदेव के बेटे कहलाये १३॥

मू० कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा।
पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्रनःसंशयोमहान् १४॥

टी०। और द्रुपद की कन्या वह एक कृष्णा याने द्रौपदी राजा पाण्डु के पांचों बेटों की स्त्री कैसे हुई इसमें हमको बड़ा सन्देह है १४॥

मू० भेषजंब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः १५॥

टी०। और महाबली व हल अस्त्रवाले बलदेव जी ने तीर्थयात्रा के प्रसंग से ब्रह्मघात की औषध किसलिये किया १५ ॥

मू० कथञ्च द्रौपदेयास्ते ऽकृतदारा महारथाः ।
पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् १६ ॥

टी०। और द्रौपदी के पांचों बेटे जो कुँवारे थे और जिनके स्वामी राजा युधिष्ठिर आदि महात्मा पांचों भाई थे और जो महारथी और बलवान् थे वे अनाथ की तरह क्यों मारे गये १६ ॥

मू० एतत्सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि ।
भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराःसदा १७ ॥

टी०। यह सब कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये क्योंकि आप हमेशा से मूर्खों के ज्ञानकारक हुये हैं १७ ॥

मू० इति तस्य वचःश्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः ।
दशाष्टदोषरहितं वक्तुं समुपचक्रमे १८ ॥

टी०। उनके इस वचन को सुनकर मार्कण्डेय महामुनि अठारहों दोषों से रहित वचन जैमिनि मुनि से बोले १८ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० क्रियाकालोऽयमस्माकं संप्राप्तोमुनिसत्तम ।
विस्तरेचापिवक्ष्ये नैषकालः प्रशस्यते १९ ॥

टी०। हे मुनिसत्तम ! यह हमारे कामका समय प्राप्त है विस्तारकथा याने तफ़सीलवार कहने का वक्त नहीं है १९ ॥

मू० येतुवक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव ।
तथाच नष्टसन्देहन्त्वाङ्करिष्यन्ति पक्षिणः २० ॥

टी०। हे जैमिनि ! जे कोई कथाको तुम से कहैंगे उनको मैं कहूंगा उसी तरह वे पक्षी कहकर आपके सन्देह को छोड़ावैंगे २० ॥

मू० पिङ्गाक्षश्चविबोधश्च सुपत्रः सुमुखस्तथा ।
द्रोणपुत्राःखगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः २१ ॥

टी०। और वे चारों पक्षी द्रोण के बेटे पिंगाक्ष व विबोध और

सुपत्र और सुमुख नामक पक्षियों में श्रेष्ठ और तत्त्व के जाननेवाले और शास्त्रके चिन्तक हैं २१ ॥

मू० वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः ।
विन्ध्यकन्दरमध्यस्थांस्तानुपास्य च पृच्छ च २२ ॥

टी०। और वेद शास्त्रके अर्थ जानने में जिनकी बुद्धि को कहीं रोक टोक नहीं है और वे विन्ध्याचल पर्वत के खोह में रहते हैं वहां जाकर उनसे पूछो २२ ॥

मू० एवमुक्तस्तदा तेन मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः २३ ॥

टी०। यह बात उन बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी से सुनकर जैमिनि मुनि की आंखें मारे अफ़सोस के चढ़गईं और बोले २३ ॥

जैमिनिरुवाच ॥

मू० अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् खगवागिव मानुषी ।
यत्पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्ल्लभम् २४ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! यह बड़े तअज्जुब की बातहै जो कि पक्षियों की बोली मनुष्यों की सी है और उन पक्षियों ने अतिदुर्लभ विज्ञान को पाया है २४ ॥

मू० तिर्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् ।
कथं च द्रोणतनयाःप्रोच्यन्ते ते पतत्रिणः २५ ॥

टी०। और यदि तिर्यग्योनि में उत्पत्ति है तो ऐसा ज्ञान उन को कहांसे हुआ और वे पक्षी द्रोण के बेटे किस तरह कहे जाते हैं २५ ॥

मू० कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्य पुत्रचतुष्टयम् ।
जातं गुणवतान्तेषां धर्म्मज्ञानस्महात्मनाम् २६ ॥

टी०। और वह द्रोण कौन प्रसिद्ध है जिसके चारों बेटे गुणवान् और धर्म्मात्मा और ज्ञानवान् और महात्मा पैदाहुये २६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा ।

शक्रस्याप्सरसाञ्चैव नारदस्य च सङ्गमे २७ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि सावधान होकर उसको सुनिये कि पहले जो चरित हुआ है एक समय इन्द्र अपनी अप्सराओं के साथ नन्दनवन में थे वहां नारद जी आपहुँचे २७ ॥

मू० नारदो नन्दनेऽपश्यत् पुंश्चलीगणमध्यगम् ।
शक्रं सुराधिराजानं तन्मुखासक्तलोचनम् २८ ॥

टी०। नारदने देखा कि देवताओं के राजा इन्द्र नन्दनवन में तमाम अप्सराओं के बीच में बैठे हैं व उन के मुखों पर निगाह डुवाये हैं २८ ॥

मू० स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः ।
समुत्तस्थौ स्वकञ्चास्मै ददावासनमादरात् २९ ॥

टी०। उन राजा इन्द्रने नारदजी को देख कर उठे और इनके लिये बड़े आदर से बैठने को अपना आसन दिया २९ ॥

मू० तं दृष्ट्वा बलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः ।
प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताः स्थिताः ३० ॥

टी०। और अप्सरा लोगभी उन राजा इन्द्र को उठे देखकर उठीं और उन्होंने बड़े अदब से नारद को प्रणाम किया ३० ॥

मू० ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ ।
यथार्हंकृतसम्भाषःकथाश्चक्रेमनोरमाः ३१ ॥

टी०। नारदजी अप्सराओं से पूजित हुये व जब राजा इन्द्र जैसा कि चाहिये नारदजी से कुशलमङ्गल पूछकर बैठे तब वे मीठी मीठी बातें करने लगे ३१ ॥

मू० ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ।
शक्रउवाच॥देह्याज्ञांनृत्यतामासांतवयाभिमतेतिवै ३२ ॥

टी०। उसके बाद कथा के बीच में राजा इन्द्र ने उन महामुनि नारद से कहा इन्द्रबोले कि इन अप्सराओं में से जो अच्छी लगती हो उसे आज्ञा दीजिये नाच करे ३२ ॥

मू० रम्भा वा कर्कशा वाथ उर्वश्यथ तिलोत्तमा ।

घृताचीमेनकावापियत्रवाभवतोरुचिः ३३ ॥

टी० । रम्भा या कर्कशा या उर्वशी ख्वाह तिलोत्तमा ख्वाह घृताची या मेनका इन सबों में जिस में आप की रुचिहो ३३ ॥

मू० एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वचःशक्रस्य नारदः ।
विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः ३४ ॥

टी० । यह वचन इन्द्र का द्विजोत्तम नारदजी सुनकर और विचार कर नम्रता से नीचे झुँकी बैठी हुई अप्सराओं से बोले ३४ ॥

मू० युष्माकमिह सर्व्वासां रूपौदार्य्यगुणाधिकम् ।
आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः ३५ ॥

टी० । कि तुम सबोंमें जो अपनाको रूप व उदारता और गुण में अधिक मानतीहो वह मेरे सामने नृत्य करै ३५ ॥

मू० गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै ।
चार्व्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ३६ ॥

टी० । क्योंकि नृत्य उन्हीं का अच्छा है जो रूप और गुण और आवाज में प्रसिद्ध हों और जो बरखिलाफ़ इन के हैं उनका नृत्य मानिन्द नक़ल के है ३६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तद्वाक्यसमकालञ्च एकैकास्तानतास्ततः ।
अहं गुणाधिका न त्वं न त्वं चान्या ब्रवीदिदम् ३७ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी बोले कि अप्सराओं ने नारदजी के उस वचन को सुनकर उसके बाद वे एक २ आपस में अपनी २ खूबियों की तकरार करने लगीं दूसरीने यह कहा कि मैं गुणमें अधिकहूं तुम नहीं नहीं ३७ ॥

मू० तासां सम्भ्रममालोक्य भगवान् पाकशासनः ।
पृच्छत्वं मुनिमित्याह वक्ता यां वो गुणाधिकाम् ३८ ॥

टी० । उन लोगों में आपस की बहस व तकरार देखकर इन्द्रने यह कहा कि नारदजी से पूछो तुम सबों के बीच में जो गुण में अधिक होगी उसीको कहेंगे ३८ ॥

मू० शक्रच्छन्दानुयाताभिः पृष्टस्ताभिः सनारदः।
प्रोवाच यत्तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे ३९ ॥

टी०। हे जैमिने! इन्द्र की आज्ञा की अनुगामिनी उन अप्सराओंने नारदसे पूछा और जो उन्होंने कहा है वह मुझसे सुनिये ३९ ॥

मू० तपस्यन्तन्नगेन्द्रस्थं या वः क्षोभयते बलात्।
दुर्व्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ४० ॥

टी०। याने नारदजीने उन अप्सराओं से कहा कि सब पहाड़ों में श्रेष्ठ पर्वत पर जहां दुर्वासा मुनिनायक तप करतेहैं वहां जाकर तुम लोगों में जो कोई उनको बलसे लोभायले याने जिस पर वह मोहित होजावे उसीको मैं सबों में उत्तम जानूंगा ४० ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्व्वा वेपितकन्धराः।
अशक्यमेतदस्माकमिति ताश्चक्रिरे कथाम् ४१ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि यह बात उन नारदजी की सुनकर सब अप्सरा कांपगईं और वे यह कहने लगीं कि यह बात हम सबोंके अख्तियार से बाहर है ४१ ॥

मू० तत्राप्सरावपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्व्विता।
प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः ४२ ॥

टी०। लेकिन उनमें से वपुर्नाम अप्सरा जो बहुत मुनियों को लोभाये हुये थी और इस बात का घमण्ड रखती थी उस ने कहा कि मैं वहां जाऊंगी जहां ये मुनि टिके हैं ४२ ॥

मू० अद्यतन्देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम्।
स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ४३ ॥

टी०। और कहा कि मैं इसी वक्त वहां जाकर मुनिके मनके रथ में शरीर की इन्द्रियों का घोड़ा जोतकर कामदेवके बाणोंसे बाग ढीली करा के उन मुनिको कुसारथि बनाऊँगी ४३ ॥

मू० ब्रह्मा जनार्दनो वापि यदि वा नीललोहितः।

तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ४४ ॥

टी०। अगर ब्रह्मा या विष्णु भी या शिवजी हों तो मैं उनके हृदय को भी कामबाण से छेद दूँगी ४४ ॥

मू० इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा।
मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ४५ ॥

टी०। इतना कहकर उस समय वह अप्सरा प्रालेय नाम पर्वत पर जहांपर उन मुनिके तपस्या की जगह तपके तेज से जंगली जीवों से बची थी गई ४५ ॥

मू० सा पुंस्कोकिलमाधुर्य्यं यत्रास्ते स महामुनिः।
क्रोशमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ४६ ॥

टी०। जहां वे महामुनि दुर्वासा जी तप करते थे वहां से एक कोस के फ़ासिले टिककर वह श्रेष्ठ अप्सरा कोकिलाके आवाज की तरह मीठे स्वर से गानेलगी ४६ ॥

मू० तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः।
जगाम तत्र यत्रास्ते सा बाला रुचिरानना ४७ ॥

टी०। उसके गानेकी आवाज़ सुनकर मुनिका जी विस्मित याने फ़रेफ़्ता होकर जहां वह सुन्दरमुखी स्त्री गारही थी वहां गये ४७ ॥

मू० तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः संस्तभ्य मानसम्।
क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ४८ ॥

टी०। पहिले उसके रूप और गुणको देखकर दुर्वासा मुनि मनको रोककर व उसको लुभाने के लिये आई हुई जानकर क्रोधमें आये ४८ ॥

मू० उवाचेदन्ततोवाक्यंमहर्षिस्तांमहातपाः ४९ ॥

टी०। और उसके बाद बड़े तपस्वी दुर्वासा मुनि उससे यह कहने लगे कि ४९ ॥

मू० यस्माद् दुःखार्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात्।
आगतासि मदोन्मत्ते मम दुःखाय खेचरि ५० ॥

टी०। ऐ आसमान में फिरनेवाली, बावली! जिसालिये तू मुझे दुःख

देने और क्लेश से इकट्ठा किये हुये मेरे तप में विघ्न डालने के लिये यहां आई है ५० ॥

मू० तस्मात्सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
जन्म प्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ५१ ॥

टी०। इसलिये हे दुर्बुद्धे! तू हमारे क्रोधसे पापिनी होकर सुपर्ण नाम पक्षी के गोत्रमें जन्म लेकर सोलह वर्षतक रहैगी ५१ ॥

मू० निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी ।
चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सरः ५२ ॥

टी०। हे अधम अप्सरा! तू अपनी असली सूरत छोड़कर पक्षीरूप धारण कर चार लड़के तुझ से पैदा होंगे ५२ ॥

मू० अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि ।
वासमाप्स्यसि वक्तव्यन्नोत्तरन्ते कथञ्चन ५३ ॥

टी०। फिर तू उनकी मुहब्बत छोड़कर किसी वीर के हथियार से जान देकर पवित्र हो स्वर्ग में आकर रहैगी इसके जवाब में किसी तरह तू कुछ न बोल ५३ ॥

मू० इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टि-
श्चलकलवलयात्तां मानिनीं श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्य विप्रः
प्रथितगुणगणौघां संप्रयातः खगङ्गाम् ५४ ॥

टी०। जब ऐसा सख्त वचन क्रोधयुक्त लाल लाल आंखें करके दुर्वासा जी ने उसको सुनाया तो वह कांप गई जो बहुत गुणगणोंसे प्रसिद्ध थी फिर दुर्वासा द्विज भूमि को छोड़कर आकाशगंगा के तीर पै चलेगये ५४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवपुःशापःप्रथमोऽध्यायः १ ॥



अथ दूसरा अध्याय ।

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नाम पक्षिराट् ।
गरुडस्याभवत् पुत्रः सम्पातिरिति विश्रुतः १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी बोले कि अरिष्टनेमि के पुत्र सब पक्षियों के राजा गरुड नाम हुये और गरुड का बेटा सम्पाति नाम बड़ा नामी हुआ १ ॥

मू० तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः ।
सुपार्श्वतनयःकुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः २ ॥

टी० । फिर उसका भी बेटा शूर नाम हुआ और शूर का बेटा सुपार्श्व हुआ कि जिसका जोर बराबर पवन के था और फिर सुपार्श्व का बेटा कुन्ति और कुन्ति का बेटा प्रलोलुप हुआ २ ॥

मू० तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ३ ॥

टी० । और प्रलोलुपके भी दो बेटेहुये एकका नाम कंक और दूसरे का नाम कन्धर हुआ ३ ॥

मू० कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् ।
ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम् ४ ॥

टी० । कंक ने कैलास पर्वतकी चोटी पर विद्युद्रूप ऐसे प्रसिद्ध एक राक्षस कुबेर के नौकर को जिसकी आंखें कमल के फूलके मानिन्दथीं देखा ४ ॥

मू० आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् ।
भार्य्यासहायमासीनंशिलापट्टेऽमले शुभे ५ ॥

टी० । जोकि मदिरा पी रहाहै व उम्दा २ फूलों का माला और अच्छे कपड़े पहिने हुये अपनी स्त्री के साथ एक पत्थर की अच्छी चट्टान पर बैठा हुआ है ५ ॥

मू० तद्दृष्टमात्रकङ्केन रक्षःक्रोधसमन्वितम् ।
प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमित्योह्यण्डजाधम ६ ॥

टी० । जब उस राक्षस की नजर कङ्क पर पड़ी तो क्रोधित होकर बोला कि अरे पक्षी अधम ! तू यहां क्यों आया ६ ॥

मू० स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तं कस्मान्मामुपसर्प्पसि।
नैष धर्म्मः सुबुद्धीनां मिथो निष्पाद्यवस्तुषु ७॥

टी०। मैं तो अपनी स्त्री के साथ बैठाहूं तू क्यों समीप आरहा है सिद्धके योग्य प्रजाओं में यह बुद्धिमानोंका धर्म्म नहींहै तू इस वक्त मारही डालने के क़ाबिल है ७॥ कङ्क उवाच॥

मू० साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम।
अन्येषाञ्चैव जन्तूनां ममता भवतोऽत्रका ८॥

टी०। तब कङ्क बोला कि यह पर्वतराज साधारण याने ख़ास किसी का नहीं है जैसा तुम्हारा वैसा हमारा वैसाही सब जीवों का है इस में आपकी क्या मुमानियत है ८॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ब्रुवाणमित्थं खड्गेन कङ्कं चिच्छेद राक्षसः।
क्षरत्क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम् ९॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि वह राक्षस इतनी बात कङ्क की सुनकर क्रोध में आकर खड्ग से मार डाला याने वह कङ्क अचेत हो ऐसा गिरा कि जिसके देहसे रक्त बहनेलगा फिर दम न लिया ९॥

मू० कङ्कं विनिहतं श्रुत्वा कन्धरः क्रोधमूर्च्छितः।
विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः १०॥

टी०। कङ्क के मारे जाने की खबर जब कन्धर उसके छोटे भाई को मालूम हुई तो पहिले मारे अफ़सोस के मूर्च्छित होगया फिर सँभलकर विद्युद्रूप के मारने का मनकिया १०॥

मू० स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्र हतः स्थितः।
तस्यसङ्कलनञ्चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्य खेचरः॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ११॥

टी०। और उस पहाड़की चोटीपर जाकर जहां कङ्क की लाश पड़ीथी बड़े भाई की लाश को देख बहुत अफ़सोस किया फिर क्रिया उसकी करके बहुत क्रोध और ईर्षा में आ वह पक्षी सांप के समान फुफुकार मारनेलगा ११॥

मू० जगामाथ स यत्रास्ते भ्रातृहा तस्य राक्षसः।
पक्षवातेन महता चालयन् भूधरान् वरान् १२॥

टी०। फिर भाई के घात करनेवाले की तरफ़ जहां वह राक्षस था ऐसे जोर से चला कि उसके पंख हवा के जोरसे बड़े२पहाड़ कांप गये १२॥

मू० वेगात् पयोदजालानि विक्षिपन् क्षतजेक्षणः।
क्षणात् क्षपितशत्रुः स पक्षाभ्यां क्रान्तभूधरः १३॥

टी०। और वेगसे मेघ समूहों को फेंकते हुये व गुस्सेमें लाल २ आंखें किये वह शत्रुनाशक एक पल में जहां पर वह राक्षस था पहुँचकर उस पहाड़की चोटी को अपने दोनों परों से छायलिया १३॥

मू० पानासक्तमतिन्तत्र तन्ददर्श निशाचरम्।
आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्यङ्कमाश्रितम् १४॥

टी०। वहां मदिरा पीने में लगीहुई बुद्धिवाले व कुछ लाल मुख व लोचनोंवाले उस निशाचर को देखा जोकि सोने के पलँगपर बैठा हुआहै १४॥

मू० स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम्।
केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् १५॥

टी०। इस सूरतसे कि फूलोंका माला चोटी में डाले व चन्दन मलया-गिरिबदन में लगाये हैं केतकीके पत्ते में जैसे ज़रदी होतीहै वैसेही ज़र्द दांतों से अतिभयानक मुख बना हुआ है १५॥

मू० वामोरुमाश्रिता चास्य ददर्शायतलोचनाम्।
पत्नीं मदनिकानाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् १६

टी०। और उसके बायें जांघपर मदनिका नाम उसकी स्त्री आंखें बड़ी २ और कोकिल कीसी मीठी आवाज़ है बैठी हुई

मू० ततो रोषपरीतात्मा कन्धरः कन्दरस्थितम्।
तमुवाच स दुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया १७।

टी०। उसके बाद कन्धर ने राक्षस को उस पहाड़ की खो कर बड़े क्रोधसे बोला कि अरे दुष्टात्मा! आ मुझ से युद्धकर

मू० यस्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया

तस्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् १८ ॥

टी० । जिसलिये तूने विश्वास किये हुये मेरे बड़े भाई को माराहै उसी लिये मैं गर्व से संयुक्त तुझे मारकर यमराज के घरको भेजता हूँ १८ ॥

मू० विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ।
यास्यसे निरयान् सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः १९ ॥

टी० । जिन नरक में विश्वासघाती व बालघाती व स्त्रीघाती मनुष्य जाते हैं उनसबों में तूभी इस वक्त मेरे हाथसे क़त्ल होकर जायगा १९ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसन्निधौ तदा ।
रक्षःक्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम् २० ॥

टी० । उस वक्त वह राक्षस अपनी स्त्री के सामने यह कठोर वचन कन्धरके सुन कर बड़े गुस्से में आकर कन्धर पक्षी से बोला २० ॥

मू० यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्विदर्शितम् ।
त्वामप्यद्य हनिष्येहं खड्गेनानेन खेचर २१ ॥

टी० । ऐ आकाश में फिरनेवाले ! जिस तरह हमने तेरे भाई को मारा व उस बल को दिखलाया है उसी तरह तुझे भी इसी खड्ग से मार डालूंगा २१ ॥

मू० तिष्ठ क्षणं नात्र जीवन् पतगाधम यास्यसि ।
इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे २२ ॥

टी० । अहो पक्षियों में नीच ! यहां खड़ा रह लहजाभर में तू जान से मारा जायगा इतना कह कर उस देव स्याह रंग ने एक तलवार साफ़ हाथ में लेलिया २२ ॥

मू० ततः पतगराजस्य यक्षा॥ ... च ।
बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः २३ ॥

टी० । बाद उसके उस कन्धर पक्षियों के राजा और उस राक्षस यक्षों के राजा से बड़ा युद्ध हुआ जैसाकि इन्द्र व गरुड़ से हुआथा २३ ॥

मू० ततः सराक्षसः क्रोधात् खड्गमाविध्य वेगवान् ।

चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्वाणाङ्गारवर्च्चसम् २४ ॥

टी०। फिर उस राक्षस ने गुस्सेसे अपना खड्ग जो आग के समान साफ़ और तेज़ था जल्दी से उस पक्षिराज पर चलाया २४ ॥

मू० पतगेन्द्रश्च तं खड्गं किञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात्।
वक्त्रेण जग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा २५ ॥

टी०। लेकिन उस वक्त उसने ज़मीनसे कुछ उछलकर उसके वार को खाली देकर चोंच से उस खड्ग को ज़मीन से उठालिया जैसे गरुड़ साँप को थांभ लेता है २५ ॥

मू० वक्त्रं पादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे क्षोभमथाण्डजः।
तस्मिन् भग्ने ततः खड्गे बाहुयुद्धमवर्त्तत २६ ॥

टी०। फिर कन्धर ने जब उस खड्ग को चोंच और पैर से दबा कर तोड़ डाला तब वह राक्षस कुश्ती की लड़ाई लड़ने लगा २६ ॥

मू० ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः।
हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः २७ ॥

टी०। तब कन्धर ने बड़ी फ़ुरती से उस राक्षस को छाती से दबाकर शिर और पैर उसका चोंच से काटकर मारडाला २७ ॥

मू० तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात्।
किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्य्या भवामि ते २८ ॥

टी०। जब उस राक्षस की स्त्री ने अपने मर्द को मरा हुआ देखा तो मारे ख़ौफ़ के कन्धर के पास आ जानकी अमान मांगकर कहा कि अब मैं तेरी स्त्री हूं २८ ॥

मू० तामादाय खगश्रेष्ठ स्वकं गृहमगात्पुनः।
गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् २९ ॥

टी०। पक्षियों में श्रेष्ठ कन्धर उस स्त्री को लेकर अपने घरगया याने जाकर फिर भाई विद्युद्रूप के मरने के सबबसे उसने बदला लेलिया २९ ॥

मू० कन्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी।
मेनकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ३० ॥

टी०। और वह स्त्री इच्छा रूप धारण करनेवाली कन्धर के घर में रहने लगी असल में वह मेनका नाम अप्सरा की बेटी थी जिसकी निहायत ख़ूबसूरत भौंहें थीं पक्षी की सूरत में रहने लगी ३० ॥

मू० तस्यां स जनयामास तार्क्षीन्नाम सुतान्तदा।
मुनिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसांवराम् ॥
तस्या नाम तदा चक्रे तार्क्षीमिति विहङ्गमः ३१ ॥

टी०। और उस राक्षसने उसी अप्सरासे तार्क्षी नाम लड़की पैदा किया जिसको दुर्वासाजीने शाप दिया था जिसका उस वक्त में वपुनामथा उसी का नाम यहां पर कन्धर ने तार्क्षी रक्खा ३१ ॥

मू० मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितिबुद्धयः।
जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ता द्विजसत्तम ३२ ॥

टी०। ऐ जैमिनि मुनि! यहभी जानना चाहिये कि मन्दपाल नाम एक पक्षी था कि जिसके चार बेटे थे सब से बड़े बेटे का नाम जरितारि व सब से छोटे का नाम द्रोण था ३२ ॥

मू० तेषां जघन्यो धर्म्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः।
उपयेमे स तान्तार्क्षीं कन्धरानुमते शुभाम् ३३ ॥

टी०। उनमें छोटा वह द्रोण जो धर्म्म से युक्त व वेद शास्त्र के अर्थ में ख़बरदार था उसी से कन्धर ने तार्क्षी की शादी करदी ३३ ॥

मू० कस्यचित्त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह।
सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा ३४ ॥

टी०। फिर कुछ ज़माने के बाद जब कि तार्क्षी को साढ़े तीन महीने का हमल हुआ तब वह कुरुक्षेत्र को गई ३४ ॥

मू० कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे।
भावित्वाच्चैव कार्य्यस्य रणमध्यं विवेश सा ३५ ॥

टी०। उस वक्त वहां याने कुरुक्षेत्रमें कौरवों पाण्डवोंसे आपस में बड़ी लड़ाई होरही थी होनी कार्य्य के वश होकर वह तार्क्षी वहां गई ३५ ॥

मू० तत्रापश्यच्च युद्धं सा सर्वेषां पृथिवीक्षिताम्।

शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमं यथा देवासुरं रणम् ३६ ॥

टी०। तो वहां वह क्या देखती है कि राजाओं के युद्ध के सबब से तीर व भालों की बौछाड़ पड़ रही है कि जिससे वह तमाम मैदान डरावना होरहा है जैसाकि देवासुर संग्राम में हुआ था ३६ ॥

मू० सापश्यत्ततो युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः।
निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव ३७ ॥

टी०। उस के बाद यह विशेष क्या देखतीहै कि भगदत्त और अर्जुन के साथ बड़ी लड़ाई होरही है दोनों तरफ़के बाणों से आसमान पर टीड़ी सी छारही है ३७ ॥

मू० पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत्।
तस्याभल्लमहिश्यामंत्वचञ्चिच्छेदजाठरीम् ३८ ॥

टी०। इत्तिफ़ाक़न् उस वक्त एक तीर अर्जुन के धनुषका छूटा हुआ काले सांप के समान व बड़ा वेगवान् बाण पास में आई हुई ताक्षी के पेट में छिद गया ३८ ॥

मू० भिन्ने कोष्ठे शशाङ्काभम्भूमावण्डचतुष्टयम्।
आयुषःसावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ३९ ॥

टी०। चुनांचे उसके पेटके फटने से चार अण्डे चन्द्रमा के से रोशन निकलकर उमरके बाक़ी रहनेसे ज़मीनपर गिरपड़े रुईके ढेरकी तरह ३९ ॥

मू० तत्पातसमकालञ्च सुप्रतीकाद्गजोत्तमात्।
पपात महती घण्टा बाणसञ्छिन्नबन्धना ४० ॥

टी०। जानना चाहिये कि जिसवक्त वे चारों अण्डे ज़मीन पर गिरे उसीवक्त सुप्रतीक नाम हाथी के घण्टे की डोरीभी बाणों से कटगई और वह बड़ा भारी घण्टा गिर पड़ा ४० ॥

मू० समं समन्तात्प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला।
छादयन्ती खगाण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ४१ ॥

टी०। कि जिस सबबसे वह घण्टा इस तरह गिरा कि वे चारों अण्डे बिला चोट चपेट घण्टे के बीच में पड़ गये ४१ ॥

मू० हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे।
बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ४२॥

टी०। फिर उस राजा भगदत्त के मारे जाने के बाद बहुत दिनोंतक कौरवों पाण्डवों की फ़ौज से बड़ी लड़ाई हुई ४२॥

मू० वृत्ते युद्धे धर्म्मपुत्रे गते शान्तनवान्तिकम्।
भीष्मस्यगदतोऽशेषाञ्छ्रोतुंधर्म्मान्महात्मनः ४३॥

टी०। बाद खतमहोने लड़ाई के राजा युधिष्ठिर शान्तनव (भीष्म) के पास जो बड़े महात्मा थे गये वहां पर भीष्मजी की कही हुई बहुत बातें धर्म्म की युधिष्ठिर ने सुनी ४३॥

मू० घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानि द्विजोत्तम।
आजगाम तमुद्देशं शमीको नाम संयमी ४४॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि अहो द्विजोत्तम! जिस जगह उस घण्टेके बीच में अण्डे पड़ेथे इत्तिफ़ाक़न् शमीक नाम योगी वहां आपहुँचे ४४॥

मू० स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम्।
बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ४५॥

टी०। तो उन्होंने वहां पक्षीके बच्चे की आवाज़ सुनी लेकिन बसबब आवाज़ बच्चेके कोई बात सिवाय चोंचों के समझ में न आई ४५॥

मू० अथर्षिः शिष्यसहितो घण्टामुत्पाट्यविस्मितः।
अमातृपितृपक्षाणि शिशुकानि ददर्श ह ४६॥

टी०। तब उस घण्टेको योगीने अपने शिष्यों समेत उलटा तो उन बच्चों को बे मा बाप का देखकर बहुत आश्चर्य्य अफ़सोस में आये ४६॥

मू० तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः।
दृष्ट्वासविस्मयाविष्टःप्रोवाचानुगतान् द्विजान् ४७॥

टी०। और उस भूमिमें उन बच्चोंको देखकर उसी अफ़सोसकी हालत में भगवान् शमीक मुनि अपने अनुगामी शिष्यों से बोले ४७॥

मू० सम्यगुक्तं द्विजाग्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम्।
पलायनपरं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं सुरार्दितम् ४८॥

टी०। देवतों की लड़ाई में पीड़ित होकर जिस वक्त दैत्य लोग भागे थ उस वक्त ब्राह्मणों में उत्तम शुक्राचार्य्य ने आपही जो जो बात दैत्योंसे कही वह सब सच है ४८ ॥

मू० न गन्तव्यं निवर्त्तध्वं कस्माद् व्रजत कातराः।
उत्सृज्य शौर्य्ययशसी क्व गता न मरिष्यथ ४६ ॥

टी०। याने शुक्राचार्य्य ने उन लोगों से कहा कि भागो मत लौटो लड़ाई में कादर होकर क्यों भागते हो जवांमर्दी व यश को छोड़कर कहां जाने से न मरोगे ४६ ॥

मू० नश्यतो युद्ध्यतो वापि तावद्भवति जीवितम्।
यावद्धातासृजत्पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ५० ॥

टी०। युद्ध करनेवाला या भागनेवाला कोई हो जबतक ब्रह्मा ने जिन्दगी लिखा है तब तक नहीं मरसक्ता है अगर अपनी ख़्वाहिश जीने की हो और ब्रह्मा के लिखे बमूजिब उमर पूरी होगई हो तो किसी तरह नहीं जी सक्ता है ५० ॥

मू० एके म्रियन्ते स्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः।
भुञ्जन्तोऽन्नंतथैवापःपिबन्तो निधनंगताः ५१ ॥

टी०। कोई अपने घर में मरजाते हैं कोई भागते वक्त कोई अनाजही खाते वक्त कोई पानी पीने में जब जिसकी आयुर्दाय पूरी होतीहै तब वह मरजाता है ५१ ॥

मू० विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः।
अविक्षताङ्गाः शस्त्रैश्च प्रेतराजवशंगताः ५२ ॥

टी०। और कितने विलास करते वक्त कितने बीमारी व घाव व कितने बिला बीमारी व बिला हथियारों के घाव और कितने हथियारों के जख़्म से इस दुनिया को छोड़ देते हैं ५२ ॥

मू० अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः।
योगाभ्यासे रताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम् ५३ ॥

टी०। और कितने तप करते करते मरजाते हैं और कितने लोग योगाभ्यास में लगे रहते हैं पर मौत उनको नहीं छोड़ती है ५३ ॥

मू० शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना।
हृदयेभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः ५४॥

टी०। गुज़रे हुये ज़माने में एक वक्त इन्द्र ने वज्र से शम्बर नाम असुर की छाती पर मारा था लेकिन तिसपर भी वह असुर नहीं मरा ५४॥

मू० तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः।
प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनंगताः ५५॥

टी०। फिर जब उन असुरों की आयुर्दाय पूरी होगई तो उनको उसी वज्र से उन इन्द्र ने उसीवक्त मारडाला ५५॥

मू० विदित्वैवं न संत्रासः कर्त्तव्यो विनिवर्त्तत।
ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजम्भयम् ५६॥

टी०। यह बात ज़ाहिरहै कि बिला आयुर्दाय पूरीहुये कोई नहीं मरता फिर लड़ाई के मैदान से भागना महज़ नामर्दी है इस से लौटो यह बात सुनकर फिर दैत्य लोग निडर होगये व लौटपड़े ५६॥

मू० इति शुक्रवचःसत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः।
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ५७॥

टी०। यह वचन शुक्र का इन पक्षी के बच्चों ने सच करदिया कि मनुष्यों की बड़ी लड़ाई में रहकर जान से बचगये ५७॥

मू० क्वाण्डानां पतनं विप्राः क्वघण्टापतनं समम्।
क्व च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ५८॥

टी०। ऐ ब्राह्मणो! कहां अण्डोंका गिरना व कहां उसीवक्त घण्टे का उसपर गिरना व अण्डों का दरमियान घण्टे के बचजाना और कहां वह ज़मीन लोथ व खून से भरीहुई ५८॥

मू० केऽप्येते सर्व्वथा विप्रा नैते सामान्यपक्षिणः।
दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ५९॥

टी०। ऐब्राह्मणो! ये भी कोई लोग सब तरहसे साधारण पक्षी नहीं हैं परमेश्वरकी कृपासे और बड़े भाग्यसे पृथ्वी में इन लोगोंका दर्शन है ५९॥

मू० एवमुक्त्वा सतान् वीक्ष्य पुनर्व्वचनमब्रवीत् ।
निवर्त्तताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् ६० ॥

टी० । इतना कहकर उन बच्चों को जो अपने स्थान से अलाहिदा थे हाथमें लेकर फिर उन ब्राह्मणोंसे वचन बोले कि तुमलोग पक्षीके बच्चोंको लेकर लौटो आश्रमको जावो ६० ॥

मू० मार्ज्जाराखुभयं यत्र नैषामण्डजजन्मनाम् ।
श्येनतो नकुलाद्वापि स्थाप्यन्तां तत्र पक्षिणः ६१ ॥

टी० । कि जहांपर बिलार व मूश व बाज व नेवला भी रहतेहैं वहांपर इन बच्चों का रहना अच्छा नहींहै याने जहां ये न हों वहां रखियेगा ६१ ॥

मू० द्विजाः किं वातियत्नेन मार्य्यन्ते कर्म्मभिःस्वकैः ।
रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ६२ ॥

टी० । या कि ऐ ब्राह्मणो । बहुत यत्न से कुछ हासिल नहीं अपना जो कर्म्म है वही रक्षा करता है सम्पूर्ण जीवों की रक्षा सिर्फ़ कर्म्म ही से है जैसा कि इन बच्चों को इनकी क़िस्मतने बचाया ६२ ॥

मू० तथापि यत्नः कर्त्तव्यो नरैः सर्व्वेषु कर्म्मसु ।
कुर्व्वन् पुरुषकारन्तु वाच्यतां याति नो सताम् ६३ ॥

टी० । कर्म्मकी बात जो मैंने कही वही ठीक है लेकिन तौभी सब कामोंमें आदमियों को यत्न करना चाहिये यत्न करने से मनुष्य कलंक से बचजाताहै हरचन्द भलाई बुराई क़िस्मत पर है लेकिन यत्नभी ज़रूरहै ६३॥

मू० इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते
मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसङ्घं
ययुरथ तापसरम्यमाश्रमंस्वम् ६४ ॥

टी० । बाद इसके मुनिके कहने से उनके शिष्योंने उन पक्षी बच्चोंको अपनीजगहपर जहांबहुत दरख्तों व भौंरआदिकोंसे शोभितथीलेआये६४॥

मू० सचापिवन्यंमनसाभिकामितंप्रगृह्यमूलंकुसुमंफलंकुशान् ।
चकारचक्रायुधरुद्रवेधसांसुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ६५

टी०। वहांपर उन शमीक मुनिने भी मनसे चाहेहुये वनके फल फूल मूल कुश वगैरह लेकर विष्णु ब्रह्मा शिव इन्द्र सूर्य्य अग्नि का ६५॥

सू० अपाम्पतेर्धीपतिवित्तरक्षिणोः
समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमाः।
धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः
श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ६६॥

टी०। और भी हे द्विजोत्तमो! वरुण व बृहस्पति व कुवेर व पवन व धाता व विधाता व विश्वेदेव इन सबोंकी भी वेद के मुताबिक़ बहुत से उत्तम क्रिया पूजन वगैरह किया ६६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिर्द्वितीयः २॥

अथ तीसरा अध्याय॥

मार्कण्डेयउवाच॥

सू० अहन्यहनि विप्रेन्द्र स तेषां मुनिसत्तम।
चकाराहारं पयसा तथा गुप्त्या च पोषणम् १॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि ऐ जैमिनि! वे श्रेष्ठ ब्राह्मण याने शमीक हररोज़ उन पक्षी बच्चोंको यथायुक्ति दूध पिला पिलाकर बड़ी रक्षा केसाथ पालनेलगे १॥

सू० मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोः स्यन्दनवर्त्मनि।
कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टा मुनिकुमारकैः २॥

टी०। जबकि उन बच्चोंको एक महीना शमीक मुनिके स्थान में परवरिश पाते हुआ तो फिर वे पांव पंख निकालने लगे और तअज्जुब से चंचल नेत्रोंवाले मुनिपुत्रों ने देखा एक रोज़ उन बच्चोंने यह दिखाया कि अपने को सूर्य्य के रथकी राहतक पहुँचाया २॥

सू० दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम्।
रथचक्रप्रमाणान्ते पुनराश्रमसमागताः ३॥

टी०। और रथके पहियोंकी प्रमाणके अन्त में वहांसे तमाम दुनिया की आबादी और समुद्रको देखकर फिर अपने स्थानको वापस चलेआये ३॥

मू० अमच्छान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः ।
ज्ञानञ्च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ४ ॥

टी० । हरचन्द मेहनत से उन महात्मा पक्षी बच्चोंने अपना जी हार दिया लेकिन उस सूर्य्यके प्रभाव याने ज्योतिने उनकी रूहको ऐसा रोशन कर दिया कि हालात भूत भविष्य के इनपर जाहिर होनेलगे ४ ॥

मू० ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतो धर्म्मनिश्चयं ।
कृत्वा प्रदक्षिणं सर्व्वे चरणावभ्यवादयन् ५ ॥

टी० । फिर जहांपर शमीक मुनि अपने शिष्यों को धर्म्मकी बातें सिखाते थे वहांपर वे सब पत्ती लोग पहिले उस मुनि को प्रदक्षिण व प्रणाम करके बोले ५ ॥

मू० ऊचुश्च मरणाद् घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने ।
आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः ६ ॥

टी० । कि ऐ मुनि ! चूंकि आपने हम सबों को बड़े कठिन मौत से बचायाहै और अपने पास रखकर दूध पिला पिलाकर जिलायाहै इससे दाता पिता गुरू मेरे आपही हैं ६ ॥

मू० गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवापि पालिताः ।
त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः ७ ॥

टी० । हम लोग मा के पेट ही में थे कि मा मरगई और बाप के दर्शन तक नसीब न हुये याने पिताने भी नहीं पाला है अपने लड़कों की तरह आपने हमसबोंको पालाहै कैसी कैसी बलाको मेरे शिरसे टाला है७॥

मू० क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् ।
गजघण्टां समुत्पाट्य कृतवान् दुःखरेचनं ८ ॥

टी० । आप इस पृथ्वी में अक्षय तेजस्वी हैं याने आपके तेजका क्षय नहीं है किसवास्ते कि हमलोग घण्टेके भीतर कीड़ेकी तरह भूख पियास से सूखतेथे वहांपर आपने उस घण्टेको उलटकर हम सबों का दुःख छुड़ायाहै ८ ॥

मू० कथं वर्द्धेयुरबलाः खस्थान् द्रक्ष्याम्यहं कदा ।

कदा भूमेर्दिवं प्राप्तान् द्रक्ष्ये वृक्षान्तरं गतान् ९ ॥

टी०। आप यह सोचतेथे कि हम सबको जो कमजोर हैं कब ताकत होगी और आसमान के सैर करने वाले पक्षी लोगों को हमकब देखैंगे और ज़मीन से वृक्षोंपर जानेवाले और फिर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर फांदनेवालोंको हमकब देखैंगे ९ ॥

सू० कदा मे सहजा कान्तिः पांशुना नाशमेष्यति।
एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् १० ॥

टी०। व मेरे पासही उड़नेवाले इन पक्षियोंके पंखो से उठीहुई गरद से मेरा साधारण तेज कब नाशहोगा १० ॥

सू० इति चिन्तयता तात भवता प्रतिपालिताः।
ते साम्प्रतं प्रवृद्धाःस्मः प्रबुद्धाःकरवाम किं ११ ॥

टी०। ऐ मुनि यह विचारतेहुये आपने हमसबों को पालाहै इसवक्त हमसब बड़े व ज्ञानी हुये हैं आपकी खिदमत करनी उचित है जैसा हुक्म हो सो बजालावें ११ ॥

सू० इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत् स्फुटं।
शिष्यैःपरिवृतःसर्वैः सहपुत्रेण शृङ्गिणा १२ ॥

टी०। शमीकमुनि शृंगी ऋषि समेत सब शिष्यों के दरमियान बैठे हुयेथे ये बातें ज्ञान और अक्लकी उन पक्षियों से साफ २ सुनी १२ ॥

सू० कौतूहलपरो भूत्वा रोमाञ्चपटसंवृतः।
उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेःकारणंगिरः १३ ॥

टी०। और निहायत तअज्जुब में आकर और खुशहोकर बोले कि तुम लोग वाणीके वर्त्तमान का सबब मुझसे यथार्थ बयान करौ १३ ॥

सू० कस्य शापादियं प्राप्ता भवद्भिर्विक्रिया परा।
रूपस्य वचसश्चैव तन्मेवक्तुमिहार्हथ १४ ॥

टी०। याने तुमलोग किसके शापसे अपनी पहिली क्रिया और रूप को छोड़कर पक्षी स्वरूप में आये और यह बुद्धि और वचन ज्ञानियों की किस तरहपाई यह मुझसे साफ २ बयान करो १४ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० विश्वावसुरिति ख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः ।
तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे सुकृशस्तुम्बुरुस्तथा १५ ॥

टी०। पक्षीलोगबोले कि हे मुनिपूर्व्वकालमें विश्वावसु ऐसानामक उत्तम मुनि था उसके दो बेटेहुये एकका सुकृश और दूसरेका तुंबुरु नामहुआ १५॥

मू० सुकृशस्य वयं पुत्राश्चत्वारःसंयतात्मनः ।
तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्राःसदैव हि १६ ॥

टी०। उस सुकृश मुनिके चारबेटे हमलोग बड़े ज्ञानी और बलवान् हुये और हमेशा हमलोगोंकी क्रिया और आचार और तप मुनियोंकासाथा १६॥

मू० तपश्चरणसक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्यच ।
यथाभिमतमस्माभिस्तथा तस्योपपादितं १७ ॥

टी०। और सुकृश मुनि जो पिता हमारे थे इन्द्रियजित् होकर तपमें रहते थे और उसवक्त जिस २ बातकी वे ख्वाहिश करतेथे वहसब हमलोग पूरी करदेतेथे १७।

मू० समित्पुष्पादिकं सर्व्वं यच्चैवाव्यवहारिकं ।
एवंतत्राथवसतां तस्यास्माकञ्च कानने १८ ॥

टी०। और जिस वनमें हमलोग रहतेथे वहां समिधाएं व फूल वगैरह और जो व्यवहारिक वस्तुहै सब उस जगह पूरी थी इस सबबसे हमलोग बहुत खुशीसे वहां रहतेथे १८ ॥

मू० आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः ।
आताम्रनेत्रःस्रस्तात्मा पक्षी भूत्वा सुरेश्वरः १९ ॥

टी०। वहांपर एक समय राजा इन्द्र बड़े शरीरवाले पक्षीके रूपमें इस सूरत से कि पंख टूटा हुआ और बुढ़ापा छायाहुआ व सुर्ख आंखें धारण कियेहुये व्याकुल चित्तसे आये १९ ॥

मू० सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसं ।
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च २० ॥

टी०। लेकिन यह सब कहना या समझना मेरा क़बूलहै जो कुछतुम ने मांगा है वह हमको देना चाहिये ३१ ॥

मू० इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः।
शीघ्रमस्मान्समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ३२ ॥

टी०। पक्षी बच्चे लोग कहते हैं कि ऐ मुनि! वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जो हम सबोंका पिताथा ऐसा निश्चयकर यह माकूल बातें उस पक्षी स्वरूपको सुनाकर हम सबोंको जल्दीसे अपने पास बुलाकर पहिले हम सबोंकी प्रशंसा करने लगा ३२ ॥

मू० उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरं।
विनयावनतान् सर्व्वान् भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन् ३३॥

टी०। और हमलोगभी बहुत अदब व प्रेमके साथ हाथजोड़े खड़ेथे उस वक्त मेरे पिता वे मुनि डरकर मजबूर होकर हमीकी बातेंज़बानपरलाये ३३॥

मू० कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठा ऋणैर्मुक्ता मया सह।
जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः ३४ ॥

टी०। कि ऐ लड़को! तुमलोग मेरे सपूत पैदाहुये और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हो तुम लोग हमारे ऋण से अदा होगये ३४ ॥

मू० गुरुः पूज्यो यदि मतो भवताम्परमः पिता।
ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा ३५ ॥

टी०। यदि तुमलोगों के मतमें सब गुरुओं में पिता गुरु श्रेष्ठ और परम पूज्यहै तो इस वास्ते चाहिये कि तुमलोग निश्छल चित्त होकर जो मैं कहताहूं बजालाओ ३५ ॥

मू० तद्वाक्यसमकालं च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः।
यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्य्यतां ३६ ॥

टी०। उसके कहतेही वक्त हमलोगों ने बड़े आदर से कहा कि जो आपका हुक्म होगा हम सब उसको दिलवजान से बजा लावैंगे ३६ ॥

ऋषिरुवाच ॥

मू० मामेव शरणं प्राप्तो विहगः क्षुत्तृषान्वितः।

मू० नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत्।
कर्मणान्येनवाविप्रैर्यत् सत्यपरिपालनात् ४८॥

टी०। जो पुण्य दक्षिणावाले बहुत यज्ञों और अन्य काम करनेसे नहीं हासिल होता है सो सिर्फ सचाई इख्तियार करनेसे ब्राह्मणों को बहुत जल्द हासिल होजाताहै ४८॥

मू० इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः।
प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ४९॥

टी०। यह वचन ऋषीश्वर का सुनकर उसवक्त वह पक्षी रूप इन्द्र भीतर अफ़सोस करके बेधड़क बोला कि ४९॥

मू० योगमास्थाय विप्रेन्द्र त्यजेदं स्वं कलेवरम्।
जीवज्जन्तुं हि विप्रेन्द्र न भक्षामि कदाचन ५०॥

टी०। कि ऐ विप्रेन्द्र! अब तू योगाभ्यास करके इस अपने शरीर को छोड़दे क्योंकि ऐ विप्रेन्द्र! किसी जीतेहुये जन्तुका मैं भक्षण किसी तरह से नहीं करताहूं ५०॥

मू० तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तोऽभवन्मुनिः।
तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽप्याह स्वदेहभृत् ५१॥

टी०।यह बात उसपक्षी की सुनकर सुकृश मुनिने ध्यानमें आकर देखा और इन्द्र भी उसको उस निश्चयको जानकर पक्षी की शकल छोड़कर असली रूप से प्रकट हो बोले ५१॥

मू० भोभोविप्रेन्द्र बुध्यस्व बुद्ध्या बोध्यं बुधात्मक।
जिज्ञासार्थं मयाऽयंते ह्यपराधःकृतोऽनघ ५२॥

टी०। कि ऐ महाराज, पाप से रहित! हे बुधात्मक! बुद्धिसे जानने योग्य वस्तुको जानिये मैंने सिर्फ़ आपकी परीक्षा के वास्ते यह तुम्हारा अपराध कियाहै ५२॥

मू० तत् क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव।
पालनात्सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि ५३॥

टी०। ऐ साफ़ बुद्धिवाले मुनि! मुआफ़ कीजिये अब आपकी जो इच्छा

हो बयान कीजिये मैं पूरी करसक्ता हूं आप अपनी सचाई में अचलहैं इस वास्ते आपसे मुझको बड़ी प्रीति है ५३ ॥

मू० अद्य प्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ।
तपस्यथ तथा धर्म्मे न ते विघ्नो भविष्यति ५४ ॥

टी०। आज से यह ज्ञान आपको इन्द्रसम्बन्धी प्रकटहोगा और फिर इसी तरह तप कीजिये अब कभी आपके धर्म्म में विघ्न न होगा ५४ ॥

मू० इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः ।
प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः ५५ ॥

टी०। इन्द्र तो इतना कहकर चलेगये लेकिन महामुनि पिता हमारे क्रोधहीमेंथे कि हम लोगोंने शिरझुँका प्रणाम करके यह कहा ५५ ॥

मू० बिभ्यतां मरणात्तात त्वमस्माकं महामते ।
क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितप्रियताहि नः ५६ ॥

टी०। कि ऐ पिता महामति ! मरनेकी पीड़ाका डर हमसबोंके दिल में समायाहुआहै और हमसब दुःखीहैं इसशापकेभयको क्षमाकीजिये५६॥

मू० त्वगस्थिमांससंघाते पूयशोणितपूरिते ।
कर्त्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः ५७ ॥

टी०। चर्म और मांस और अस्थि पीब शोणित विष्ठा मूत्र वगैरहसे भराहुआ जो यह शरीर है कि जिसपर रत न होना चाहिये हमसब अपनी अज्ञानतासे उसमें रत होगये ५७ ॥

मू० श्रूयताञ्च महाभाग यथा लोको विमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ५८ ॥

टी०। ऐ महाभाग ! जिस तरह सबलोग इसमें मोहित हैं उस का हाल सुनिये कि काम क्रोध आदि जो दोष हैं वे बड़े दुश्मन हैं उन्हींके वशमें सबहैं ५८ ॥

मू० प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं पुरं महत् ।
चर्म्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम् ५९ ॥

टी०। यह शरीर एक बड़ाभारी शहर है कि जिसमें अक्लकी छहर-

युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेत वै ३७॥

टी०। तब वे मुनि बोले कि यह जो पक्षी जिसको तुम देख रहेहो भूँख और प्यास के तापसे मेरी पनाह में आयाहै तुमलोगोंका मांस जब यह खायगा तब भूँख इसकी इसीवक्त रफ़ाहोगी ३७॥

मू० तृष्णाक्षयश्च रक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम्।
ततो वयं प्रव्यथिताःप्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः॥
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत्कर्म्मेति चाब्रुवन् ३८॥

टी०। और तुमलोगों के खूनसे जल्दी अपनी प्यास बुझावैगा अब तुम लोग भी जानसे हाज़िर होजावो यह सुनकर उसके बाद हमसब मारे दहशत के कांपने लगे और कहा कि यह बड़े कठिन की बातहै हमसबोंसे कब होसक्ती है ३८॥

मू० कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः।
विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः ३९॥

टी०। ग़ैर के शरीर के वास्ते अपने शरीर को नाश और घातकरना बुद्धिमानों को क्या ज़रूरहै जैसा अपना शरीर है वैसाही पुत्रभीहै ३९॥

मू० पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै।
तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ४०॥

टी०। पितर और देवता और मनुष्य का क़र्ज़दार तो यह शरीर होताहै पर जिन जिन बातोंके वास्ते क़र्ज़ अदा करना पुत्रको वाजिब है वह अदा करना चाहिये न कि इकबारगी अपनी जान दे देना ४०॥

मू० तस्मान्नैतत्करिष्यामो नो चीर्णं यत्पुरातनैः।
जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च ४१॥

टी०। इस वास्ते जान हमलोग नहीं देसक्ते क्योंकि पुरानेलोगों ने ऐसा नहीं कियाहै जब आदमी की जिन्दगी है तो तरह तरह के धर्म्म और कर्म्म और कल्याणका सामान करसक्ता है ४१॥

मू० मृतस्य देहनाशस्य धर्माद्युपरतिस्तथा।
आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः ४२॥

टी०। जब कि मरगया तब शरीर तो नाश होगया कहिये कौन धर्म्म का कर्म्म और कल्याणका सामान करैगा इस वास्ते हरजगहपर धर्म्म के जाननेवाले पण्डितों ने प्राण की रक्षा करने को कहा है ४२ ॥

मू० इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन्।
प्रोवाच पुनरप्यस्मान् निर्दहन्निव लोचनैः ४३ ॥

टी०। ऐ शमीक मुनि। यह वचन हम सबोंका वह मुनि याने हमारे पिता सुनकर फिर क्रोधकी आगमें जलकर लाल२ आंखों से कि जिनसे मारे गुस्से के ज्वाले निकलतेथे हमसबोंको देखकर बोले ४३ ॥

मू० प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत् करिष्यथ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्य्यग्योनौ प्रयास्यथ ४४ ॥

टी०। कि जिसलिये तुमलोग पहिले मेरे हुक्म बजालाने का इक़रार करके फिर इन्कार करगये हो इस वास्ते मेरे शाप को आग में जलकर तुमलोग पक्षी योनि में अवतार लेने जावो ४४ ॥

मू० एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तंविहङ्गममब्रवीत्।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्द्ध्वदैहिकम् ४५ ॥

टी०। उससमय हम सबको वे मुनि यह शाप देकर उस पक्षी की तरफ जो आदमी का मांस चाहता था उससे बोले कि शास्त्रोक्त याने शास्त्र के मुताबिक़ अपनी आत्मा सम्बन्धी अन्तवाली श्राद्ध करलेताहूं तब ४५ ॥

मू० भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम।
आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ४६ ॥

टी०। ऐ पक्षिराज! जो कि मैंने तुमको भोजनका विश्वास दियाहै इस वास्ते इजाजत देताहूं कि आप मेरे शरीरका यह मांस खाइये ४६ ॥

मू० एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते।
यावत् पतगजात्यग्र स्वसत्यपरिपालनम् ४७ ॥

टी०। और यह भी कहा कि ऐ पक्षियों की जातिमें श्रेष्ठ! जबतक ब्राह्मण अपने क़ौल में सच्चाहै तबहीतक उसको ब्राह्मण जानना चाहिये और जब क़ौल और सचाई से फिरा तो उसको ब्राह्मण नहीं कहना चाहिये ४७

टी०। मनुष्य के स्मृति याने ज्ञानके नाश करनेवाले दुष्टात्मा लोग हरवक्त मौजूद रहतेहैं और राग(नेह)से क्रोध और क्रोधसे लोभ होताहै ७१॥

मू० लोभाद्भवतिसम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ७२॥

टी०। इसी तरह लोभ से मोह और मोहसे स्मृति का नाश होजाता है और स्मृति के नाश होजाने से बुद्धिका नाश होजाता है और बुद्धि के नाश होनेसे वह चैतन्यता जाती रहती है ७२॥

मू० एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्तिनाम्।
जीविते च सलोभानां प्रसादं कुरु सत्तम ७३॥

टी०। ऐ मुनि! हम लोगोंने अपने पिता सुकृशजी से यह बातें कह कर फिर विनय करके कहा कि महाराज इसी तरह से नष्टबुद्धिलोग राग और लोभ में रहनेवाले हमलोग जीवके लोभही में हैं उनपर कृपा कीजिये ७३॥

मू० योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा।
न तामसीं गतिं कष्टां व्रजेम मुनिसत्तम ७४॥

टी०। हे मुनिनाथ! यह शाप जो आपने दिया है न होवै अब ऐसा कीजिये कि जिसमें हम लोग तामसी योनि के कष्ट में न पड़ें ७४॥

ऋषिरुवाच॥

मू० यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यति कदाचन।
न मे वागनृतं प्राह यावदद्येति पुत्रकाः ७५॥

टी०। यह सुनकर सुकृशजी बोले कि हम जो कहचुके वह कदाचित् मिथ्या नहीं होसक्ता क्योंकि मैंने आजतक झूंठ नहीं कहाहै ऐ लड़को! अब फ़ज़ूल मत बको जो होना था वह होगया ७५॥

मू० दैवमत्र परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
अकार्य्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम् ७६॥

टी०। बिन मतलबवाले अपने पौरुष को धिक्कार और दैवको इसमें अधिक जानो कि जिसने जबरदस्ती यह अनर्थ बिलाजरूरत मुझसे करादिया कि जिसका खयाल नहीं कियाथा ७६॥

मू० यस्माच्च युष्माभिरहं प्रणिपत्य प्रसादितः।
तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नाः परं ज्ञानमवाप्स्यथ ७७ ॥

टी०। अब जिसलिये तुम लोग मेरे पास आकर प्रणामकर विनय करते हो और कृपा चाहते हो इसवास्ते मैं कहताहूं कि तुम लोग तिर्यग् योनिमें जावो उस देहमें भी परमज्ञान बना रहेगा ७७॥

मू० ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः।
मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परांसिद्धिमवाप्स्यथ ७८ ॥

टी०। और ज्ञान के जितने रास्ते हैं उन सबों को देखोगे क्लेश और पापका नाश होकर निस्सन्देह हो मेरे प्रसाद से जल्द सिद्ध होते जावगे ७८ ॥

मू० एवं शप्ताःस्म भगवन् पित्रा दैववशात्पुरा।
ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ७९ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि ऐ महाराज! ऐसा शाप भाग्यवश से मेरे पिताने जब पहिले जन्म में हम सबों को दिया तब उस शरीर को त्यागकरके बहुतदिनों के बाद हम लोग पक्षीयोनि में चलेगये ७९ ॥

मू० जाताश्चरणमध्ये वै भवता परिपालिताः।
वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ खगत्वं समुपागताः ८० ॥

टी०। तब कुरुक्षेत्र की रणभूमि में आकर उत्पन्न हुये हैं जो आपने प्रतिपाल किया है ऐ द्विजोत्तम! यही सबब है कि जिससे हम सब पक्षी की सूरत में मिले ८० ॥

मू० नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते।
सर्व्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम् ८१ ॥

टी०। फिर ऐसा कोई शख्स इस संसार में नहींहै कि जिसको प्रारब्धके फेरसे हर्ज न हुआहो सबही प्राणियों की ये सब बातें परमेश्वर के इख्तियार में हैं ८१ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इति तेषां वचःश्रुत्वा शमीको भगवान्मुनिः।

दिवारी व मजबूत २ हड्डियों के खंभों और चर्म ने छिद्र की दीवार। कि जिसमें रुधिर और मांस का पलस्तर है ५९॥

मू० नवद्वारं महायामं सर्व्वतः स्नायुवेष्टितम्।
नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः ६०॥

टी०। और इस शहरके बड़े २ नव दरवाजे हैं कि जहांपर नाड़ियों के चौकीदार का तमाम पहरा है और उस शहरके अन्दर चैतन्य पुरुष तख़्तनशीन होकर राज्य करता है ६०॥

मू० मन्त्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ।
यतेते वैरिनाशाय तावुभावितरेतरम् ६१॥

टी०। कि जिसके दो मंत्रीहैं एकमन दूसरा बुद्धि इनदोनोंके आपस में बड़ी दुश्मनी है इन्हीं दोनों मंत्रियोंके बराख़िलाफ़ होजानेसे उस राजा का नाश होजाताहै ६१॥

मू० नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः।
कामक्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ६२॥

टी०। दुश्मन तो उस राजा के बहुत हैं पर मुख्य चार हैं जो बड़े द्वेषीहैं कि हमेशा उसके नाश ही के ख़याल में लगे रहते हैं जिनके ये नाम हैं अव्वल काम दूसरा क्रोध तीसरा लोभ चौथा मोह ६२॥

मू० यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति।
तदा स्वस्थबलश्चैव निरातङ्कश्च जायते ६३॥

टी०। जबतक राजा अपने शहर के दरवाजों की हिफ़ाज़त आप करता है तबतक स्वस्थ सेनावाला वह बिला ख़ौफ़ और निश्चिन्त रहता है ६३॥

मू० जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाभिभूयते ६४॥

टी०। और तभी तक राजा को खुशी हासिल रहती है और दुश्मन का ख़ौफ़ नहीं रहता है ६४॥

मू० यदा तु सर्व्वद्वाराणि विवृत्तानि स मुञ्चति।
रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ६५॥

टी०। जब वह राजा सब दरवाज़ों की हिफ़ाज़त ख़ुद नहीं करता है

थाने खुले छोड़देता है तब राग नाम जो दुश्मन है वह नेत्र आदि दरवाजों पर जाने की इच्छा करता है ६५॥

मू० सर्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः।
तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम् ६६॥

टी०। और फिर वह राग जिसका बड़ा विस्तार है उसकी आमद रफ़्त तमाम शहर में खसूसन् पांच दरवाजे तक होजाती है तब और वह तीनों डरावने दुश्मनभी उसके साथ आमदरफ़्त करनेलगतेहैं ६६॥

मू० प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः।
रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः ६७॥

टी०। और वह राग इन्द्रियोंके दरवाज़ेमें होकर मन और दूसरे दुश्मनों को मिला लेता है ६७॥

मू० इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः।
द्वाराणि च वशे कृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ ६८॥

टी०। तब वे कठिन दुश्मन लोग इन्द्रियों समेत मनको वशमें लाकर और सब दरवाजों पर इख्तियार जमाकर उसके बाद छहरदिवारी को तोड़ते हैं ६८॥

मू० मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात्।
अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा ६९॥

टी०। और बुद्धिभी मन व इन सब इन्द्रियों को उस दुश्मन के इख्तियार में देखकर आपभी उसवक्त उसके वशमें होजाती है तब वह चैतन्य रूप राजा वहां मन्त्रियों से हीन अकेला पड़जाता है ६९॥

मू० रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति।
एवं रागस्तथा मोहो लोभः क्रोधस्तथैव च ७०॥

टी०। फिर राह पाकर राजा के पास जा उस राजाको नाश करडालता है ऐसा यह राग है इसी तरह से लोभ मोह क्रोधभी हैं ७०॥

मू० प्रवर्त्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः।
रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते ७१॥

प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान् ८२ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि महाभाग्यवान् शमीकमुनिजी ये बातें उन पक्षियों की सुनकर उन लोगों से जो ब्राह्मण कि उनके पास बैठेथे बोले ८२॥

मू० पूर्वमेव मया प्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् ।
सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः ॥
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ८३ ॥

टी०। कि मैंने तुम लोगों से पहिले ही यह कहा था कि इन बच्चों को सामान्य पक्षी नहीं समझना चाहिये ये कोई श्रेष्ठ हैं जो कि मनुष्यों की बड़ी लड़ाई के मैदान में भी रहकर न मरे ८३ ॥

मू० ततः प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना ।
जग्मुः शिखरिणां श्रेष्ठं विन्ध्यन्द्रुमलतायुतम् ८४ ॥

टी०। यह कहकर बड़ीप्रीतिवाले उन महात्माने उन पक्षियों से कहा कि आप सब विन्ध्य पर्वत पर जिसकी चोटी तरह तरह के दरख़्तों और लताओं से संयुक्त है जाइये यह आज्ञा पाकर वे चलेगये ८४ ॥

मू० यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्म्मपक्षिणः ।
तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ८५ ॥

टी०। और तपस्या व वेदपाठ में लगे व ध्यान में निश्चय किये हुये वे धर्मवान् पक्षी आजतक उस पहाड़ पै टिके हैं ८५ ॥

मू० इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेताः।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये यतमनसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे८६॥

टी०। यह आज्ञा शमीक जी की पाकर वे मुनिकुमार लोग पक्षी स्वरूप मुनि से उत्तम क्रिया का उपदेश लेकर उस विन्ध्य पहाड़ की चोटी पर जहां बहुत पाक व साफ़ जल है अपने मन को जीतकर बड़े आनन्द से रहनेलगे ८६ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणेविन्ध्यप्राप्तिस्तृतीयोऽध्यायः ३ ॥

अथ चौथा अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवन्ते द्रोणतनयाः पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन् ।
वसन्ति ह्यचले विन्ध्ये तानुपास्य च पृच्छ च १ ॥

टी० । मार्कण्डेय जी कहते हैं कि ऐ जैमिनि मुनि ! इस तरह द्रोणके बेटे पक्षीरूप ज्ञानी हुये हैं वे विन्ध्य पर्व्वत पर अचल हो निवास करते हैं वहां जाकर उनसे पूछिये १ ॥

मू० इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः ।
जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्म्मपक्षिणः २ ॥

टी० । यह आज्ञा मार्कण्डेय मुनि की पाकर जैमिनि मुनि वहां से विदा हो जहां वे धर्म्मपक्षी लोग विन्ध्य पर्व्वत पर थे उस तरफ़ रवाना हुये २ ॥

मू० तन्नगासन्नभूतश्च शुश्राव पठतान्ध्वनिम् ।
श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः ३ ॥

टी० । जब जैमिनि जी उस पर्व्वत के निकट गये तो उन पक्षियों के वेदपाठ करने की आवाज़ सुनी और सुनकर आश्चर्य में आये और ख़्याल किया ३ ॥

मू० स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोषञ्च पठ्यते द्विजसत्तमैः ४ ॥

टी० । तो मालूम हुआ कि पाठ करने में उत्तम पक्षीलोग जो शब्द उच्चारण करते हैं सो बहुत शुद्ध और एक श्वास से और बिला मेहनत व साफ़ जहांपर जौन वर्ण का उच्चारण होना चाहिये उसी तरह पढ़तेहैं ४ ॥

मू० वियोनिमपि सम्प्राप्तानेतान् मुनिकुमारकान् ।
चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ५ ॥

टी० । और ये मुनिकुमार लोग पक्षी की योनि में तो हैं लेकिन बड़े आश्चर्य्य की बात है कि आवाज़ और बोली में सरस्वती जी की वैसी ही उन लोगोंपर कृपा है यह मैं तअज्जुब मानता हूँ ५ ॥

मू० बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे ।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्व्वञ्च जहाति सरस्वती ६ ॥

टी०। सच है कि भाई बन्धु दोस्त आशना व और जो घर में प्रिय हैं वे सब लोगत्याग देते हैं पर सरस्वती नहीं त्यागती ६ ॥

मू० इति सञ्चिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम्।
प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान् द्विजान् ७ ॥

टी०। इन्हीं बातों को सोचतेही हुये उस पहाड़ के खोहमें पैठगये व इन ने जाकर देखा कि पक्षी लोग पत्थरकी चट्टान पर बैठे हैं ७ ॥

मू० पठतस्तान्समालोक्य मुखदोषविवर्ज्जितान्।
सोथ शोकेन हर्षेण सर्व्वानिवाभ्यभाषत ८ ॥

टी०। वे जैमिनि मुनि उन पक्षियों के मुख से जो सब दोषों से रहित था वेद पढ़ते हुये देखकर बहुत खुश और शोचसंयुक्त होकर उन सबों से बोले ८ ॥

मू० स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत।
व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतान्दर्शनोत्सुकम् ९ ॥

टी०। कि ऐ पक्षिराजाओ ! तुम लोगों का कल्याण हो मैं आप लोगों के दर्शन की इच्छाकर यहां आया हूँ व्यास जी का शिष्य हूँ जैमिनि मेरा नाम है सो जानिये ९ ॥

मू० मन्युर्न खलु कर्त्तव्यो यत् पित्रातीवमन्युना।
शप्ताः खगत्वमापन्नाः सर्व्वथा दिष्टमेव तत् १० ॥

टी०। आपके पिताने जो बड़े क्रोधित होकर आपलोगों को शाप दिया है कि जिस सबब से आपलोगों ने पक्षी योनि में जन्म लिया है इस का कुछ बुरा न मानना चाहिये क्योंकि सब तरह से प्रारब्ध ऐसीहीथी १० ॥

मू० स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः।
द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शबरेण सुसान्त्विताः ११ ॥

टी०। हे पक्षियों में उत्तमो ! कितने आदमी उत्तम कुल धनवान् वंश में होकर फिर धन के नाश होजाने से नीचकुलवालों से समझाये हुये परवरिश पाते हैं ११ ॥

मू० दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे।

पातयित्वा च पात्यन्ते त एव तपसः क्षयात् १२ ॥

टी०। और कितने देकर भीख मांगते हैं व पहले मारकर अदना अदना की मार और धक्का खाते हैं व गिराकर वेई गिराये जाते हैं ये सब बातें पूर्व्व के पुण्यक्षय होजाने से होती हैं १२ ॥

मू० एतद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतन्तथा मया।
भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत् १३ ॥

टी०। ऐसी विपरीत याने उलट फेर की बातें कितनों की मैंने देखी हैं कि भाव कुभाव के नाश से सब पृथ्वी व्याकुल होरही है १३ ॥

मू० इति सञ्चिन्त्य मनसा न शोकं कर्त्तुमर्हथ।
ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता १४ ॥

टी०। इन बातों को विचारकर चित्त से कुछ अफ़सोस न कीजिये और ज्ञानका फल भी यही है कि दुःख और सुख दोनोंको समान समझै १४॥

मू० ततस्ते जैमिनिं सर्व्वे पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ॥
अनामयञ्च पप्रच्छुः प्रणिपत्य महामुनिम् १५ ॥

टी०। ये बातें सुन उसके बाद चारों पक्षी लोग उठकर जैमिनि मुनि को प्रणाम कर कुशलानन्द पूँछ अर्घ्य पाद्यार्घ दे पूजन करतेभये १५ ॥

मू० अथोचुः खगमाः सर्व्वे व्यासशिष्यन्तपोनिधिम्।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम् १६ ॥

टी०। फिर जब व्यासजी के शिष्य जैमिनिमुनि वहां बैठे तब वे सब पक्षी लोग अपने परोंकी हवा से माँदगी उनकी दफ़ा करके सहताये व सुखसे बैठेहुये तपस्या के निधान मुनि से बोले १६ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० अद्य नः सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।
यत्पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम् १७ ॥

टी०। कि आज आपके चरण कमल को जिसकी वन्दना देवता लोग करते हैं देखने से हम लोगों का जन्म सफल हुआ व जीना अच्छा भया १७ ॥

मू० पितृकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते।
सोऽद्यशान्तिङ्गतो विप्र युष्मद्दर्शनवारिणा १८॥

टी०। ऐ विप्रजी! हमलोग अपने पिता के शाप की अग्नि में जलकर जो इस योनि में आये और सदा जिस आग के शोले में जलते थे अब वह आग आपके दर्शनके जलसे बुझगई याने अब हमलोग ठंढेहुये १८॥

मू० कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु।
वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु १९॥

टी०। हे ब्रह्मन्! क्या आप के आश्रम में मृग और पक्षी और वृक्ष और लता और फूल और त्वक्सार और तृण आदि जितने हैं इन सबों को कभी अकुशल नहीं है याने कुशल है १९॥

मू० अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः।
भवतां सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः २०॥

टी०। आपकी महिमा का बयान जैसा कि चाहिये आदरयुक्त हम सब नहीं कहसक्ते हैं याने हम लोगों ने यह अच्छा नहीं कहा क्योंकि जिसको आप का साथ है उसको कभी अकुशल नहीं है २०॥

मू० प्रसादञ्च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम्।
देवानामिव संसर्गो भवतोऽभ्युदयो महान्॥
केनास्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम् २१॥

टी०। आपका यहांपर आना ऐसा है जैसे देवताका आना कृपाकरके यहां अपने आने का कारण कहिये व प्रसन्नता कीजिये नहीं मालूम कि आज हम लोगों के सोये हुये नसीब कैसे जागे कि जिस हमारी गरुई भाग्य से आपका चरण यहांतक आया २१॥

जैमिनिरुवाच॥

मू० श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कारणं येन कन्दरम्।
विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम्॥
सन्देहान् भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम् २२॥

टी०। जैमिनि मुनिने कहा कि ऐ पक्षिराजाओ! जिस सबबसे मैं इस

विन्ध्य पर्व्वतके सुन्दर खोह में जहां रेवानदी के जलका छिड़काव है आया हूं उसका कारण सुनिये कि मुझको महाभारत शास्त्र में कई जगह सन्देह था उनके पूंछने के वास्ते मैं गया था २२ ॥

मू० मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्व्वं भृगुकुलोद्वहम्।
तमहं पृष्टवान् प्राप्य सन्देहान् भारतम्प्रति २३ ॥

टी०। मैं पहिले मार्कण्डेयजी महामुनि के पास जो भृगुवंश में उत्पन्न हैं जाकर भारत में उस सन्देह को पूछता भया २३ ॥

मू० सच पृष्टो मया प्राह सन्ति विन्ध्ये महाचले।
द्रोणपुत्रा महात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् २४ ॥

टी०। लेकिन उन्हों ने मुझको आपलोगों का निशान दिया कि विन्ध्याचलपर्व्वतपर द्रोण के बेटे लोग हैं वहां जाकर उनसे पूँछो वे महात्मा अर्थ के विस्तार को बताकर सन्देह छुड़ादेंगे २४ ॥

मू० तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम्।
तच्छृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ २५ ॥

टी०। उन्हीं के कहने से इस महापर्व्वत पर आयाहूं आपलोग उन सब सन्देहों को सुनकर हाल उसका साफ़ साफ़ बयान कीजिये २५ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० विषये सति वक्ष्यामो निर्विशङ्कः शृणुष्व तत्।
कथन्तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् २६ ॥

टी०। पक्षी लोग बोले कि यदि हम लोग जानते हैं तो कहेंगे निःसन्देह होकर उसको हमसे सुनिये जो हमारी अक्क में आवेगा उसको क्यों न कहेंगे २६ ॥

मू० चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्म्मशास्त्रेषु चैवहि।
समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम् २७ ॥

टी०। चारों वेद और वेदों के अङ्ग जितने हैं और सम्पूर्ण धर्म्मशास्त्र और भी जो ग्रन्थ वेद संयुक्त हैं २७ ॥

मू० एतेषु गोचरोस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम।

प्रतिज्ञान्तु समावोढुं तथापि नहि शक्नुमः २८ ॥

टी०। ऐ उत्तम ब्राह्मण! ये सब हमारी बुद्धिके समझ में हैं तौ भी प्रतिज्ञा से नहीं कहसक्ताहूं याने मैं जरूर कहूंगा यह नहीं कहसक्ता २८॥

मू० तस्माद्वदस्व विश्रब्धं सन्दिग्धं यदि भारते।
वक्ष्यामस्तव धर्म्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति २९॥

टी०। इसलिये ऐ धर्म्मात्मा! यदि भारतमें सन्देहहै तो उन सन्देहों को हमसे कहिये हम विश्वास देते हैं कि आपको ऐसा समझा देंगे कि आप निःसन्देह होजावैंगे २९॥

जैमिनिरुवाच॥

मू० सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतम्प्रति यानि मे।
शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ३०॥

टी०। जैमिनि मुनि ने कहा कि ऐ निर्मल पक्षियो! भारत में जो सन्देह मुझको है वह मैं आपलोगों से कहताहूं सुनिये व सुनकर फिर जवाब उसका दीजिये ३०॥

मू० कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्द्दनः।
वासुदेवोखिलाधारः सर्व्वकारणकारणम् ३१॥

टी०। और वह यहहै कि परमेश्वर जो निर्गुण और जगत्की उत्पत्ति और स्थिति और पालन करनेवालेहैं वे सब कारणोंके कारण किस वजह से मनुष्य का अवतार लेकर वासुदेव याने वसुदेव के बेटे कहलाये ३१॥

मू० कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा।
पञ्चानां महिषी कृष्णा स महानत्र संशयः ३२॥

टी०। और वह एक कृष्णा याने द्रौपदी राजा पाण्डुके पांचौ बेटोंकी स्त्री कैसे हुई इसमें वह बड़ा सन्देह है ३२॥

मू० भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कथञ्चक्रे हलायुधः ३३॥

टी०। और बड़ेबली व हल हथियारवाले बलदेवजीने ब्रह्महत्याके पाप छुड़ाने के वास्ते तीर्थयात्रा रूप ओषधि किस तरह से किया ३३॥

मू० कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः।
पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ३४॥

टी०। और द्रौपदी के पांचों बेटे जो कुमारे थे और जिनके स्वामी राजा युधिष्ठिर वगैरह पांचों भाईथे व महारथी और बलवान् क्यों अनाथ की तरह मारे गये ३४॥

मू० एतत्सर्व्वं कथ्यतां मे सन्दिग्धं भारतम्प्रति।
कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ३५॥

टी०। यह सब भारत में मेरा सन्देह है आप लोग मुझसे कहिये कि जिससे मैं खुश होताहुआ सुखसे अपने घर चलाजाऊँ ३५॥

पक्षिणऊचुः॥

मू० नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च ३६॥

टी०। पक्षी लोग बोले कि पहिले समर्थवान् व सब देवताओंके स्वामी विष्णुको नमस्कार करतेहैं और जो निराकार व हमेशा रहनेवाले और अविनाशी हैं उनकाभी प्रमाण कोई नहीं जानता उनकोभी प्रणामकर ३६॥

मू० चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च।
वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च ३७॥

टी०। और उन्हीं से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध चारों तरह के स्वरूप हैं और वे तीनों गुणों में युक्त और तीनों गुणों से अलगभी हैं और बड़े श्रेष्ठ और गरिष्ठ और उत्तम और अमर हैं ३७॥

मू० यस्मादणुतरन्नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम्।
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ३८॥

टी०। और उनके रूपसे न कोई छोटा है न बड़ा और जिनसे ब्रह्मलोक से पाताल तक यह संसार व्याप्त है और जो जगत् के आदि व अज हैं ३८॥

मू० आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम्।
वदन्ति यत् सृष्टमिदं तथैवान्ते च संहृतम् ३९॥

टी०। जन्म और मरण और देखी व न देखी हुई वस्तुमें विलक्षण हैं और उन्हीं से यह सृष्टि उत्पन्न है और अन्तमें फिर उन्हीं में लय हो जाती है यह विद्वान् लोग कहते हैं ३६ ॥

मू० ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना।
ऋक्सामान्युद्भिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् ४० ॥

टी०। फिर उस ब्रह्माको जो देवताओंके आदिहैं और ध्यानमें जिसके मुख से ऋग् साम यजुः और अथर्वण चारों वेद पैदाकर तीनोंलोक को पवित्र किये हुये हैं नमस्कार करते हैं ४० ॥

मू० प्रणिपत्य तथेशानमेकबाणविनिर्ज्जितैः।
यस्यासुरगणैर्यज्ञा विलुप्यन्ते न यज्वनाम् ४१ ॥

टी०। उसी तरह श्रीमहादेवजी को कि जिनके एक बाणके छूटने से यज्ञ करनेवालों के यज्ञ में जीतेहुये राक्षस लोग विघ्न नहीं डालसक्ते हैं नमस्कार करके ४१ ॥

मू० प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्म्मणः।
येन भारतमुद्दिश्य धर्म्माद्याः प्रकटीकृताः ४२ ॥

टी०। अद्भुत कर्म्मवाले व्यासजी महात्मा ने जो महाभारतमें धर्म्मादिकको जाहिर कियाहै उससम्पूर्ण मतको हम तुमसे बयान करतेहैं ४२ ॥

मू० आपो नारा इतिप्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ४३ ॥

टी०। तत्त्व के जाननेवाले मुनि लोग जलको नारा कहते हैं और पहले उसमें जिस पुरुष का वासस्थान हुआहै उसको नारायण कहाहै ४३ ॥

मू० स देवो भगवान् सर्व्वं व्याप्य नारायणो विभुः।
चतुर्द्धासंस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा ४४ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! वही भगवान् नारायण देव सर्व्वव्यापी सबमें व्याप्त होकर चार तरह से टिका है और निर्गुण और गुणयुक्त है ४४ ॥

मू० एका मूर्तिरनिर्द्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ४५ ॥

टी० । पहिला स्वरूप भगवान् का निर्गुण है जिसको पण्डित लोग शुक्ल रूपसे देखते हैं और योगीलोग उसी ज्वालामाली याने ज्योतिःस्वरूप में सिद्धि पाते हैं ४५ ॥

मू० दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ४६ ॥

टी० । बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि गुणों से बाहर वह दूर और नज़दीक दोनों में स्थित जानने योग्य है और उन्हीं का नाम वासुदेव भी है कि जो विना ममता से देखाजाता है याने जो लोग काम क्रोधादिक से रहितहैं वे देखते हैं ४६ ॥

मू० रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पना मया ।
अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ४७ ॥

टी० । मैंने रूप और वर्ण आदिक भाव उस परमेश्वरके नहीं कल्पना किया है परन्तु मात्र अभाव करके रूप और गुण पाया जाता है और वह सदा शुद्ध और सुप्रतिष्ठित और एक रूप रहता है ४७ ॥

मू० द्वितीया पृथिवीम्मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ।
तामसी सा समाख्याता तिर्य्यक्त्वं समुपाश्रिता ४८ ॥

टी० । और दूसरा स्वरूप शेषनाग का है जो नीचे रहकर पृथ्वी को अपने शीशपर उठाये हैं उसको तामसी स्वरूप याने तमोगुण कहते हैं जो कि तिर्यक्ता में प्राप्त है ४८ ॥

मू० तृतीया कर्म्म कुरुते प्रजापालनतत्परा ।
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्म्मसंस्थानकारिणी ४९ ॥

टी० । तीसरा स्वरूप वह है जो प्रजापालन में तत्पर होकर कर्म व धर्म्मकी रक्षा करताहै उसी स्वरूपको सात्त्विक याने सतोगुणकहतेहैं ४९ ॥

मू० चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा ।
रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि ५० ॥

टी० । चौथा स्वरूप वह है जो नागशय्यापर जलके बीचमें टिके हुये शयन करतेहैं इन्हींको रजोगुण बोलतेहैं वह हमेशा सृष्टि करताहै ५० ॥

मू० या तृतीया हरेर्मूर्त्तिः प्रजापालनतत्परा।
सातुधर्म्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ५१ ॥

टी०। वह तीसरा स्वरूप सात्त्विक जो प्रजापालन में तत्पर है वही भगवान् अवश्य कर इस पृथ्वी में धर्म्मको थापित करते हैं ५१ ॥

मू० प्रोद्भूतानसुरान् हन्ति धर्म्मविच्छित्तिकारिणः।
पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्म्मरक्षापरायणान् ५२ ॥

टी०। और धर्म्म को नाश करनेवाले बढ़ेहुये राक्षस लोगों को नाश करके देवादिक और अन्य सज्जनों व धर्म्मात्मा लोगोंकी रक्षा करते हैं ५२ ॥

मू० यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ५३ ॥

टी०। ऐ जैमिनि जी! जब जब धर्म्म की हानि होती है और अधर्म्म की आधिक्यता होती है तब तब यह परमेश्वर शरीर धारण कर प्रकट होते हैं ५३ ॥

मू० भूत्वा पुरा वराहेन तुण्डेनापो निरस्य च।
एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा ५४ ॥

टी०। पूर्व्व काल में वाराह रूप धारण कर अपने एक दांत की नोक पर कमल के फूल के समान पृथ्वी को जल से निकाल कर स्थिर याने क़ायम किया ५४ ॥

मू० कृत्वा नृसिंहरूपञ्च हिरण्यकशिपुर्हतः।
विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः ५५ ॥

टी०। और फिर एक समय में उसी परमेश्वर ने नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु को मारकर विप्रचित्ती आदि अन्य राक्षसों का नाश किया ५५ ॥

मू० वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे।
अवताराश्च तस्येह माथुरस्साम्प्रतं त्वयम् ५६ ॥

टी०। उसी परमेश्वर ने वामन आदि अवतार और अलावा इसके बे तादाद रूप धारण कियाहै जिनको मैं नहीं गिनासक्ता और ऐ जैमिनि जी! यही भगवान् इन दिनों में श्रीकृष्ण अवतार मथुरा में हैं ५६ ॥

मू० इति सा सात्त्विकी मूर्त्तिरवतारान्करोति वै।
प्रद्युम्नेति च साख्याता रक्षाकर्म्मण्यवस्थिता ५७॥

टी०। उसी सात्त्विकरूप परमेश्वरने इसतरह यह सब अवतार लिया है और दूसरा तामसी स्वरूप प्रद्युम्न याने शेषजीका है जो रक्षाकर्म्म में तत्पर है ५७॥

मू० देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्य्यग्योनौ च संस्थिता।
गृह्णाति तत्स्वभावञ्च वासुदेवेच्छया सदा ५८॥

टी०। सो वासुदेव की इच्छा के मुताबिक हमेशह वही देवता कभी मनुष्य और कभी तिर्यक् योनिका स्वरूप व उसी का स्वभाव धारण करते हैं ५८॥

मू० इत्येतत्ते समाख्यातं कृतकृत्योऽपि यत्प्रभुः।
मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वास्योत्तरं पुनः ५९॥

टी०। इसीतरह आनन्द और मङ्गल रूप जो परमेश्वर हैं वे मनुष्य रूप जिस सबब से धारण करते हैं यह तुमसे कहागया सो जानिये अब फिर दूसरे प्रश्नका भी जवाब सुनिये ५९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्व्यूहावतारः ४॥

अथ पांचवां अध्याय॥

पक्षिणऊचुः॥

मू० त्वष्टृपुत्रे हते पूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः।
ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत १॥

टी०। फिर पक्षी लोग कहने लगे कि ऐ जैमिनि मुनिजी! पूर्व्वकाल में त्वष्टा के बेटे ब्राह्मण तेजस्वी को इन्द्र ने मारा था इसलिये ब्रह्महत्या लगकर इन्द्रके तेजकी बड़ी हानि हुई १॥

मू० तद्धर्मं प्रविवेशाथ शक्रतेजोऽपचारतः।
निस्तेजाश्चाभवच्छक्रो धर्म्मे तेजसि निर्गते २॥

टी०। और ब्रह्महत्या के लगने से इन्द्र के शरीरका वह तेज निकल

कर धर्म्मराज के शरीर में चलागया तब इन्द्रजी विना तेज होगये २॥

मू० ततः पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः।
अवलुञ्च्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत् ३॥

टी०। फिर जब त्वष्टा प्रजापतिने अपने पुत्र विश्वरूप के मारे जानेका हाल सुना तो क्रोधमें आकर एक जटा याने लट बालकी अपने शिर से तोड़कर हाथ में ले यह बात कही ३॥

मू० अद्य पश्यन्तु मे वीर्य्यं त्रयो लोकाः सदेवताः।
स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः ४॥

टी०। कि इसवक्त तीनों लोक और सब देवता और वह दुर्बुद्धी ब्रह्मघाती इन्द्र मेरी ताक़तको देखे ४॥

मू० स्वकर्म्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः।
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ५॥

टी०। कि जिसने अपने काममें लगेहुये मेरे लड़के को माराहै इतना कहकर क्रोधसे लाल लोचनोंवाले त्वष्टाने उस बालको याने जटाको आगमें जलादिया ५॥

मू० ततो वृत्रःसमुत्तस्थौ ज्वालामाली महासुरः।
महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ६॥

टी०। उसके बाद उसीवक्त एक पुरुष उस आगसे वृत्रासुर नाम बड़ा राक्षस बड़ा डीलवर काला रंग भयानकरूप व बड़ी दाढ़ोंवाला जिसके अंग अंगसे आगका शोला निकलता था पैदाहुआ ६॥

मू० इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टृतेजोऽपबृंहितः।
अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलः ७॥

टी०। और वह महाबली व बड़ाभारी राक्षस इन्द्रका शत्रु त्वष्टा के तेजसे बढ़ाहुआ सो हररोज़ इतना बढ़ता था जितना कमान से छूटाहुआ तीर ऊँचा जाताहै ७॥

मू० वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम्।
प्रेषयामास सप्तर्षीन् सन्धिमिच्छन् भयातुरः ८॥

टी०। तब तो इन्द्रने अपने मारने के लिये बड़ेभारी वृत्रासुरको देख कर खौफ़ खाकर सप्तऋषिको उस राक्षस के पास दोस्तीका पैग़ाम लेकर भेजा ८॥

मू० सख्यञ्चक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयं तथा।
ऋषयः प्रीतमनसः सर्व्वभूतहिते रताः ९॥

टी०। उसके बाद वे सप्तऋषि जो सब जीवों की बेहतरी और सबसे सबका मिलाप चाहते थे वहां जा और उस दैत्यको समझाय इन्द्रके साथ दोस्ती करादिया परन्तु एक नियत समय तक ९॥

मू० समयस्थितिमुल्लंघ्य यदा शक्रेण घातितः।
वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदा बलमशीर्य्यत १०॥

टी०। जब वह अवधि दोस्ती का दिन गुज़र गया तब इन्द्रने उस राक्षस को मारडाला कि जिससे ब्रह्महत्या इन्द्रको लगकर बल हरण होगया १०॥

मू० तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत्।
सर्व्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ११॥

टी०। वह बल जो इन्द्र के शरीर से निकल गया सो पवन में मिल गया कि जो पवन सर्व्वव्यापी व छिपे और बलके देवता हैं ११॥

मू० अहल्यां च यदा शक्रो गौतमं रूपमास्थितः।
धर्षयामास देवेन्द्रस्तदारूपमहीयत १२॥

टी०। फिर जब इन्द्र ने गौतमका रूप धारण करके अहल्या के साथ रमणकिया तो उस पापने इन्द्रके रूपको घटादिया १२॥

मू० अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीवमनोरमम्।
विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत्ततः १३॥

टी०। और वह अंग प्रत्यंगका रूप यानें ख़ूबसूरती जोकि बहुतही अच्छी थी इन्द्रके अंग अंगसे निकलकर उसके बाद अश्विनीकुमार में प्राप्तहुई १३॥

मू० धर्म्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम्।
ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम् १४॥

टी०। तो रूप और तेज और बल व धर्म इन सबों के निकल जाने से इन्द्र लाचार होगये यह हाल सुनकर दैत्यलोग इन्द्रको जीतलेने की इच्छा से लड़ाई पर मुस्तैद हुये १४॥

मू० राज्ञामुद्रिक्तवीर्य्याणां देवेन्द्रं विजिगीषवः।
कुलेष्वतिबलादैत्या अजायन्त महामुने १५॥

टी०। ए जैमिनिमुनि! इन्द्रके जीतनेकी इच्छावाले वे नामी और महाबली राक्षसलोग पृथ्वीमें बड़ेबली राजाओंके वंशमें जन्म लेतेगये १५॥

मू० कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणी भारपीडिता।
जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम् १६॥

टी०। और इसके बाद इन लोगों के पापके बोझसे पृथ्वी पीड़ित हो एक समय में मेरु पर्व्वतकी चोटीपर जहां देवताओंकी सभाथी गई १६॥

मू० तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीडिता।
दनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः १७॥

टी०। और देवताओंसे उसने अपने दुःखका सबब कहा कि मैं पापके बोझसे निहायत विकलहूं दनुके बेटोंने मुझे यह दुःख दियाहै इस वास्ते आप लोगों के सामने आईहूं १७॥

मू० एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः।
ते सर्व्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम् १८॥

टी०। कि आप लोगोंने जो इन बड़े बड़े पराक्रमी राक्षसों को माराहै उन सब राक्षस लोगोंने अब पृथ्वीमें राजाओंके घरमें जन्म लियाहै १८॥

मू० अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम १९॥

टी०। जितनी बहुतसी अक्षौहिणियांहैं कि जिसका बोझ मुझसे उठ नहीं सक्ताहै अब उस बोझ से नीचेको दबीजातीहूं हे देवताओ! आप लोग वैसाही कीजिये कि जिसतरह मेरा दुःख शान्त होवै १९॥

पक्षिणऊचुः॥

मू० तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम्।

प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च २० ॥

टी०। पक्षी लोग कहतेहैं कि ऐ जैमिनि मुनि! उस सबबसे देवतालोग अपने २ तेजों के अंशों से प्रजाओं के उपकार और पृथ्वीका भार हरण करने के वास्ते स्वर्ग से भूमिमें अवतार लेतेभये २० ॥

मू० यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः।
कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः २१ ॥

टी०। इन्द्रके शरीरसे जो तेज धर्म्मने आपही छोड़ा है उसी अंशसे कुन्ती के बेटे बड़े तेजस्वी राजा युधिष्ठिर पैदाहुये २१ ॥

मू० बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत।
शक्रवीर्य्यार्द्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः २२ ॥

टी०। और इन्द्रके शरीर का बल जो पवन ने छोड़दिया उसी के अंश से भीम और इन्द्रने खास अपने आधे अंश से जो जन्म लिया वे अर्जुन कहलाये २२ ॥

मू० उत्पन्नौ यमजौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती।
पञ्चधा भगवानित्थमवतीर्णः शतक्रतुः २३ ॥

टी०। और जो रूप इन्द्र का अश्विनीकुमार ने लियाथा उसी अंशसे माद्री के दो लड़के जुड़िया नकुल और सहदेव नाम बहुत रूपवान् पैदा हुये इस क्रमसे भगवान् इन्द्रसे पांच रूप प्रकट हुये २३ ॥

मू० तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् २४ ॥

टी०। ऐ जैमिनि मुनि! यही सबब है कि महाभाग्यवती द्रौपदी जो अग्निसे पैदा हुई थी इन पांचों की स्त्री हुई २४ ॥

मू० शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित्।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्व्वन्ति बहुलान्यपि २५ ॥

टी०। इसलिये उस द्रौपदी को एक इन्द्रकी स्त्री समझना चाहिये दूसरे की हरगिज़ नहीं और यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि योगीश्वर लोग, एक शरीर को कई शरीर करलेते हैं और यह तो देवता हैं २५ ॥

मू० पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव ।
श्रूयतां बलदेवोऽपि यथायातः सरस्वतीम् २६ ॥

टी० । ऐ मुनि ! जिस सबबसे पांचों पाण्डवोंकी एक स्त्री कृष्णा हुई वह तो आप ने बखूबी सुना अब जिस तरह से बलदेवजी ने भी सरस्वती तीर्थ किया उसका हाल कहताहूं सुनिये २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेइन्द्रविक्रियानामपञ्चमोऽध्यायः ५ ॥

अथ छठवां अध्याय ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० रामः पार्थे परां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली ।
चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत् १ ॥

टी० । पक्षीलोग कहते हैं कि बलदेवजी श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन की प्रीति को देखकर बड़े शोचमें थे कि मैं कौनसी तदबीर काम में लाऊं कि जिससे मुझको अयश न हो १ ॥

मू० कृष्णेन हि विना नाहं यास्ये दुर्य्योधनान्तिकम् ।
पाण्डवान् वा समाश्रित्य कथं दुर्य्योधनं नृपम् २ ॥

टी० । कृष्णचन्द्र को छोड़कर मैं दुर्य्योधन की तरफ़ न जाऊंगा और दुर्य्योधन राजा को छोड़कर अर्जुन की तरफ़ कैसे जाना मुनासिबहै २ ॥

मू० जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम् ।
तस्मान्न पार्थं यास्यामि नापि दुर्य्योधनं नृपम् ३ ॥

टी० । क्योंकि जैसा दामाद का नाता वैसाही शिष्यका रिश्ता और सिवाय इसके दुर्य्योधन राजाहै उसका घात देखना मुझे उचित नहीं है इसलिये बेहतरहै कि मैं राजादुर्य्योधन और अर्जुन किसीकी तरफ़ न जाऊं ३ ॥

मू० तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ।
कुरूणां पाण्डवानाञ्च यावदन्ताय कल्पते ४ ॥

टी० । बल्कि जबतक कौरव और पाण्डवों के नाश होने की अवधि है तबतक अपने शरीर को आत्मा करके तीर्थ कराऊं ४ ॥

टी०। फूलेहुये सुन्दरे पाटल देवदारु सँखुआ ताल तमाल पलाश वंजुल वग़ैरह अच्छ अच्छे फल और फूलके दरख़्तोंसे वह वन संयुक्त है १७॥

मू० चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः।
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः १८॥

टी०। और इन वृक्षों पर चकोर शतपत्र (कठफोरवा) भृङ्गराज सूगा कोकिल गरगैया होरिल मोर विशेष १८॥

मू० प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः।
श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् १९॥

टी०। और पपीहा और तरह तरह के पक्षी सब अपने प्रिय पुत्र समेत बैठे हुये मीठी मीठी बोलियां जो कानोंको नीकी लगतीहैं उस वनमें बोल रहे हैं १९॥

मू० सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः २०॥

टी०। और बड़े बड़े सुन्दरे साफ़ जलवाले तालाबों में जिनके देखने से दिल ताज़ह होजाय नीलकमल और लाल कमल और कुमुदिनी सुन्दर सुन्दर २०॥

मू० कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः २१॥

टी०। और कह्लार कमल वग़ैरह चारों तरफ फूल रहे हैं और कदंब बतक और चक्रवाक और मुरग़ाबी २१॥

मू० कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च।
एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः २२॥

टी०। कारण्डव प्लव और हंस और कूर्म जलकौवा और मीन इत्यादि जलजन्तु करके वे तालाब सब तरफ़से आबाद हैं २२॥

मू० क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्षमाणो मनोरमम्।
जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् २३॥

टी०। इसतरह यह सब सुन्दर वनमें देखते हुये उन स्त्रियों को साथ लिये हुये एक बहुत अच्छे लताके गृहमें गये २३॥

मू० स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान्।
कौशिकान् भार्गवांश्चैव भारद्वाजान् सगौतमान् २४॥

टी०। वहां पर वे क्या देखते हैं कि ब्राह्मण लोग वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले उसमें कितने कौशिक वंश और कितने भृगुवंश और कितने भरद्वाज वंश और कितने गौतम वंशवाले हैं २४॥

मू० विविधेषु च सम्भूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान्।
कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च २५॥

टी०। और भी कितने बड़े वंशोंमें पैदाहुये उत्तम पवित्र ब्राह्मण बैठे कथा सुनते हैं २५॥

मू० कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृषीषु च।
सूतं च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः २६॥

टी०। कोई मृगछाला बिछा कोई डुपट्टे बिछा कोई कुशापर और कितने आसनियों पर बैठे हैं और उन सबों के बीच में सूतजी बैठे हुये कल्याणमयी कथा सुनारहे हैं २६॥

मू० पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः।
दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्व्वे मधुपानारुणेक्षणम् २७॥

टी०। और वह कथा पुराणकी जिसमें हालात पहलेवाले देवता और ऋषियों के थे कि उसी दरमियान में उन सब ब्राह्मणों की नजर बलदेव जी पर पड़ी तो देखा कि मदिरा के नशे में आंखें सुर्ख होरही हैं २७॥

मू० मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः।
पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् २८॥

टी०। जब सब मुनियों ने उनको नशेमें देखा तो जाना कि यह मस्त है सिवाय सूतजी के और सबोंने जल्द उठकर बड़े आदरभाव से बलदेवजी का पूजन किया २८॥

मू० ततःक्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः।

निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः २९ ॥

टी०। तबतो बड़े बलवान् बलदेवजी जिनको सबदैत्य डरतेहैं सूतजी के न उठने और आदर न करनेसे क्रोधमें आये और मारे गुस्से के आंखें फड़कने लगीं उसी हालतमें सूतजी को मारडाला २६ ॥

मू० अध्यासिते पदं ब्राह्मं तस्मिन्सूते निपातिते।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्व्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः ३०॥

टी०। ब्राह्मणवाले स्थानपै बैठेहुये उन सूतके मरजानेपर सब मुनि लोग अपना २ मृगछाला वगैरह पहनेहुये उस वनसे निकलभागे ३० ॥

मू० अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः।
चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ३१ ॥

टी०। तब बलदेवजी अपना को ब्रह्मघाती मानतेहुये सोचने और पछतानेलगे कि मैंने यह बड़ा पाप कियाहै ३१॥

मू० ब्राह्मस्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः।
तथाहीमे द्विजाः सर्व्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ३२ ॥

टी०। कि जिसलिये ब्राह्मण के स्थानमें प्राप्त बिलाकसूर इस सूतजी को हमने मारा कि इस सबबसे इन सब ब्राह्मणोंने मुझको न देखकर इस वनको छोड़दिया ३२ ॥

मू० शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः।
आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम् ३३ ॥

टी०। और जैसे लोहमें बदबू होतीहै वैसेही इस ब्रह्मघात के पापसे मेरा शरीर बदबू करता है यह बहुत बुरा कर्म्म मुझसे हुआ अब कहां जाऊँ क्याकरूं ३३ ॥

मू० धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम्।
यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ३४ ॥

टी०। ऐसी ईर्षा और नशा और घमण्ड और न डरनेको धिक्कारहै कि जिसमें पड़कर मैंने ऐसा भारी यह पाप किया ३४॥

मू० तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम्।
स्वकर्म्मख्यापनं कुर्व्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ३५ ॥

टी०। अब इस पाप के छुड़ानेके वास्ते मैं बारहवर्ष तक व्रत और इस बुरे कर्म्मका उत्तम प्रायश्चित्त करूंगा ३५ ॥

मू० अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाधुना ।
एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ३६ ॥

टी०। और इसी वक्त तीर्थोंमें घूमने का यात्राकर मैं सरस्वतीके सामने जाकर जरूर अपनी आत्माको पवित्र करूंगा ३६ ॥

मू० अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम् ।
ततः परं शृणुष्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ३७ ॥

टी०। पक्षीलोग कहतेहैं कि ऐ जैमिनि मुनि ! इसी वजहसे इन बलदेव जीने प्रतिलोमा याने प्राची सरस्वती वगैरह तीर्थ कियाहै और इसकेबाद अब दूसरा हाल पाण्डवों के बेटोंकाभी सुनिये ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेबलदेवब्रह्महत्यानामषष्ठोऽध्यायः ६ ॥

अथ सातवां अध्याय ॥

धर्म्मपक्षिण ऊचुः ॥

मू० हरिश्चन्द्रेति राजर्षिरासीत्त्रेतायुगे पुरा ।
धर्म्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्त्तिरुत्तमः १ ॥

टी०। फिर धर्म्म पक्षी लोग बोले कि पूर्व्वकाल में त्रेतायुग में बड़े धर्म्मात्मा व उत्तम कीर्त्ति करनेवाले ऋषियों में सरदार हरिश्चन्द्र नाम राजा हुयेहैं १ ॥

मू० न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् ।
नाधर्म्मरुचयः पौरास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे २ ॥

टी०। कि जिनके राज्य करतेहुये कभी उसके राज्यमें अकाल या किसी को रोग या अकाल मृत्यु न हुआ और सब प्रजा उसकी धर्म्मात्मा थी २ ॥

मू० बभूवुर्न तथोन्मत्ता धनवीर्य्यतपोमदैः ।
नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः ३ ॥

टी०। और न कोई दीवाना था और न किसी को धन और बल व

तपका घमण्ड था राजाके धर्म्म से वहांकी औरतें वृद्धा न होतीथीं सब दिन जवानही बनी रहती थीं ३॥

मू० स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम्।
शुश्राव शब्दमसकृत् त्रायस्वेति च योषिताम् ४॥

टी०। एक दिन वह राजा किसी जंगल में शिकार खेलने को गया तो वहांपर कई औरतों की आवाज बार २ ऐसी सुनी कि रक्षा कीजिये ४॥

मू० स विहाय मृगं राजामाभैषीरित्यभाषत।
मयि शासति दुर्मेधाः कोयमन्यायवृत्तिमान् ५॥

टी०। तब राजाने मृगको छोड़कर यह कहा कि मत डरो जब में राज्य करताहूं तब ऐसा कौन दुर्बुद्धी अन्याय से जीविका करताहै ५॥

मू० तत्क्रन्दितानुसारी च सर्व्वारम्भविघातकृत्।
एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट्समचिन्तयत् ६॥

टी०। यह बात कहता हुआ उस आहट पर चला जिस तरफ़से रोने की आवाज़ आती थी और वहां उस वक्त सब कार्यके प्रारम्भों में विघ्न करनेवाला विघ्नोंका राजा रौद्र नाम अपने जी में शोच रहाथा ६॥

मू० विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्य्यवान्।
प्रागसिद्धाभवादीनां विद्याः साधयति व्रती ७॥

टी०। कि यह विश्वामित्र अतुल तपस्वी और वीर्य्यवान् व्रतीहो बैठ कर जो विद्या महादेव आदिको पूर्व्व में न सिद्ध होसकी सो साधने को चाहते हैं ७॥

मू० साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना।
ता वै भयार्ताः क्रन्दन्ति कथं कार्य्यमिदं मया ८॥

टी०। और क्षमा और मौन को धारण किये हुये यह एक चित्तहो साधनमें मन लगाये हैं और वे विद्या लोग उनके डरसे आर्त्त हो रोरही हैं इस की कौनसी तदबीर मैं करूं ८॥

मू० तेजस्वी कौशिकःश्रेष्ठो वयमत्रसुदुर्बलाः।
क्रोशन्त्येतास्तथा भीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ९॥

टी०। यह विश्वामित्र मुनिन में श्रेष्ठ और तेजस्वी हैं और हम लोग

यहां अत्यन्त दुर्बलहैं व ये विद्यायें डरसे आर्त्तहो रोती हैं सो मुझे बड़ी मुश्किल मालूम होतीहै ९ ॥

मू० अथवायं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन् मुहुः ।
इममेव प्रविश्याशु साधयिष्ये यथेप्सितम् १० ॥

टी० । परन्तु यह जो राजा रोनेवालों से मत डरो ऐसा बार २ कहता हुआ आता है अब मैं इसीके शरीर में प्रवेशकर अपने मतलब को तुरन्त पूरा करूंगा १० ॥

मू० इति संचिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः ।
तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत् ११ ॥

टी० । यह बात अपने दिलमें ठानकर उसके बाद रौद्र विघ्नराज राजा हरिश्चन्द्र के शरीर में प्रवेश करगया उसके प्रवेश होने से और भी राजा हरिश्चन्द्र क्रोधमें आकर विश्वामित्र से यह वचन बोला ११ ॥

मू० कोऽयंबध्नातिवस्त्रान्ते पावके पापकृन्नरः ।
बलोष्णतेजसादीप्ते मयि पत्यावुपस्थिते १२ ॥

टी० । कि यह कौनहै जो अग्नि को कपड़े में बांध रहाहै कैसा पापी मनुष्यहै नहीं जानताहै कि राजा हरिश्चन्द्र महाबली यहां पहुंचगया १२॥

मू० सोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः ।
शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति १३

टी० । अब मेरे धनुष के बाणों से कि जिनके चलाने से दिशाओं के बीचमें उजियाला होताहै वह सम्पूर्ण शरीर अंगसे अलग होकर बड़ी नींदमें जापड़ैगा याने मरजायगा १३ ॥

मू० विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वातन्नृपतेर्वचः ।
क्रुद्धेचर्षिवरे तस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः १४ ॥

टी० । यह बात उस राजाकी सुनकर उसके बाद विश्वामित्र बहुत क्रोधमें आये उनके क्रोधमें आतेही जिन विद्याओं को साध रहेथे वे सब उसी वक्त निकल गईं १४ ॥

मू० स चापि राजा तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् ।

भीतःप्रावेपतात्यर्थं सहसाश्वत्थपर्णवत् १५ ॥

टी०। तब राजा हरिश्चन्द्रने भी पहिंचाना कि ये तो विश्वामित्र तप के समुद्र हैं और मारे डरके पीपल के पत्तोंकी तरह अचानकही बहुत कांपनेलगा १५ ॥

मू० स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत्।
ततः स राजा विनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत १६ ॥

टी०। फिर जब विश्वामित्रने कहा कि ऐ दुष्टात्मा! खड़ा रहु तब राजा हरिश्चन्द्र उनको प्रणामकर और विनय करके बोले १६ ॥

मू० भगवन्नेष धर्म्मो मे नापराधो मम प्रभो।
नक्रोद्धुमर्हसिमुने निजधर्म्मरतस्य मे १७ ॥

टी०। कि ऐ भगवन्,प्रभो,मुने! यह हमारा धर्म्म है तो जो आदमी अपने धर्म्म के कर्म्म में हो उसपर क्रोध करना न चाहिये इसमें मेरा अपराध कुछ नहीं है १७ ॥

मू० दातव्यं रक्षितव्यञ्च धर्म्मज्ञेन महीक्षिता।
चापश्चोद्यम्य योद्धव्यं धर्म्मशास्त्रानुसारतः १८ ॥

टी०। क्योंकि धर्मके जाननेवाले राजाका यही धर्म्म है कि धर्मशास्त्र की आज्ञा मुताबिक़ दानदे और रक्षाकरै धनुष चढ़ाकर जो युद्धके योगहो उससे युद्धकरे १८ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० दातव्यं कस्य के रक्ष्याः कैर्य्योद्धव्यं च ते नृप।
क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्म्मभयं तव १९ ॥

टी०। विश्वामित्रने कहा कि हे राजन्! किसको देना चाहिये और किसकी रक्षा करना चाहिये व तुमको किससे युद्ध करना चाहिये अगर अधर्म्मका डरहो तो इसको जल्द बतला १९ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः।
रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः २० ॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्रने कहा कि श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देताहूं और अन्य भूखों को देताहूं और डरेहुये लोगोंकी रक्षा करताहूं और दुश्मनों से सदा युद्ध करताहूं २० ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० यदि राजा भवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ।
निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहंदीयतामिष्टदक्षिणा २१ ॥

टी०। विश्वामित्र ने कहा कि अगर आप राजा अच्छीतरह से राजा के धर्म्मको मानतेहो तो मैं भोगकी कामनावाला ब्राह्मण हूँ जो माँगता हूँ सो प्यारी दक्षिणा दो २१ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० एतद्राजावचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने प्राह च कौशिकम् २२ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि यह बात विश्वामित्र की सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत खुशहो बल्कि अपना नया जन्म मानकरके विश्वामित्र से कहने लगा २२ ॥

मू० उच्यतां भगवन् यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् २३ ॥

टी०। कि हे भगवन्! आप अपनी इच्छा निस्सन्देह बयान कीजिये मैं देने को तैयार हूँ जो कठिन बात भी होगी तो मैं उसकी तामील करूंगा २३ ॥

मू० हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्र पत्नी कलेवरम् ।
प्राणाराज्यं पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः २४ ॥

टी०। सोना जवाहिर लड़का स्त्री शरीर प्राण राज्य गाँव धन जो आपकी इच्छा हो २४ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० राजन् प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तः प्रतिग्रहः ।
प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयकीम् २५ ॥

टी० । विश्वामित्र ने कहा कि ऐ राजन्! यह जो दान तुमने दिया सो मैंने पाया लेकिन तबतक, राजसूय यज्ञकी दक्षिणा पहिले मुझेदो २५ ॥

राजोवाच ॥

मू० ब्रह्मंस्तामपिदास्यामि दक्षिणाम्भवतो ह्यहम् ।
व्रियतां द्विजशार्दूल यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः २६ ॥

टी० । तब राजाने कहा कि ऐ ब्रह्मन्! जो दक्षिणा आपने कही है मैं वह भी दूँगा बाद इसके हे द्विजश्रेष्ठ! जो आपकी इच्छाहो सो दान माँगिये २६ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्राम पत्तनाम् ।
राज्यं च सकलं वीर रथाश्वगज संकुलम् २७ ॥

टी० । विश्वामित्रने कहा कि ऐ बीर! समुद्र समेत व पर्वत गांव शहरों सहित यह पृथ्वी और सिवाय इसके जहां तक तुम्हारा राज्यहै और नौकर हाथी घोड़ा रथ वगैरह २७ ॥

मू० कोष्ठागारं च कोषञ्च यच्चान्यद्विद्यते तव ।
विनाभार्य्यां च पुत्रञ्च शरीरञ्च तवानघ २८ ॥

टी० । और हे अनघ! कोठा घर भण्डार स्त्री और पुत्र और शरीर अपना छोड़कर बाकी और जो कुछ तुम्हारे पास हो २८ ॥

मू० धर्म्मञ्च सर्व्वधर्म्मज्ञ योयान्तमनुगच्छति ।
बहुना वा किमुक्तेन सर्व्वमेतत्प्रदीयताम् २९ ॥

टी० । हे सब धर्म्मों को जाननेवाले! जो मरेहुये मनुष्य के पीछे जाता है उस धर्म्मको भी सिवाय तीन याने लड़का और स्त्री और अपने शरीर के जोकुछ तुम्हारे पासहो यह सब मुझे देदो और जियादामैं क्या कहूँ २९ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः ।
तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः ३० ॥

टी० । पंक्षीलोगों का बयान है कि यह इच्छा उन विश्वामित्रमुनि की

बिन विकारमुखवाले राजा हरिश्चन्द्र ने सुनकर बहुत खुशदिल होकर हाथ जोड़के कहा कि एवमस्तु याने आपको मैंने इच्छा मुताबिक़ सब दे दिया यह सब आपका होचुका ३० ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० सर्व्वस्वं यदि मे दत्तं राजमुर्व्वीं बलं धनम् ।
प्रभुत्वं कस्य राजर्षे राज्यस्थे तापसे मयि ३१ ॥

टी०। तब विश्वामित्र बोले कि ऐ राजन्! घर धन राज्य पृथ्वी वगैरा सब कुछ जबकि मुझे दे दिया तो हमारा हुआ अब किसका इसमें दावा है जब कि मैं इसराज्य में बैठाहूं ३१ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० यस्मिन्नपिमयाकाले ब्रह्मन्दत्ता वसुन्धरा ।
तस्मिन्नपिभवान् स्वामी किमुताद्य महीपतिः ३२ ॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा कि ऐ महाराज! जिसवक्त से पृथ्वी आपको दिया उसीवक्त से आप राजा व स्वामी हुये अब आज क्या कहना है ३२ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० यदि राजंस्त्वया दत्ता मम सर्व्वा वसुन्धरा ।
यत्र मे विषये स्वाम्यं तस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ३३ ॥

टी०। तब विश्वामित्र ने कहा कि ऐ राजन्! जब राज्य और सब पृथ्वी तुमने मुझको देदिया तो जिस पृथ्वी में हमारी मिल्कियत है तुम वहां से निकल जाव ३३ ॥

मू० श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वा भूषणसंग्रहम् ।
तरुवल्कलमाबध्य सहपत्न्या सुतेन च ३४ ॥

टी०। श्रोणीसूत्र याने लहंगा और जेवर और कपड़ा वगैरह सब उतार कर दरख्त की छाल पहिन कर अपनी स्त्री और पुत्रको साथ लेकर चले जाउ ३४ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० तथेति चोक्त्वा कृत्वा च राजागन्तुं प्रचक्रमे ।

स्वपत्न्या शैव्यया सार्द्धं बालकेनात्मजेन च ३५ ॥

टी० । पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनि मुनि ! राजा हरिश्चन्द्र यह बात भी कबूल करके सब वस्तु और वस्त्र को छोड़ अपनी शैव्यानामक स्त्री व पुत्र को साथ लेकर चले ३५ ॥

मू० व्रजतः सततो रुद्धा पन्थानं प्राहतं नृपम् ।
क्वयास्यसीत्यदत्वा मे दक्षिणां राजसूयकीम् ३६ ॥

टी० । इस के बाद जब वहां से चले तब फिर विश्वामित्र आगे से रास्ता घेर कर बोले कि कहां जाता है राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मुझे दे दे तब जा ३६ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० भगवन् राज्यमेतत्ते दत्तं निहत कण्टकम् ।
अवशिष्ट मिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम ३७ ॥

टी० । राजा हरिश्चन्द्र बोले कि ऐ महाराज ! यह निःकंटक राज्य और धन तो मैंने आप को देदिया अब तो मेरे पास यही तीन शरीर बाकीहैं ३७ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० तथापि खलु दातव्या त्वया मे यज्ञ दक्षिणा ।
विशेषतो ब्राह्मणानां हन्त्यादत्तं प्रतिश्रुतम् ३८ ॥

टी० । विश्वामित्र बोले कि अगर्चे तेरे पास कुछ नहीं है तौभी मुझे यज्ञकी दक्षिणा विशेषकर देना चाहिये क्योंकि ब्राह्मण का मुहँ मांगा सब कुछ देवै और कहकर न देवै तो सब व्यर्थ है याने सब दिया हुआ नाश होजाता है ३८ ॥

मू० यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप ।
तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयकी ३९ ॥

टी० । और हे राजन् ! जब तक राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण खुश न हो तब तक राजसूय यज्ञ की दक्षिणा देनी चाहिये ३९ ॥

मू० प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाततायिभिः ।
रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ४०

टी०। पहिले तुमने कहाथा कि ब्राह्मण जो मांगता है सो देता हूँ और दुश्मनों से लड़ता हूँ और दुखियों की रक्षा करता हूँ ४० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० भगवन्साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेण ते।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे सद्भावमनुचिन्त्यच ४१ ॥

टी०। हरिश्चन्द्र बोले कि ऐ भगवन्! इसवक्त मेरेपास कुछ नहीं है कुछ रोज के बाद देंगे हे मुने! अब मुझपर खुश होकर कृपाकी दृष्टि से देखिये ४१ ॥

विश्वामित्रउवाच ॥

मू० किम्प्रमाणे मया कालः प्रत्यक्षस्तेजनाधिप।
शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ४२ ॥

टी०। विश्वामित्र बोले कि ऐ राजन्! जल्दी कोई एक दिन का सच्चा क़ौल करो उस दिन पर मैं तुम्हारे पास आऊंगा अगर उस अवधि पर क़ौल तुम्हारा मिथ्या हो जायगा तो मेरे क्रोधकी आग से तू नाश हो-जायगा ४२ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० मासेन तव विप्रर्षे प्रदास्ये दक्षिणा धनम्।
साम्प्रतं नास्ति मे वित्तमनुज्ञां दातुमर्हसि ४३॥

टी०। फिर राजा ने कहा कि ऐ ब्रह्मर्षि महर्षि! एक महीनेमें आपकी दक्षिणा का धन दूँगा इस वक्त तो मेरे पास कुछ धन बाक़ी नहीं रहा है आप खुशी से मेरा वादा क़बूल कीजिये ४३ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ स्वधर्म्ममनुपालय।
शिवश्चतेऽध्वाभवतु मा सन्तु परिपन्थिनः ४४॥

टी०। विश्वामित्रने कहाकि ऐ राजन्! अब तुम जावजाव अपनेधर्म का पालन करो और रास्ते में तुम्हारा कल्याणहो और तेरे दुश्मनका नाशहो ४४ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० अनुज्ञातः सगच्छेति जगाम वसुधाधिपः
पद्भ्यामनुचितागन्तु मन्वगच्छत तं प्रिया ४५ ॥

टी०। पक्षीलोग कहतेहैं कि विश्वामित्रने यह आज्ञा दिया कि जावो तब राजा उस जगह से पैदल रवाना हुआ और पीछे पीछे उनकी स्त्री भी जो कि पैदर चलने के न योग्यथी उनके साथ चली ४५ ॥

मू० तं सभार्य्यं नृपश्रेष्ठं निर्य्यान्तं स सुतं पुरात् ।
दृष्ट्वाप्रचक्रुशुः पौरा राज्ञश्चैवानुयायिनः ४६ ॥

टी०। जब वह राजा स्त्री पुत्र सहित नगर से चला तब वहांकी प्रजा और दोस्त लोग राजा को देखकर विलाप करनेलगे ४६ ॥

मू० हा नाथ किंजहास्यस्मान् नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।
त्वं धर्म्मे तत्परोराजन् पौरानुग्रह कृत्तथा ४७ ॥

टी०। और बड़े दुःखी होकर कहने लगे कि ऐ नाथ! हम लोग प्रजा नगरवासियों को क्यों त्यागेहुये चलेजातेहो ऐ राजन्! हम लोग हमेशा दुखी और आप धर्मात्मा हमेशा सबपर दया रखते थे ४७ ॥

मू० नयास्मानपि राजर्षे यदिधर्म्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त्तं तिष्ठ राजेन्द्र भवतो मुख पङ्कजम् ४८ ॥

टी०। ऐ राजर्षि! अगर तुम अपने धर्मको देखतेहो तो हम लोगों को भी ले चलिये या एक मुहूर्त्त ठहर जाव कि आपके मुख कमलकारस ४८॥

मू० पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदाद्रक्ष्याम्यहंपुनः ।
यस्यप्रयातस्य पुरो यान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः ४९ ॥

टी०। हम लोग अपने नेत्ररूपी भ्रमरोंको पिलावें क्या जानें कि फिर आपको कब देखेंगे पहिले जिनके चलते वक्त बड़े बड़े राजा लोग आगे व पीछे चलते थे ४६ ॥

मू० तस्यानुयातिभार्य्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ५० ॥

टी०। अब उनके पीछे पीछे सिर्फ़ यह स्त्री छोटा लड़का लिये जाती है और जिनके नौकर हाथियों पर आगे २ चलते थे ५० ॥

मू० स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति।
हाराजन् सुकुमारन्ते सुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ५१ ॥

टी०। वह राजा हरिश्चन्द्र इस वक्त पैदल चलता है हाय राजन्! यह कोमल व सुन्दरी भौंहों और अच्छे चमड़े व ऊंची नासिकावाला जो मुख है ५१ ॥

मू० पथि पांशुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति।
तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ स्वधर्म्ममनुपालय ५२ ॥

टी०। राहकी गर्द जब उस मुखपर पड़ैगी उसवक्त कैसी सूरत हो जायगी ऐ राजन्! रहजाउ रहजाउ अपने धर्म्मकी रक्षा करो ५२ ॥

मू० आनृशंस्यपरो धर्म्मः क्षत्रियाणां विशेषतः।
किं दारैः किंसुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा ५३ ॥

टी०। और ऐ नाथ! रक्षा करना सबके वास्ते धर्म्म है पर क्षत्रियके वास्ते और भी विशेषहै इसलिये स्त्री पुत्र धन धान्यसे क्या है ५३ ॥

मू० सर्व्वमेतत्परित्यज्य छायाभूता वयं तव।
हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन् किं जहासि नः ५४ ॥

टी०। हम लोग इस सबको त्यागकर छायाके समान आप के साथ रहैंगे हाय महाराज! ऐ नाथ! ऐ स्वामी! हमलोगोंको क्यों त्यागतेहो ५४॥

मू० यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान्।
नगरं तद्भवान् यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः ५५ ॥

टी०। जहां कहीं आप रहैंगे उसी जगह हमलोग भी रहैंगे जहां आप रहैंगे उसी जगह सब तरह का सुख है और वहीं नगर और वहीं स्वर्ग है जहां कि हमलोगों के राजा आप हो ५५ ॥

मू० इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः।
अतिष्ठत् स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया ५६ ॥

टी०। यह वचन नगरवासियों के सुनकर राजा शोच में आ उस वक्त उन लोगों की खातिर से रास्ते में ठहर गया ५६ ॥

मू० विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम्।

रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ५७॥

टी०। विश्वामित्रभी राजा हरिश्चन्द्र को नगरवासियों के प्रेमयुक्त वचन की ज़ंजीर से बँधे देखकर ईर्षा और क्रोध से आँख चढ़ाये हुये आये और बोले ५७॥

मू० धिक् त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषिणम्।
मम राज्यञ्च दत्त्वा यः पुनः प्राकष्टुमिच्छसि ५८॥

टी०। कि खराब चलनेवाले व झूठ बोलनेवाले तुमको धिक्कार है तुम्हारा सब काम झूँठा और बेविचार है जो मुझको राज्य देकर फेरलेने को चाहते हो ५८॥

मू० इत्युक्तः परुषं तेन गच्छामीति सवेपथुः।
ब्रुवन्नेवं ययौ शीघ्रमाकृष्य दयितां करे ५९॥

टी०। राजा यह कठोर वचन विश्वामित्र से सुनकर काँपतेहुये बोले कि मैं जाताहूं ऐसा कहते हुये और जल्दीसे चलने के वास्ते अपनी स्त्री का हाथ पकड़कर खींचा ५९॥

मू० कर्षतस्तां ततो भार्यां सुकुमारीं श्रमातुराम्।
सहसा दण्डकाष्ठेन ताडयामास कौशिकः ६०॥

टी०। हरचन्द वह कोमल रानी चलने पर सुस्तैदही थी पर मांदगी से जो चलने में कुछ देरी हुई इस वास्ते विश्वामित्र ने अपने हाथवाले काठके दण्डेसे रानीको मारा ६०॥

मू० तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत् किञ्चिदुदाहरत् ६१॥

टी०। उस रानीको ताड़ित देखकर राजा बहुत दुःखित और पीड़ित हो कहने लगा कि जाताहूं और कुछ न कहा ६१॥

मू० अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः।
विश्वामित्रः सुपापोयं लोकान् कान् समवाप्स्यति ६२॥

टी०। इसी दरमियान में पांचों विश्वेदेव वहां आये और दयाकी राह से बोले कि यह विश्वामित्र पापी किन लोकोंको पावैगा ६२॥

मू० येनायं यज्वनां श्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः।
कस्य वा श्रद्धया पूतं सुतं सोमं महाध्वरे॥
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ६३॥

टी०। हरिश्चन्द्र ऐसा राजा जो राजाओं और यज्ञकरनेवालोंमें श्रेष्ठ है उसको जिसने अपनी राज्यसे उतार दिया है व हमलोग किसकी यज्ञ में मंत्रपूर्वक श्रद्धासे वह सोमवल्लीरसकी तरह खुशी से पीकर आनन्दहोवैंगे ६३॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० इति तेषां वचः श्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः।
शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्व्वे यूयमवाप्स्यथ ६४॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! यह वचन उन विश्वेदेव लोगों का सुनकर विश्वामित्र ने बड़ा क्रोध करके उन देवताओं को शाप दिया कि तुम लोग सब मेरे शाप से मनुष्य योनि में जाकर अवतार लेते जाउ ६४॥

मू० प्रसादितश्च तैः प्राह पुनरेव महामुनिः।
मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्री नैव सन्ततिः ६५॥

टी०। फिर उन लोगों ने बहुत विनय करके अपनी क्षमा चाही तब विश्वामित्र ने कहा कि मनुष्यावतार तो तुम लोगों का अवश्य होगा पर सन्तान न होगी ६५॥

मू० नदारसंग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः।
कामक्रोधविनिर्मुक्ता भविष्यथ सुराः पुनः ६६॥

टी०। बल्कि स्त्री के संग्रहसे तुम लोग अलग रहोगे और मत्सर काम क्रोध लोभ वगैरह से बचकर फिर देवता होगे ६६॥

मू० ततोऽवतेरुरंशैस्स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि।
द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः ६७॥

टी०। पक्षी लोगों का बयान है कि ऐ जैमिनि जी! उसके बाद वही पांचों विश्वेदेव कुरु के मकानमें द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न होकर पांचोंपाण्डवों के बेटे कहलाये ६७॥

मू० एतस्मात्कारणात्पञ्च पाण्डवेया महारथाः।
नदारसंग्रहंप्राप्ताश्शापास्तस्य महामुनेः ६८॥

टी०। और यही सबब है कि वे महारथी पाँचों पाण्डवों के बेटे कुँवारे ही में मारे गये याने उन्हीं मुनि के शाप से स्त्री का संग्रह न हुआ ६८॥

मू० एतत्ते सर्व्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम्।
प्रश्नंचतुष्टयं गीतं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ६९॥

टी०। यह कथा पाँचों पाण्डवों के बेटों की बल्कि आपने अपनेचारों सवालों का जवाब सुना अब कहिये कि और क्या सुननेकी इच्छाहै६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेद्रौपदेयोत्पत्तिर्नामसप्तमोऽध्यायः ७॥

अथ आठवां अध्याय॥

जैमिनिरुवाच॥

मू० भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात्।
महत्कौतूहलं मेस्ति हरिश्चन्द्रकथाम्प्रति १॥

टी०। जैमिनि जी कहते हैं कि ऐ पक्षिराजाओ! जिसतरह से मैंने सवाल किया था उसी तरह से आपलोगों ने कहा पर उस राजा हरिश्चन्द्र की कथा में मुझे बड़ा कौतूहल है याने सुनने की इच्छा है १॥

मू० अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम्।
कच्चित्सुखमनुप्राप्तं तादृगेव द्विजोत्तम २॥

टी०। ऐ पक्षी लोगो! वे महात्मा बड़े कष्ट को प्राप्त हुये यह कहिये कि उन्हों ने क्या कुछ वैसाही सुख पाया या नहीं २॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० विश्वामित्रवचःश्रुत्वा स राजा प्रययौ शनैः।
शैव्ययानुगतो दुःखी भार्य्यया बालपुत्रया ३॥

टी०। पक्षीलोग बोले कि ऐ मुनि! विश्वामित्रका वचन सुन वै राजा

हरिश्चन्द्र दुःखित हो अपनी स्त्री और बालपुत्र को साथ ले आहिस्ता आहिस्ता चले ३॥

मू० स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम्।
नैषा मनुष्यभोगेति शूलपाणेः परिग्रहः ४॥

टी०। जो कि अपना राज्य समुद्रान्तर भर का दे दिया था इसवास्ते वह वहाँ से उत्तम काशीपुरीको चले इस खयाल से कि यह शिवजी की है मनुष्य लोगों की नहीं ४॥

मू० जगाम पद्भ्यां दुःखार्त्तः सह पत्न्यानुकूलया।
पुरीप्रवेशे ददृशे विश्वामित्रमुपस्थितम् ५॥

टी०। फिर दुःख से पीड़ित आहिस्ता आहिस्ता सहित स्त्री और पुत्र के जब वहां पुरी में पहुँचे तो देखा कि विश्वामित्रभी वहां मौजूद हैं ५॥

मू० तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत्।
प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ६॥

टी०। तब राजा हरिश्चन्द्र उन महामुनि को आयेहुये देख विनयसे नीचे झुककर हाथ जोड़ बोले ६॥

मू० इमे प्राणाः सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम।
येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ७॥

टी०। कि ऐ मुनि! यह मेरी स्त्री और पुत्र व ये प्राण मौजूद हैं इनमें से जिनको आप चाहिये जल्दी उस उत्तम अर्घको लेलीजिये ७॥

मू० यद्वान्यत्कार्य्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ८॥

टी०। इसके सिवाय अगर और हमलोगों से ज़रूरत हो तो कहिये हम वही करेंगे ८॥

विश्वामित्र उवाच॥

मू० पूर्णः समासो राजर्षे दीयतां मम दक्षिणा।
राजसूयनिमित्तं हि स्मर्य्यते स्ववचो यदि ९॥

टी०। विश्वामित्र ने कहा कि ऐ राजर्षि! वह महीना पूरा होगया राजसूययज्ञ की दक्षिणा जो देनेको कहाथा अगर अपने वचन का याद हो तो मुझको दो ९॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० ब्रह्मन्नद्यैव सम्पूर्णो मासोऽम्लानतपोधन।
तिष्ठत्येतद्दिनार्द्धं यत्तत् प्रतीक्षस्व मा चिरम् १० ॥

टी०। राजा बोले कि ऐ सुन्दर तपोनिधि! आज अभी मास पूराहोने में आधा दिन बाक़ी है ऐ ब्रह्मन्! आप यह आधा दिन रहजाइये मैं शीघ्रही दूंगा १० ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः।
शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रदास्यसि ११ ॥

टी०। विश्वामित्र बोले एवमस्तु याने ऐसाही होगा मैं फिर आताहूं ऐ राजन्! अब फिर आनेपर आज न दोगे तो मैं तुमको शाप दूंगा ११॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत्तदा।
कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता १२ ॥

टी०। उन पक्षियों का बयानहै कि ऐ मुनि! उस वक्त विश्वामित्र तो इतना कहकर चलेगये पर राजा शोचने लगे कि जो कहीहुई दक्षिणा है उसको मैं इनके लिये कैसे दूंगा १२ ॥

मू० कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः साम्प्रतं मम।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम् १३ ॥

टी०। न इस वक्त कोई मेरा दोस्त है और न इस वक्त मेरे पास कुछ धन है और अगर दक्षिणा नहीं दिया तो मेरा दान दुष्ट होगा व नरक भोगना पड़ैगा १३ ॥

मू० किमु प्राणान् विमुञ्चामि कां दिशं याम्यकिञ्चनः।
यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् १४ ॥

टी०। क्या इस वक्त निर्धनी मैं अपना प्राण त्यागदूं या कहीं चलाजाउं और अगर कहाहुआ न देकर अपना प्राण भी त्यागदूं १४ ॥

मू० ब्रह्मस्वहृत्कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः।

अथवा प्रेष्यतां यास्ये वरमेवात्मविक्रयः १५ ॥

टी०। तौ भी ब्रह्मअंश हरण के पापसे कीड़ा होकर नरक भोगना पड़ैगा अगर कोई खरीदार होता तो मैं अपने शरीरको बेंचकर सेवकाई में प्राप्तहोऊं यही अच्छाहै १५ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम्।
प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा १६ ॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! उस वक्त राजा हरिश्चन्द्रकी स्त्री अपने पुरुषको दुःखसे व्याकुल दीन व शिर झुकाये शोचते देख कर आंखैं डबडबाकर फँसीहुई आवाज से कहने लगी कि १६ ॥

मू० त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय।
श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः १७ ॥

टी०। ऐ राजन्! शोच छोड़कर अपना क़ौल जो हारचुके हो उसको पूरा कीजिये किस वास्ते कि जो आदमी बदक़ौल होता है उसको सब कोई श्मशान की तरह त्याग देतेहैं १७ ॥

मू० नातः परतरं धर्म्मं वदन्ति पुरुषस्य तु।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम् १८ ॥

टी०। और ऐ नरव्याघ्र! मुनि लोगों का कहाहुआ इससे अधिक मनुष्य को धर्म नहीं है जैसा कि अपनी सचाई का परिपालन करनाहै १८

मू० अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् १९ ॥

टी०। अग्निहोत्र व पढ़ना और दानादिक सब क्रिया भी जो किसी ने कियाहो वह सब उसकी एक झुँठाईसे व्यर्थ याने नाश होजातीहैं १९॥

मू० सत्यमत्यन्तमुदितं धर्म्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम् २० ॥

टी०। बुद्धिमान् लोग और धर्मशास्त्र ने सत्यको सब धर्मों से जियादा और मनुष्यका तारनेवाला कहाहै और वैसेही झूठके बराबर दूसरा अधर्म नहीं जो पापी मनुष्यों को गिरा देता है २० ॥

मू० सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयञ्च पार्थिवः।
कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात् सकृत् २१॥

टी०। सातअश्वमेध और राजसूययज्ञ करनेसे कृति नामक राजा को स्वर्ग हुआ था तो एकबार असत्य कहने से वह स्वर्ग से नीचे गिरा दियागया २१॥

मू० राजञ्जातमपत्यं मे इत्युक्त्वा प्ररुरोद ह।
बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदं महीपतिः २२॥

टी०। ऐ राजन्! मेरे सन्तान होचुकी है इतना कहकर रोने लगी आगे कुछ बोल न सकी यह दशा रानी की देखकर राजा आँखों में आँसू भरेहुई उस रानी से कहने लगे कि २२॥

हरिश्चन्द्र उवाच॥

मू० विमुञ्च भद्रे सन्तापमयं तिष्ठति बालकः।
उच्यतां वक्तुकामासि यद्दा त्वं गजगामिनि २३॥

टी०। ऐ भद्रे, गजगामिनि! यह लड़का तो तेरे सामने बैठा है अगर कोई बात कहनाहो तो सन्ताप को छोड़कर कहु २३॥

पत्न्युवाच॥

मू० राजञ्जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः।
स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् २४॥

टी०। रानी ने कहा कि ऐ राजन्! सिर्फ़ लड़के के वास्ते औरत की ज़रूरत होती है सो तो हासिल होचुका अब मुझे बेंचकर द्रव्यले ब्राह्मण को दे दीजिये २४॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः।
प्रतिलभ्य च संज्ञां स विललापातिदुःखितः २५॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ मुनि! वह राजा अपनी स्त्री से यह बात सुनकर मूर्च्छित होगया फिर जब होश में आया तो बहुत दुःखीहो विलाप करने लगा २५॥

मू० महादुःखमिदं भद्रे यस्त्वमेव ब्रवीषि माम्।
किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः २६॥

टी०। और कहा कि ऐ कल्याणि! तुमने जो यह बात मुझसे कही यह बड़े दुःख की बात है क्या तुम्हारा मुसकराकर बोलना मुझ पापीको भूलगया २६॥

मू० हा हा कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते।
दुर्व्वाच्यमेतद्वचनं कर्त्तुं शक्नोम्यहं कथम् २७॥

टी०। हाय! हाय!! ऐ मुसकराकर बोलनेवाली! तुम से यह बात क्योंकर कही गई मुझसे ऐसी नामुनासिब बात कैसे होसकैगी २७॥

मू० इत्युक्त्वा स नरश्रेष्ठो धिग्धिगित्यसकृद् ब्रुवन्।
निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः २८॥

टी०। इतना कहकर और अपने को बार २ धिक्कार दे राजा मूर्च्छा में आकर बेहोश हो ज़मीन पर गिर पड़ा २८॥

मू० शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम्।
उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता २९॥

टी०। उस राजा हरिश्चन्द्र को बेहोश ज़मीन पर गिरा हुआ देखकर रानी बहुत अफ़सोस और दुःख में आकर कहने लगी २९॥

पत्न्युवाच॥

मू० हा महाराज कस्येदमपध्यानमुपस्थितम्।
यस्त्वं निपतितो भूमौ राङ्कवास्तरणोचितः ३०॥

टी०। स्त्री बोली कि हाय राजन्! यह किसका अपमान प्राप्त हुआ जो पशुवोंके रोमोंसे बने हुये बिछौनों पर सोने योग्यहो ऐसे बेहोश होकर ज़मीन पर गिरे हो आप ऐसा आदमी जब इस तरह बेहोश होकर गिरे तो दूसरे की कौन गिनती है ३०॥

मू० येन कोट्यग्रगोवित्तं विप्राणामपवर्ज्जितम्।
स एष पृथिवीनाथो भूमौ स्वपिति मे पतिः ३१॥

टी०। हाय जो सब दिन करोड़ से जियादह गाइयां व भूषण और

धन ब्राह्मण को दान देताथा वह राजा मेरा स्वामी ज़मीन पर पड़ा सोता है ३१ ॥

मू० हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता।
यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः प्रस्वापनीं दशाम् ३२ ॥

टी०। हाय दैव! बड़े कष्ट की बातहै इन्होंने कौनसा तुम्हारा कर्म्म कियाथा कि जो राजा इन्द्र उपेन्द्र के बराबर था उसको तूने ऐसे दुःख और मूर्च्छा की दशा में पहुँचा दिया है ३२ ॥

मू० इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपातह।
भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येन निपीडिता ३३ ॥

टी०। इतना कहकर वह सुश्रोणी याने अच्छी कमरवाली रानी अपने स्वामी के न सहने योग्य दुःखके बोझ से पीड़ितहो मूर्च्छा खाकर ज़मीन पर गिर पड़ी ३३ ॥

मू० तौ तथा पतितौ भूमावनाथौ पितरौ शिशुः।
दृष्ट्वात्यन्तक्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ३४ ॥

टी०। जिस वक्त वे दोनों राजा और रानी अनाथहो ज़मीन पर बेहोश पड़ेथे उनको देखकर उसी वक्त उनका लड़का रोहिताश्व नाम अतिदुःखी होकर भूँख से पीड़ित हो वचन बोला ३४ ॥

मू० तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद।
क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रं शुष्यते तथा ३५ ॥

टी०। कि ऐ पिता! मुझे खाने को दो और ऐ मां! मुझे खाना दे बहुत भूखा हूं भूख प्यास से ज़बान मेरी सूख रही है ३५ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः।
दृष्ट्वा तु तं हरिश्चन्द्रं पतितं भुवि मूर्च्छितम् ३६ ॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! इसी अन्तर में बड़े तपस्वी विश्वामित्र वहाँ आये और देखा कि वह हरिश्चन्द्र मूर्च्छितहो ज़मीन पर पड़ाहै ३६ ॥

मू० स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ३७॥

टी०। तब उस राजा के ऊपर जल का छींटा दिया और यह कहा कि ऐ राजेन्द्र! उठो उठो मेरी उस दक्षिणा को दो ३७॥

मू० ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते।
आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ३८॥

टी०। ऋण न देनेवाले आदमीका दिन दिन दुःख बढ़ता है उस वक्त पाला से ठण्ढे जल से छिड़का हुआ वह ३८॥

मू० अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च।
पुनर्मोहं समापेदे स च क्रोधं ययौ मुनिः ३९॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्र जिसको कुछ चेत होगया था विश्वामित्र को देखकर दुःख से दुबारा मूर्च्छित होगया यह दशा देखकर विश्वामित्र मुनि को क्रोध हुआ ३९॥

मू० स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः।
दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धर्म्ममवेक्षसे ४०॥

टी०। और राजा को होशमें लाकर द्विजोत्तम यह वचन कहने लगे कि अगर तुमको धर्म्म का खयालहै तो मेरी वह दक्षिणा देदो ४०॥

मू० सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।
सत्यञ्चोक्तं परोधर्म्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ४१॥

टी०। सिर्फ सचाई से सूर्य्य में यह ज्योतिहै और सत्यही पर जमीन स्थिरहै और सत्य में स्वर्ग प्रतिष्ठित है इस वास्ते सब धर्म्मों से सचाई बढ़कर गिनीजाती है ४१॥

मू० अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ४२॥

टी०। तुला के एक पलरे पर हजार अश्वमेध का पुण्य और दूसरे पलरे पर एक सचाई तौली गई थी तो अश्वमेध का पुण्य सचाई के बराबर न पहुँच सका ४२॥

मू० अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम्।
अनार्ये पापसंकल्पे क्रूरे चानृतवादिनि ४३॥

टी०। विश्वामित्र कहते हैं कि अगर्चे यह प्यारा वचन सब कहता हूं पर व्यर्थ है क्योंकि पापी और क्रूर और असत्यवादी व मूर्ख जो तुम राजाहो उससे कहना क्या ४३॥

मू० त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम्।
अद्य मे दक्षिणा राजन्न दास्यति भवान् यदि ४४॥

टी०। ऐ राजन्! मुझसे इस उत्तम भावको सुनो मैं सच कहताहूं कि मेरी दक्षिणा आज देदो अगर आज नहीं दोगे तो ४४॥

मू० अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम्।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ४५॥

टी०। उसीलिये जब सूर्य्य डूब जायँगे याने शाम होनेपर तुझे जरूर शाप दूंगा इतना कहकर विश्वामित्र तो चले गये पर राजा मारे डरके घबरा गया ४५॥

मू० कान्दिग्भूतोऽधमो निःस्वो नृशंसमुनिनार्दितः।
भार्य्यास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ४६॥

टी०। व दिशाओं के ज्ञान से हीन व नीच व निर्दयी मुनिसे विकल वह राजा निर्धनी होगया तब उसकी स्त्री फिर कहनेलगी कि ऐ स्वामी! मैं जो वचन कहती हूं सो करो ४६॥

मू० मा शापानलनिर्दग्धः पञ्चत्वमुपयास्यसि।
स तथा चोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ४७॥

टी०। कि शापकी आग में जलकर मत मरो इस तरह वारंवार जब रानी ने कहा तो उस राजा ने ४७॥

मू० प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः।
नृशंसैरपि यत् कर्तुं न शक्यं तत् करोम्यहम् ४८॥

टी०। कहा कि ऐ कल्याणि! जो काम किसी क्रूरने भी न कियाहोगा वह खोटा काम तेरे बेचने का यही मैं करूंगा ४८॥

मू० यदि मे शक्यते वाणी वक्तुमीदृक् सुदुर्व्वचः।
एवमुक्त्वा ततो भार्य्यां गत्वा नगरमातुरः॥
बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ४९॥

टी०। यदि मेरी वाणी ऐसा दुर्वचन कहसकेगी इतना स्त्रीसे कहकर उसके बाद विकलहो आप स्त्री और पुत्रको साथलिये हुये गांवमें गये और आँखों में आँसू भरकर यह बात कही ४९॥

राजोवाच॥

मू० भो भो नागरिकाः सर्व्वे शृणुध्वं वचनं मम।
किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ५०॥

टी०। राजाबोले कि ऐ नगरके रहनेवाले सब लोगो! मेरी बात सुनते जावो किसीने पूंछा कि तू कौनहै तब कहा कि मुझे क्या पूछते हो मैं एक क्रूर आदमियत से खारिज हूं ५०॥

मू० राक्षसो वातिकठिनस्ततः पापतरोऽपि वा।
विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ५१॥

टी०। अधम राक्षसों से मैं जियादापापीहूं और जान नहीं निकलती है जोकि मैं जो मेरी स्त्री है उसको बेचताहूं ५१॥

मू० यदि वः कस्यचित्कार्य्यं दास्या प्राणेष्टया मम।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्सन्धारयाम्यहम् ५२॥

टी०। अगर तुमलोगों में से जिस किसीको मेरे प्राणोंके समान प्यारी लौंड़ी खरीदना हो तो जल्द कहो क्योंकि अभी किसी के साथ मैं ने इस बात को खतम नहीं किया है ५२॥

पक्षिणऊचुः॥

मू० अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम्।
समर्प्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ५३॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! इस दरमियान में एक बूढ़ा ब्राह्मण वहां आकर राजासे कहनेलगा कि इस दासी का खरीदार मैं हूं मुझे दो मैं क़ीमत इसकी दूंगा ५३॥

मू० अस्ति मे वित्तमस्तोकं सुकुमारी च मे प्रिया।
गृहकर्म्म न शक्नोति कर्तुमस्मात् प्रयच्छ मे ५४॥

टी०। मेरे पास धन बहुत है और मेरी स्त्री निहायत नाजुक है घर का काम उससे नहीं होसक्ता इसवास्ते मैं खरीद करना चाहताहूं मुझे दीजिये ५४॥

मू० कर्म्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योषितः।
अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ५५॥

टी०। यह तुम्हारी स्त्री सब काम करैगी व उमर और रूप और शील इसमें सब पायेजाते हैं इसके मुनासिब ये दाम लेकर मुझेस्त्रीकोदेदो ५५॥

मू० एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः।
व्यदीर्य्यत मनोदुःखान्नचैनं किञ्चिदब्रवीत् ५६॥

टी०। उस ब्राह्मण के इस बात कहने से राजा हरिश्चन्द्र का दिल छिदगया और पीड़ितहो इससे कुछ बोल न सका ५६॥

मू० ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम्।
बद्ध्वा केशेष्वथादाय नृपपत्नीमकर्षयत् ५७॥

टी०। फिर उस ब्राह्मण ने रानी के योग्य धन राजा के वल्कल वस्त्र में जो उस वक्त पहने हुये था मज़बूत बांध दिया और रानी के बाल पकड़कर खींचकर लेचला ५७॥

मू० रुरोद रोहिताश्वोऽपि दृष्ट्वा कृष्टान्तु मातरम्।
हस्तेन वस्त्रमाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः ५८॥

टी०। तब राजा का लड़का रोहिताश्वभी जिसके शिरकी जुल्फ़ें बड़ी शोभायमान थीं खींचीहुई अपनी मां का दुःख देखकर और कपड़ा उसका हाथ से थाम कर रोनेलगा ५८॥

राजपत्न्युवाच॥

मू० मुञ्चार्य्य मुञ्च तावन्मां यावत्पश्याम्यहं शिशुम्।
दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ५९॥

टी०। तबब्राह्मणसे रानी बोली कि ऐ महाराज! ज़रा मुझे छोड़दो २

तबतक लड़के का मुख मैं देखलेऊं हे तात ! फिर इसका दर्शन मुझे दुर्लभहोगा ५६ ॥

मू० पश्यैहि वत्स मामेवं मातरं दास्यतां गताम्।
मामास्प्राक्षी राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाधुना ६० ॥

टी०। इतना कहकर लड़के की तरफ़ मुखातिब होकर कहने लगी कि ऐ बेटा ! मुझको इस तरह से देखिये अब मैं तुम्हारी मां लौंड़ियों में शामिल हुई ऐ बेटा! मुझे छोड़दो अब मैं तेरे छूने लायक़ न रही इससे मत छुवो ६० ॥

मू० ततः सबालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टान्तु मातरम्।
समभ्यधावदम्बेति रुदन् सास्राविलेक्षणम् ६१ ॥

टी०। यह कहकर उसके बाद वहां से चली तो फिर वह लड़का खींचीहुई मां को देख दुःख से घबराकर रोताहुआ मां, मां कहताहुआ दौड़ा ६१ ॥

मू० तमागतं द्विजः क्रेता बालमभ्याहनत् पदा।
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैवामुञ्चत मातरम् ६२ ॥

टी०। तब उस ब्राह्मण ने जिसने रानी को खरीदा था यद्यपि आये हुये उस लड़के को लात से मारा तथापि वह मां, मां कहताही रहा और मां का पीछा न छोड़ा ६२ ॥

राजपत्न्युवाच ॥

मू० प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमञ्च बालकम्।
क्रीतापि नाहं भवतो विनैनं कार्य्यसाधिका ६३ ॥

टी०। तब रानी ने उस ब्राह्मण से कहा कि ऐ महाराज! मेरे ऊपर कृपाकरके इस लड़के कोभी खरीद करलीजिये क्योंकि बगैर इस लड़केके मोललीहुई भी मुझसे आपकी खिदमत जैसी कि चाहिये न होसकैगी ६३ ॥

मू० इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखो भव।
मां संयोजय बालेन वत्सेनेव पयस्विनीम् ६४ ॥

टी०। मुझ कम भाग्यवालीके ऊपर दया करके लड़के को भी इसतरह से मेरे साथ लगा लीजिये जैसे कि दूध पीतेहुये बछड़े को गाय से अलग न करना चाहिये ६४ ॥

ब्राह्मणउवाच॥

मू० गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां बालको मम।
स्त्रीपुंसोर्धर्म्मशास्त्रज्ञैः कृतमेवहि वेतनम्॥
शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमूल्यं तथापरैः ६५॥

टी०। तब ब्राह्मण राजा से कहनेलगा कि ऐ राजा! धर्म्मशास्त्र के जाननेवाले लोगोंने स्त्री व पुरुषका मूल्य ज़रूर किया है सो या हज़ार या लाख या करोड़ जो तुम कहो मैं दूंगा पर इस लड़के को भी मेरे हाथ वेच डालिये और यह धन लीजिये ६५॥

पक्षिणऊचुः॥

मू० तथैव तस्य तद्वित्तं बद्ध्वोत्तरपटे ततः।
प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ६६॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि उसी तरहसे फिर उस लड़के के वे दाम जवाहिर आदि राजा के दुपट्टेवाले वस्त्र में बांधकर उस लड़के को भी उसकी मांके साथ एकहीमें बांध कर लेचला ६६॥

मू० नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्य्यापुत्रौ स पार्थिवः।
विललाप सदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ६७॥

टी०। जब उस राजा ने ब्राह्मण को अपनी स्त्री और पुत्र को लेजाते हुये देखा तो दुःख से व्याकुल हो विलाप करने और बार बार उष्ण श्वास लेनेलगा ६७॥

मू० यान्न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः।
दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ६८॥

टी०। और कहनेलगा कि पहले जिसको वायु सूर्य्य चन्द्रमा और भी किसी मनुष्यने न देखाथा वही यह स्त्री मेरी अब दूसरेकी दासी हुई ६८॥

मू० सूर्य्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः।
सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिग्मामस्तु सुदुर्मतिम् ६९॥

टी०। और सूर्य्यवंशका पैदा यह लड़का जो निहायत नाज़ुक हाथों अंगुलियोंवालाहै वहभी बिकगया तो तुम ऐसे दुर्बुद्धि को धिक्कारहै ६९

मू० हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्य्यस्य दुर्नयैः।
देवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ७० ॥

टी०। हाय प्रिये! हाय प्यारे पुत्र! मुझ ऐसे नीच के अन्यायों से तुम्हें ऐसी भाग्याधीन दशा में पहुँचा दिया तोभी नहीं मरता हूँ मेरे इस जीने पर धिक्कार है ७० ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत।
वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादाय त्वरान्वितः ७१ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि जल्दी समेत वह ब्राह्मण तो ऊंचेवृक्षों व घरों से छिपे हुये ठिकाने में उन दोनों को लेकर अन्तर्द्धान हो गया और राजा इसीतरह विलाप करता रहा ७१ ॥

मू० विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत।
तस्मै समर्प्पयामास हरिश्चन्द्रोपि तद्धनम् ७२ ॥

टी०। उसके बाद उसीवक्त विश्वामित्र फिर वहाँ पहुँचे और राजा से अपनी दक्षिणा मांगी तब हरिश्चन्द्रने भी वह सब उनके आगे रख दिया ७२ ॥

मू० तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसंभवम्।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ७३ ॥

टी०। राजा तो स्त्री के बिकने के शोच में थे लेकिन विश्वामित्र वह स्त्री के बेचने से मिलाहुआ थोड़ा धन देखकर क्रोधमें आकर बोले ७३ ॥

मू० क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम्।
मन्यसे यदि तत् क्षिप्रं पश्य त्वं मे बलं परम् ७४ ॥

टी०। कि ऐ क्षत्रपति! यही यज्ञदक्षिणा मेरे समान होती है जो तूने दी है मुझको तूने अगर ऐसाही समझा तो मेरे तपका उत्तम बल देख ७४ ॥

मू० तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मण्यस्यामलस्य च।
मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ७५ ॥

टी० । बहुत की हुई तपस्या और मैं जैसा उत्तम ब्राह्मण हूँ और जैसा मेरा उग्र तेज और ज्योति है और जैसा मैं शुद्ध पाठ करता हूँ इन सबों का बल मैं तुझे दिखाता हूं ७५ ॥

हरिश्चन्द्रउवाच ॥

मू० अन्यां दास्यामि भगवन् कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ७६ ॥

टी० । राजा हरिश्चन्द्रने कहा कि ऐ महाराज ! स्त्री और पुत्र को बेच कर जो धन मेरे पास था वह आपको दिया सिवाय इसके मेरे पास इस वक्त कुछ नहीं है अगर कुछ वक्त तक ठहर जाइये तो और भी दक्षिणा आप को दूँगा ७६ ॥

विश्वामित्रउवाच ॥

मू० चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ।
एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ७७ ॥

टी० । विश्वामित्र ने कहा कि ऐ राजन् ! अभी पहर दिन बाक़ी है इतनीही देर और ठहर सक्ता हूँ फिर शाम होजाने पर कोई बहाना नहीं मानूंगा अब तुम जवाब न देना ७७ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० तमेवमुक्त्वा राजेन्द्र निष्ठुरं निर्घृणं वचः ।
तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ७८ ॥

टी० । पक्षियों का बयान है कि उस राजा को विश्वामित्र ऐसे निठुर और निर्घृण वचन सुनाकर वह द्रव्य लेकर क्रोधितहो जल्दीसे चलेगये ७८॥

मू० विश्वामित्रे गते राजा भयशोकाब्धिमध्यगः ।
सर्पाकारं विनिःश्वस्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ७९ ॥

टी० । विश्वामित्र के चलेजाने के बाद राजा भय और शोच के समुद्र में डूबा हुआ शिर नीचे किये बैठा था फिर सांप के समान श्वासलेकर बहुत ऊँचे स्वर से कहा ७९ ॥

मू० वित्तक्रीतेन यो ह्यर्थी मया प्रेष्येण मानवः ।
सब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः ८० ॥

टी०। कि किसी धनवान् आदमीको अगर इच्छा हो तो आज शाम तक मुझे धनसे मोल लेले मैं विकताहूं मैं उसकी खिदमत करूंगा वह जल्दी समेत कहे ८० ॥

मू० अथाजगाम त्वरितो धर्म्मश्चाण्डालरूपधृक्।
दुर्गन्धो विकृतो रूक्षः श्मश्रुलो दन्तुरो घृणी ८१ ॥

टी०। इसी दरमियान में धर्म्म चाण्डाल का रूप धारण करके वहां जल्दीसे पहुँचा कि जिसके अंग अंगसे बदबू आती थी और भयानक रूप विगड़ाहुआ व रूखा बदन और बड़े बड़े दांत और दाढ़ी मोछें थीं ८१ ॥

मू० कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः।
गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलंकृतः ८२ ॥

टी०। और कालारंग लम्बा पेट आँखें जर्द व रूखी थीं बहुत से पक्षियों को साथ लिये हुये और मुर्दे की खोपड़ीका हार गलेमें डाले हुये ८२ ॥

मू० कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन् मुहुः।
श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ८३ ॥

टी०। एक हाथ में आदमी का शिर और दूसरे हाथ में लाठी बड़ा मुँह बार २ बकता झकता बहुत से कुत्तों को अपने साथ लिये हुये डरावनी सूरतवाला था ८३ ॥

चाण्डाल उवाच ॥

मू० अहमर्थी त्वया शीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम्।
स्तोकेन बहुना वापि येन वै लभ्यते भवान् ८४ ॥

टी०। राजाके पास आकर चांडाल बोला कि तेरा खरीदार मैं हूँ कहु क्या दाम अपना लेगा मेरे पास द्रव्य बहुतहै थोड़े या बहुत धनसे जिससे तुम मिलो वह लेवो ८४ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिष्ठुरम्।
वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ८५ ॥

टी०। राजा ने उसे वैसा बे शील और क्रूरदृष्टिवाले और उसका रूखा बोल चाल देखकर यह पूछा कि तू कौन है ८५ ॥

चाण्डालउवाच॥

मू० चाण्डालोऽहमिहाख्यातः प्रवीरेति पुरोत्तमे।
विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः ८६॥

टी०। चांडाल बोला कि मैं चाण्डाल हूँ मुझे यहां सब कोई जानताहै प्रवीरपुर में रहता हूँ और वध्य जीव को वध करता हूँ और मुर्दों का कम्मल और वस्त्र भी लेता हूँ ८६॥

हरिश्चन्द्र उवाच॥

मू० नाहं चाण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम्।
वरं शापाग्निना दग्धो न चाण्डालवशंगतः ८७॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा कि मुझे चाण्डाल का दास होना मंजूर नहीं क्योंकि यह बहुत निन्दित कर्म्म है अगर शाप की अग्नि में जलूं तो अच्छा है पर चाण्डाल के वश में न रहूँगा ८७॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः।
कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ८८॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! राजा इस तरहसे कहते थे कि तपस्वी विश्वामित्र वहां पहुँचकर क्रोध से आंखें चढ़ाकर राजा से यह बोले ८८॥

विश्वामित्र उवाच॥

मू० चाण्डालोऽयमनल्पन्ते दातुं वित्तमुपस्थितः।
कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ८९॥

टी०। विश्वामित्रजी बोले कि यह चाण्डाल तुमको बहुत धनदेने पर मौजूद है तो तू लेकर मेरी सब यज्ञकी दक्षिणा क्यों नहीं देता है ८९।

हरिश्चन्द्र उवाच॥

मू० भगवन् सूर्य्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक।
कथं चाण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ९०॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा कि ऐ मुनि! मैं अपने को जानता हूं

कि सूर्य्यवंश में मेरा जन्म है तो जान बूझकर धन के वास्ते चाण्डाल का दास किस तरह से बनूँ ६० ॥

विश्वामित्रउवाच ॥

मू० यदि चाण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ।
न प्रदास्यसि कालेन शप्स्यामि त्वामसंशयः ६१ ॥

टी० । विश्वामित्र ने कहा कि अगर तुम इस चाण्डाल के हाथ बिक कर मेरी दक्षिणा न दोगे तो इसवक्त ज़रूर तुमको शाप दूँगा ६१ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० हरिश्चन्द्रस्ततो राजा चिन्तावास्थितजीवितः ।
प्रसीदेति वदन् पादावृषेर्जग्राह विह्वलः ६२ ॥

टी० । पक्षीलोग कहतेहैं कि ऐ जैमिनिजी ! उसके बाद राजा हरिश्चन्द्र जो शोच में पड़ा था यह कहता हुआ विश्वामित्र का चरण पकड़ लिया कि प्रसन्न होवो ६२ ॥

मू० दासोऽस्म्यार्त्तोस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ।
कुरु प्रसादं विप्रर्षे कष्टश्चाण्डालसंकरः ६३ ॥

टी० । और कहा कि हे मुने ! आप का दास हूँ और आप से बहुत डरता हूँ और विशेष करके आप का भक्त हूँ कृपा करके चाण्डाल की संगति के कष्ट से मुझे बचाइये ६३ ॥

मू० भवेयं वित्तशेषेण सर्व्वकर्म्मकरोवशः ।
तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ६४ ॥

टी० । ऐ मुनि ! आपका जो धन मेरे ज़िम्मे बाक़ीहै उसमें मैं आपके बश्य होकर आज्ञायुक्त आपका सब काम करूँगा ६४ ॥

विश्वामित्र उवाच ॥

मू० यदि प्रेष्यो मम भवान् चाण्डालाय ततो मया ।
दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै ६५ ॥

टी० । फिर विश्वामित्र ने कहा कि जो तू मेरा दास है तो मैं हुक्म देता हूँ कि तू इस चाण्डाल की ख़िदमतमें जा अर्बुद द्रव्य उससे लेकर मैंने तुझको उसके हवाले किया ६५ ॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० एवमुक्ते तदा तेन श्वपाको हृष्टमानसः।
विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ९६॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि यह वचन विश्वामित्र का सुनकर उस वक्त चाण्डाल बहुत खुश हुआ और वह द्रव्य विश्वामित्र मुनि को देकर राजा को बांध लिया ९६॥

मू० दण्डप्रहारसंभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम्।
इष्टबन्धुवियोगार्त्तमनयन्निजपत्तनम् ९७॥

टी०। और उस चाण्डाल की मार से जो अपने दण्डे से मारता जाता था राजाका चित्त और सब इन्द्रिय बहुतही व्याकुल हो रहीथीं और अपने दोस्त भाई बन्धु की जुदाई से आर्त्त था और वह चाण्डाल अपने शहर में राजा को ले आया ९७॥

मू० हरिश्चन्द्रस्ततोराजा वसंश्चाण्डालपत्तने।
प्रातर्मध्याह्नसमये सायञ्चैतदगायत ९८॥

टी०। उसके बाद हरिश्चन्द्र राजा उसके घर रहनेलगा सुबह और शाम और दोपहर के वक्त यही गाया करता था ९८॥

मू० बाला दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः।
मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोचयिष्यति नौ नृपः ९९॥

टी०। कि वह दीनमुखी स्त्री अपने दीनमुखवाले पुत्र को अपने आगे देख कर दुःख में आविष्ट होकर मुझे याद करके कहती होगी कि राजा हम दोनों को क़ैद से छुड़ावैंगे ९९॥

मू० उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम्।
न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं कृतम् १००॥

टी०। और वह मृगशावकनयनी मुझे अत्यन्त पापी न जानती होगी बल्कि यही सोचती होगी कि धन पाकर इससे अधिक ब्राह्मण के लिये देकर मुझे छुड़ावैगा १००॥

मू० राज्यनाशः सुहृत्यागो भार्य्यातनयविक्रयः।

प्राप्ताश्चाण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा १०१ ॥

टी०। हा! बड़ा आश्चर्य और इन्तिहा का दुःख है कि राज्य नाश होकर दोस्त आश्ना से छूट कर स्त्री और पुत्र तक बिक गये अब मैं चाण्डाल के साथ हूँ १०१ ॥

मू० एवं स निवसन्नित्यं सस्मार दयितं सुतम्।
भार्य्याञ्चात्मसमाविष्टां हृतसर्व्वस्व आतुरः १०२ ॥

टी०। इसी तरह वे राजा हमेशा अपने दिल में समाई हुई स्त्री और प्यारे पुत्र की याद में रहते थे और धन असबाब के हरण होजाने से विकल थे १०२ ॥

मू० कस्यचित्त्वथ कालस्य मृतचैलापहारकः।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः १०३ ॥

टी०। इसी दरमियान में एक दिन राजा हरिश्चन्द्र उस चाण्डाल के हुक्म से मृतक का वस्त्र लाने के वास्ते तैयार हुये १०३ ॥

मू० चाण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा।
शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठ दिवानिशम् १०४ ॥

टी०। यानी मुर्दे के कपड़ों को हरनेवाले उस चाण्डाल ने हुक्म दिया कि श्मशान में रातदिन रहकर जो मृतक आवै उस को देखते हुये यहां रहो १०४ ॥

मू० इदं राज्ञोऽपि देयञ्च षड्भागन्तु शवम्प्रति।
त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम् १०५ ॥

टी०। और उस मृतक का जो यह धन मिलै उसमें छह भाग करके एक भाग यहां के हाकिम को देना और तीन भाग मुझे देना बाक़ी दो भाग तुम अपनी मजदूरी में लिया करना १०५ ॥

मू० इति प्रोक्तः समादिष्टो जगाम शवमन्दिरम्।
दिशं तु दक्षिणां यत्र वाराणस्यां स्थितं तदा १०६ ॥

टी०। उसवक्त राजा यह आज्ञा चाण्डाल से पाकर काशीपुरी के दक्षिण दिशा में जहां श्मशान स्थित था वहां गये १०६ ॥

मू० श्मशानं घोरसंनादं शिवाशतसमाकुलम्।
शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम् १०७॥

टी०। और वह श्मशान की जगह ऐसी थी कि जहां डरावनी आवाज़ आरही थी और सैकड़ों सियारियां और चारों तरफ़ कितने मुर्दे पड़े हुये थे और वहुत धुवां उठ रहा था और बदबू आरही थी १०७॥

मू० पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम्।
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् १०८॥

टी०। और पिशाच भूत वेताल डाकिनी यक्ष गीध सियार और कुत्ते के झुंड से वह जगह भरी हुई थी १०८॥

मू० अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम्।
नानामृतसुहन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् १०९॥

टी०। और तमाम दुर्गन्ध सहित हड्डियां पड़ी रहती थीं और मुर्दोंके वारिसों व दोस्तों के रोने पीटने की आवाज़ से डरावना हल्ला पड़ा रहताथा १०९॥

मू० हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे।
हा स्वसर्हा पते मातर्हा मातुल पितामह ११०॥

टी०। और हा पुत्र! हा मित्र! हा बन्धु! हा भाई! हा वत्स! हा प्रिय! हा वहिन! हा स्वामिन! हा माता! हा मातुल! हा पितामह आज मुझसे अलग हो गये हो ११०॥

मू० मातामह पितः पौत्र क गतोऽस्येहि बान्धव।
इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् १११॥

टी०। हा मातामह! हा पिता हा! पौत्र! हा बान्धव! कहां गये हो आइये इसतरह कहनेवालोंका बड़ा गुल जहांपर मचा रहताथा १११॥

मू० ज्वलन्मांसवसामेदच्छमच्छमितसंकुलम् ११२॥

टी०। और भी उस जगह मांस और रुधिर मेदा आदिके जलने से छन् छन् की आवाज़ आतीथी ११२॥

मू० अर्द्धदग्धाः शवाः श्यामा विकसद्दन्तपङ्क्तयः।
हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशात्विति ११३

टी०। और कितने मुर्दे स्याह रंग आगमें झुलसेहुये मुँह खुले दांत निकलेहुये पड़े थे कि जिससे मालूम होताथा कि यह मुर्दे आग में पड़े इस सबबसे हँसरहे हैं कि बदनकी यह हालतहै ११३॥

मू० अग्नेश्चटचटाशब्दो वायसैरस्थिपंक्तिषु।
बान्धवाक्रन्दशब्दश्च पुक्कसेषु प्रहर्षजः ११४॥

टी०। और वहांपर कहीं अग्नि में चटचट शब्द होता है और कहीं हड्डियोंपर पंक्तिके पंक्ति कौवे सब बैठेहुये हैं औरभी वहांपर मुर्दोंके वारिसों के रोनेसे पुक्कस याने डोम लोगोंको खुशी होतीहै ११४॥

मू० गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम्।
श्रूयते सुमहान् घोरः कल्पान्त इव निःस्वनः ११५॥

टी०।और भूत वेताल पिशाच राक्षस इनसबोंके गाने नाचनेकी डरावनी बड़ीभारी आवाज सुननेसे यह जगह प्रलयकालसी मालूमहोतीथी११५॥

मू० महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम्।
तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतं सास्थिभिरुन्नतैः ११६॥

टी०। और बड़े भैंसों व गाइयों के गोबर के ढेरसे वह स्थान भराथा व ऊंची हड्डियों समेत उन गोबरोंकी राखोंके ढेरसे घिराथा ११६॥

मू० नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपकालिकम्।
अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नगरायते ११७॥

टी०। और वहां कितनी खानेकी चीज़ और फूलोंके माला वगैरहको कौवे सब छाँटछाँट नोच चोथ रहेथे और उस श्मशानपुरी में तरह तरह की आवाजका शोर मच रहाथा ११७॥

मू० सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम्।
भयंभयस्याप्युपसज्जनैर्भृशंश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम्११८॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि ऐसे स्थानपर कि जहां अग्नि गर्भों समेत अशुभ सियार सब भयानक शोर मचा रहेथे और भी रोने पीटनेका गुल मचरहाथा उससे जिस स्थानके देखने से डरकोभीडरलगताथा११८॥

मू० स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः।

हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क तद्राज्यं विधे गतम् ११९॥

टी०। वहांपर वह राजा हरिश्चन्द्र रहकर दुःखसे दुःखी शोच संयुक्त हो कहताथा कि हाय विधाता! वह मेरे नौकर चाकर ब्राह्मण मंत्री राज्य सब कहां गये ११९॥

मू० हा शैब्ये पुत्र हा बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम्।
विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम १२०॥

टी०। और कहताथा कि हा पुत्र! हा स्त्री! विश्वामित्र के दोष से तुम लोगों ने मुझ कमनसीब को त्याग कर कहां गये १२०॥

मू० इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चाण्डालोक्तं पुनः पुनः।
मलिनो रूक्षसर्वाङ्गकेशवान् गन्धवान् ध्वजी १२१॥

टी०। इसी तरह बार बार चिन्ता करता हुआ केश बढ़े हुये व मैले शरीरपरगर्द गुबार पड़ा हुआ दुर्गन्धयुक्त चाण्डाल की आज्ञा मुताबिक़ वहां रहताथा १२१॥

मू० लकुटीकालकल्पश्च धावंश्चापि इतस्ततः।
अस्मिञ्छव इदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाप्युत १२२॥

टी०। काल का ऐसा स्वभाव धारण किये हाथ में लकुट लिये इधर उधर दौड़ताथा कि इस मुर्दे का इस क़दर दाम हुआ और फिर इतना मिलैगा १२२॥

मू० इदं मम इदं राज्ञे मुख्यचाण्डालके त्विदम्।
इति धावन् दिशो राजा जीवन् योन्यन्तरं गतः १२३॥

टी०। और उस दाम में अपना और राजा का और चाण्डाल का हिस्सा लगाते हुये दिशाओं में दौड़ते थे गोया जीतेही जीते अन्य योनि में प्राप्त होरहे थे १२३॥

मू० जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः।
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिकः १२४॥

टी०। और पुराना वस्त्र जिसमें कितनी गिरहैं पड़ी थीं ऐसी गुदड़ी शिर और शरीर में धारण किये थे और तमाम शरीर याने मुख बाहु पेट व चरणों में चिता की भस्म लपटी हुई थी १२४॥

मू० नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन् ।
नानाशवोदनकृताहारतृप्तिपरायणः १२५ ॥

टी०। और पाँव की अगुलियों और नाखूनों में मुर्दों का बहुत भांति वाला रुधिर मेद मज्जा लगाहुआ रहताथा और बहुत तरह के मुर्दों के पिंडादिक खुराक से छकावट थी १२५ ॥

मू० तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः ।
न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः १२६ ॥

टी०। और उसी स्थान का जो फूलों का माला हाथ लगता था वही बतौर भूषण के शिरपर धारण किये रहते थे रात दिन नींद और आराम कैसी इन्हीं फ़िक्रों में हाय हाय ऐसा बार बार कहते हुये हमेशा विकल रहते थे १२६ ॥

मू० एवं द्वादशमासास्तु नीताः शतसमोपमाः ।
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् १२७॥

टी०। इसी तरह बारहमहीने के बाद जो बराबर सौ वर्षके गुजराथा एकदिन किसी वक्त अपने भाई बन्धुसे जुदे राजा थककर बैठगये १२७॥

मू० निद्राभिभूतो रूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च ।
तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् १२८ ॥

टी०। इतने में जो कुछ नींद आगई तो उस शयन में भी रूखे बदन वाले व बिन चेष्टावाले राजाने बड़े आश्चर्य्य का स्वप्न देखा १२८ ॥

मू० श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया ।
अन्यदेहे न दत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम् १२९ ॥

टी०। और दैवकी बलिष्ठता से श्मशान के अभ्यास के योग से दूसरे शरीर में जोकि गुरुको गुरुदक्षिणा नहीं दिया १२६ ॥

मू० तदा द्वादश वर्षाणि दुःखदानात्तु निष्कृतिः ।
आत्मानं संददर्शाथ पुक्कसीगर्भसंभवम् १३० ॥

टी०। और उसवक्त यहभी देखा कि बारह वर्ष दुःख भोगने से वह पाप छूटा उसके बाद उस श्मशान में डोमिन के गर्भसे प्राप्तहूं १३० ॥

मू० तत्रस्थश्चाप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा।
इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्म्मं करोम्यहम् १३१॥

टी०और उसवक्त उसी गर्भमें बैठाभी यह राजा यह चिन्ता करताहै कि अगर इस गर्भसे मेरा उद्धार होजावै तो मैं दानकाधर्म्म बहुतकरूंगा१३१

मू० अनन्तरं स जातस्तु तदा पुक्कसबालकः।
श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः १३२॥

टी०। उस वक्त इसी बातकी चिन्ता करते करते इसके बाद क्या देखा कि उस गर्भ से पैदा होकर चाण्डाल का पुत्र मैं उसी जाति का कर्म्म यानी हमेशा श्मशान का काम करता हूँ १३२॥

मू० प्राप्ते तु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विजः।
आनीतो बन्धुभिर्दृष्टस्तेन तत्राधनो गुणी १३३॥

टी०। फिर उसने देखा कि सात वर्ष श्मशान में काम करने के बाद कोई गरीब व गुणी ब्राह्मण मरगया है और उसके भाई बन्धु उसको श्मशान में ले आये हैं १३३॥

मू० मूल्यार्थिना तु तेनापि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः।
ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् १३४॥

टी०। और मैं उस मुर्दे का दाम मांगताहूँ तो वे ब्राह्मण तिरस्कृत हुये उन ब्राह्मणों ने वहां विश्वामित्र का हाल कहा १३४॥

मू० पापिष्ठमशुभं कर्म्म कुरु त्वं पापकारक।
हरिश्चन्द्रः पुरा राजा विश्वामित्रेण पुक्कसः १३५॥

टी०। कि अरे पापकारक! तू अशुभ व पापिष्ठ कर्म्म को कर विश्वामित्र के शाप से राजा हरिश्चन्द्र डोम का पुत्र हुआ है १३५॥

मू० कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात्।
यदा न क्षमते तेषां तैः स शप्तो रुषा तदा १३६॥

टी०। यानी एक समय में ब्राह्मण हीके धनके नाशसे पुण्य का नाशहो कर तू इस दशाको पहुँचा है जब उनकी बातको न ख्याल किया तब उन्होंने क्रोधसे उसे शाप दिया १३६॥

मू० गच्छ त्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम।
इत्युक्तमात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा॥ १३७॥

टी०। कि ऐ नराधम! तू इसी वक्त घोर नरकमें जा यह वचन कहता हुआ राजा हरिश्चन्द्र ने यह शाप उस वक्त ब्राह्मण का स्वप्न में सुनकर उस समय १३७॥

मू० अपश्यद्यमदूतान् वै पाशहस्तान् भयावहान्।
तैः संगृहीतमात्मानं नीयमानं तदाबलात् १३८॥

टी०। क्या देखा कि यमदूत हाथ में फांस लिये भयानक रूप से आकर वे जबरदस्ती मेरे जीवात्मा को बांधकर उस वक्त लेचले १३८॥

मू० पश्यतिस्म भृशं खिन्नो हामातः पितरद्यमे।
एवंवादीसनरके तैलद्रोण्यां निपातितः १३९॥

टी०। और बहुत दुखी मैं यह देखकर डरसे हा माता पिता! ऐसा कहता हुआ जाता हूं परउन्होंने मुझको तैलद्रोणी कुण्ड नरक में डालदिया १३९॥

मू० क्रकचैः पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यधः।
अन्धे तमसि दुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः १४०॥

टी०। कि जिस कुण्ड में निहायत अँधेराहै और मानिन्द छुरेके उसमें आरा हैं उनसे मुझे काटते हैं और मैं उस कुण्ड में पड़कर दुखी हो पीब और रुधिर भक्षण करता हूँ १४०॥

मू० सप्तवर्षं मृतात्मानं पुक्कसत्वे ददर्शह।
दिनं दिनं तु नरके दह्यते पच्यते ऽन्यतः १४१॥

टी०। गरजकि चाण्डाल योनिमें वह सात बरस का शरीर मेरा उस नरक में कभी आग में दग्ध होता है और कभी और नरक में पकाया जाता है यह देखा १४१॥

मू० खिद्यते क्षोभ्यते ऽन्यत्र मार्य्यते पाट्यतेऽन्यतः।
त्तार्य्यते दीप्यते ऽन्यत्र शीत वाताहतो ऽन्यतः १४२॥

टी०। और कभी दुखित होता कभी डराता है कभी मार खाता है

कभी दूसरी जगह में काटा जाता है कभी नाश किया जाता है कभी जलाया जाता है कभी जाड़े में ठंढी हवाकी झकोर में पड़ता है १४२॥

मू० एकं दिनं वर्षशत प्रमाणं नरके ऽभवत्।
तथा वर्षशतं तत्र स्थावितं नरके भटैः १४३॥

टी०। जिस नरक में एक रोज बराबर सौ बर्षके हुआ था उस नरक में सौ बर्ष तक रहने को यमदूतों ने सुनाया १४३॥

मू० ततो निपातितो भूमौविष्ठाशीश्वाऽभ्यजायत।
वान्ताशी शीत दग्धश्च माससमात्रे मृतो ऽपिसः १४४॥

टी०। फिर क्या देखाकि यमदूतों ने वहां से मुझे पृथ्वी पर गिरा दिया तब अपने को विष्ठा खाने वाले कुत्ते के शरीर में देखा कि जूठा और उबांत का अन्न खाता हूं फिर ठंढक व गरमी से जलाहुआ वहांमें मास भर में मरभी गयाहूँ १४४॥

मू० अथा ऽपश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम्।
छागं विडालं कंकं च गामविं पक्षिणं क्रिमिम् १४५॥

टी०। फिर अपनेको गदहा और हाथी और बानर पशु छाग बिड़ाल कङ्क गऊ भेड़ पक्षी व कीड़ों के शरीर में प्राप्त देखा १४५॥

मू० मत्स्यं कूर्मं वराहश्च श्वाविधं कुक्कुटं शुकं।
शारिकां स्थावरांश्चैव सर्पमन्यांश्चदेहिनः १४६॥

टी०। इसीतरह से मछली कछुआ बाराह साही मुर्गा सुआ मैना और वृक्षादिक में और सांपों व अन्य जीवों के शरीर में १४६॥

मू० दिवसे दिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा।
अपश्यद्दुःखसन्तप्तो दिनं वर्ष शतं तथा १४७॥

टी०। अपने को देखा कि दिन २ उस वक्त अन्य २ जीवों में जन्म लिया करता हूँ और उन जन्मों में ऐसा दुःख भोग करता हूँ कि मानो एक दिन सौ बर्ष के समान गुजरता है १४७॥

मू० एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु।
अपश्यञ्च कदाचित् स राजा तत्स्वकुलोद्भवम् १४८

टी०। इसीतरह पूर्ण सौ वर्ष तक कुयोनिन में जन्म लेनेके बाद उस राजा ने देखाकि कभी अपने सूर्य्य वंशीय कुल में जन्म हुआ है १४८॥

मू० तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेन हारितम्।
भार्य्याहृता च पुत्रश्च सत्येकाकी वनंगतः १४९॥

टी०। तहांपर बैठा हुआ राजा होकर फिर अपने राज्य और स्त्री पुत्र को जुआ में हारकर मैं अकेला किसी जङ्गल में जा पड़ा हूँ १४९॥

मू० तत्रापश्यत् स सिंहं वै व्यादितास्यं भयावहम्।
विभक्षयितु मायातं शरभेणसमन्वितम् १५०॥

टी०। वहां पर देखा कि एक भयानक सिंह मुँह खोले हुये शरभ सहित मेरे खाने को दौड़ा चला आता है १५०॥

मू० पुनश्चभक्षितः सोऽपिभार्य्यां शोचितुमुद्यतः।
हाशैव्ये क्वगतास्याद्य मामिहापास्यदुःखितं १५१॥

टी०। उस वक्त मैंने अपनी स्त्रीको शोचकर पुकारा कि हा ऐ शैव्ये! मुझ दुखी को त्यागकर इस वक्त में कहां चली गई इतने में वह सिंह मुझको खा गया १५१॥

मू० अपश्यत् पुनरेवापि भार्य्यां स्वां सहपुत्रकाम्।
त्रायस्वं त्वं हरिश्चन्द्र किं द्यूतेन तव प्रभो १५२॥

टी०। फिर भी देखा कि स्त्री और पुत्र मेरे कहते हैं कि ऐ हरिश्चन्द्र प्रभु! रक्षा कीजिये तुम को जुआ खेलना कौन जरूरथा १५२॥

मू० पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्य्यया शैव्यया सह।
सनापश्यत् पुनरपि धावमानः पुनः पुनः १५३॥

टी०। हम तुम्हारी स्त्री और तुम्हारे पुत्र शोच संयुक्त हैं वे बारबार मारे मारे फिरते हैं लेकिन देखते नहीं १५३॥

मू० अथापश्यत्पुनरपि स्वर्गस्थः स नराधिपः।
नीयते मुक्तकेशी सा दीना विवसना बलात् १५४॥

टी०। फिर भी स्वर्ग परसे उस राजाने देखा कि मेरी स्त्रीको जो शिर खुली और विना वस्त्र के दुखी होरही है कोई आदमी जबरदस्ती लिये चला जाता है १५४॥

मू० हा हा वाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना।
अथा पश्यत्पुनस्तत्र धर्म्मराजस्य शासनात् १५५॥

टी०। और वह हाय हाय करती व रक्षा कीजिये यह बारबार कहती चली जाती है और फिर यह भी देखा कि धर्म्मराज के हुक्म से वहां पर १५५॥

मू० आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्था आगच्छेहनराधिप।
विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमराजस्तवार्थतः १५६॥

टी०। आकाश में टिके हुये यमदूत कहते हैं कि हे राजन्! यहां आइये तुम्हारे लिये विश्वामित्र ने यमराज से कहा है १५६॥

मू० इत्युक्त्वा सर्प्पपाशैस्तु नीयते बलवद्भिभुः।
श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम् १५७॥

टी०। इतना कहने पर यमदूत मुझको नागफांस में बांधकर लेचले तब वहांपर विश्वेदेव लोगों ने आकर विश्वामित्र की कुछ शिकायत करी १५७॥

मू० तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मात्थाव्यवर्द्धत।
एतास्सर्व्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः १५८॥

टी०। फिर उस जगह पर भी उस के अधर्म से उपजा हुआ विकार न बढ़ा ग़रज़ कि जो जो सब दशा अपनी दृष्टान्त भोग में है वह सब स्वप्न में भी देखी १५८॥

मू० सर्व्वास्तास्तेन सम्भुक्ता यावद्वर्षाणि द्वादश।
अतीते द्वादशे वर्षे नीयमानो भटैर्बलात् १५९॥

टी०। यानी यह सब हाल जो स्वप्न में देखा मानों बारह वर्ष इन बातों में गुज़र गया बाद बारह बर्ष के देखते हैं कि मुझ को यमदूत लोग यमराज के पास लेगये १५९॥

मू० यमं सोऽपश्यदाकाराद्वुवाच च नराधिपम्।
विश्वामित्रस्य कोपोयं दुर्निवार्य्यो महात्मनः १६०॥

टी०। तब यमराजने मुझको देखकर कहा कि ऐ राजन्! विश्वामित्र महात्मा का कोप किसी से टल नहीं सक्ता है १६०॥

मू० पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्यति स कौशिकः।
गच्छत्वं मानुषं लोकं दुःखशेषं च भुक्ष्ववै॥
गतस्य तत्र राजेन्द्रश्रेयस्तव भविष्यति १६१॥

टी०। और हे राजन्! वह विश्वामित्र तेरे पुत्रको भी मारडालैगा अब तू मनुष्य लोक में जा और बाक़ी जो कष्ट है उसको भोगकर तब बाद उस के वहां गये हुये तेरा कल्याण होगा १६१॥

मू० व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिपः।
अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः १६२॥

टी०। ग़रज़ कि इसी तरह स्वप्न में बारह वर्ष दुःख भोग करने के बाद देखा कि यमदूतों ने मुझे आकाश से नीचे गिरादिया १६२॥

मू० पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसम्भ्रमात्।
अहो कष्टमिति ध्यात्वा क्षतेक्षारावसेवनम् १६३॥

टी०। फिर यमलोक से मूर्च्छितहो ज़मीन पर गिर पड़ा इतने में नींद से आंख खुल गई तो बैठकर शोचने लगे कि बड़े आश्चर्य का दुःख मैं ने पाया जैसे कि घाव में नमक से दुःख होता है १६३॥

मू० स्वप्ने दुःखं महद्दृष्टंयस्यान्तोनोपलभ्यते।
स्वप्नेदृष्टंमयायत्तुकिन्तुमेद्वादशाः समाः १६४॥

टी०। स्वप्न में तो मैंने इतना बड़ा दुःख अपने को उठाते देखा कि जिसकी हद नहीं है तो जान पड़ता है कि जो जो बात स्वप्न में मैंने देखी है वह बारह बर्ष तक मुझ को दृष्टान्त इस दुनिया में भोग करना पड़ैगी १६४॥

मू० गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुक्कसां स्तु स सम्भ्रमात्।
नेत्यूचुः केचित्तत्रस्था एवमेवापरेऽब्रुवन् १६५॥

टी०। फिर उस श्मशानमें जो दूसरे डोम सबथे उनसे अपने स्वप्नका हाल घबराहट से बयान किया तो उसमें से कितने जनोंने कहा कि नहीं व अन्य मनुष्यों ने कहा कि हां बीत गये १६५॥

मू० श्रुत्वा दुःखी तदाराजा देवान् शरणमीयिवान्।
स्वस्ति कुर्वन्तुमेदेवाः शैव्यायाः बालकस्यच १६६॥

टी०। यह सुनकर उसवक्त राजा दुःखी हो देवताओं की शरण में होकर कहने लगा कि देवतालोग मेरे स्त्री और पुत्र का कल्याण करें १६६॥

मू० नमो धर्म्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे।
परावरायशुद्धाय पुराणाया व्ययायच १६७॥

टी०। और ऐ धर्म्म महात्मा! आपको नमस्कार करता हूँ और उन श्रीकृष्णचन्द्र महाराज को नमस्कार करता हूँ जो सब से परे और श्रेष्ठ और शुद्ध और समीचीन और विनाशी हैं १६७॥

मू० नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवायच।
एवमुक्त्वा स राजा तु युक्तः पुक्कसकर्म्मणि १६८॥

टी०। और ऐ बृहस्पति! आपको नमस्कार करताहूँ और इन्द्र को नमस्कार करता हूँ पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! इसीतौर राजा हरिश्चन्द्र कह करके फिर अपने श्मशान का काम करने लगा १६८॥

मू० शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा।
मलिनोजटिलः कृष्णो लकुटी विह्वलो नृपः १६९॥

टी०। और नष्ट बुद्धियों की तरह मलीन और जटिल सियाह रंग विह्वल शरीर हाथ में लकुट लिये राजा मुर्दों का दाम करने फिरनेलगा १६९॥

मू० नैव पुत्रो न भार्य्या तु तस्य वैस्मृतिगोचरे।
नष्टोत्साहो राज्यनाशात्श्मशाने निवसंस्तदा १७०॥

टी०। फिर तो इसी तरह उस को न स्त्री और पुत्र का ख़याल और न धन और राज्य नाश होनेका जी पर कुछ मलालथा उस वक्त श्मशान में दिन काटनेलगा १७०॥

मू० अथाजगामस्वसुतं मृतमादायलापिनी।
भार्य्यातस्यनरेन्द्रस्य सर्प्पदष्टं हि बालकं १७१॥

टी०। इसी अन्तर में उस राजा हरिश्चन्द्र की स्त्री अपने पुत्र को जो साँप के काटने से मरगया था जलाने के वास्ते उसी श्मशान में विलाप करती हुई ले आई १७१॥

मू० हा वत्स हापुत्र शिशो इत्येवं वदती मुहुः।
कृशा विवर्णा विमना पांशुध्वस्तशिरोरुहा १७२॥

टी०। वह स्त्री दुबली व रंगहीन व उदास मन वाली शिर पर गर्द गुबार भरा हुआ बार बार हा पुत्र! हा शिशु! हा वत्स! ऐसाही कह कहकर रोती थी १७२॥

मू० हाराजन्नद्य बालं त्वं पश्यसीमंमहीतले।
रममाणं पुरादृष्टं दष्टंदुष्टाहिना मृतम् १७३॥

टी०। और कहतीथी कि हा राजन्! इस वक्त अपने इस पुत्रको देखो जो पहले खेलता हुआ देखा गयाहै वह दुष्ट साँप के काटनेसे ज़मीन पर मरा हुआ पड़ा है १७३॥

मू० तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य सनराधिपः।
जगाम त्वरितोऽत्रेति भविता मृतकम्बलः १७४॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र उस स्त्री के विलाप के उस शब्द को सुनकर तुरंत मृतक का वस्त्र और दाम लेने के वास्ते वहां पहुँचा १७४॥

मू० स तांरोरुदतींभार्य्यांनाभ्यजानात्तु पार्थिवः।
चिरप्रवास संतप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् १७५॥

टी०। और उस स्त्री को जो बहुत दिन तक गैर की ताबेदारी से संताप में पड़ी थी और लड़के के मरजाने से व्याकुल हो रो रही थी राजा हरिश्चन्द्र ने फिर पैदा हुईकी तरह नहीं पहिचाना १७५॥

मू० सापितंचारुकेशान्तं पुरादृष्ट्वा जटालकम्।
नाभ्यजानान्नृप सुताशुष्कवृक्षोपमं नृपम् १७६॥

टी०। और वह रानी भी राजाको जिसके शिर के बाल पहिले मुलायम थे और अब जटा होगये थे और पहिले कोमल शरीर था और अब सूखे दरख़्त की तरह उदास होगया है न पहिचान सकी १७६॥

मू० सोऽपि कृष्ण पटे बालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम्।
नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्ता मापनरेश्वरः १७७॥

टी०। बादज़कि वह राजा भी काला वस्त्र जिसमें वह मुर्दा लड़का विष भरा हुआ लपेटाथा उतार कर उसके सम्पूर्ण अंग को जो राज लक्षणों से भरा हुआथा देखकर शोचने लगा १७७॥

मू० अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः।
जातो नीतःकृतान्तेन कामप्याशांदुरात्मना १७८॥

टी०। और बहुत शोच संयुक्त होकर कहने लगा कि बड़े दुःख की बात है किस कुल का पैदा हुआ यह बालक है जिस को दुरात्मा कृतान्त (यमराज) न मालूम किस दिशा को लेगया १७८॥

मू० एवं दृष्ट्वा हि मे बालंमातुरुत्सङ्गशायिनम्।
स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहितास्योऽब्जलोचनः १७९॥

टी०। मेरा पुत्र रोहिताश्व कमलनेत्रभी इसी तरह अपनी मा के गोद में रहता था इसको ऐसा देखकर वह याद हो आया है १७९॥

मू० सोऽप्येतामेव मेवत्सो वयोऽवस्थामुपागतः।
नीतो यदिनघोरेण कृतान्तेनात्मनोवशम् १८०॥

टी०। फिर राजाने सोचा कि कदाचित् उसी लड़केको कृतान्त दुष्टात्मा ने हर लिया हो तो क्या आश्चर्यहै क्योंकि उम्र और सूरत वही देख पड़ती है १८०॥

राजपत्न्युवाच॥

मू० हावत्सकस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत्।
दुःखमापतितंघोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते १८१॥

टी०। रानी बोली कि हाय पुत्र! कौन ऐसा पापकिया कि जिससबब से ऐसे घोर क्लेश में पड़गई हूं कि जिसका अन्त नहीं मिलता है १८१॥

मू० हानाथ राजन् भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम्।
क्वापि संतिष्ठतास्थाने विश्रब्धंस्थीयतेकथम् १८२॥

टी०। और कहतीथी कि हाय स्वामिन्! हे राजन्! तुम मुझे न समझा के और दुःखी छोड़कर कहींभी टिकेहो तो कैसे विश्रामकियेहो १८२॥

मू० राज्यनाशः सुहृत्यागो भार्य्यातनयविक्रयः।
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेःकिम्नाविधेनकृतं त्वया १८३॥

टी०। हे विधे! हरिश्चन्द्र राजर्षि को तुमने क्या नहीं किया कि राज नाश होगया मित्र बन्धु सब छूटगये यहां तक कि स्त्री और पुत्रभी बिकगये १८३॥

मू० इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः।
प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रञ्च निधनं गतम् १८४॥

टी०। यह वचन उस रानी का सुनकर अपने स्थानसे छूटे हुए राजा ने अपनी स्त्रीको पहिचाना और लड़के को बेजान देखकर सोचकिया १८४॥

मू० कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोयमितीरयन्।
रुरोदढुःखसंतप्तो मूर्च्छामभिजगामच १८५॥

टी०। और यह कहा कि कष्ट है कि यह शैव्या व वह यह बालक इ-तना कहि दुःख से व्याकुल हो रुदन करतेहुये मूर्च्छा में आगया १८५॥

मू० सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम्।
मूर्च्छिता निपपातार्त्ता निश्चेष्टाधरणीतले १८६॥

टी०। और रानीभी उसीजगह राजाको उसदशामें प्राप्त याने मूर्च्छित देखकर पहिचानकर दुःखीहोतीहुई ज़मीन पर गिरकर अचेतहोगई १८६॥

मू० चेतः सम्प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम्।
विलेपतुःसुसन्तप्तौशोकभारावपीडितौ १८७॥

टी०। फिर जब इन दोनोंको होशहुआ तो शोच के बोझ से वे दोनों पीडित और सन्तप्त होकर साथही विलाप करने लगे १८७॥

राजोवाच॥

मू० हावत्स सुकुमारन्तेस्वक्षिभ्रूनासिकालकम्।
पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्य्यते १८८॥

टी०। फिर राजा ने कहा कि ऐ पुत्र! यह शरीर सुकुमार सुन्दर नेत्र भौंह और नासिका और जुल्फ़ और दीनमुख तेरा देख कर मेरी छाती क्यों नहीं फटजाती है १८८॥

मू० तात तातेतिमधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम्।
उपगुह्य वदिष्येकं वत्स वत्सेति सौहृदात् १८९॥

टी०। अब तात तात ऐसा मधुर वचन कहताहुआ मेरे गोदमें आपही आकर कौन बैठेगा और मैं लिपटाके प्रीतिसे पुत्र पुत्र कहकर किसको पुकारूँगा १८९॥

मू० कस्यजानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना।
ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति १९०॥

टी०। और अब किसके घुटुरों से लाईहुई पृथिवी की पीली गर्द मेरे बदन व कोरे और बक्षमें लगेगी १९०॥

मू० अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनो हृदय नन्दनः।
मया कुपित्रा ह्यवत्सविक्रीतो येन वस्तुवत् १९१॥

टी०। हाय पुत्र! अङ्ग प्रत्यङ्ग से उत्पन्न व मन और हृदय के आनन्द देनेवाले तुम थे मैं ऐसा क्रूर पिता कि तुम ऐसे पुत्रको अदना चीज़ के समान बेंचलिया १९१॥

मू० हृत्वा राज्यमशेषं मे स साधन धनं महत्।
दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः १९२॥

टी०। और अशेष राज्य और साधन और धन और बड़ाई वगैरह को हरण करके उसके बाद दैव निर्दयी ने सांप होकर मेरे पुत्र को भी काट खाया १९२॥

मू० अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम्।
निरीक्षन्नपिघोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना १९३॥

टी०। हा मेरा ऐसा प्रारब्ध है कि भाग्यरूपी सांप के काटने से मरे हुये पुत्र का कमलमुख इस वक्त देखताहूं व उस घोर विषसे अन्धा कर दियागया १९३॥

मू० एव मुक्त्वा तमादाय बालकंवाष्पगद्गदः।
परिष्वज्य च निश्चेष्टोमूर्च्छया निपपातह १९४॥

टी०। इतना कहकर आंसुवोंसे गद्गदी बोलीवाला राजा पुत्रकी लाश को ज़मीन से उठा छाती से लगाकर मूर्च्छासे अचेत होकर ज़मीन पर गिर पड़ा १९४॥

राजपत्न्युवाच॥

मू० अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः १९५॥

टी०। फिर राजा के रोने की आवाज़ पहिचानकर रानी को यक़ीन

हुआ कि निस्सन्देह यही वह मेरा स्वामी हरिश्चन्द्र है जो विद्वान्लोगों के मनका चन्द्रमा था १९५॥

मू० तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोधोमुखं गता।
दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्त्तेर्म्महात्मनः १९६॥

टी०। और जिसकी नासिका ऊंची जो कि ऊपर से नीचे पतली है और दांतकी धारी फूल की कली सी और जिस महात्मा का यश तमाम जगत् में जाहिर है १९६॥

मू० श्मशानमागतः कस्माद्द्यैष स नरेश्वरः।
अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत्पतितं पतिम् १९७॥

टी०। यह वही राजा आज इस श्मशान में किसवास्ते आया इस चिन्ता में पुत्र का शोक तो भूल गई और वह गिरेहुए अपने स्वामी की दशादेखकर १९७॥

मू० प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्राभिपीडिता।
वीक्षन्ती सा ततो पश्यत् भर्तृदण्डं जुगुप्सितम् १९८॥

टी०। उसके विस्मयमें प्राप्त व पति पुत्रसे दुखित वह देखतीहुई निन्दित पतिके दण्ड (मुर्दाके वसन लेने) को देखा १९८॥

मू० श्वपाकार्हमतो मोहं जगामायतलोचना।
प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत १९९॥

टी०। कि डोम कर्म्म में प्राप्त होरहे हैं इसी सबबसे बड़ेलोचनोंवाली वह अचेत होगई फिर कुछ चेत में आकर धीरे धीरे फँसी हुई आवाज़ से कहनेलगी १९९॥

मू० धिक् त्वां दैवातिकरुणं निर्म्मर्य्यादं जुगुप्सितम्।
येनायममरप्रख्यो नीतो राजाश्वपाकताम् २००॥

टी०। कि ऐ दैव! बिनदया व मर्यादहीन तथा निन्दित तुझको धिक्कार है जो इस राजा देवता समान को निन्दित कर्म्म चाण्डाल के धर्म्म में प्राप्त किया २००॥

मू० राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्य्यातनयविक्रयम्।
प्रापयित्वापि नोमुक्तश्चाण्डालो ऽयं कृतो नृपः २०१॥

टी०। राज पाट भाई बन्धुको त्याग कराके स्त्री और पुत्र तक बेचवा डाला तौ भी न छोड़ा अब इस राजाको चाण्डाल बनारक्खाहै २०१॥

मू० हा राजन् जातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात्।
उत्थाप्य नाद्यपर्य्यङ्कमारोहेति किमुच्यते २०२॥

टी०। हा ये राजन्! सन्तापमें पड़ी हुई मुझको आज जमीनसे उठा पलंग पर बैठो यह क्यों नहीं कहते हो २०२॥

मू० नाद्यपश्यामि ते छत्रंभृङ्गारमथवा पुनः।
चामरं व्यजनञ्चापि कोऽयं विधि विपर्य्ययः २०३॥

टी०। कैसी मुसीबत ने तुमको आ घेरा कि जिस सबब से वह छत्र और मूर्च्छल और पंखा जो हरवक्त तुम्हारे शिर पर झले जाते थे वह सब अब नहीं देखती हूं यह क्या ब्रह्माकी उलटीगति है २०३॥

मू० यस्याग्रे व्रजतः पूर्व्वं राजानो भृत्यताङ्गताः।
स्वोत्तरीयैरकुर्व्वन्त नीरजस्कं महीतलम् २०४॥

टी०। पहिले जिसके चलते फिरते वक्त आगे आगे बड़े बड़े राजालोग सेवकाई में प्राप्तहोकर अपने पोशाकी कपड़े से पृथ्वी का रास्ता साफ़ करते चलते थे २०४॥

मू० सोऽयं कपालसंलग्नघटीपटनिरन्तरे।
मृतनिर्म्माल्य सूत्रान्तर्गूढकेशे सुदारुणे २०५॥

टी०। सो यह अब इस डरावने श्मशानमें जिसमें सिवाय आदमियों की खोपड़ी और मुर्दों के वस्त्र सूत्रकेश इत्यादि के कुछ नहीं देखाई देता है २०५॥

मू० वसानिस्पन्दसंशुष्क महीपुटकमण्डिते।
भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जा संघट्टभीषणम् २०६॥

टी०। और जो जगह मेदा व सूखे हुये दोने राख अंगारों के ढेर झुलसी हुई हड्डियों और मज्जा से भरी हुई भयावन होरही है २०६॥

मू० गृध्रगोमायुनादार्त्त नष्टक्षुद्र विहङ्गमे।
चिताधूमाततिरुचानीली कृत दिगन्तरे २०७॥

टी०। और जहां गीध व सियारों की आवाज़से मुर्दा खानेवाले पक्षी नष्टहोजाते थे और चिताके धुवां से दशोंदिशाओं का बीच सियाह होरहाहै २०७॥

मू० कुणपास्वादनमुदा संप्रहृष्ट निशाचरे।
चरत्यमेध्ये राजेन्द्रःश्मशाने दुःखपीडितः २०८॥

टी०। और जहाँ निशाचर सब खुशीसे मुर्दाखाखाकर प्रसन्न होरहे हैं ऐसे अशुद्ध स्थान श्मशान में वह दुखी राजा चलफिर रहा है २०८॥

मू० एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा।
कष्टशोक शताधारा विललापार्त्तया गिरा २०९॥

टी०। ऐसा कहकर वह रानी राजा के गले लपट गई और दुःख व शोच के समुद्र में पड़कर दुखेलीवाणी से विलाप करने लगी २०९॥

राजपत्न्युवाच॥

मू० राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा किमेतन्मन्यतेभवान्।
तत्कथ्यतां महाबाहो मनो वै मुह्यते मम २१०॥

टी०। रानी कहने लगी कि ऐ राजन्! यह दशा अपनी और आपकी जो मैं देख रही हूँ स्वप्नहै या सचमुच जागते में देखती हूं हे महाबाहो! उसको कहिये मेरामन मोहितहै इसको आपक्या मानते हैं २१०॥

मू० यद्येतदेवंधर्म्मज्ञ नास्ति धर्म्मे सहायता।
तथैवविप्रदेवाग्नि पूजने पालने भुवः २११॥

टी०। अगर यह ऐसाहै तो ऐ धर्म्मात्मा! धर्म्म में कुछ सहायता नहीं है बल्कि इसी तरह ब्राह्मण और अग्नि और देवताओं के पूजन और भूमिके पालने में २११॥

मू० नास्ति धर्म्मः कुतः सत्यमार्ज्जवंचानृशंसता।
यत्र त्वं धर्म्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः २१२॥

टी०। धर्म्म नहीं है तो सत्य की असिल कहाँ है और दया और नम्रता की भी बुनियाद नहीं है क्योंकि जहाँ आप ऐसा धर्म्मात्मा जिसने अपने धर्म्म के वास्ते राज्य तक त्याग दिया उसकी यह दशा २१२॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० इति तस्य वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं स गद्गदम्।
कथयामास तत्त्वं वै यथा प्राप्ता श्वपाकता २१३ ॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि यह वचन रानी के सुनकर राजाने आहगर्म और गद्गदीगिरासे अपने चाण्डालत्वमें प्राप्त होने का हाल रानी से कह सुनाया २१३ ॥

मू० रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता।
स्वपुत्रमरणं भीरु यथावृत्तन्यवेदयत् २१४ ॥

टी०। और रानी ने भी जो अपने पुत्रके मरने से दुःखी हो रही थी गरम सांसले रोरो कर सब हाल अपना और अपने लड़के के मरने का राजा को सुनादिया २१४ ॥

मू० श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपातमहीतले।
मृतस्य पुत्रस्य तदा जिह्वया विलिहन्मुखम् २१५ ॥

टी०। राजा यह हाल सुनकर फिर बदहवास होकर भूमि में गिर पड़ा और उसी बदहवासी में अपने मरे हुये पुत्र का मुख ज़बान से चाटने लगा २१५ ॥

राजोवाच ॥

मू० प्रियेनरोच्चयेदीर्घं कालं क्लेशमुपासितम्।
नात्मायत्तश्चतन्वङ्गि पश्यमे मन्दभाग्यताम् २१६ ॥

टी०। और अपनी रानी से कहनेलगा कि ऐ प्यारी! मेरी बदनसीबी को देखो कि कितने बहुत दिनों से इन दुःखों में पड़ा हुआ हूँ अब ये सब दुःख मुझ से सहे नहीं जाते मेरा चित्त क़ाबू नहीं है २१६ ॥

मू० चाण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्येज्वलनं यदि।
चाण्डाल दास्यतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि २१७ ॥

टी०। अगर बिला हुक्म चाण्डाल के अग्नि में भी जल मरता हूँ तो और और जन्म में फिर भी चाण्डाल की गुलामी करनी पड़ेगी २१७ ॥

मू० नरकं च गमिष्यामिकीटकः कृमिभोजनः।
वैतरिण्यां महापूयवसासृक्मांसपिच्छले २१८ ॥

टी०। और नरक में पड़कर कीड़ा होऊंगा और कीड़ाही खाना पड़ैगा और बैतरणी में रहना होगा जिस में रुधिर मांस पीव मेदा इत्यादि भराहुआ है २१८॥

मू० असिपत्रवनं प्राप्य छेदं प्राप्स्यामिदारुणम्।
तापं प्राप्स्यामिवाप्राप्य महारौरव रौरवौ २१९॥

टी०। और असिपत्र नाम वन में जाना होगा जिसमें हमेशा बदन को जख़मों का दुःख सहना पड़ैगा और कठिन दुःख में पड़कर रौरव और महा रौरव नरक भोगना पड़ैगा २१९॥

मू० मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणवियोजनम्।
एकोऽपिबालको योयमासीद्वंशकरः सुतः २२०॥

टी०। और यह भी शोचता हूँ कि दुःख के समुद्र में डुब डुब करते रहने से मरजाना बेहतर है क्योंकि वंश का बढ़ाने वाला यह जो यह एक पुत्र था २२०॥

मू० ममदैवाम्बुवेगेन प्लुतः सोपि बलीयसा।
कथं प्राणान् विमुञ्चामि परायत्तोस्मिदुर्म्मतिः २२१॥

टी०। वहभी मेरे बलीभाग के जलजोर करके बूड़ गया तो जो अपने प्राणके त्यागकरनेमें परायेवश में आगा पीछा करताहूँ और नरक स्वर्गका खयाल जी में लाता हूँ यह मेरी बेवकूफ़ी है २२१॥

मू० अथवानात्तिनाक्लिष्टोनरः पापमवेक्ष्यते।
तिर्य्यक्त्वं नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा २२२॥

टी०। इस तरह के कष्ट से जिस में मैं पड़ा हूँगा मनुष्य पापको नहीं देखताहै क्योंकि ऐसा दुःख तिर्य्यग् योनि और असिपत्र के भोगने में भी नहीं है २२२॥

मू० वैतरण्यां कुतस्तादृग् यादृशं पुत्र विप्लवे।
सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने २२३॥

टी०। और बैतरणी मेंभी ऐसा दुःख नहीं है जैसा पुत्रके मरजाने से है इससे यही बेहतरहै कि जब पुत्रके शरीर में आग लगाई जावै २२३॥

मू० निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं कुकृतं मम।
अनुज्ञातासि गच्छत्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते २२४॥

टी०। तब हे सुन्दरि! मैं भी उसी अग्नि में पड़कर जल मरूं हे शुचिस्मिते! तू मेरा क़सूर माफ़ करके मेरी आज्ञा मुताबिक़ उस ब्राह्मण के घर में जाकर रहना कि जिसके हाथ तू बिकी है २२४॥

मू० ममवाक्यं च तन्वङ्गि निबोधादृतमानसा।
यदिदत्तं यदि हुतं गुरवे यदि तोषिताः २२५॥

टी०। और ऐ सुन्दरी! तू मेरी आज्ञाको आदर समेत दिलसे सुन जो कुछ दान करैगी या अग्निकी सेवा करैगी या ब्राह्मण गुरू को खुश रक्खैगी २२५॥

मू० सङ्गमः परलोके मे भूयात्पुत्रेण च त्वया।
इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति ममेप्सितम् २२६॥

टी०। तो परलोक में फिर हम तुम और यह पुत्र सब इकट्ठा होंगे और अब इस लोक में तो यह इच्छा हम लोगों की कहां से पूर्ण हो सकी है २२६॥

मू० त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्र मार्गणे।
यन्मया हसता किञ्चिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते २२७॥

टी०। और हे शुचिस्मिते! तुमको हमको कल्याण वहीं पर पुत्र के ढूँढ़ने से होगा और ऐ रानी! इस एकांत में जो कुछ बात तुम से हंसते हुए मैंने कही हो २२७॥

मू० अश्लीलमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः।
राजपत्नीति गर्व्वेण नावज्ञेयस्त्वया द्विजः २२८॥

टी०। बेजा कही हो वह सब माफ़ कीजियो और एक बात मेरे याचने से करना कि अपने को रानी समझकर कभी ब्राह्मण का अपमान न करना २२८॥

मू० सर्व्वयत्नेन सन्तोष्यः स्वामी दैवतवच्छुभे २२९॥

टी०। हे शुभे! पतिव्रता का जो धर्म है उसमें रहकर सब तरह से जिसमें स्वामी संतुष्ट रहै उस तरह से उसको संतुष्ट रखना २२९॥

राजपत्न्युवाच ॥

मू० अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने।
दुःखभारां सहाप्यैव सह यास्यामि वै त्वया २३० ॥

टी०। यह सुनकर रानी ने कहा कि ऐ राजर्षि! जब पुत्र के शरीरमें आग जलने लगैगी तब मैं भी इस दुःख के बोझ को न सहती हुई आप के साथ जल मरूंगी २३० ॥

मू० सह स्वर्गे च नरकं सहैवावां हि भुंक्ष्वहे।
श्रुत्वाराजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते २३१ ॥

टी०। वहां पर हम और आप साथही एकही जगह रह कर स्वर्ग या नरक भोग करेंगे यह वचन रानी के सुनकर राजाने कहा कि ऐ पतिव्रते! एवमस्तु यानी बहुत अच्छा २३१ ॥

पक्षिणऊचुः ॥

मू० ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वयम्।
भार्या समेतो राजा सौ बद्धाञ्जलि पुटस्तदा २३२ ॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि उसके बाद जब राजा ने चिता बनाकर उसपर पुत्र की लाश को रक्खा तब उसवक्त राजा और रानी हाथ जोड़कर २३२ ॥

मू० चिन्तयन्परमात्मानमीशन्नारायणं हरिम्।
हृत्कोटरगुहालीनं वासुदेवं सुरेश्वरम् २३३ ॥

टी०। उस परमेश्वर का ध्यान करने लगे जो सबके मालिक और नारायण हरि हैं और सबके हृदय रूपीगुहा में बसते हैं और जो वासुदेव सब देवताओं के ईश्वर हैं २३३ ॥

मू० अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं प्रभुम्।
तस्य चिन्तयमानस्य सर्व्वे देवाः सवासवाः २३४ ॥

टी०। और जन्म मरण से रहित पूर्ण ब्रह्म कृष्ण पीताम्बर को धारण किये हुये सबके स्वामी हैं उसके यही ध्यान करते वक्त सब देवता मय इन्द्र २३४ ॥

मू० धर्म्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः।
आगत्य सर्व्वे प्रोचुस्ते भो भो वलिगतदुष्कृतः २३५॥

टी०। धर्म्म को आगे किये हुये जल्द चले और राजा के पास आकर सब कोई कहनेलगे कि ऐ राजन्! तुम सब दोषों से रहित हो २३५॥

मू० तव चिन्तयमानस्य सर्व्वे देवाः समागताः।
अयंपितामहस्साक्षाद्धर्म्मं च भगवान्स्वयम् २३६॥

टी०। तुम्हारेही ध्यान करतेहुए सब देवता लोग यहां आये हैं देखो ये साक्षात् ब्रह्माहैं और आपही धर्म्म भगवान् भी मौजूद हैं २३६॥

मू० साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः।
नागाः सिद्धाः सगुरवो रुद्राश्चैव तथाश्विनौ २३७॥

टी०। और साध्यसमेत विश्वेदेव और पवन और सब दिग्पाल और चारण और नाग और सिद्ध समेत गुरू बृहस्पति और रुद्र और अश्विनीकुमार २३७॥

मू० एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च २३८॥

टी०। ये सब लोग और और भी आये हैं और वैसेही विश्वामित्र भी यहां मौजूद हैं २३८॥

धर्म्म उवाच॥

मू० माराजन्साहसं कार्षी धर्म्मोऽहंत्वामुपागतः।
तितिक्षादमकृत्याद्यैःस्वगुणैरेव तोषितः २३९॥

टी०। फिर धर्म्म बोले कि ऐ राजन्! साहस मतकरो मैं धर्म्म तेरे पास इस वास्ते आया हूँ कि अपने गुण तितिक्षा और दम इत्यादि का करके तुमने मुझे खुश किया है २३९॥

इन्द्र उवाच॥

मू० हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तोशक्रोऽस्मितेन्तिकम्।
त्वया सभार्य्य पुत्रेण जितालोकाः सनातनाः २४०॥

टी०। इन्द्र बोले कि ऐ राजा हरिश्चन्द्र! महाभाग मैं इन्द्रभी तेरे पास इसी वास्ते आया हूँ कि तू और तेरी स्त्री और पुत्र ने सनातन लोकों को जीत लिया है २४०॥

मू० आरोह त्रिदिवं राजन् भार्य्या पुत्र समन्वितः।
सुदुःप्राप्तंनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्म्मभिः २४१॥

टी०। ऐ राजन्! अब तुम मय अपनी स्त्री और पुत्र के स्वर्गको चलो जो दूसरे मनुष्यों को नसीब नहीं है तूने खास अपने शरीर से कर्म्म करके हासिल किया है २४१॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० ततोऽमृतमयंवर्षमपमृत्युविनाशनम्।
इन्द्रःप्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगतःप्रभुः २४२॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! फिर इन्द्र ने अमृत की बर्षा जो मृत्यु को नाश करदेनेवाली है आसमान से उस चिता के बीच में हरिश्चन्द्र के पुत्र की लाश पर छिड़क दिया २४२॥

मू० पुष्पवर्षं च सुमहद्दुन्दुभीस्वनमेव च।
तस्मिंस्ततो वर्त्तमाने समाजे देवसंकुले २४३॥

टी०। व उस वक्त बड़ाभारी नगारोंका शब्द बजता था और आसमान से फूल बरसते थे और देवतों की समाज वहीं मौजूद थी इसीवक्तमें २४३॥

मू० समुत्तस्थौ ततः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः।
सुकुमारतरः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः २४४॥

टी०। उसके बाद वह राजा हरिश्चन्द्र महात्मा का पुत्र अत्यन्त कोमल शरीर जिसके हृदय में प्रीतिभरी हुई और प्रसन्न मुख था स्वस्थ हो उठ बैठा २४४॥

मू० ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं ततः।
स्वकीयया श्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः २४५॥

टी०। तब राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्रको गले से लगाया और अपनी लक्ष्मी से संयुक्त व सुन्दर वस्त्र आभूषण और दिव्य मालाओं से संयुक्त हुये २४५॥

मू० स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः।
बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनम भाषत २४६॥

टी०। और स्वस्थ व सम्पूर्ण अंग और हृदय में उनके बड़ा आनन्द छागया फिर उस वक्त इन्द्रने राजा से कहा २४६॥

मू० सभार्य्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोके सद्गतिम्पराम्।
समारोह महाभाग निजानां कर्म्मणांफलैः २४७॥

टी०। कि ऐ महाभाग! तुम अपने कर्म्मके फलों से मय अपनी स्त्री और पुत्र के स्वर्ग में परम पद को चलो २४७॥

हरिश्चन्द्र उवाच॥

मू० देवराजा ननु ज्ञातःस्वामिनाश्वपचेन वै।
अगत्वा निष्कृतिन्तस्य नारोक्ष्येहं सुरालयम् २४८॥

टी०। राजा ने कहा कि ऐ देवराज! अपने मालिक डोम की आज्ञा विना उससे उऋण न हो करके मैं स्वर्ग में न जाऊँगा २४८॥

धर्म्म उवाच॥

मू० तवनंभाविनं क्लेशमवगम्यात्म मायया।
आत्माश्वपाकतां नीतो दर्शितं तत्स्वपक्कणम् २४९॥

टी०। तब फिर धर्म्म बोले कि ऐ राजन्! यह जो क्लेश तुमको हुआ सो मैंही ने श्वपच का रूप धारण करके अपनी मायायुक्त पुरी रचना करके तुमको दिखाया था सो वह डोम मैंही हूँ २४९॥

इन्द्र उवाच॥

मू० प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि।
तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानंपुण्यकृतां नृणाम् २५०॥

टी०। फिर इन्द्र ने कहा कि ऐ राजन! सम्पूर्ण मनुष्य लोग जिस परम स्थान की प्रार्थना करते हैं और कितने पुण्य करने वाले वहां जाते हैं उस जगह पर तुम चलो २५०॥

हरिश्चन्द्र उवाच॥

मू० देवराजनमस्तुभ्यं वाक्यञ्चैतन्निबोधमे।
प्रसादसमुखंयत्त्वां ब्रवीमिप्रश्रयान्वितः २५१॥

टी०। हरिश्चन्द्र बोले कि ऐ देवराज! आपको नमस्कार करता हूँ और

जब आप मुझ पर मेहरबान हैं तो नम्रता संयुत मैं जो कहताहूँ वह विनय मेरी सुनिये २५१ ॥

मू० मच्छोकमग्नमनसः कौशले नगरे जनाः।
तिष्ठन्ति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवि २५२॥

टी०। और वह यह है कि अयोध्या पुरीके रहने वाले जो लोग हैं वे सब मेरे शोच के समुद्र में डूबे हुये हैं उनलोगों को त्यागकर किस तरह मैं स्वर्ग को जाऊँ २५२॥

मू० ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधःस्त्रीवधस्तथा।
तुल्यमेभिर्म्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् २५३॥

टी०। जैसा पाप ब्रह्महत्या गुरुहत्या गोहत्या स्त्रीहत्या का है वैसाही क्तों के त्याग देने का बड़ा पाप कहा गया है २५३॥

मू० भजन्तंभक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम्।
नेहनामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज २५४॥

टी०। हे इन्द्र जी! सेवा करते हुए व त्यागने के न योग्य साधु भक्त को त्यागते हुये नरको इस लोक व परलोक में मैं सुख नहीं देखता हूँ इस लिये अब आप स्वर्ग को जाइये २५४॥

मू० यदि ते सहिताः स्वर्गं समायान्ति सुरेश्वर।
ततोहमपि यास्यामि नरकं वापितैः सह २५५॥

टी०। और ऐ देवराज! अगर स्वर्ग में लेचलना हो तो मुझे मेरे नगर वासियों के साथ स्वर्ग को जाना मंजूर है नहीं तो, उन लोगों के साथ नरक को भी जाऊँगा २५५॥

इन्द्र उवाच॥

मू० बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक्।
कथं संघातभोग्यंत्वं भूयःस्वर्गमवाप्स्यसि २५६॥

टी०। फिर इन्द्र बोले कि उन लोगों में तो बहुत लोगों के पुण्य बहुत तरह के हैं और बहुतों के पाप भी बहुत तरह के हैं जिसका भोग उन लोगों को अलग अलग भोगना पड़ैगा तो फिर आप उनलोगों के साथ भोगने योग्य स्वर्ग में कैसे जा सक्ते हैं २५६॥

हरिश्चन्द्र उवाच ॥

मू० शक्र भुंक्ते ततो राज्यं प्रभुर्द्रव्यैः कुटुम्बिनाम्।
यजते च महायज्ञैः कर्म्मपूर्त्तिं करोति च २५७ ॥

टी०। हरिश्चन्द्र बोले कि ऐ इन्द्र! जिन प्रजाओंकी द्रव्यसे राजाहोकर राज्य भोग किया और महा यज्ञोंसे पूजन किया और सुकर्म्म सम्पूर्ण किये २५७ ॥

मू० तच्च येषां प्रभावेन मया सार्द्धमनुष्ठितम्।
उपकारिणो न सन्त्यक्ष्ये नाहंस्वर्गस्य लिप्सया २५८ ॥

टी०। जो उन यज्ञादिकका वह अनुष्ठान जिन लोगोंके प्रभाव से मेरे साथ हुआ तो मानो वे लोग भी उसमें शामिल हुये फिर अब स्वर्ग की इच्छा में मैं उन उपकारी लोगों का साथ न छोड़ोंगा २५८ ॥

मू० तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुनिष्ठितम्।
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः २५९ ॥

टी०। इस वास्ते हे सुरेश! मैं चाहता हूँ कि जो कुछ अच्छी तरह से किया हुआ दान और जप यज्ञ का पुण्य मेरे हो वह उन लोगों के बराबर हो २५९ ॥

मू० बहुकालोपभोग्यञ्च फलं यन्ममकर्म्मणाम्।
ततस्तद्दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः २६० ॥

टी०। बहुत दिनमें करने योग्य जो मेरे कर्म्म का फल हो उसमें से एक दिन वह आपकी कृपा से उनलोगों के साथ ही हो २६० ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः।
प्रसन्नचेता धर्म्मश्च विश्वामित्रश्चगाधिजः २६१ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि इन्द्रादिक देवताओं ने सुनकर कहा कि ऐसा ही होगा यह कहिकर इन्द्र और तीनों लोकके ईश्वर धर्म्म और गाधिके पुत्र विश्वामित्र ने खुशदिल होकर २६१ ॥

मू० विमानकोटिसम्बद्धं स्वर्गलोकान्महीतलम्।

चकारदेवदेवेशो लोकानुग्रहकारणात् २६२ ॥

टी० । करोड़ों विमानों की तैयारी करके स्वर्ग से पृथ्वी तक जोड़ दिया लोगों के ऊपर दया के सबब से इन्द्रने यह किया २६२ ॥

मू० गत्वा तु नगरं सर्व्वं चातुर्वर्ण्याश्रमैर्युतम् ।
हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः २६३ ॥

टी० । फिर सब कोई उस नगरमें जाकर जोकि चारों वर्ण और चारों आश्रमके लोगोंसे सहित है राजा हरिश्चन्द्रके पास इन्द्रबोले २६३ ॥

मू० आगच्छत जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ।
धर्म्मप्रसादात्सम्प्राप्तं सर्व्वैं युष्माभिरेवच २६४ ॥

टी० । कि ऐ लोगो ! धर्म्म के प्रतापसे तुम सबोंहीको प्राप्तहै तुरन्त उस स्वर्ग लोक को चलो जो दूसरों को बहुत दुर्ल्लभ है २६४ ॥

मू० विमानकोटिसंबाधमन्तरिक्षं महीतलम् ।
कृत्वायोध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति २६५ ॥

टी० । गरज़कि करोड़ों विमान जमीन से आसमान तक तैयार करके इन्द्र ने जब उन अयोध्यावासियों से चलने के वास्ते यह कहा कि स्वर्ग को चलिये २६५ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्यातस्य च भूपतेः ।
आनीय रोहिताश्वं च हरिश्चन्द्रोमहातपाः २६६ ॥

टी० । पक्षीलोग कहते हैं कि वह वचन इन्द्र व उसराजा का सुनकर तब बड़े तपस्वी राजा हरिश्चन्द्र ने स्नेह से रोहिताश्व अपने पुत्र को बुलाया २६६ ॥

मू० अयोध्याख्ये पुरे रम्ये रोहिताश्वं प्रियं सुतम् ।
देवैश्च ऋषिभिः सेन्द्रैरभ्यषिंच्य नराधिपः २६७ ॥

टी० । और अयोध्या नामक पुरी की राज्यगद्दी का तिलक इन्द्र समेत सब देवता और ऋषियों के साथ राजा हरिश्चन्द्रने रोहिताश्व नाम अपने प्रिय पुत्र को दिया २६७ ॥

सू० राज्ञा सह तदा सर्व्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः।
सपुत्रदारभृत्यास्तेदिवमारुरुहुर्ज्जनाः २६८ ॥

टी०। तब राजा और रानी के साथ बहुत खुशी से सब मित्र लोग सहित अपनी अपनीस्त्री और पुत्र और नौकर चाकरके स्वर्गकोचले२६८॥

सू० पदेपदेविमानत्ते विमानमगमन्नराः।
तथासम्भूतहर्षस्तु हरिश्चन्द्रश्चपार्थिवः २६९ ॥

टी०। एक विमान से दूसरे विमान पर पांव रखते हुये सब कोई चलेजातेथे और उसी तरह बड़ी खुशी वाला राजा हरिश्चन्द्रभी उनलोगों के साथ २६९ ॥

सू० सम्प्राप्य भूतिमतुलं विमानैःसमहीपतिः।
आसां चक्रेपुरद्वारे वप्रप्राकारसंवृते २७० ॥

टी०। विमान पर चढ़े हुये सब समेत वे स्वर्ग पुरी के दरवाजे पर पहुँचे जहांपर छहर दिवालियों से जगह घिरीथी वहांपर अतुल धन पाकर बिराजमान हुये २७० ॥

सू० ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकमत्रोशना जगौ।
दैत्याचार्य्यो महाभागः सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् २७१ ॥

टी०। इन लोगों को स्वर्ग में आये हुए उसकी वृद्धि देखकर सब दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य्य सब शास्त्रार्थों के तत्त्व जानने वाले महाभागने इस विषय में श्लोक गाया है २७१ ॥

शुक्र उवाच ॥

सू० अहो तितिक्षामाहात्म्यं दानस्य च फलं महत्।
हरिश्चन्द्रोमहीपालो स्वर्गं सपुरो ययौ २७२ ॥

टी०। शुक्रजी बोले कि [illegible] और दान का फल बड़े आश्चर्य काहै कि राजा हरिश्चन्द्र अपने नगरवासियों समेत स्वर्गको प्राप्त हुये २७२ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

सू० एतत्ते सर्व्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्यचेष्टितम्।
यःशृणोति स दुःखार्त्तः ससुखं लभते महत् २७३ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी! यह हरिश्चन्द्र का हाल तुमसे कहागया जो कोई दुःख में पीड़ित हो वह यह कथा राजा हरिश्चन्द्र की सुनै उसका दुःख छूटकर बड़ा सुख उसको प्राप्तहोगा २७३॥

मू० पुत्रार्थी लभते पुत्रं सुखार्थी सुखमाप्नुयात्।
भार्य्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्य्यांराज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् २७४॥

टी०। और सुखकी इच्छा करके जो कोई इस कथा को सुनता है उसको सुख होता है और पुत्रकी इच्छावाला पुत्र पाता है और स्त्री की इच्छा करनेवाले को स्त्री मिलती है और राज्यार्थी राज्य पाता है२७४॥

मू० संग्रामेविजयस्तस्य न च स्यान्नारकीगतिः।
अतःपरकथाशेषःश्रूयतां द्विजसत्तम २७५॥

टी०। और लड़ाई में जीत होती है और नरक से बचता है ऐ जैमिनि जी! इस कथा में जो बाकी है उसको भी सुनिये २७५॥

मू० विपाको राजसूयस्य पृथिवीजयकारकः।
तंविपाकनिमित्तं च युद्धमाडीबकञ्चयत् २७६॥

टी०। राजसूय यज्ञ करने के फल से तमाम पृथ्वी में जय होती है उसी राजसूय के बराबर पुण्य की देनेवाली आडी यानी बकी और बगुलाकी लड़ाई की कथा सुनिये २७६॥

मू० विश्वामित्रवशिष्ठाभ्यां शापदोषादभूत्ततः २७७॥

टी०। जो विश्वामित्र और वशिष्ठजी के शाप के दोष से आपुस में हुई थी २७७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेहरिश्चन्द्रोपाख्यानमष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवां अध्याय॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० राज्याच्च्युतेहरिश्चन्द्रे गतेचत्रिदिवालयम्।
निश्चक्रामममहातेजा जलवासात्पुरोहितः १॥

टी०। पक्षीलोग कहतेहैं कि ऐ जैमिनिजी! राजाहरिश्चन्द्र अपने

राज्य से छूटकर जब स्वर्ग को चलेगये तब बड़े तेजस्वी वशिष्ठ जी पुरोहित उनके जलवास से निकले १ ॥

मू० वशिष्ठोद्वादशाब्दान्ते गङ्गावार्य्युषितोमुनिः ।
शुश्रावचसमस्तं हि विश्वामित्रस्यचेष्टितम् २ ॥

टी०। जो बारह वर्ष का संकल्प करके गङ्गाजल में अधिवास करतेथे तिन्होंने विश्वामित्र का सब हालसुना २ ॥

मू० हरिश्चन्द्रस्यनाशञ्च राज्ञश्चोदारकर्म्मणः ॥
चाण्डालसम्प्रयोगञ्च भार्य्यातनयविक्रयम् ३ ॥

टी०। और राजा हरिश्चन्द्र उदार कर्म्मवाला जिसतरह राज्य नाश होजाने पर चाण्डालता में प्राप्त हुआ और जिसतरह स्त्री और पुत्र उसके बिके ३ ॥

मू० सश्रुत्वाचमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ ।
चकारकोपन्तेजस्वी विश्वामित्रमृषिंप्रति ४ ॥

टी० यह सब हाल सुनकर वशिष्ठजी तेजस्वी ने जिन को राजा से अत्यन्त प्रीति थी विश्वामित्रके ऊपर क्रोध किया ४ ॥

वशिष्ठ उवाच ॥

मू० ममपुत्रशतंतेन विश्वामित्रेणघातितम् ।
तत्रापिनाभवत्क्रोधस्तादृशोयादृशोऽद्यमे ५ ॥

टी०। कि उन विश्वामित्रने मेरे सौ पुत्रों को मारडाला था तब मुझ को ऐसा क्रोध न हुआ था जैसा कि अब इसवक्त है ५ ॥

मू० श्रुत्वानराधिपमिमंस्वराज्यादवरोपितम् ।
महात्मानंमहाभागं देवब्राह्मणपूजकम् ६

टी०। सुनता हूं कि राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म्म के वास्ते अपनी १० तक छोड़ दिया जो कि ऐसा महात्मा महाभाग्यवान् देव ब्राह्मण को जने वाला था ६ ॥

मू० यस्मात्ससत्यवान्क्षान्तः शत्रावपिविमत्सरः ।
अनागाश्चैवधर्म्मात्मा प्रमत्तोमदुपाश्रयः ७ ॥

टी०। और सत्यवान् और क्षमस्वीको जो दुश्मन से ईर्षा नहीं रखता था और निःपाप और बे घमण्ड और मेरा भक्त व धर्मात्मा था तो जिस वास्ते ७ ॥

मू० सपत्नीपुत्रभृत्यस्तु प्रापितोन्यांदशांन्नृपः।
स्वराज्याच्च्यावितोनेन बहुलंव्याकुलीकृतः ८॥

टी०। ऐसे राजा को सहित स्त्री और पुत्र और नौकर चाकर के दूसरी दशा में प्राप्त करके अपनी राज्यसे उतार दिया व अतिशय व्याकुल कर दिया ८॥

मू० तस्माद्दुरात्माब्रह्मद्विट्यज्वनामवरोपिता।
मच्छापोपहतोमूढः सबकत्वमवाप्स्यति ९॥

टी०। इस वास्ते यह दुरात्मा ब्रह्मद्वेषी यज्ञकर्त्ताओं की यज्ञ को नष्ट करनेवाला मूढ़ वह विश्वामित्र मेरे शापसे हतहोकर तिर्य्यग्योनि यानी बगुला के शरीर में प्राप्तहोवै ६॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० श्रुत्वाशापम्महातेजा वशिष्ठंप्रतिकौशिकः।
त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत १०

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि जब यह शाप देना वशिष्ठजी का बड़े तेजस्वी विश्वामित्रने सुना तो वशिष्ठजी की तरफ़ क्रोधकरके विश्वामित्र ने भी शाप दिया कि तू भी मेरे शापसे आड़ीहो यानी पक्षीका शरीर धारणकर १० ॥

मू० अन्योन्यशापात्तौ प्राप्तौ तिर्य्यक्त्वं परमद्युती।
वशिष्ठं च महातेजा विश्वामित्रश्चकौशिकः ११॥

टी०। फिर तो वशिष्ठजी महातेजस्वी और उसी तरह विश्वामित्र भी आपुस के शापसे दोनों महात्माओंने पक्षीका शरीर धारणकिया ११॥

मू० अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ।
ययुधातेतिसंरब्धौ महाबलपराक्रमौ १२॥

टी०। लेकिन और जाति में भी जानेपर दोनों महा क्रोधितहो महा पराक्रमी और बली इकट्ठे होकर महा युद्ध करने लगे १२॥

मू० प्रहरन्तौभयंतीव्रं प्रजानां चक्रतुस्तदा ।
विधूय पक्षाणिबको रक्तोद्वृत्ते क्षणो हनत् १३ ॥

टी० । जब ये दोनों आपुस में एक दूसरे पर चोट करने लगे तो उस वक्त प्रजाओं को बड़ा डरकिया बगुला पंखोंको फटकारकर क्रोध सेलाल लाल आँखें किये हुये अपना वार करता था १३ ॥

मू० आडी चाप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ।
तयोःपक्षानिलोपास्ताः प्रपेतुर्गिरयोभुवि १४ ॥

टी० । और उधर सारस भी लंबी गरदन वाली पैरों से चोट करती थी उसवक्त उन दोनों के परों की हवा से कितने पर्वत उड़ उड़ कर ज़मीन पर गिरते थे १४ ॥

मू० गिरिप्रपाताभिहता च कम्पे च वसुन्धरा ।
क्ष्माकम्पमाना जलधीनुद्धृताम्बूँश्चकारह १५ ॥

टी० । उन पहाड़ों के गिरने से पृथ्वी कांपती थी और पृथ्वीके कांपने से समुद्र कांपताथा कि जिससे बड़ी बड़ी तरंगें समुद्र से उठतीथीं १५॥

मू० ननाम चैकं पार्श्वेन पातालगमनोत्सुका ।
केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा १६ ॥

टी० । और पृथ्वी एक अङ्ग से उलटकर पाताल जाने की इच्छा करती थी और इस हलचल में कितने आदमी पहाड़ों में दबकर और कितने समुद्र में डूबकर मरगये १६ ॥

मू० केचिन्मही संचलनात्प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ।
इति सर्व्वं परित्रस्तं हाहाभूतमचेतनम् १७ ॥

टी० । और कितने जीव पृथ्वी के कांपने ही से नाशहोगये इसीतरह कितने सब डरसे पृथ्वीमें पड़े थे और सम्पूर्ण भूमि में अचैतन्यता व हा हा शब्द हो रहाथा १७ ॥

मू० जगदासीत्सुसम्भ्रान्तंपर्य्यस्तं क्षितिमण्डलम् ।
हावत्स हाकान्त शिशो प्रयाह्येषोस्मि संस्थितः १८ ॥

टी० । इस तरह का तूफ़ान इस पृथ्वी पर पड़ा कि संसार भर

डरगया पृथ्वी विकल होगई कितने तो मूर्च्छामें और कितने हाय वत्स! हायपुत्र! हाय स्वामी! कहतेथे और कितने कहतेथे कि तुम जावो मैं यहां खड़ाहूँ १८॥

मू० हा प्रिये कान्त शैलोयं पतत्याशु पलायताम्।
इत्याकुलीकृते लोके संत्रासाद्विमुखे तदा १९॥

टी०। और कोई हा प्रिये! और कोई हा कान्त! करके कहते थे कि जल्दी भागते जावो यहपर्वतभी गिराचाहताहै इसीतरह सबकेसबव्याकुल हो डरसे आपुसमें एक दूसरेसे विमुख यानी फ़रक़ फ़रक़ होगये तब१९॥

मू० सुरैः परिवृतः सर्व्वैराजगाम पितामहः।
प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावपि कोपितौ २०॥

टी०। सब देवताओं को साथ लिये हुये संसार के स्वामी ब्रह्माजी जहां ये बड़े क्रोधित हो दोनों युद्ध कर रहेथे आकर बोले २०॥

मू० युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च।
शृण्वन्तावपि तौ वाक्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः २१॥

टी०। कि अब लड़ाई मौकूफ़ करतेजावो कि जिसमें संसार स्थिर रहे लेकिनवे दोनोंमहात्मा अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजीके वचनसुनतेहुयेभी २१॥

मू० कोपामर्षविवृत्ताक्षौ युयुधाते न तस्थतुः।
ततो पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसंक्षयम् २२॥

टी०। कोप युक्त लाल लाल आंखें किये वे दोनों युद्ध करने से बाज न आये तब ब्रह्माजी संसार को नाश होते हुये देखकर २२॥

मू० तयोश्च हितमन्विच्छन् तिर्य्यग्भावमपानुदत् २३॥

टी०। और उन दोनों महात्माओं की भलाई चित्त में विचारकर तिर्य्यग्भाव याने पक्षीपन को हर लिया २३॥

मू० ततस्तौ पूर्व्वदेहस्थौ प्राह देवः प्रजापतिः।
व्युदस्ते तामसे भावे वशिष्ठकौशिकर्षभौ २४॥

टी०। जब वे दोनों महात्मा तामसी भाव को छोड़कर बदस्तूर सात्विक अपनी देह में वशिष्ठजी और विश्वामित्र होगये तो फिर देवता ब्रह्माजी कहने लगे २४॥

मू० जहि वत्स वशिष्ठ त्वं त्वं च कौशिकसत्तम।
तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् २५॥

टी०। कि ऐ पुत्र वशिष्ठ और ऐ विश्वामित्र! तुम लोगों ने अपनी अपनी बड़ाई छोड़कर तामसी भाव में प्राप्त होकर इस युद्धकी इच्छा को त्याग करो २५॥

मू० राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः॥
युवयोर्विग्रहश्चायं पृथिवीक्षयकारकः २६॥

टी०। राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ का यही फल है कि तुम लोगों ने ऐसा युद्ध किया है कि जिससे पृथ्वी की क्षय होजाती २६॥

मू० न चापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्य राज्ञोऽपराध्यते।
स्वर्गप्राप्तिकरो ब्रह्मन्नुपकारपदे स्थितः २७॥

टी०। ऐ वशिष्ठ! विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र के अपकारी नहीं बल्कि उपकारी हैं इन्हीं ने उनको स्वर्ग प्राप्त कराया है २७॥

मू० तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशंगतौ।
परित्यजत भद्रं वो ब्रह्म हि प्रचुरं बलम् २८॥

टी०। काम क्रोध ये दोनों तपस्यामें विघ्न डालनेवाले हैं जिनके वश होकर तुम लोग तप में विघ्नकर्त्ता होगये हो अब यह पाप छोड़दो तभी तुम लोगों का कल्याण है ब्राह्मण के वास्ते तपस्या बड़ा बल है २८॥

मू० एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावुभावपि।
क्षमयामासतुःप्रीत्या परिष्वज्य परस्परम् २९॥

टी०। यह वचन ब्रह्मा का सुनकर दोनों महात्माओं ने लज्जित हो अपना २ क्रोध छोड़कर क्षमाकिया प्रीतिपूर्वक आपुसमें मिलगये २९॥

मू० ततःसुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ।
वशिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपिस्वमाश्रमम् ३०॥

टी०। बाद इसके ब्रह्माजी सब देवताओं से पूजित हो अपने ब्रह्मलोक को चले गये और वशिष्ठजी और विश्वामित्र भी अपने २ आश्रम स्थान को जाते भये ३०॥

मू० एतदाडिवकं युद्धं हरिश्चन्द्रकथां तथा।
कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक् श्रोष्यन्ति चैव ये ३१ ॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि ऐ जैमिनिजी ! यह बगुला और सारस की लड़ाई और राजा हरिश्चन्द्र की कथा जो कोई कहैंगे अथवा सम्यक् प्रकार से सुनैंगे ३१ ॥

मू० तेषां पापापनोदन्तु श्रुतं ह्येव करिष्यति।
न चैव विघ्नकार्य्याणि भविष्यन्ति कदाचन ३२ ॥

टी०। सुननाही उनका पाप नाश करैगा और इसको सुनकर जो काम करैगा वह निर्विघ्न सिद्ध होगा याने कभी विघ्न न होवैंगे ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेआडिवकयुद्धंनाम नवमोऽध्यायः ९ ॥

अथ दशवां अध्याय ॥

जैमिनिरुवाच ॥

मू० संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत मम पृच्छतः।
आविर्भावतिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ १ ॥

टी०। फिर जैमिनिजी ने कहा कि ऐ पक्षिराजाओ ! एक संशय और भी मुझको है उसको बयान कीजिये कि यह जो संसार में प्राणियों का जन्म और मरण जिसमें स्थित है १ ॥

मू० कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वा स विवर्द्धते।
कथं वोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः २ ॥

टी०। उसका हाल बतलाइये कि यह प्राणी किसतरह पैदा होता है और वह कैसे बढ़ताहै और किसतरह शरीर में पीड़ा उठाकर माँ के पेट में रहता है २ ॥

मू० निष्क्रान्तिमुदरात् प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति।
उत्क्रान्तिकाले च कथं चिद्भावेन वियुज्यते ३ ॥

टी०। और पेट से किसतरह बाहर होता है और वह कैसे बढ़ता है

और पेट से बाहर होते वक्त कैसे चैतन्यता से अलग होजाता है ३॥

मू० कृत्स्नो मृतस्तथाऽश्नाति उभे सुकृतदुष्कृते।
कथं ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ४॥

टी०। और जितना भला या बुरा काम करता है उसका फल किस तरह मरकर भोगता है और वे कैसे उसके फल को सिद्ध करते हैं ४॥

मू० कथं न जीर्य्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये।
स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्य्यन्ते भुक्तानि सुगुरूण्यपि॥
भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्य्यते कथमल्पकः ५॥

टी०। और स्त्री के गर्भस्थान में जिसमें कैसी कैसी चीजें सख़्त हज़म होजाती हैं उस में पिण्डीके समान यह छोटा सा जीव जो रहता है वह कैसे नहीं नष्ट होता है ५॥

मू० एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम्।
तदेतत् परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः ६॥

टी०। इसका हाल मुफ़स्सिल बतलाइये कि सन्देह बाक़ी न रहै यह बात बहुत गुप्त है इस में सब विद्वानों को मोह होता है ६॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासु निवेशितः।
दुर्भाव्यः सर्व्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ७॥

टी०। पक्षी लोग बोले कि ऐ जैमिनि जी! यह अतुल प्रश्नका भार आपने हम सबों पर रख दिया यह प्रश्न भाव और अभाव संयुक्त है सब किसी के ख़्याल में नहीं आसक्ता ७॥

मू० तं शृणुष्व महाभाग यथा प्राह पितुः पुरा।
पुत्रः परमधर्म्मात्मा सुमतिर्नाम नामतः ८॥

टी०। लेकिन ऐ महाभाग! जिस बात को सुमति नाम ब्राह्मण ने अपने पिता से कहा था उस को मैं बयान करता हूं जी लगाकर सुनिये ८॥

मू० ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित्सुतमाह महामतिः।
कृतोपनयनं शान्तं सुमतिं जडरूपिणम् ९॥

टी०। यानी भृगुवंशमें कोई ब्राह्मणथा उसका पुत्र शान्त सुमति नाम जड़रूपीथा जब उसकेपिताने उसका यज्ञोपवीत किया तब उससे कहा९॥

मू० वेदानधीष्व सुमते यथानुक्रममादितः।
गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः १० ॥

टी०। कि ऐ सुमते! पहले से क्रम से वेद बढ़ो और गुरु की सेवामें रहकर भिक्षा मांगकर भोजन किया करो १० ॥

मू० ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान्।
इष्टमुत्पाद्यापत्यमाश्रयेथा वनन्ततः ११ ॥

टी०। बाद उस के गृहस्थ कर्म्म में प्राप्त होकर उत्तम यज्ञों को कर के अच्छा पुत्र उत्पन्न करके उसके बाद वनवास करो ११ ॥

मू० वनस्थश्च ततो वत्स परिव्राट् निष्परिग्रहः।
एवमाप्स्यसि तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि १२ ॥

टी०। और हे वत्स! वानप्रस्थ करके सब सामान छोड़के संन्यास करो तब इस दुनिया की सब बातों से छूटकर उस ब्रह्म में प्राप्त होगे जहां जाने से फिर शोच न करोगे १२ ॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० इत्येवमुक्तो बहुशो जडत्वान्नाह किञ्चन।
पितापि तं सुबहुशः प्राह प्रीत्या पुनः पुनः १३ ॥

टी०। पक्षी लोग कहते हैं कि इसतरह बहुत समझाने पर भी वह जड़रूपी लड़का कुछ न बोला फिर जब पिता ने कई बार इन बातों को समझाकर उस पुत्र से कहा १३ ॥

मू० इति पित्रा सुतस्नेहात् प्रलोभिमधुराक्षरम्।
सचोद्यमानो बहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत् १४ ॥

टी०। व इसतरह से पुत्र के स्नेह से पिता ने मीठे २ अक्षरों से लुभाया तब वह सुमति मुसकराकर बार २ कहे हुये पुत्र ने यह कहा१४॥

मू० तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाद्योपदिश्यते।
तथैवान्यानिशास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च १५ ॥

टी०। कि ऐ तात ! आपने जो यह बात समझाई है इसका मैंने बहुत अभ्यास किया है और उसीप्रकार से और और शास्त्र भी देखा है और शिल्पविद्या का भी बहुत तरहसे अभ्यास किया है १५ ॥

मू० जन्मनामयुतं साग्रं मम स्मृतिपथं गतम्।
निर्वेदाः परितोषाश्च क्षयवृद्ध्युदये रताः १६ ॥

टी०। और हजारों जन्म से अधिक का हाल मुझ को याद है और निर्वेद और परितोष जो आदि ज्ञान है वे भी नाश व बढ़ती व उत्पत्तिमें हुये हैं १६ ॥

मू० शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः संगमास्तथा।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा १७ ॥

टी०। शत्रु और मित्र और स्त्री आदि लोगों से संयोग और वियोग कितने बार हुआ है और माता पिता भी हरतरह के मुझे प्राप्त हुये १७ ॥

मू० अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानि च सहस्रशः।
बान्धवा बहवः प्राप्ताः पितरश्च पृथग्विधाः १८ ॥

टी०। और हजारों सुख दुःख भोग किये हैं और हरतरह के माता और पिता से प्राप्त हुआ हूं और बहुत तरहके भाई बन्धुभी पाये हैं १८ ॥

मू० विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम्।
पीडाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः १९ ॥

टी०। और रोगों के बहुत दुःख और सुख हजारों तरह के मैंने भोग किये हैं और तरह तरह की स्त्रियोंके गर्भ में जिसमें मल और मूत्र भरा सब है उस में मैं रहा हूं १९ ॥

मू० गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा।
वृद्धतायां तथाप्तानि तानि सर्वाणि संस्मरे २० ॥

टी०। और गर्भ अवस्था और बालअवस्था और युवा अवस्था और वृद्धअवस्था में जितना मैंने दुःख उठाया है सो सब मुझको यादहै २० ॥

मू० ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चापि योनिषु।
पुनश्च पशुकीटानां मृगाणामथ पक्षिणाम् २१ ॥

टी०। और कितने बार ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्य और शूद्र की योनिमें जन्म लेकर फिर कितने बार पशु पक्षी और कीट और मृगादिक योनि में मेरा जन्म हुआ था २१ ॥

मू० तथैव राजभृत्यानां राज्ञां चाहवशालिनाम्।
समुत्पन्नोस्मि गेहेषु तथैव तव वेश्मनि २२॥

टी०। और उसी तरह कितने बार राजाओं के नौकरों के घर में और कितनेबार लड़ाई करनेवाले राजाओं के घर में मेरा जन्म होकर अब आप के घर में जन्म पाया है २२ ॥

मू० भृत्यतां दास्यतां चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम्।
स्वामित्वमीश्वरत्वञ्च दरिद्रत्वं तथागतः २३ ॥

टी०। और कितने बार दूसरों की गुलामी में रहा हूं और कितने दफ़ा कितनों को अपनी गुलामी में रक्खा है और कितने बार दौलतमन्द रहाहूं और वैसेही कितनेबार दरिद्री हुआ हूं २३ ॥

मू० हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा।
दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मयिदत्तमनेकशः २४॥

टी०। व मैंने हरा है और मुझको औरों ने हरा है और कितने बार और के मारे से मैं मरा हूं और कितने बार मेरे मारने से औरों का घात हुआ है और कितने बार मैंने लोगों को दान दिया है और कितने बार औरों से मैंने दान लिया है २४ ॥

मू० पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च।
तुष्टोऽसकृत्तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः २५॥

टी०। माता पिता मित्र बन्धु स्त्री वग़ैरह के संयोग से कितने दफ़ा खुश हुआ हूँ और कितने दफ़ा इन लोगों के वियोग में रोता फिरा हूँ २५ ॥

मू० एवं संसारचक्रेस्मिन् मम तातातिसंकटे।
ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसंप्राप्तिकारकम् २६ ॥

टी०। ऐ पिता ! इसी तरह कष्टसंयुक्त इस संसारचक्रमें भ्रमण करते करते कितने दिनों के बाद मोक्ष देनेवाला यह ज्ञान मुझे मिला है २६ ॥

मू० विज्ञाते यत्र सर्व्वोऽयमृग्यजुःसामसंज्ञितः।
क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे २७॥

टी०। कि जिस ज्ञान के होने से सामवेद और ऋग्वेद और यजुर्वेद का कहा हुआ सब क्रियाकलाप सम्यक् प्रकार से मुझे नहीं भाता है क्योंकि गुणों से हीन है २७॥

मू० तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम्।
गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः २८॥

टी०। जब कि मैं गुरु के ज्ञान से तृप्त और हरएक इच्छा से अलग और आत्मज्ञान में प्राप्त हूं तो फिर मुझे पैदाहुये ज्ञानवाले को वेद पढ़ने से क्या मतलब है २८॥

मू० षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्च यत्।
गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परं पदम् २९॥

टी०। और छह तरह की क्रिया यानी यजनादि और दुःख और सुख और रस और गुण इन सबों से अलग जो ब्रह्म परम पद है उस को मैं प्राप्त हूँगा २९॥

मू० रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा।
विज्ञाताश्वमृगग्राहिसङ्घपाशशताकुला ३०॥

टी०। और रस और हर्ष और भय और उद्वेग और क्रोध और अमर्ष इन से पैदा हुई और जो सैकड़ों श्वानों और फांसों से घिरी है मैंने उस को जाना है ३०॥

मू० तस्माद् यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम्।
त्रयीधर्म्ममधर्म्माढ्यं किं पाकफलसन्निभम् ३१॥

टी०। इस वास्ते ऐ पिताजी! ऐसे दुःखकी पैदा करनेवाली बुद्धिको त्याग करके मैं परमपद को जाऊँगा और त्रयीधर्म्म यानी तीन वेद का कहा हुआ जो अधर्म्म युक्त है वह निन्दित फलके समान है ३१॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम्।

पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः ३२ ॥

टी०। पक्षीलोग कहतेहैं कि वह वचन उस पुत्रका सुनकर वह महाभाग ब्राह्मण हर्ष और विस्मय यानी अचम्भे में आकर प्रसन्नमन हो अपने बेटे से पूँछने लगा ३२ ॥

पितोवाच ॥

मू० किमेतद्वद हे वत्स कुतस्ते ज्ञानसम्भवः।
केन ते जडता पूर्व्वमिदानीं च प्रबुद्धता ३३ ॥

टी०। पिता बोला कि ऐ पुत्र! यह क्या कहते हैं पहिले तो तू जड़ समानथा और अब इसवक्त तुझको यह ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ ३३ ॥

मू० किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव।
यत्ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ३४ ॥

टी०। क्या यह किसी मुनि या देवता का शाप था कि जिस सबब से ज्ञान तेरा गुप्त था जो अब फिर प्रकट हुआ है ३४ ॥

पुत्रउवाच ॥

मू० शृणु तात यथा वृत्तं ममेदं सुखदुःखदम्।
यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मात्परन्तु यत् ३५ ॥

टी०। तब उस लड़केने जवाब दिया कि ऐ तात! मेरे सुख और दुःख पाने का हाल सुनिये कि और जन्ममें मैं जो हुआथा व जो फिरहूंगा ३५॥

मू० अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि।
आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः ३६ ॥

टी०। यानी पूर्व्वकाल में मैं ब्राह्मण था और परमात्मा में मेरा मन लीन था और सदा आत्मविद्या के विचार करने से परानिष्ठाको मैं प्राप्त हो गया ३६ ॥

मू० सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससंगमात्।
सत्संयोगात् स्वस्वभावाद् विचारविधिशोधनात् ३७॥

टी०। सब दिन योग से युक्त और सदा अभ्यास करने से व सत्संग करनेसे और अपने स्वभाव यानी नेक चलनी से और जैसा कि चाहिये उस तरह से विचार को शोधने से ३७॥

मू० तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्ममासीद् युञ्जतः सदा।
आचार्य्यताञ्च संप्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः ३८॥

टी०। उस परब्रह्ममें सदा योगाभ्यास करतेहुये मुझे परमप्रीति हुई बाद इसके मैं आचार्य्यता को प्राप्तहोकर शिष्यों के सन्देहों को मिटाने लगा ३८॥

मू० ततः कालेन महता एकान्तिकमुपागतः।
अज्ञानाकृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः ३९॥

टी०। फिर बहुत दिनों के बाद जो अज्ञानता से मेरे चित्त में उत्तम भाव न था जिस सबब से सात्त्विकी स्वभाव मेरा घट गया था और ग़फ़लतसे दुःखी था तब मैं उन सबोंको छोड़कर एकान्तहो बैठा उसी समय मेरे प्राणने शरीर को छोंड़ दिया ३९॥

मू० उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत्।
यावदद्यागतञ्चैव जन्मनां स्मृतिमागतम् ४०॥

टी०। फिर इस जन्ममें जबसे उत्पन्नहुआहूं तबसे लगाकर वह सबबातें नहीं भूलतीहैं यानी जिस जन्ममें जितने वर्ष रहाहूँ और जिस जिसकर्म्म में प्राप्तहुआहूं उन सब बातों का ज्ञान मुझे इस वक्त तक बना है ४०॥

मू० पूर्व्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात जितेन्द्रियः।
यतिष्यामि तथा कर्त्तुं न भविष्ये यथा पुनः ४१॥

टी०। और ऐ तात! उसी पूर्व्व के अभ्याससे मैं जितेन्द्रियहूं और वैसा यत्न करना चाहताहूं कि जिसमें फिर मुझे जन्म लेना न हो ४१॥

मू० ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम।
न ह्येतत् प्राप्यते तात त्रयीधर्म्माश्रितैर्नरैः ४२॥

टी०। मेरे ज्ञान के दान का फल यही है जो कि सब जन्मों का हाल मुझे स्मरण है और ऐ तात! यह बात जो मुझे हासिल है यह त्रयीधर्म्म के आश्रित मनुष्योंको नहीं मिल सक्ती है ४२॥

मू० सोऽहं पूर्व्वाश्रमादेव निष्ठाधर्म्ममुपाश्रितः।
एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममोक्षणे ४३॥

टी०। सो मैं उसी पूर्व्व के आश्रम ही से निष्ठा धर्म्म में प्राप्तहूं और अब मैं एकान्तमें जाकर अपने मोक्षकी यत्न करूंगा ४३॥

मू० तद्ब्रूहि त्वं महाभाग यत्ते सांशयिकं हृदि।
एतावतापिते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ४४॥

टी०। पर ऐ महाभाग! आपके मनमें जिन जिन बातों का संशयहो मुझसे बयान कीजिये मैं उन सन्देहों को छुड़ाकर इतनीही बात से प्रीति पैदा करके आपके ऋण से अदा होजाऊँगा ४४॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत्तस्य तद्वचः।
भवता यद्वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ४५॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि उसके बाद वह ब्राह्मण यह वचन अपने पुत्र का सुनकर श्रद्धा करके जो संसार के ग्रहण में आश्रित होनेवाले प्रश्न को आपने हम लोगों से किया है वही प्रश्न उस ब्राह्मण ने अपने पुत्रसे किया ४५॥

पुत्रउवाच॥

मू० शृणु तात यथा तत्त्वमनुभूतं मयासकृत्।
संसारचक्रमजरंस्थितिर्यस्य न विद्यते ४६॥

टी०। उस प्रश्न को सुनकर सुमति पुत्र ने कहा कि ऐ पिता! जिस तत्त्व को आपने पूछा है उसको सुनिये कि यह संसार चक्र बहुत मज़बूत और पुराना है और यह किसीके साथ एक तरहपर नहीं रहता इस चक्र में पड़कर मैं कई दफ़ा घूमाहूँ ४६॥

मू० सोऽहं वदामि ते सर्व्वं तवैवानुज्ञया पितः।
उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ४७॥

टी०। ऐ पिता! आप की आज्ञा से उसका सम्पूर्ण हाल शुरूअ पैदाइश से मरने तक मैं बयान करताहूँ कि जिस तरह से दूसरा कोई न कह सकेगा ४७॥

मू० ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः।
भिनत्ति मर्म्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ४८॥

टी०। हाल यह है कि मनुष्य के शरीर में ऊष्मा जो है वह तीव्र वायु के प्रेरने से मर्म्म स्थानको काटताहै और विना लकड़ी के आगका शोला बना रहताहै ४८॥

मू० उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्त्तते।
भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ४९॥

टी०। और उसके बाद उदान नाम वायु ऊपर कण्ठ के मुक्तामें रह कर जो कुछ आदमी खाता या पीता है उसको हलकके नीचे उतारती है ऊपर आने नहीं देती ४९॥

मू० ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा।
दत्ताः स तस्य आह्लादमापदि प्रतिपद्यते ५०॥

टी०। उसके बाद अन्न और जल जो किसी को खिलाते या पिलाते हैं उससे उस विपत्ति में उसकी भूँख का कष्ट छूटकर आनन्द उसको उत्पन्न होताहै ५०॥

मू० अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा।
सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाप्यन्नेन वै तदा ५१॥

टी०। इस वास्ते श्रद्धापूर्वक पवित्र चित्त करके जो बुद्धिमान् किसी को अन्न देताहै उसको उस वक्त विना अन्न के भी आनन्द रहताहै ५१॥

मू० येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ५२॥

टी०। और जो झूठ नहीं बोलते हैं और जो किसी का बिगाड़ न आप करते हैं न दूसरे से कराते हैं और जो वेद और शास्त्र को मानते हैं व जो श्रद्धावान्हैं उनको मरतेवक्त कष्ट नहीं होताहै ५२॥

मू० देवब्राह्मणपूजायां ये रता नानुसूयवः।
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नरास्सुखमृत्यवः ५३॥

टी०। और जो देवता और ब्राह्मण का पूजन करते हैं और किसी की निन्दा नहीं करते हैं और लज्जावान्हैं और उचित कहनेवाले हैं ऐसे लोग सुख से मृत्यु पाते हैं ५३॥

मू० यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्म्ममुत्सृजेत्।
यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ५४॥

टी०। और जो कोई काम क्रोध व वैर से धर्म्म को नहीं छोड़ते हैं और उचित कर्म्म करते हैं और साधु हैं ये लोग भी सुखसे मृत्यु पाते हैं ५४॥

मू० अवारिदायिनो दाहं क्षुधां चानन्नदायिनः।
प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ५५॥

टी०। और जो कोई प्यासे को पानी और भूँखे को अन्न नहीं खिलाते पिलाते हैं उनको अन्तकाल में भूँख और प्यास होती है ५५॥

मू० शीतं जयन्तीन्धनदास्तापं चन्दनदायिनः।
प्राणघ्नीं वेदनां कष्टां येचानुद्वेगकारिणः ५६॥

टी०। और जो कोई जाड़े में ईंधन देतेहैं उनको मरते वक्त जाड़ा नहीं लगता है और चन्दन दान करनेवालेको गरमी नहीं लगती है और जो कोई किसी को दुःख नहीं देता है वह मनुष्य अन्तकाल में प्राण निकलने की तक्लीफ़ नहीं पाता है ५६॥

मू० मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम्।
वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीड्यन्तेऽधमानराः ५७॥

टी०। और जो लोग मोह करके किसी को नामुनासिब बात सिखलाते हैं उनको उस वक्त में बड़ा भय होता है और वे अधम मनुष्य बहुत तरह की कठिन तकलीफ़ें उठाते हैं ५७॥

मू० कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै।
तेमोहमृत्यवः सर्व्वे तथा वेदविनिन्दकाः ५८॥

टी०। और जो झूँठी गवाही देता है या झूँठ बोलता है और अनुचित बात सिखलाता है और वेद की निन्दा करता है उन सब लोगों को मृत्युकाल में मोह होता है यानी मूर्च्छा होती है ५८॥

मू० विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः।
आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा ५९॥

टी०। और उनके मरते वक्त वह यमदूत जिनके अङ्ग २ से दुर्गन्ध

आती है हाथ में मुद्गर लिये दुष्टात्मा भयानक रूप से वहां आतेहैं ५६ ॥

मू० प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः ।
क्रन्दन्त्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतानथ ६० ॥

टी०। जब उन को वह मनुष्य देखता है तो मारे डर के कांपने लगता है और हमेशा भाई बन्धु और माता पिता को पुकार पुकार कर रोता है ६० ॥

मू० सास्य वागस्फुटा तात एकवर्णा विभाव्यते ।
दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्तथाननम् ६१ ॥

टी०। और ऐ तात ! उस समय यमदूतके देखने से देखनेवाला घबराकर एकवर्णवाली व अप्रकट बातचीत करनेलगताहै व डरसे आंखें उस की घूमनेलगती हैं और श्वास लेने से हलक़ और जबान सूखजाती है ६१ ॥

मू० ऊर्द्ध्वश्वासान्वितः सोऽथ दृष्टिभङ्गसमन्वितः ।
ततःसवेदनाविष्टस्तच्छरीरं विमुञ्चति ६२ ॥

टी०। इसी तरह ऊर्ध्व श्वास लेकर दृष्टि भंग के साथ बहुत कष्ट पाकर वह शरीर को त्याग देता है ६२ ॥

मू० वाय्वग्रसारीतद्रूपं देहमन्यत्प्रपद्यते ।
तत्कर्म्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम् ॥
तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राग्भवं यथा ६३ ॥

टी०। फिर वायुसे भी आगे चलनेवाला वह जीव वैसेही दूसरे शरीर में जो यातना (पीडा) के वास्ते विना मां बापके बनाहै सिर्फ़ कर्म्म के फल भोगनेके वास्ते उसमें जाताहै और जैसी अवस्था और उम्र उसकी पहिले रहती है वैसी ही उसको उस शरीर में भी मालूम पड़ती है ६३ ॥

मू० ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः ।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ६४ ॥

टी०। तब यमराज का दूत जल्दी से कठिन फांस में बांधकर दण्डे से मारताहुआ उसे दक्षिण दिशा को खैंचकर लेजाताहै ६४ ॥

मू० कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणकर्कशे।
तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ६५॥

टी०। और जो राह कुश और कांटा बंबौरि शंकु और पत्थर के टुकड़ों से कठिनहै और उसमें कहीं आग बरसती है और कहीं सैकड़ों गढ़ों से भयानक ६५॥

मू० प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमाने तदंशुभिः।
कृष्यते यमदूतैश्चाशिवसन्नादभीषणैः ६६॥

टी०। और कहीं अत्यन्त धूपकी गरमी है और कहीं सूर्य्य की किरण से वह ज़मीन जलती है ऐसे कठिन रास्ते से वे यमदूत भयानक रूपवाले कठोर शब्द करतेहुये घसीटते लेजाते हैं ६६॥

मू० विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः।
प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्म्मा यमक्षयम् ६७॥

टी०। ग़रज़ कि इसी तरह यमदूत का घसीटा खाता हुआ और डरावने सैकड़ों सियारों से जो उस राहमें रहते हैं शरीर का मांस नोचवाताहुआ दारुण मार्गहोकर पापी मनुष्य यमलोक को जाता है ६७॥

मू० छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः।
ते यान्ति मनुजा मार्गं तं सुखेन तथान्नदाः ६८॥

टी०। पर छाता और जूता और अन्न और वस्त्रादिक का दान देनेवाले जो मनुष्यहैं वे सुख युक्त मार्ग होकर यमपुरी में जाते हैं ६८॥

मू० एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीडितः।
नीयते द्वादशाहेन धर्म्मराजपुरं नरः ६९॥

टी०। और इसी तरह क्लेश पाताहुआ पापों से पीडित आदमी दूसरे के इख़्तियार में पड़ाहुआ बारहवें दिन यमपुरी में पहुँचताहै ६९॥

मू० कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति।
ताड्यमाने तथैवार्त्तिं छिद्यमाने च दारुणाम् ७०॥

टी०। पर शरीर उसका रास्ते की गरमी से जला भुना रहताहै और मार खाने से पीड़ित और काटने से कठिन दुःखपाताहै ७०॥

मू० छिद्यमानश्चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते।
स्वेन कर्म्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन् ७१ ॥

टी०। यह सब अपने कर्म्म के फल से बहुत दिनोंतक आदमी मरने पर दुःख और क्लेश पाते हैं ७१ ॥

मू० तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह।
यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ७२ ॥

टी०। उसवक्त में उसके भाई बन्धु तिलके साथ जो जल देते हैं और जो पिण्ड देते हैं सो लेजानेवाले को प्राप्त होता है ७२ ॥

मू० तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनञ्च यत्।
तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्च स्नान्ति सबान्धवाः ७३ ॥

टी०। और भी उसके भाई बन्धु जो तेल शरीर में लगाते हैं और स्नान करते हैं और जो खाते हैं यही सब उस को प्राप्त होता है व उससे उसकी तृप्ति होती है ७३ ॥

मू० भूमौ स्वपद्भिर्न्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः।
दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्यायते मृतः ७४ ॥

टी०। और उसके भाई बन्धु भूमि शय्या पर सोने से जो सख्तियां उठाते हैं और दान वगैरह जो करते हैं इससे भी उस मृतक प्राणी को क्लेश नहीं होता व भोजन से तृप्त होताहै ७४ ॥

मू० नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति।
उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि ७५ ॥

टी०। अगर्चे वह जीव यमदूत के हाथ में प्राप्त रहता है तौभी बारहों रोज़ अपने घरको देखा करता है और वहां जल और पिण्ड जो देते हैं वह सब उसको मिलता है ७५ ॥

मू० द्वादशाहात्परं घोरमायसं भीषणाकृतिम्।
याम्यं पश्यत्यथो जन्तुः कृष्यमाणः पुरं ततः ७६ ॥

टी०। ग़रज़ कि बारह रोज के बाद खींचा हुआ वह प्राणी भयानक आकारवाली लोहे से बनीहुई डरावनी यमपुरी को देखता है ७६ ॥

मू० गतमात्रोऽति रक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् ।
मृत्युकालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम् ७७ ॥

टी० । और जातेही वह जीव उसीवक्त यमराज को देखताहै जिसकी बहुत ही लाल लाल आंखें सांवला रङ्ग मृत्यु और काल और अन्तक आदि लोगों के बीच में बैठे हैं ७७ ॥

मू० दंष्ट्रा करालवदनं भृकुटी दारुणाकृतिम् ।
विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृत्तं व्याधिशतैः प्रभुम् ७८ ॥

टी० । और उनके बड़े बड़े दांतों व दाढ़ों से भयानक मुख मालूम होता है और जिनकी भौंह देखनेसे भय होता है और विरूप और भीषण मुखवाले सैकड़ों रोग चारों तरफसे उनप्रभुको घेरेहुये बैठे रहतेहैं ७८॥

मू० दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम् ।
तन्निर्दिष्टां ततोयाति गतिं जन्तुः शुभाशुभाम् ७९ ॥

टी० । और हाथ में दण्ड और फांस लिये हुये भयानक रूप व बड़ी बाहुवों वाले यमराज को देखकर उनकी आज्ञानुसार वह जीव अपने शुभाशुभ कर्म्मों का फल भोगने के वास्ते जाता है ७९ ॥

मू० रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृतो नरः ।
तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्य निशामय ८० ॥

टी० । जो मनुष्य झूठा है और जो झूठी गवाही देताहै उसको रौरव नाम नरक प्राप्त होताहै उस रौरव का हाल कहते हुये मुझसे सुनिये८०॥

मू० योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः ।
जानुमात्र प्रमाणश्च ततः श्वभ्रः सु दुस्तरः ८१ ॥

टी० । कि आठ हजार कोश चौगिर्द रौरव का प्रमाण है और घुटनू भर गहिरी जमीन अन्दर की उसके बड़ी कठिन है ८१ ॥

मू० तत्राङ्गारचयोपेतः कृतश्च धरणी समः ।
जाज्वल्यमानस्तीव्रेण तापिताङ्गारभूमिना ८२ ॥

टी० । और वह अङ्गारों से भरी है जिससे जमीन के बराबर करदी गई है और जमीन तमाम जलती हुई है ८२ ॥

मू० तन्मध्ये पापकर्म्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः।
सदह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति ८३॥

टी०। उसी रौरव के बीचमें पाप कर्म्मी मनुष्योंको यमदूत लोग डाल देते हैं तब वह अग्नि के दाह से व्याकुल हो उसमें दौड़ा२फिरताहै८३॥

मू० पदे पदे च पादोस्य शीर्य्यते जायते पुनः।
अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासं च गच्छति ८४॥

टी०। और क़दम क़दम पर पैर उसका उस आगके दाह से गलगल कर गिरता है व फिर पैदा होता है और दिन रातभर में फिर पैदल चलता है जो अङ्ग आंग से गलकर गिरता है वह उसी सख्ती के साथ दुरुस्त भी होता जाता है ८४॥

मू० एवं सहस्रमुत्तीर्णो योजनानां विमुच्यते।
ततोन्यं पापशुद्ध्यर्थं तादृङ्निरयमृच्छति ८५॥

टी०। इसी तरह वह आठों हजार कोश तक जलता फिरता है बाद उसके यमदूत लोग उसको उसमें से निकालकर और पापों की शुद्धि के लिये और नरक भोग कराने के वास्ते वैसेही नरक में ले जाते हैं ८५॥

मू० ततः सर्व्वेषु निस्तीर्णः पापी तिर्य्यक्त्वमश्नुते।
कृमिकीटपतङ्गेषु श्वापदे मशकादिषु ८६॥

टी०। गरज कि जब सब नरक वह भोग करलेताहै तब उसको ऊपर से पृथ्वी पर गिरा देते हैं यहांपर वह पक्षी और पिल्लू और कुत्ता और मच्छड़ व जङ्गली जीवों वगैरा की योनि में जन्म पाता है ८६॥

मू० गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च।
अन्यासु चैव पापासु दुःखदासु च योनिषु ८७॥

टी०। और हाथी और वृक्ष और गाय और घोड़ा इत्यादि के और दूसरे दूसरे दुःख देने वाले पापयोनि में भी जन्म पाता है ८७॥

मू० मानुषं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वामनोऽपिवा।
चाण्डालपुक्कसाद्यासु नरोयोनिषु जायते ८८॥

टी०। बाद उस के मनुष्य योनि में जाकर कुरूप और कुबड़ा और

वामन और डोम और चाण्डाल आदि योनियों में जन्म पाता है ८८ ॥

मू० अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः ।
ततश्चारोहणीं जातीं शूद्रवैश्यनृपादिकाम् ८९ ॥

टी०। फिर इन फलों को भोग करने उपरान्त जो बाक़ी रहजाता है वह कुछ पुण्य के साथ मिलने से शूद्र और वैश्य और क्षत्री इत्यादि जाति में जन्म पाता है ८९ ॥

मू० विप्रदेवेन्द्रतां चापि कदाचिदवरोहणीम् ।
एवन्तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यऽधः ९० ॥

टी०। तब कहीं देवता या ब्राह्मण के घर में जन्म पाता है ग़रज़। कि पापियों का नरक में जाना और दर्जा बदर्जा नरकों में फल भोग करते हुये ब्राह्मण के घर में पैदा होना यह तो मैं ने बयान किया ९० ॥

मू० यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु ।
तेयमेन विनिर्दिष्टां यान्ति पुण्यां गतिं नराः ९१ ॥

टी०। अब पुण्यमान यानी नेकचलन लोग जिसतरह यमराज से बतलाई हुई पुण्यदायक गति को जाते हैं और वहां फल भोग कर के फिर पृथ्वीपर जिस तरह आतेहैं उसहाल को मैं बयान करता हूं सुनिये ९१ ॥

मू० प्रगीतगन्धर्व्वगणाः प्रनृत्याप्सरसां गणाः ।
हारनूपुरमाधुर्य्यं शोभितान्युत्तमानि च ९२ ॥

टी०। कि जिस विमान पर गन्धर्व्व लोग गान करते हुये और अप्सरा लोग नृत्य करती हुई हार और नूपुर इत्यादि से और भी बड़ी बड़ी खूबियों से भरी रहती हैं और उत्तम शोभा संयुक्त हैं ९२ ॥

मू० प्रयान्त्याशुविमानानि नानादिव्यस्रगुज्ज्वलाः ।
तस्माच्च प्रच्युताराज्ञा मन्येषांच महात्मनाम् ९३ ॥

टी०। उसी विमान पर धर्म्मात्मा मनुष्य दिव्य मालाओं से सुशोभित होकर स्वर्ग को जाते हैं और वहां अपने कर्म्मानुसार स्वर्ग भोग के जब पृथ्वी में आते हैं तो और राजा या उत्तम महात्माओं के ९३ ॥

मू० जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्ते परिपालकाः ।
भोगान् संप्राप्नुवंत्युग्रांस्ततो यान्त्यूर्ध्वमन्यथा ९४ ॥

टी०। कुलमें उत्पन्नहोकर वहां सद्वृत्ति करके पालकहोते हैं और अच्छे अच्छे भोग की चीज़ें भोग करतेहैं बाद उसके ऊर्ध्व लोकमें जातेहैं ६४॥

मू० अवरोहणीञ्च सम्प्राप्य पूर्व्ववद्यान्ति मानवाः।
एतत्ते सर्व्वमाख्यातं यथा जन्तुर्विपद्यते॥
अतः शृणुष्वविप्रर्षे यथागर्भं प्रपद्यते ६५॥

टी०। धर्म्मात्मा लोग इसी तरह पहले की नाईं स्वर्ग से नीचे उतर पृथ्वी पर आकर आनन्द करते हैं और फिर पृथ्वी से स्वर्गमें जाकर खुश रहते हैं यह सब जीवोंके सुख और दुःख भोग करने का हाल मैंने आपसे कहदिया कि जिस तरह प्राणी विपत्ति को प्राप्त होता है अब जिस तरह जीव गर्भ में प्राप्त होते हैं उसका हाल कहता हूँ सुनिये ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणेपितापुत्रसंवादे दशमोऽध्यायः १०॥

ग्यारहवां अध्याय॥

पुत्रउवाच॥

मू० निषेकं मानवं स्त्रीणां बीजं प्राप्तं रजस्यथ।
विमुक्तमात्रो नरकात् स्वर्गाद्वापि प्रपद्यते १॥

टी०। फिर उस लड़के ने कहा कि ए पिता! पुरुष का वीर्य्य जब स्त्री के रजमें प्राप्त होता है तब उस वक्त में जीव स्वर्ग या नरकसे छूटतेही उसी रज वीर्य्य में दाखिल होजाता है १॥

मू० तेनाभिभूतं तत्स्थैर्य्यं याति बीज द्वयं पितः।
कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च २॥

टी०। और हे पिता जी! वह रज और वीर्य्य दोनों इकट्ठा और थिर होकर उबलने लगता है फिर कलाव ला होके मानिन्द बुलबुले के होकर पिण्ड बनजाता है २॥

मू० पेश्या यथाणुबीजंस्यादंकुरस्तद्वदुच्यते।
अङ्गानाञ्च तथोत्पत्तिः पञ्चानामनुभागशः ३॥

टी०। फिर जैसे छोटाबीज खेत में अंकुर देता है उसी तरह उस

पिण्ड में से अंकुर निकलता है फिर उसी पिण्ड में से पाँच भाग होकर पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं ३ ॥

मू० उपाङ्गान्यंगुलीनेत्र नासास्यश्रवणानि च।
प्ररोहं यान्ति चाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्यो नखादिकम् ४ ॥

टी०। फिर अंगुली और आँख कान नाक मुख बाद उसके उनअंगों से नख और उपअंग सब पैदा होते हैं ४ ॥

मू० त्वचिरोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम्।
समं समृद्धि मायाति तेनैवोद्भवकोशकः ५ ॥

टी०। फिर त्वचा यानी चमड़ा उसमें पैदा होकर रोम निकलते हैं फिर शिरके बाल पैदा होते हैं और जिसतरह दिन बदिन जीव उस में बढ़ता है उसी तरह स्त्री का उदरभी बढ़ता जाता है ५ ॥

मू० नारिकेलफलं यद्वत् सकोशं वृद्धिमृच्छति।
तद्वत्प्रयात्यसौ वृद्धिं सकोशोऽधो मुखः स्थितः ६ ॥

टी०। फिर जिसतरह नारियल का फल बढ़ताहै उसीतरह वह जीव कोशसमेत गर्भ में शिर नीचे कियेहुये बढ़ता है इसतरह पर ६ ॥

मू० तलेतु जानुपार्श्वाभ्यां करौन्यस्य स वर्द्धते।
अंगुष्ठौ चोपरिन्यस्तौ जान्वोरग्रे तथाङ्गुलीः ७ ॥

टी०। कि दोनों जानु उसके दोनों पाँजरके साथ रहते हैं और दोनों हाथ पाँजर और जानु के बीच में रहकर बढ़ता है और हाथका अँगूठा ऊपर की तरफ़ रहता है और अँगुलियाँ उसकी जानुकी पीठ पर आगे को निकली रहती हैं ७ ॥

मू० जानु पृष्ठे तथानेत्रे जानुमध्ये च नासिका।
स्फिचौपार्ष्णिद्वयस्थे च बाहुजङ्घे बहिः स्थिते ८ ॥

टी०। और उसीतरह जानु की पीठपर आँखें उसकी रहतीहैं और दोनों जानु के बीचमें नाक रहती है और दोनों कूले दोनों पाँजरमें सटे रहते हैं और कोहनी पीछेकी तरफ़ निकली रहती हैं ८ ॥

मू० एवं वृद्धिक्रमायाति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः।

अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथारूपं तथा स्थितिः ९॥

टी०। इसीतरह आहिस्ता आहिस्ता बढ़ने के क्रमसे स्त्री के गर्भ में वह जीव बढ़ता है और अन्य जन्तुभी इसी हिसाब से अपने रूपसे पेट में रहतेहैं याने जिसका जैसा रूप है उसकी वैसेही बैठक होती है ९॥

मू०। काठिन्यमग्निना याति भुक्तपीतेन जीवति।
पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे १०॥

टी०। ग़रज़ कि उस गर्भमें अग्निसे कठिनताको प्राप्त होता है व जो अन्न और जल वह गर्भवती खाती पीती है उसी से उसकाभी पालन होता है जैसे संसार में सुख और दुःख हैं उसीतरह अपने पाप और पुण्यके कर्म्मानुसार उसगर्भ में भी जीवको भोगना होताहै १०॥

मू०। नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यान्तस्य निबध्यते।
स्त्रीणां तथान्त्रशुषिरे सा निबद्धो विजायते ११॥

टी०। और आप्यायनी नाम याने पोषण करनेवाली जो नाड़ी स्त्री के आँतों के छिद्र में है उसी में उस जीवकी तोंदी बँधी रहती है ११॥

मू०। क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यथा।
तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै १२॥

टी०। और जिस तरह खाना और पीना स्त्रीके पेट में घूमताहै उसी तरह वह जन्तु भी उस गर्भ में घूमता रहता है और जो चीज़ गर्भवती खाती-पीती हैं वही उसका भी आहार है और उसीसे पुष्ट होकर यह प्राणी बढ़ता रहता है १२॥

मू०। स्मृतीस्तस्य प्रयान्त्यस्य बह्वचस्संसारभूमयः।
ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः १३॥

टी०। और उस गर्भमें सख्ती के साथ इधर उधर घूमनेसे पिछले सब जन्मोंका हाल उसको याद आजाताहै उससे वैराग्यको प्राप्तहोताहै १३॥

मू०। पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात्।
तथा तथायतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहंयथा १४॥

टी०। और कहता है कि इस उदर से जो मेरा उद्धार होजाय तो छू-

टतेही ऐसा कर्म न करूँगा बल्कि वैसी यत्न करूँगा कि जिस यत्न करने से फिर कभी गर्भ में न आऊँ १४ ॥

मू० इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै।
यानि पूर्वानुभूतानि दैवभूतानि यानि वै १५ ॥

टी०। यह चिन्ता करने से उसको सैकड़ों जन्म के सैकड़ों दुःख याद आते हैं यानी दैवी या अपने कर्मके फल से जो पहले गुज़राहै और जो आइन्दा गुज़रैगा उन सब बातों का ज्ञान उसको होजाता है १५ ॥

मू० ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्त्तत्यधोमुखः।
नवमे दशमे वापि मासिसंजायते यतः १६ ॥

टी०। फिर वह जीव समय के क्रम से नवें या दशवें महीने में घूमते घूमते नीचे मुख करके जिससे पैदा होता है १६ ॥

मू० निष्क्राम्यमाणे वातेन प्राजापत्येन पीड्यते।
निष्क्राम्य ते च विलपन् हृदि दुःखनिपीडितः १७ ॥

टी०। जब निकलना चाहता है तब प्राजापत्य के प्रेरने से जो वायु उसको निकालती है उससे वह जीव हृदय में पीड़ित और दुःख संयुक्त विलाप करता हुआ वहां से निकाला जाता है १७ ॥

मू० निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते।
प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसमन्वितः १८ ॥

टी०। पर उदर से निकलते ही असह्य मूर्च्छा में आजाता है फिर वायु के स्पर्श से संयुत हो उसीवक्त उसको चेत भी होजाता है १८ ॥

मू० ततस्तं वैष्णवीमाया समास्कन्दति मोहिनी।
तया विमोहितात्मासौ ज्ञानभ्रंश मवाप्नुते १९ ॥

टी०। तब उसवक्त में वैष्णवी माया जो है मोहनी सो आकर उसे छाप लेती है तब उस माया से मोहित होजाने से ज्ञान उसका नाश होजाता है १९ ॥

मू० भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते।
ततःकौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि २० ॥

मू० नास्ति तात सुखं किञ्चिदत्र दुःखशताकुले।
तस्मान्मोक्षाय यतता कथंसेव्या मयात्रयी ३२ ॥

टी०। और ऐ पिता! सैकड़ों दुःखों से भरे हुए इस संसार में सुख कुछ नहीं है हमेशा करोड़ों तरह के दुःख ही लगे रहते हैं इसवास्ते मैं अपने मोक्षकी यत्न करता हूं तो उसे छोड़कर इस त्रयी धर्म्म को क्यों सेवन करूं ३२ ॥

इति श्रीमार्क्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेएकादशोऽध्यायः ११ ॥

अथ बारहवां अध्याय ॥

पितोवाच ॥

मू० साधु वत्स त्वयाख्यातं संसारगहनंपरम्।
ज्ञानप्रदानसम्भूतं समाश्रित्य महा फलम् १ ॥

टी०। फिर पिता ने अपने पुत्र सुमति से कहा कि ऐ पुत्र! ज्ञान दान से पैदा हुए महा फल का आश्रय करके यह कठिन वनरूपी संसार को तूने बहुत अच्छा वर्णन किया १ ॥

मू० तत्र ते नरकाः सर्व्वे यथावै रौरवस्तथा।
वर्णितास्तान् समाचक्ष्व विस्तरेण महामते २ ॥

टी०। और हे महामते! जिस तरह तूने रौरव नाम नरक का वर्णन किया है उसी तरह और सब नरकों का हाल भी विस्तारसे बयानकर २ ॥

पुत्र उवाच ॥

मू० रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया।
महारौरवसञ्ज्ञन्तु शृणुष्व नरकं पितः ३ ॥

टी०। सुमति ने कहा कि ऐ पिता! पहले मैं रौरवका हाल तो तुमसे कहही चुका हूँ अब महा रौरव नामक नरक का हाल सुनिये ३ ॥

मू० योजनानां सहस्राणि सप्त पञ्च समन्ततः।
तत्र ताम्रमयीभूमिरधस्तस्य हुताशनः ४ ॥

टी०। कि बारह कुला योजन चौतर्फा उस नरक का प्रमाण है और उसकी जमीन तांबे की है कि जिसके नीचे अग्नि की खानि है ४ ॥

मू० तत्तापतप्तासर्व्वाशा प्रोद्यदिन्दुसमप्रभा।
विभात्यति महारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु ५ ॥

टी०। और उसके तापसे सब दिशाएँ जलती हैं और सब दिशा में उदयकाल के चन्द्रमा के समान रोशनी रहती है कि जिससे देखने छूने और नजदीक जाने से भय बहुत होताहै ऐसी डरावनी शोभितहै ५ ॥

मू० तस्यां बद्धः कराभ्याञ्च पद्भ्यां चैव यमानुगैः।
मुच्यते पापकृन्मध्ये लुण्ठमानः स गच्छति ६ ॥

टी०। उसीनरकके बीचमें पापियों के हाथ और पांव बांधकर यमदूत लोग डाल देते हैं और वह पापी उसमें गिरकर लोटता हुआजाताहै ६ ॥

मू० काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्म्मशकैस्तथा।
भक्ष्यमानस्तथागृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते ७ ॥

टी०। और कौवा बगुला भेंड़िया उल्लू बीछी मसा गिद्ध इत्यादि उस पापी को रास्तेमें जल्दी घसीट घसीट कर नोचे खाते हैं ७ ॥

मू० दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः।
वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति ८ ॥

टी०। तब वह उन कष्टों से जलताहुआ व विकल वह मा बाप और भाई को बार बार पुकारता है और ऊबा हुआ वह किसी तरह चैन नहीं पाता ८ ॥

मू० एवं तस्मान्नरैर्म्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते।
वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः ९ ॥

टी०। इसी तरह लाखों वर्ष तक कष्ट भोग करने के बाद वे आदमी उसमें से निकाले जातेहैं कि जिन दुष्टबुद्धियोंने पाप किया है ९ ॥

मू० तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः।
महारौरववद्दीर्घस्तथा स तमसावृतः १० ॥

टी०। और ऐ पिता! इसी तरह का अन्यतम नाम नरक भी जो महा

रौरव के बराबर लम्बा और चौड़ा है उस में शीतातङ्क भयानक और बड़ी अँधियारी है १० ॥

मू० शीतार्त्तास्तत्र धावन्तो नरास्तमसि दारुणे।
परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्तिच ११ ॥

टी०। उसमें जो पापी लोग पड़ते हैं वह मारे सरदी के व्याकुल होकर भयानक अन्धकार में दौड़ते फिरते हैं और एक दूसरे के शरीरमें लिपटता फिरताहै ११ ॥

मू० दन्तास्तेषाञ्च भज्यन्ते शीतार्तिपरिकम्पिताः।
क्षुत्तृष्णाः प्रबलास्तत्र तथैवान्ये ऽप्युपद्रवाः १२ ॥

टी०। और मारे जाड़े के दुखसे इतना कांपते हैं कि उनके दांत दांत से ठोकर खाते खाते टूटजाते हैं और उसमें भूँख और पियास बहुत प्रबल है और और बहुत तरहकी तकलीफ़ें हैं १२ ॥

मू० हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्यस्थीनि दारुणः।
मज्जासृग्गलितन्तस्मादश्नन्तिच क्षुधान्विताः १३ ॥

टी०। और हिमखण्ड को लानेवाली डरावनी हवा उसमें इस ज़ोर से पहुँचती है कि हड्डियों को तोड़डालती है कि जिससे उस नारकी का शरीर कट कटकर गिरताहै और भूँख और प्याससें खून और पीब जो उसके शरीर से गिरता है वही भूँखसे युक्तहो खाता पीताहै १३ ॥

मू० लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्पर समागमे।
एवं तत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः १४ ॥

टी०। और उसमें पापीलोग आपस में मिलने से एक दूसरे का शरीर चाटते हुये घुमाये जाते हैं इसी तरह उस तम नाम नरक में भी पापी लोग बड़ा कष्टपाते रहते हैं १४ ॥

मू० प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ यावद्दुष्कृतसंक्षयः।
निःकृन्तन इतिख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः १५ ॥

टी०। उस वक्त तक कि जब तक उसके पापका नुक़्सान पूरा होताहै और ऐ द्विजश्रेष्ठ! सिवाय इसके निःकृन्तन नाम नरक एक बड़ा भारी प्रसिद्ध है १५ ॥

मू० तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतम्पितः।
तेष्वारोप्यनिकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः १६॥

टी०। ऐ पिता! उसमें कुम्हार के चाक की तरह हमेशा घूमते रहते हैं और उस चक्र में पापीलोगों को कालसूत्र से काटते हैं १६॥

मू० यमानुगाङ्गुलिस्थेन आपादतलमस्तकम्।
नचैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम १७॥

टी०। हे द्विजोत्तम! यमदूत लोग कालसूत्र अंगुली में लपेटे रहते हैं उसी से पापियों को पांव से मस्तक तक काट डालते हैं पर प्राण उन पापियों के नहीं निकलते १७॥

मू० छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च।
एवं वर्षसहस्राणि छिद्यन्ते पापकर्म्मिणः १८॥

टी०। और सैकड़ों टुकड़े उसके शरीरके होते रहते हैं और फिर एक में मिलकर दुरुस्त भी होते जाते हैं इसतरह हजारों वर्ष पापीलोग उस चक्रपर रहते हैं और ज़ख़मों के सदमे सहाकरते हैं १८॥

मू० तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम्।
अप्रतिष्ठञ्च नरकं शृणुष्व गदतो मम १९॥

टी०। यानी जब तक अपने सर्व्वपापों को अच्छी तरह भोग नहीं करलेते हैं तब तक उसमें से नहीं निकलने पाते हैं. ऐ पिता! अब अप्रतिष्ठ नाम नरक का हाल कहताहूँ मुझसे सुनिये १९॥

मू० यत्रस्थैर्न्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते।
तान्येव तत्रचक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः २०॥

टी०। कि जिसमें टिकेहुये नारकीलोग रहकर महादुःखको भोगते हैं उसमें वेही कुलालचक्र और घटीयन्त्र दोनों हैं २०॥

मू० दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्म्मकृतां नृणाम्।
चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः २१॥

टी०। पापकर्म्मी मनुष्यों के दुःख भोग करने के वास्ते ये सब बने हैं कितने आदमी तो उन्हीं चक्रोंपर बैठालकर घुमाये जाते हैं २१॥

मू० यावद्वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिरन्तरा।
घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी २२॥

टी०। जबतक हज़ार वर्ष पूरे होते हैं तबतक उसी तरह घूमता रहताहै आराम नहीं पाता और अन्य घटीयन्त्र में बांधे जाते हैं जैसे कि जल में रहँट बांधाजाताहै २२॥

मू० भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः।
अस्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरस्रुविलम्बिभिः २३॥

टी०। कि जिस घटीयन्त्रमें घूमते घूमते बार २ मुख और नेत्रसे आँसू और रुधिर निकलता रहता है २३॥

मू० दुःखानि ते प्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः।
असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् २४॥

टी०। यानी जो जो कठिन दुःख हैं वह सब उन पापियों को भोगना पड़ता है अब दूसरे असिपत्रवन का हाल कहताहूं सुनिये २४॥

मू० योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः।
तप्ताःसूर्य्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः २५॥

टी०। कि हज़ार योजन चौगिर्द उसका प्रमाण है और वह दहकती हुई अग्निसे भराहुआ है और वहां कठिन सूर्य्य के किरणों की गरमी पड़ती है जो किरणें अत्यन्त कठिन हैं २५॥

मू० प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः।
तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्र विभाव्यते २६॥

टी०। उस नरक में पापीलोग सदा गिरायेजाते हैं और उस नरक के बीचमें पेड़ जो हैं उन सबके चीकने पत्ते तलवारसे ज़ियादा तेज़हैं२६॥

मू० पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम।
श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः २७॥

टी०। हे द्विजोत्तम! तहां खड्ग के फल और पत्ते हैं और बड़े बड़े ज़बरदस्त हज़ारों कुत्ते चारों ओर भूँकते हैं २७॥

मू० महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः।
ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः २८॥

टी०। जिनके मुहँ और दाढ़ें बड़ी हैं व बाघकी तरह भयानक देखाई पड़ते हैं उसी वनके अन्तर में आगे एक जगह ऐसी है कि जहां वृक्षों की छाया देखने से मालूम होताहै कि यहाँ सरदी है २८॥

मू० प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीव्रतृट्परिपीडिताः।
हा मातर्हा तात इति क्रन्दन्तोऽतीवदुःखिताः २९॥

टी०। परन्तु पापी लोग वहां जाकर कठिन प्यास के क्लेश से दुःखी होकर हा माता! हा पिता! कह कर अतिदुःखी होरोते हैं २९॥

मू० दह्यमानांघ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना।
तेषांगतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः ३०॥

टी०। और वहां की जमीन जलती रहने से दोनों पैर उनके जलते हैं और हवा के झकोर से जो पत्ते दरख़्तों के तलवार समान डोलते हैं तो उससे वहांगये हुये पापियों के शरीर कटते हैं ३०॥

मू० प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गान्यथोपरि।
ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसञ्चये ३१॥

टी०। और फिर ऊपर से जो तलवारकेसे पत्ते उनके अङ्ग पर गिरते हैं उससे वे पापी मूर्च्छा खाकर जलतीहुई बहुत अग्निवाली जमीन पर गिर पड़ते हैं ३१॥

मू० लेलिह्यमाने चान्ये च व्याप्ताशेषमहीतले।
सारमेयास्ततश्शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः ३२॥

टी०। और जबान उनकी मुँह के बाहर निकल पड़ती है कि जिस से मालूम होता है कि वह अग्निसे भरीहुई सब जमीन को चाटता है और उसी हालत में कुत्ते सब दरख़्तों के उसके शरीर में जल्दी लपट जाते हैं ३२॥

मू० तेषामङ्गानि रुदतामनेकान्यतिभीषणाः।
असिपत्रवनं तात मयैतत्कीर्तितं तव ३३॥

टी०। कि जिस कष्ट से वह पापी फूट फूट रोता है व उनके अंगों को बड़े भयावने वे कुत्ते काटते हैं हे पिता! यह हाल अ... का है जो मैं ने तुमसे कहा ३३॥

मू० अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे।
समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ३४॥

टी०। अब इस के बाद तप्तकुम्भ नाम नरकका हाल मुझ से सुनिये जोकि अत्यन्त भयानक है व उसमें अग्निकी ज्वालाओं से घिरे व तचते हुये घड़ा सबओर हैं उसका भी प्रमाण असिपत्रके बराबर है ३४॥

मू० ज्वलदग्निचयोद्वृत्ततैलायश्चूर्णपूरिताः।
तेषु दुष्कृतकर्म्माणो याम्यक्षिप्ता ह्यधोमुखाः ३५॥

टी०। और वह अग्नि की ज्वाला और खौलते हुये तेल और दहकते हुये लोहसे भरा हुआहै कि जिस में पापकर्म्मी मनुष्यों को यमदूतलोग अधोमुख करके डालदेते हैं ३५॥

मू० क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रगलन्मज्जजलाविलाः।
स्फुरत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः ३६॥

टी०। कि जिस से उसके फूटेहुये शरीर का गिराहुआ मज्जा जल कर मलिन जलसा होजाता है और अत्यन्त कष्टमें पड़कर निर्जीव सा होजाता है तब उसके शिर और आँख और शरीर की हड्डियोंको अलग अलग बड़े बड़े भयानक गीध काटते हैं ३६॥

मू० गृध्रैरुत्पाट्यमुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः।
पुनः सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च ३७।

टी०। व जब गीध सब निकाल लेते हैं तब फिर यमदूतलोग उस को इकट्ठा और दुरुस्त करके खौलते हुये तेल के कुम्भ में डालदेते हैं तब वे उसी तेल में मिलजाते हैं ३७॥

मू० द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः।
ततो याम्यैर्नरैराशु दर्व्याघट्टनघट्टिताः ३८॥

टी०। उसमें उसका शिर और शरीर और हड्डियाँ और नसें और मांस और चमड़ा सब पककर बहनेवाला होजाता है और यमदूतलोग हाथ में कलछुला लिये हुये उसी से उसको जल्दी उलट पलट के घोटते रहते हैं ३८ ॥

मू० कृतावर्त्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्म्मिणः।
एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मया पितः ३९ ॥

टी०। इसीतरह उन पापियों को खौलतेहुये तेल में मथन करते हैं ऐ पिता! यह तप्तकुम्भनाम नरकका हाल आपसे मैंने विस्तारपूर्वककहा ३९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितृपुत्रसंवादेरौरवादिनरकाख्यानंद्वादशोऽध्यायः १२ ॥

अथ तेरहवां अध्याय ॥

पुत्रउवाच ॥

मू० अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तु सप्तमे।
समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान् पुरा १ ॥

टी०। फिर सुमति ने कहा कि ऐ पिता! अगले वक्त इस जन्म से पहिले सातवें जन्म में मेरी पैदायश वैश्य के कुल में थी उसी जन्ममें एक समय गौवें पानी पीने को जाती थीं मैंने पौशाला में पीने न दिया याने रोक दिया १ ॥

मू० विपाकात् कर्म्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम्।
संप्राप्तोऽग्निशिखाघोरमयोमुखखगाकुलम् २ ॥

टी०। उसी कर्म्म के फल से मैं बड़े घोर नरक में प्राप्त हुआ कि जिसमें अग्निकी ज्वाला और लोहे के मुँहवाले पक्षी भरे थे २ ॥

मू० यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भुतकर्दमम्।
विशस्यमानदुष्कर्म्मितन्निपातरवाकुलम् ३ ॥

टी०। और जिस में तरह तरहके यन्त्रोंकी पीड़ा के सबब से पापियों के शरीर से रुधिर बह बहकर अद्भुत कीचड़ काँदो होरहाथा और मारने व गिराने के सबब से उन पापियोंके रोने पीटनेका शोर मचरहाथा ३ ॥

मू० पात्यमानस्य मे तत्र साग्रं वर्षशतं गतम्।
महातापार्त्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्य च ४॥

टी०। ऐसे घोर नरकमें पड़कर कुछ ज़ियादह सौ वर्ष तक मैंने कष्ट पाया यानी उस नरक की आगकी बड़ी दाह में वेक़रार रहकर प्यासकी जलन सहा किया ४॥

मू० तत्राह्लादकरः सद्यः पवनः सुखशीतलः।
करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थो मे समागतः ५॥

टी०। बाद उसके मैं तप्त बालूके कुम्भ में डालागया वहांपर आनन्द और सुख देनेवाली ठंढी हवा उसी समय में मेरे समीप आने लगी ५॥

मू० तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम्।
मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निर्वृतिःपरा ६॥

टी०। कि जिसके स्पर्श से नारकीलोगों को यातनाका दुःख नहीं मालूम होता था और मुझको भी वहाँ जैसे स्वर्गवासियोंको उत्तम सुख होता है उसीतरह का प्राप्तहुआ ६॥

मू० किमेतदितिचाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः।
दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम् ७॥

टी०। उसवक्त मैं अचम्भे में आकर चिन्ता करने लगा कि यह सुख मुझको कहाँ से मिला कि इतनेमें उस जगह पर एक मनुष्यको जो मनुष्यों में रत्नथा आँखें फैलाये हुये हमलोगों ने देखा कि आया है ७॥

मू० याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोऽशनिप्रभः।
पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीति वागथ ८॥

टी०। और उसके आगे आगे एक भयानक पुरुष यमदूत वज्र के समान प्रकाशमान को देखा कि हाथ में दण्ड लिये उस मनुष्य को राह दिखलाता है यानी कहता है कि इस तरफ़से आवो ८॥

मू० पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसंकुलम्।
नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः ९॥

टी०। उसवक्त वह पुरुष सैकड़ों पीड़ाओं से भरेहुये नरकको देखकर दया से आविष्टहो उस यमदूतसे कहने लगा ६॥

पुरुष उवाच ॥

मू० भो याम्य पुरुषाचक्ष्व किं मया दुष्कृतं कृतम्।
येनेदं यातनाभीमं प्राप्तोऽस्मि नरकं परम् १० ॥

टी०। पुरुषबोला कि ऐ यमदूत! यह मुझको बतलावो कि मैंने कौन ऐसा कुकर्म्म किया है कि जिसके बदले ऐसे नरक में तू मुझे लाया है कि जो पीडाओं से भयानक है १०॥

मू० विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहं कुले।
जातो विदेहविषये सम्यङ्मनुजपालकः ११ ॥

टी०। विदेह के देश में मैं राजा जनक के कुल में पैदा हूँ विपश्चित् नाम मेरा तमाम शहर में मशहूर था मैं हमेशा योगयुक्त रहकर मनुष्यों का हर तरह से पालन करता था ११॥

मू० यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्म्मतः पालिता मही।
नोत्सृष्टश्चैव संग्रामो नातिथिर्विमुखो गतः १२ ॥

टी०। और तरह तरह की बहुत यज्ञों से मैंने पूजन किया व धर्म्म से पृथ्वी पालन करता था और किसी शत्रु को मैंने कभी पीठ नहीं दिखलाई और किसी अभ्यागत को निराश नहीं किया १२॥

मू० पितृदेवर्षिभृत्याश्च न चापचरिता मया।
कृता स्पृहा न च मया परस्त्रीविभवादिषु १३ ॥

टी०। और पितर और देवता और ऋषि और भाई बन्धु नौकर चाकर वग़ैरह इन सबों को कभी तकलीफ़ न दिया और मैंने कभी पराई स्त्री और धनकी इच्छा नहीं किया १३॥

मू० पर्व्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः।
पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः १४ ॥

टी०। और पूर्व्वकाल में पितर और तिथिकाल में देवता लोग मनुष्यों के पास आपही आते हैं जैसे गौवें पौशाला पर आती हैं १४॥

मू० यतस्ते विमुखा यान्ति निश्श्वस्य गृहमेधिनः।
तस्मादिष्टश्च पूर्त्तश्च धर्म्मौ द्वावपि नश्यतः १५ ॥

टी०। तो जिस गृहस्थ के घर से वे लोग यानी पितर और देवता और ऋषि वगैरह निराश होकर फिर जाते हैं तो उन मनुष्यों का किया हुआ सम्पूर्ण यज्ञ और पूर्तकर्म दोनों भी धर्म्म नाश होजाते हैं १५॥

मू० पितृनिःश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्जितं शुभम्।
त्रिजन्मप्रभवं दैवं निःश्वासो हन्त्यसंशयम् १६॥

टी०। वल्कि पितर के निराश होने से उस मनुष्य का कमाया हुआ सात जन्म का पुण्य नाश होता है और देवता के निराश होनेसे तीन जन्म की नेक कमाई मनुष्यों की बरबाद जाती है १६॥

मू० तस्माद्दैवे च पित्र्ये च नित्यमेवाहितोऽभवम्।
सोऽहंकथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम् १७॥

टी०। इस वास्ते मैं देवता और पितरलोगों के कार्य में सावधान हो हमेशा पूजा और तर्पण किया करता था तब जो यह बहुत दारुणनरक मुझे प्राप्त हुआ सो किस तरह से हुआ १७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितृपुत्रसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः १३॥

अथ चौदहवां अध्याय॥

पुत्र उवाच॥

मू० इति पृष्टस्तदा तेन शृण्वतां नो महात्मना।
उवाच पुरुषो याम्यो घोरोऽपि प्रसृतं वचः १॥

टी०। फिर सुमति ने कहा कि ऐ पिता! हमलोगों के सुनते हुये यह वचन उस महात्मा विपश्चित् का सुनकर वह यमदूत घोर स्वभाववाला भी मधुरवाणी से कहने लगा १॥

यमकिङ्कर उवाच॥

मू० महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः।
किन्तु स्वल्पं कृतं पापं भवता स्मारयामि तत् २॥

टी०। यमदूत बोला कि ऐ महाराज! तुमने जो कहा वह सब सत्य है

इसमें कुछ सन्देह नहीं पर कुछ थोड़ा सा पाप जो तुमने पिछले जन्म में किया है उसको मैं याद दिलाता हूँ २॥

मू० वैदर्भी तव या पत्नी पीवरीनाम नामतः।
ऋतुमत्या ऋतुर्बन्ध्यस्त्वया तस्याः कृतः पुरा ३॥

टी०। और वह यह है कि विदर्भ देशकी राजकन्या पीवरी नाम स्त्री तुम्हारी जिस वक्त कि ऋतुमती यानी रजस्वला धर्म से पाक हुई थी उसवक्त तुमने गमन से उसको निराश करके ऋतु को बिन फलवाला कर दिया है ३॥

मू० सुशोभनायां कैकेय्यामासक्तेन ततो भवान्।
ऋतुव्यतिक्रमात् प्राप्तो नरकं घोरमीदृशम् ४॥

टी०। अपनी दूसरी स्त्री सुशोभना नाम राजा केकय की कन्या से कामासक्त होकर भोग किया था जोकि तुमने पहिली स्त्री की ऋतु की रक्षा न किया इसवास्ते यह ऐसा घोर नरक तुमको प्राप्त हुआ है ४॥

मू० होमकाले यथावह्नि राज्यपातमवेक्षते।
ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ५॥

टी०। जैसे होमकाल में अग्नि आहुति की इच्छा रखती है वैसेही स्त्रियों की योनि के देवता प्रजापति ऋतुकाल में बीज प्राप्त होने की इच्छा रखते हैं ५॥

मू० यस्तमुल्लङ्घ्यधर्म्मात्मा कामेष्वासक्तिमान् भवेत्।
सतु पित्र्याद्दणात् पापमवाप्य नरकं पतेत् ६॥

टी०। इसलिये उसवक्त में यानी ऋतुकाल में जो धर्म्मात्मा उसको नांघकर अपने काममें आसक्त होकर उससे भोग नहीं करताहै वह पितृ ऋणके पापसें दोषी होकर नरक में गिराया जाता है ६॥

मू० एतावदेव ते पापं नान्यत् किञ्चन विद्यते।
तदेहि गच्छ पुण्यानामुपभोगाय पार्थिव ७॥

टी०। ऐ राजन्! इतनाही तुम्हारा पाप है और कुछ नहीं है कि जिस सबब से यह नरक तुम को भोग कराया गया अब तुम स्वर्ग को चलो वहां चलकर अपने पुण्यों का फल भोग करो ७॥

राजोवाच ॥

मू० यास्यामि देवानुचर यत्र त्वं मां नयिष्यसि।
किञ्चित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ८ ॥

टी०। यह बात यमदूत से सुनकर फिर राजा ने कहा कि ऐ देवदूत! जहां तुम मुझे लेचलोगे वहां मैं चलूँगा पर जो कुछ बात मैं पूछता हूँ उसका तुम यथायोग्य जवाब देलो ८॥

मू० वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः।
पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वदेषां भवन्ति हि ९ ॥

टी०। और वह यहहै कि ये कौवे जो इन सब मनुष्यों की आंखें वज्र के समान तुण्ड चोंच से खींच खींच कर खातेहैं और फिर इनके वैसेही दुरुस्त होती जाती हैं ९॥

मू० किं कर्म्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम्।
हरन्त्येषां तथा जिह्वां जायमानां पुनर्नवाम् १० ॥

टी०। और इनलोगों ने कौन सा निन्दित कर्म्म किया है कि बार बार कौवे सब जीभ खींच लेते हैं वह फिर जमजाती है कि जिस सबब से वे कष्ट में पड़े हैं यह कहिये १०॥

मू० करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽतिदुःखिताः।
करम्भबालुकास्वेते पच्यन्ते तैलगोचराः ११ ॥

टी०। और ये लोग जो अतिदुःखी करपत्र याने आरों से काटे जाते हैं और कोई तप्त बालू में और कोई खौलते हुये तेल में पक रहे हैं ११॥

मू० अयोमुखैः खगैश्चैते कृष्यन्ते किंविधा वद।
विश्लिष्टदेहबन्धार्त्तिमहारावविराविणः १२ ॥

टी०। और कितनों के मांस लोह मुखवाले गीध और कौवे इत्यादि ऊपर से शिर झुकाकर नोच नोच खाते हैं व पुष्ट बँधीहुई देहके बन्धन से वे लोग शोर गुल मचाते हैं १२॥

मू० अयश्चञ्चुनिपातेन सर्व्वाङ्गक्षतदुःखिताः।
किमेतेऽनिष्टकर्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः १३ ॥

टी०। और इन लोगों ने कौनसा कुकर्म्म किया है कि पक्षियों की लोहमय चोंच के द्वारा घाव करने से उनके सब शरीर से रुधिर बहता है कि जिस सबब से दुःख में दिनरात आर्त्त होरहे हैं १३॥

मू० एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्म्मिणाम्।
येन कर्म्मविपाकेन तन्ममाशेषतो वद १४॥

टी०। और सिवाय इसके और और पापीलोग भी जिस कर्म्म के फल से तरह तरह के और कष्ट में पड़े देखेजाते हैं इसका सब हाल विस्तारपूर्व्वक बयान करो कि ये लोग किस किस पाप के सबब से इन कष्टों में पड़े हैं १४॥

यमकिङ्कर उवाच॥

मू० यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्म्मफलोदयम्।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम् १५॥

टी०। यह बात राजा की सुनकर यमदूत बोला कि ऐ राजन्! जो तुमने पाप और उसके फल की बात मुझसे पूछा है वह सब सत्य२संक्षेप से मैं तुमसे बयान करता हूँ सुनिये १५॥

मू० पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्य्यायेण समश्नुते।
भुञ्जतश्च क्षयं याति पापं पुण्यमथापि वा १६॥

टी०। कि पुण्य और पाप यह दोनों मनुष्यों को क्रम से अवश्य भोगना पड़ताहै और भोगकरने से दोनों पाप या पुण्य भी आखिर कटही जाते हैं १६॥

मू० न तु भोगादृते पुण्यं किञ्चिद्वा कर्म्म मानवम्।
पावकं वा पुनात्याशु क्षयो भोगात्प्रजायते १७॥

टी०। पाप या पुण्य का दुःख और सुख या कुछ कर्म भोग किये विना मनुष्यों को छुट्टी नहीं मिलती है यह बात जरूरीहै कि भोगहीसे पाप क्षय होता है १७॥

मू० परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे।
दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् १८॥

टी०। पापी पुरुष दुर्भिक्षसे दुर्भिक्ष और क्लेशसे क्लेश और भय से भय

पाताहै व पुण्य भोगने से पुण्य और पाप भोगने से पाप छूटता है यह मुझ से जानिये १८ ॥

मू० मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्म्मिणः ।
गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्म्मबन्धनात् १९ ॥

टी० । और दरिद्री पापकर्म्मी मनुष्य मरने पर भी मरता है और पाप कर्म्म के बन्धन से तरह तरह की गति को जाता है १६ ॥

मू० उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखम् ।
श्रद्दधानाश्च शान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः २० ॥

टी० । और जो पुण्यवाले मनुष्य श्रद्धायुक्त और शान्त और शुभकर्मी और धनद हैं उनको शुभ से अति शुभ और उत्सव से अति उत्सव और स्वर्ग से स्वर्ग और सुख से सुख प्राप्त होताहै २० ॥

मू० व्याघ्रकुञ्जरदुर्गाणि सर्प्पचौराभयानि तु ।
हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम् २१ ॥

टी० । और पापीलोग व्याघ्र यानी बाघ और हाथी और दुर्ग और सांप और चोरके क्लेशसे हत होकर फिर पापसे प्राप्त होतेहैं इससे अधिक क्या कहा जाय २१ ॥

मू० सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुपानासनाशनाः ।
स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि २२ ॥

टी० । और जो पुण्यात्मा लोग हैं वे हमेशा सब लोगों से वन्दित और पूजित होकर सुगन्ध और माला और अच्छे वसन व उत्तम पीनेकी वस्तु और अच्छे आसन और भोजन इत्यादि को अच्छीराहसे अच्छे स्थान में जाकर भोग करते हैं २२ ॥

मू० अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसञ्चितम् ।
पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत् सुखदुःखाङ्कुरोद्भवम् २३ ॥

टी० । और सैकड़ों हजारों जन्म का कमायाहुआ पुण्य और पाप उस कमानेवाले को सुख और दुःख देताहै २३ ॥

मू० यथा वीजं हि भूपाल पयांसि समवेक्षते ।

पुण्यापुण्ये तथा कालदेशाद्यं कर्म्मकारकम् २४ ॥

टी०। और ऐ राजन्! जिस तरह बीज जलकी इच्छा रखताहै वैसेही पुण्य और पाप काल और देश और कर्म्म और कर्मकारक की इच्छा रखता है २४ ॥

मू० स्वल्पं पापं कृतं पुंसां देशकालोपपादितम्।
पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति २५ ॥

टी०। और कोई कोई ऐसे समय और स्थान हैं कि उस समय और उस स्थानपर थोड़ा पापभी करने से बड़े बड़े कष्टों में पड़जाता है जैसे राह में कांटा और कुश रखने से किसी के पांव में चुभजाने से कण्टकजन्य दुःख होताहै २५॥

मू० तत्प्रभूततरं स्थूलं शूलकीलकसम्भवम्।
दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादिदुस्सहम् २६ ॥

टी०। वह कांटा रखनेवाला यहां पर शूल और कीलका दुःख पाताहै और उसके शिरमें दुस्सह रोग हमेशा रहताहै २६ ॥

मू० अपथ्याशनशीतोष्ण श्रमतापादिकारकम्।
तथाऽन्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे २७॥

टी०। और पाप अपथ्य भोजन कराता है और जाड़ा और गरमी और मेहनत और शोच इत्यादि का उत्पन्न करनेवाला कर्म्म कराता है वैसेही फलों के संयोगमें अन्योन्य पाप अपेक्षा करते हैं २७॥

मू० एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादि विक्रियाम्।
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्ति बन्धनादि फलायवै २८ ॥

टी०। इसी तरह बड़े बड़े पाप से बड़े बड़े भारी रोगादिकों के विकार में पड़ता है और वैसेही उसी पापके कर्म्म से अस्त्र और शस्त्र और अग्नि और बन्धन इत्यादि के कष्टों में पड़ता है २८ ॥

मू० स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति।
स्पर्शंवाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा २९ ॥

टी०। और इसी तरह थोड़ा भी पुण्य किया हुआ बहुतही कल्याण

करता है यानी खेलकी राह सेभी] अगर कोई किसी को गन्ध स्पर्श या शब्द या रस या रूप देता है २६ ॥

मू० चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम्।
एवं च सुखदुःखानि पुण्यापुण्योद्भवानिवै ३० ॥

टी०। तो वह बहुत दिनतक बहुत सुख पाता है और जो लोग किसीको बहुत सुख देते हैं उन को और भी समय में पैदाहुआ अत्यन्तसुख मिलता है इसी तरह पाप से दुःख और पुण्य से सुख पैदाहोताहै ३० ॥

मू० भुञ्जानो ऽनेकसंसार सम्भवानीह तिष्ठति।
जातिदेशविरुद्धानि ज्ञानाज्ञानकृतानिच ३१ ॥

टी०। और अनेक जन्म में जो पाप या पुण्य जाना या अनजाना उत्पन्न होता है वह सब जाति व देश के विरुद्ध कर्म्मों का फल भोग करते हैं ३१ ॥

मू० तिष्ठन्ति तत्र युक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि।
वपुषा मनसा वाचा न कदाचित् कचिन्नरः ३२ ॥

टी०। आत्मा में सूक्ष्म शरीर रहता है देह से या मन से या वचन से जिस तरह जो मनुष्य करता है उसी तरह वही मनुष्य पाता है दूसरा कदाचित् नहीं ३२ ॥

मू० अकुर्व्वन् पापकं कर्म्म पुण्यंवाप्यवतिष्ठते।
यद्यत्प्राप्नोति पुरुषो दुःखं सुखमथापि वा ३३ ॥

टी०। यानी बगैर पाप या पुण्य किये हुये कोई दुःख या सुख नहीं भोगता है आदमी जिस जिस दुःख या सुख को प्राप्तहोता है ३३ ॥

मू० प्रभूतमथवास्वल्पं विक्रिया कारिचेतसः।
तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत् ३४ ॥

टी०। चित्त का बिगाड़नेवाला सुख दुःख होता है थोड़ा या बहुत उतनेही से यही पाप और पुण्य जाना जाता है ३४ ॥

मू० उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम्।
एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ३५ ॥

टी०। और जैसे भोजनकी वस्तु खाने से घटती है उसी तरह पाप भी भोग ही करने से घटता है इस वास्ते इसतरह ये पापीलोग अपने पाप का फल दिनरात पीडाओं से भोग कर रहे हैं ३५॥

मू० क्षपयन्ति नराघोरं नरकान्तर्विवर्त्तिनः।
तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह ३६॥

टी०। तो जिसतरह ये पापी लोग इस घोर नरक में रहकर दुःख भोग कर पापकोनाश रहे हैं उसीतरह पुण्यवान् लोग स्वर्गलोक में ऐ राजन्! देवताओं के साथ पुण्योंको भोग करते हैं ३६॥

मू० गन्धर्व्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते।
देवत्वे मानुषत्वे च तिर्य्यक्के च शुभाशुभम् ३७॥

टी०। और गन्धर्व्व और सिद्ध और अप्सरा इन सभों के साथ रहकर गीत और नृत्यादिक से अपने पुण्य का फल भोग करके फिर देवता या मनुष्य या तिर्य्यग् योनि में जाते हैं ३७॥

मू० पुण्यपापोद्भवं भुंक्ते सुखदुःखोपलक्षणम्।
यत्त्वं पृच्छसि मां राजन् यातना पापकर्म्मिणाम्।
केनकेनेति पापेन तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः ३८॥

टी०। इसी तरह से पाप और पुण्य से पैदाहुए हैं जिसको मनुष्य लोग भोग करते हैं और ऐ राजन्! तुमने जो पूछा कि किस पापसे कौन दण्ड पापी मनुष्य पाता है उसका हाल भी अब मैं सब तुम से कहता हूँ सुनिये ३८॥

मू० दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः।
मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यञ्च संस्पृहैः ३९॥

टी०। कि जो अधम मनुष्य पापदृष्टि से परस्त्री को देखते हैं और बे-ईमानी से दूसरे के धनलेने की इच्छा रखतेहैं ३९॥

मू० वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने।
पुनः पुनश्च सम्भूतिरक्ष्णोरेषां भवत्यथ ४०॥

टी०। उन्हीं लोगों की इन आंखों को वज्रके समान कड़ी कड़ी चोंच

वाले पक्षी बार बार निकाल लेजाते हैं और फिर वह दुस्तर हो जाया करती हैं ४० ॥

मू० यावतोऽक्षिनिमेषास्तु पापमेभिर्नृभिः कृतम्।
तावद्वर्षसहस्राणि नेत्रार्तिं प्राप्नुवन्त्युत ४१ ॥

टी०। और जितने पल उस पाप कर्म्म करने में इन आदमियों को गुज़रते हैं उतनेही हज़ार बर्ष वे पापी आंख के दुःख से दुःखी रहतेहैं ४१॥

मू० असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायैश्चमन्त्रिताः।
सम्यग्दृष्टेर्विनाशाय रिपूणामपि मानवैः ४२ ॥

टी०। और जो लोग जानबूझकर साधारण लोगों को या किसी दुश्मनको भी नाश करने के वास्ते असत् शास्त्र का उपदेश या मन्त्रदेतेहैं ४२॥

मू० यैः शास्त्रमन्यथाप्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता।
वेददेववद्विजालीनां गुरोर्निन्दा च यैः कृता ४३ ॥

टी०। और जो कोई अपनी ग़रज़ के वास्ते शास्त्र के बरख़िलाफ़ राह बतलाते हैं और जो झूंठ वचन बोलते हैं और जो वेद या देवता या गुरु या ब्राह्मण की निन्दा करते हैं ४३ ॥

मू० हरन्ति तेषां जिह्वाश्च जायमानाः पुनः पुनः।
तावतो वत्सरानेते वज्रतुण्डाः सुदारुणाः ४४ ॥

टी०। उन्हीं लोगों की बार २ पैदाहुई जीभ को उतनेही बरसतक वज्र के मानिन्द चोंचवाले भयानक पक्षी अपनी कड़ी चोंच से बार बार निकालते हैं ४४ ॥

मू० मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च।
याज्योपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणाः ४५ ॥

टी०। और जो कोई दो मित्रों में और पिता पुत्र में और किसी की बिरादरी में और यज्ञकर्त्ता और याचक में और मा बेटा में या पुरवासियों में फूट डालते हैं ४५ ॥

मू० भार्यापत्योश्च येकेचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः।
त इमे पश्य पाट्यन्तेकरपत्रेण पार्थिव ४६ ॥

टी०। और जो कोई स्त्री और पुरुषमें विघ्न डालते हैं हे राजन्! वेई अधम लोग ये हैं जो करपत्र आरोंसे काटेजाते हैं इनको देखो ४६ ॥

मू० परोपतापका येच येचाह्लादप्रतिषेधकाः।
तालवृन्तानिलस्थानचन्दनोशीरहारिणः ४७॥

टी०। और जो मनुष्य दूसरे के शरीर को दुःख देते हैं और नाखुश करते हैं और ताड़ का पंखा और चन्दन और खस की चोरी करते हैं ४७॥

मू० प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्चयेऽधमाः।
करम्भवालुका संस्थास्त इमे पापभागिनः ४८॥

टी०। और जो नीच मनुष्य साधु और महात्मा लोगों को प्राणान्त की तकलीफ़ देते हैं वेई ये पापी लोग इस तलफती हुई बालूमें पड़ेहैं ४८॥

मू० भुङ्क्ते श्राद्धन्तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः।
दैवेचाप्यथ वा पित्र्ये सद्विधाकृष्यते खगैः ४९॥

टी०। और जो कोई दूसरे के निमंत्रणदेने से किसी और के श्राद्धकर्म्म या देवकर्म्म में जाकर भोजन करते हैं उन्हीं लोगों के शरीर को दो टुकड़े करके पक्षी घसीटते फिरते हैं ४६॥

मू० मर्म्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति।
तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ५०॥

टी०। और जो मनुष्य साधु लोगों को कड़ी और झूंठ बात जिससे उन के दिलको चोट लगे कहकर दुःखी करते हैं उन्हीं लोगों की छाती पर चढ़कर न मना किये हुए ये पक्षी मांस नोच नोच कर खाते हैं जिस से उनको अत्यन्त दुःख होता है ५०॥

मू० यः करोति च पैशुन्यमन्यवागन्यथा मतिः।
पाट्यते हि द्विधा जिह्वा तस्येत्थं निशितैः क्षुरैः ५१॥

टी०। और जो झूंठे व दुर्बुद्धीलोग किसी की चुगली करते हैं ये वेई लोग हैं कि जिनकी जीभ तेज छूरों से काटी जाती है ५१॥

मू० माता पित्रोर्गुरूणाञ्च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः।
तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्ते मज्जन्त्यधो मुखाः ५२॥

टी०। और जो लोग माता और पिता और गुरुजन लोगों का निराद
घमण्ड से करते हैं ये वही लोग अधोमुख होकर मल और मूत्र और पीव
के कुण्ड में पड़े हैं ५२॥

मू० देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च।
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत् पित्रग्निपक्षिषु ५३॥

टी०। और देवता और अतिथी और अभ्यागत और नौकर चाकर को
भूँखा रखकर जो कोई आप भोजन करते हैं और फिर इसीतरह पित
और अग्नि और पक्षी इत्यादि को भूँखा रखता है ५३॥

मू० दुष्टास्ते पूयनिर्य्यासभुजः सूचीमुखास्तु ते।
जायन्ते गिरिवर्ष्माणः पश्यैते यादृशा नराः ५४॥

टी०। उन्हीं दुष्टलोगों का शरीर पहाड़ सा और मुँह सुई के नाके के
समानहै जिससे पीव भक्षण करते हैं इनको देखो कि ये जैसे मनुष्यहैं ५४॥

मू० एक पंक्त्यान्तु ये विप्र मथवेतरवर्णजम्।
विषमं भोजयन्तीहाविड्भुजस्त इमे यथा ५५॥

टी०। और जो कोई उत्तम ब्राह्मण को और नीच जाति को एक पं-
क्ति में बैठालकर विषम भोजन कराते हैं वेई लोग ये हैं कि जो मल भो-
जन कर रहे हैं ५५॥

मू० एक सार्थप्रयातं ये निःसमर्थार्थिनं नरम्।
अपास्य स्वान्नमश्नन्ति त इमेश्लेष्मभोजिनः ५६॥

टी०। और जो आदमी मुसाफ़िरतमें अपने ग़रीब साथीको या दूसरे
किसी लाचार को भूँखा छोड़कर आप भोजन करलेते हैं वेई लोग ये यह
खखार भोजन कर रहे हैं ५६॥

मू० गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर।
तेषामेतेऽग्नि कुम्भेषु लेलिह्यन्त्याहिताः कराः ५७॥

टी०। और ऐ राजन्! जो लोग गाय और ब्राह्मण और अग्नि को
किसी सबब से जूँठे हाथ से छूते हैं वेई सब हैं कि जिनके दोनों हाथ
अग्नि भरेहुए घड़ों में जल रहे हैं ५७॥

मू० सूर्य्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः।
तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तोवह्निःसमिध्यते ५८॥

टी०। और जो लोग कामसे जूठे मुँह होकर चन्द्रमा और सूर्य्य और तारा को देखते हैं उन्हीं लोगों की आंखों में यमदूत लोग आग की चिनगारियां झोंकते हैं जो बहुत जलती हैं ५८॥

मू० गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा।
यामयो गुरुवो वृद्धा यैःस्पृष्टस्तुपदान्नृभिः ५९॥

टी०। और जिन लोगों ने गाय और अग्नि और ब्राह्मण और माता पिता और बड़े भाई और बहिन व कुलवधू और गुरु और बड़े बूढ़े के शरीर में पांव छुलाया है ५९॥

मू० बद्धांघ्रयस्ते निगडैर्लौहैरग्निप्रतापितैः।
अङ्गारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ६०॥

टी०। उन्हीं लोगों के पांव धिकी हुई बेड़ियों में बँधे हुये हैं और वे अंगारों के ढेर पर बैठे हैं कि जिस से दोनों जानू तक उन के भस्म हो रहे हैं ६०॥

मू० पायसं कृशरं छागो देवान्नानि च यानिवै।
भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् ६१॥

टी०। और जिन लोगों ने खीर और खिचड़ी का अन्न और छाग और भी जो देवान्न विना संस्कार किये हुये भोजन किया है उन्हीं पापियों की आँखें ६१॥

मू० निपातितानां भूपृष्ठे उद्धृतानि निरीक्षताम्।
सन्दंशैः पश्यकृष्यन्ते नरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ६२॥

टी०। पृथ्वी पर गिराकर काट काट कर यमदूत निकालते हैं व संगसियों से खींचते हैं सो देख लीजिये ६२॥

मू० गुरुदेवं द्विजातीनां वेदानाञ्च नराधमैः।
निन्दानिशामिता यैश्च पापानामभिनन्दताम् ६३॥

टी०। और जो नीच लोग मुखसे गुरु और देवता और ब्राह्मण और

वेदकी निन्दा करते हैं और जो लोग उस निन्दा को जी लगाकर सुनते हैं अथवा जो मनुष्य किसी को पापकर्म्म की सलाह देते हैं ६३ ॥

मू० तेषामयो मयान्कीलानग्निवर्णान् पुनः पुनः।
कर्णेषु प्रेरयन्त्येते याम्याविलपतामपि ६४ ॥

टी०। रोतेहुए भी उन्हीं लोगों के कान में ये यमदूत लोग लोहे की कील आग में लाल की हुई डालकर बार बार घुमाते हैं ६४ ॥

मू० यैःप्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाःशुभाः।
भङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानु वर्त्तिभिः ६५ ॥

टी०। और जो लोग क्रोध और लोभ के वश होकर पौसाला या देवता या ब्राह्मण का स्थान या सतसभा इत्यादि को तोड़कर नाश करते हैं अथवा उस में उपद्रव डालते हैं ६५ ॥

मू० तेषामेतैः शितैः शस्त्रैर्मुहुर्विलपतान्त्वचः।
पृथक् कुर्वन्ति वैयाम्याः शरीरादति दारुणाः ६६ ॥

टी०। विलाप करतेहुए उन्हीं लोगों के शरीर इनपैने भाले और बर्छे से बार बार छेदे जाते हैं और बड़े भयानक यमदूत लोग उनके शरीर से चमड़ा अलग करते हैं कि जिस सबब से वे लोग चिल्लपों मचाते हैं ६६॥

मू० गो ब्राह्मणार्कमार्गास्तु येऽवमे हन्ति मानवाः।
तेषामेतानि कृष्यन्ते गुदेनान्त्राणि वायसैः ६७ ॥

टी०। और जो लोग गौ या ब्राह्मण की राहपर या सूर्य्यकी तरफ़ मुँह करके मल या मूत्र करते हैं उन्हीं लोगों की आंतों को कौवा गुदाकी राह से खींचते हैं ६७ ॥

मू० दत्वा कन्यांच एकस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति।
सत्वेवं नैकधा छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते ६८ ॥

टी०। और जो मनुष्य अपनी लड़की किसी को देकर फिर दूसरे के साथ विवाह करदेता है उसी मनुष्य के शरीर को काट काट कर सैकड़ों टुकड़े करके खार नदी में बहाते हैं ६८ ॥

मू० स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः।
पुत्रभृत्यकलत्रादि बन्धुवर्गमकिञ्चनम् ६९ ॥

टी०। और जो दरिद्री मनुष्य अपने शरीर को पालनेवाला जिनके पास कुछ नहीं है ऐसे अपने स्त्री और पुत्र और भृत्य और भाई बन्धु को छोड़ देताहै ६९ ॥

मू० दुर्भिक्षे सम्भ्रमे वापि सोऽप्येवं यमकिङ्करैः।
उत्कृत्य दत्तानि मुखे स्वमांसान्यद्दनुते क्षुधा ७० ॥

टी०। या दुर्भिक्ष व भूखमें भी त्याग देताहै तो उसके शरीर के मांसको यमदूतलोग काट काटकर उसी के मुखमें डालकर भूखमें खिलातेहैं ७० ॥

मू० शरणागतान् यस्त्यजति लोभाद्वृत्त्युपजीविनः।
सोऽप्येवं यन्त्रपीडाभिः पीड्यते यमकिङ्करैः ७१ ॥

टी०। और जो भिक्षुक अपने लोभ से किसी की शरण में आया हो और उसने उसको शरण न दिया हो तो उसको भी यमदूत यन्त्रकी पीड़ाओं से दुःख देते हैं ७१ ॥

मू० सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्म कृतं नराः।
ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्मिणः ७२ ॥

टी०। और सम्पूर्ण जन्म का कमाया हुआ सुकृत जो मनुष्य किसी के हाथ बेचलेते हैं वे पापी पत्थर में पीसे जाते हैं जैसेकि ये पापी लोग यहां पीसे जाते हैं ७२ ॥

मू० न्यासापहारिणो बद्धाः सर्वगात्रेषु बन्धनैः।
कृमिवृश्चिककाकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशं नराः ७३ ॥

टी०। और जो कोई किसी की धरोहरि हरते हैं उन्हीं सबके अङ्ग अङ्ग बांधे जाते हैं और उनके शरीर के मांस को पिलुआ बीछी कौवा उल्लू इत्यादि दिनरात नोच २ खाते हैं ७३ ॥

मू० क्षुत्क्षामास्तटपतज्जिह्वा तालवो वेदनातुराः।
दिवामैथुनिनः पापाः परदाराभुजाश्च ये ७४ ॥

टी०। और जो लोग दिन में स्त्रीगमन करतेहैं और जो परस्त्री भोग

करते हैं वही लोग दुबले और भूख प्यास से जीभ व तालू निकाले हुये व्याकुल हो रहे हैं ७४ ॥

मू० तथैव कण्टकैर्दीर्घैरायसैः प्राप्यशाल्मलिम्।
आरोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूता सृक्स्रवा विला ७५ ॥

टी०। और शेमल के वृक्ष जिसमें बड़े बड़े कांटे लोहे के लगे हैं उस में उनके शरीर को यमदूत लोग घसीट २ कर अङ्ग२उनका अलग करते हैं कि जिस सबब से रुधिर बहुत बह रहा है ७५ ॥

मू० मूषायामपि पश्यैतान् नाश्यमानान् यमानुगैः।
पुरुषैः पुरुषव्याघ्र परदारावमर्षिणः ७६ ॥

टी०। और ऐ पुरुष व्याघ्र! जो मनुष्य पराई स्त्री को चुरालेते हैं वही लोग यमदूतों के हाथ से नाश होते हैं सो देखलीजिये ७६ ॥

मू० उपाध्यायमधः कृत्वास्तब्धो योऽध्ययनं नरः।
गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ७७ ॥

टी०। और जो मनुष्य अभिमान से पढ़ाने वाले ब्राह्मण को नीचे बैठाल कर आप ऊँचे पर बैठकर पढ़ता है या कारीगरी सीखता है वही ये लोगहैं कि पत्थर की शिलाका बोझ सदा अपने शिरपर उठाये हुयेहैं७७॥

मू० विभ्रत्क्लेश मवाप्नोति जनमार्गेति पीडितः।
क्षुत् क्षामोऽहर्निशं भार पीडाव्यथितमस्तकः ७८ ॥

टी०। और वे लोग बड़े भारी क्लेश मनुष्यों के रास्ते पर पाकर भूख और शिर के बोझ से दिनरात व्याकुल होरहे हैं ७८ ॥

मू० मूत्रश्लेष्म पुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि।
तइमे श्लेष्मविण्मूत्र दुर्गन्धं नरकं गताः ७९ ॥

टी०। और जो मनुष्य जल में विष्ठा या मूत्र या खखार करते हैं येई लोगहैं कि विष्ठा और मूत्र और खखारसे दुर्गन्धित नरक में पड़ेहैं७९॥

मू० परस्परञ्च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः।
भुक्तं नातिथ्य विधिना पूर्व्वमेभिः परस्परम् ८० ॥

टी०। और जो लोग भूँख से व्याकुल होकर आपस में एक दूसरे का

मांस खाते हैं वे यही लोग हैं कि जिन्हों ने पहले अभ्यागत को आदरके साथ खाना नहीं खिलाया है ८० ॥

मू० अपविद्धास्तुयैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः ।
तइमे शैलशृंगाग्रात् पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः ८१ ॥

टी०। और जो लोग वेद को त्याग दिया व जिन अग्निहोत्रियों ने अग्नि में आहुति नहीं दियाहै ये वही लोग बार बार पहाड़ की चोटी से नीचे गिराये जाते हैं ८१ ॥

मू० पुनर्भूपतयो जीर्णा यावज्जीवन्ति ये नराः ।
इमेकृमित्वमापन्ना भक्ष्यन्तेऽत्र पिपीलिकैः ८२ ॥

टी०। और जो मनुष्य जब तक जीते हैं तबतक वृद्ध हो कर उढ़री स्त्री के पति होते हैं वे यहां कीड़ा हुये हैं जिनको चींटी खाती हैं ८२ ॥

मू० पतितप्रतिग्रहादानाद्याजन्मान्नित्य सेवनात् ।
पाषाणमध्यकीटत्वं नरःसततमश्नुते ८३ ॥

टी०। और जो लोग पतित का दिया हुआ दान स्वस्ति के साथ लेते हैं और जो उसको नित्य यज्ञ करातेहैं और जो उसको सेवते हैं वेई लोग सदा पत्थर में कीड़ा होकर रहते हैं ८३ ॥

मू० पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्राणामतिथे स्तथा ।
एकोमिष्टान्नभुग्भुंक्ते ज्वलदङ्गारसञ्चयम् ८४ ॥

टी०। और जो कोई अपने दोस्त आशना भाई बन्धु और अभ्यागत को भूँखा छोड़कर उसके देखते हुये आप उसके सामने मीठा अन्न अकेले खाता है वही दहकती हुई आगको खाता है ८४ ॥

मू० वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठन्नित्यमस्योपभुज्यते ।
पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भक्षितम् ८५ ॥

टी०। और ऐ राजन्! नित्य पीठका मांस जिसने खाया है ये भी वेई लोग हैं कि जिनकी पीठ के मांस को बड़े बड़े भयङ्कर भेड़िया नोच नोच कर खाते हैं ८५ ॥

मू० अन्धोऽथबधिरो मूको भ्राम्यतेऽयं क्षुधातुरः ।

अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारेषु वर्त्ततान् ८६ ॥

टी०। और ये जो अन्धे बहिरे गूँगे लोग क्षुधा से व्याकुल हो तप्त भूमि में घूम रहे हैं येभी वही नीच लोग हैं जो सदा उपकार करनेवाले का उपकार न मानकर अपकार ही करते रहे हैं ८६ ॥

मू० अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्म्मतिः।
तप्तकुम्भे निपतति ततो यास्यति पेषणम् ८७ ॥

टी०। और जो दुर्बुद्धी उपकार को न माननेवाला मित्र का अपकारी है वह दहकते हुए कुम्भ में बार बार डाला जाता है उससे यंत्र में पीड़ा होती है ८७ ॥

मू० करम्भबालुकां तस्मात्ततो यन्त्रावपीडनम्।
असिपत्रवनं तस्मात्करपत्रेण पाटनम् ८८ ॥

टी०। और फिर धिकी हुई बालू में पड़कर और यंत्र की पीड़ा में प्राप्त हो असिपत्र वनका दुःख और करपत्र यानी आरासे कटनाहोताहै ८८॥

मू० कालसूत्रे तथा छेद मनेकाश्चैव यातनाः।
प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्न वेद्मिकथमेष्यति ८९ ॥

टी०। और कालसूत्र से काटे जाते हैं और तरह तरह का दण्ड पाते हैं और मैं नहीं जानता हूँ कि फिर कौन कौन कष्ट में प्राप्त होकर उससे कैसे आते हैं ८९ ॥

मू० श्राद्धसङ्गतिनो विप्राःसमुत्पत्यपरस्परम्।
दुष्टाहिनिःसृतं फेनसर्व्वाङ्गेभ्यः पिबन्तिवै ९० ॥

टी०। और जो ब्राह्मण श्राद्धही के अन्न से जिन्दगी काटता है और श्राद्धही खाने वाले के साथ रहता है उसको जहरदार सांपका कफ़ विष भराहुआ सब अङ्गों से खिलाया जाता है ९० ॥

मू० सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापी गुरुतल्पगः।
अधश्चोर्द्ध्वं प्रदीप्ताग्नौ दह्यमानाःसमन्ततः ९१ ॥

टी०। और जो सोना चुराता है और ब्राह्मण को मारताहै और सुरा, पान करता है और गुरु की शय्या पर पांव रखता है वही ये पापी लोग

हैं कि जो नीचे और ऊपर की जलती हुई आग में पड़े सब ओर से जलाये जाते हैं ६१ ॥

मू० तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततःपुनः ।
जायन्ते मानवाः कुष्ठं क्षयरोगादि चिह्निताः ६२ ॥

टी०। ये लोग बहुत हजार वर्ष तक इस कष्ट में रहकर फिर और और नरक भोग करने के बाद मनुष्य योनि में जाकर क्षयी रोग या कोढ़ में प्राप्त होंगे यह इनकी पहिचान है ६२ ॥

मू० मृताः पुनश्चनरकं पुनर्जाताश्च तादृशम् ।
व्याधिमृच्छन्तिकल्पान्त परिमाणं नराधिप ९३ ॥

टी०। और ऐ राजन! ये लोग मरकर फिर नरक में आवेंगे और फिर पैदा होकर वैसेही रोग को प्राप्त होते हैं इसी तरह एक कल्पान्त तक इन कष्टों को पाते रहेंगे ६३ ॥

मू० गोघ्नोह्यनन्तरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि ।
तथोपपातकानाञ्च सर्व्वेषामिति निश्चयः ६४ ॥

टी०। और जो पापी मनुष्य गोघातकरताहै वह इसके बाद तीन जन्मों तक नरक में जाता है वैसेही सब उपपातकों का यह निश्चय है ६४ ॥

मू० नरकप्रच्युतायानि यैर्यैर्विहितपातकैः ।
प्रयान्ति योनिजातानि तन्मेनिगदतः शृणु ६५ ॥

टी०। और फिर नरक भोग करने के बाद जिस जिस जिन जिन पाप कर्म्म के फल से जिस जिस योनि में जीव प्राप्त होता है सो मैं कहता हूँ सुनिये ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जडोपाख्याने
यमकिङ्करसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

अथ पन्द्रहवां अध्याय॥

यमकिङ्कर उवाच।

मू० पतितात्प्रतिगृह्यार्थं खरयोनिं व्रजेद्द्विजः।
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिः पतितयाजकः १

टी०। फिर यमदूत कहने लगा कि ऐ राजन्! जो ब्राह्मण पतितका दान लेता है वह गदहे का जन्म पाताहै और पतितको यज्ञ करानेवाला नरक भोग करने के बाद कीड़े का जन्म पाता है १॥

मू० उपाध्यायव्यलीकन्तु कृत्वाश्वाभवति द्विजः।
तज्जायां मनसा वाचात्तद्द्रव्यं चाप्यसंशयः २॥

टी०। और जो मनुष्य पढ़ाने वाले की इज्जत नहीं करता वह कुत्ते की योनि में प्राप्त होता है और निस्सन्देह जो कोई उनकी स्त्री या धन का लालच करता है २॥

मू० गर्द्दभो जायते जन्तुः पित्रोश्चाप्यवसानकः।
माता पितरावाकुश्य शारिका सम्प्रजायते ३॥

टी०। और माता, पिता का अपमान करताहै वह भी गदहे का जन्म पाता है और जो मनुष्य माता और पिता को दुःख देता है वह शारिका यानी मैना का जन्म पाता है ३॥

मू० भ्रातुः पत्न्यवमन्ता च कपोतत्व प्रपद्यते।
तामेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वं प्रपद्यते ४॥

टी०। और जो मनुष्य भाई की स्त्री का निरादर करताहै वह कबूतर होता है और जो कोई उसको दुःख देता है वह कछुआ होता है ४॥

मू० भर्तृपिण्डमुपाश्नन् यस्तदिष्टं न निषेवते।
सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ५॥

टी०। और जो अपने स्वामीका भोजन करता हुआ उसको इष्ट करके नहीं मानता है वह मरकर बन्दर की योनि में जन्म पाता है ५॥

मू० न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः।

असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ६ ॥

टी०। और जो मनुष्य धरोहर लेता है वह नरक से छूटकर कीड़ा होता है और जो ईर्षावान् होताहै वह नरक भोग करने के बाद राक्षसकी योनि में जन्म पाताहै ६ ॥

मू० विश्वासहन्ता च नरोमीनयोनौ प्रजायते ।
धान्यं यवांस्तिलान्माषान् कुलत्थान् सर्षपां चणान् ७॥

टी०। और जो आदमी विश्वासघाती है वह मछली की योनि में जन्म पाताहै और जो मनुष्य धान यव तिल उर्द कुर्थी सरसों और चना ७॥

मू० कलायान् कलमान्मुद्गान् गोधूमानतसीं स्तथा ।
सस्यान्यन्यानि वाहृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतसः ८ ॥

टी०। और कला और जड़हन धान और मूँग और गेहूँ और अलसी वग़ैरा अन्य अन्नों को मोह से अज्ञान होकर चुराताहै ८ ॥

मू० सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रु सन्निभः ।
परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ९ ॥

टी०। उसका मुख बहुत बड़ा और शरीर चूहे का होता है व नेउले के मानिन्द होता है और जो कोई परस्त्री गमन करता है वह बड़े भयानक भेड़िये का शरीर पाता है ९ ॥

मू० श्वाशृगालो बको गृध्रो व्याडः कंकस्तथा क्रमात् ।
भ्रातृभार्य्यांच दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापकृत् १० ॥

टी०। फिर उसके बादकुत्ता और सियार और बगुला और गिद्ध और साँप और कौवा वग़ैरा की योनि में क्रम से जन्म पाता है और जो पापकारी मनुष्य पाप बुद्धि करके भाई की स्त्री की धर्षणा करता है १० ॥

मू० पुँस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः ।
सखिभार्य्यां गुरोभार्य्यां राजभार्य्यां च पापकृत् ११ ॥

टी०। वह भी नरक से निकल कर कोयल का शरीर पाता है और जो पापी मित्र और गुरु और राजा की स्त्री को ११ ॥

मू० प्रधर्षयित्वा कामात्मा शूकरो जायते नरः ।

यज्ञदान विवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः १२ ॥

टी०। काम के वश होकर भोग करताहै वह नरक भोग करनेके बाद सुवर का शरीरपाता है और यज्ञ और दान और विवाह इत्यादि में विघ्न डालनेवाला कीड़े का जन्म पाता है १२॥

मू० पुनर्दाता च कन्यायाः कृमिरेवोपजायते।
देवता पितृ विप्राणामदत्वायोऽन्नमश्नुते १३ ॥

टी०। और जो मनुष्य किसी को कन्यादान देकर फिर उसी कन्या को दूसरे के साथ विवाह देताहै वह कृमि की योनि में प्राप्त होताहै और और जो कोई देवता या पितर या ब्राह्मण को अर्पण किये वि(आप भोजन करता है १३॥

मू० प्रमुक्तो नरकात् सोऽपि वायसः सम्प्रजायते।
ज्येष्ठं पितृ समं वापि भ्रातरंयोऽवमन्यते १४ ॥

टी०। वह भी नरक भोग करने के बाद कौवे का जन्म पाताहै और जो कोई बड़ा भाई जिसका दर्जा पिता के समान है उसका अनादर करता है १४॥

मू० नरकात्सोऽपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौ प्रजायते।
शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते १५ ॥

टी०। वह मनुष्य भी नरक भोग करने के बाद क्रौंच पक्षी का शरीर पाता है और जो शूद्र ब्राह्मणी से गमन करता है वह कीड़े का जन्म पाता है १५॥

मू० तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत्।
शूकरःकृमिको मद्गुश्चाण्डालश्च प्रजायते १६ ॥

टी०। और उस ब्राह्मणी से जो सन्तान उत्पन्न करता है वह काठ के अन्दर का कीड़ा होकर फिर सुवर फिर कीड़ा होकर जल मुर्गी फिर चाण्डाल की योनि में जन्म पाता है १६॥

मू० अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः।
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा १७ ॥

टी०। और जो कियेको नहीं जानता है वह कृतघ्न अधम मनुष्य

नरक भोग करने के बाद कृमि कीट और पतङ्ग और वृश्चिक यानी बिच्छू इत्यादि का शरीर पाता है १७ ॥

मू० मत्स्यस्तु वायसः कूर्म्मः पुक्कशो जायते ततः।
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः १८ ॥

टी०। फिर मछली और कौवा और कछुवे का जन्म पाता है और बाद उसके डोम के घर जन्म लेता है और जो कोई उस मनुष्य को कि जिसके हाथमें हथियार नहीं है मारताहै वह गदहे का शरीर पाताहै १८॥

मू० कृमिःस्त्री वधकर्त्ता च बालहन्ताच जायते।
भोजनं चोरयित्वातु मक्षिका जायते नरः १९ ॥

टी०। और जो कोई स्त्री या बालक को बध करता है वह मनुष्य कृमि योनि में जन्म पाता है और जो मनुष्य खाने की चीजें चुराता है वह मक्खी का जन्म पाता है १९ ॥

मू० तत्राप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्वतत्।
हत्वान्नन्तु स मार्ज्जारो जायते नरकाच्च्युतः २० ॥

टी०। और उसमें भी जो भोजन का बिशेष है वह सुनिये कि अन्न के चुरानेवाला वह मनुष्य नरक भोगकरनेकेबाद बिलारका जन्मपाताहै २०॥

मू० तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हत्वा तु मूषिकः।
घृतं हत्वा च नकुलः काको मद्गुर जामिषम् २१ ॥

टी०। और जो कोई तिल और पीना मिला हुआ चुराता है वह चूहे का जन्म पाता है और जो कोई घी चुराता है वह नेवला होता है और जो कोई बकरे का मांस चुराता है वह कौवा और जल मुर्गी का शरीर पाता है २१ ॥

मू० मत्स्यमांसापहृत् काकः श्येनोमार्गामिषापहृत्।
वीचीकाकस्त्वपहृते लवणे दधनिक्रमिः २२ ॥

टी०। और जो कोई मछली का मांस चुराता है वह कौवा होता है और जो कोई हिरन का मांस हरण करले तो हरण करने वाला बाज का शरीर पाता है और दही चुराने वाला कीड़ा होता है और नमक चुराने वाला बिच्छू होता है २२ ॥

मू० चोरयित्वा पयश्चापि वलाका सम्प्रजायते।
यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी सजायते २३॥

टी०। और दूध चुराने वाला बगुले का जन्म पाता है और जो तेल चुराता है वह मनुष्य तेलपायी याने गीदड़ का शरीर पाता है २३॥

मू० मधुहत्वा नरोदंशः पूपं हत्वा पिपीलिकः।
चोरयित्वा तु निष्पावान् जायते गृहगोधकः २४॥

टी०। और मधु (सहद) का चुरानेवाला मनुष्य डांस इत्यादि का शरीर पाता है और भुने हुये अन्न का चुरानेवाला गृहगोधक याने मूस का जन्म पाता है और पुआ का चुराने वाला पिपीलिका होता है २४॥

मू० आसवं चोरयित्वा तु तित्तिरत्वमवाप्नुयात्।
अयो हत्वातु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते २५॥

टी०। और जो मनुष्य मदिरा व अर्क इत्यादि चुराता है वह तीतर का जन्म पाता है और जो पापी मनुष्य लोहा चुराता है वह कौवा का शरीर पाता है २५॥

मू० हते कांश्ये च हारीतः कपोतो रौप्यभाजने।
हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते २६॥

टी०। और कांसा का चुराने वाला हरेल पक्षी का जन्म पाताहै और रूपे का वर्त्तन चुराने वाला कबूतर का शरीर पाता है और सोनेका वर्त्तन चुरानेवाला कीड़े का शरीर पाता है २६॥

मू० पत्रोर्णञ्चोरयित्वातु क्रकरत्वञ्च गच्छति।
कोशकारश्च कौशेये हते वस्त्रेऽभिजायते २७॥

टी०। और ऊनवस्त्रका चुरानेवाला मनुष्य मुआचिरईका शरीर पाताहै और कौशेय (रेशमी) वस्त्र चुरानेवाला खुसियाली का जन्म पाताहै २७॥

मू० दुकूले शार्ङ्गिकः पापो हते चैवांशुके शुकः।
तथैवाजाविकं हत्वा वस्त्रं क्षौमं च जायते २८॥

टी०। और रेशमी कपड़े का चुरानेवाला मनुष्य शङ्गक पक्षी होता है व सूती वसन चुरानेवाला तोते का शरीर पाता है इसीतरह बकरी

और भेड़ के रोम का बस्त्र चुरानेवाला बालवर के घर जन्म पाताहै २८॥

मू० कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वाल्कहर्त्ता बकस्तथा।
मयूरो वर्णकान्हृत्वा शाकपत्रञ्चजायते २९॥

टी०। और रुई का वसन चुरानेवाला मनुष्य कौंच पक्षीका शरीर पाताहै और वल्कल का चुरानेवाला बगुला होताहै और रंगीन वसन चुरानेवाला मोर व शाकपत्रहोता है २९॥

मू० जीवंजीवकतांयाति रक्तवस्त्रापहृत्नरः।
छुछुन्दरिः शुभान् गन्धान् वासो हृत्वा शशोभवेत् ३०॥

टी०। और लाल कपड़े का चुरानेवाला मनुष्य चकोर का शरीरपाता है और कपड़ा चुरानेवाला खरगोश और उत्तम सुगन्धों का चुरानेवाला छछूंदर की योनि में जन्म पाता है ३०॥

मू० षण्ढः फलापहरणात् काष्ठस्य घुणकीटकः।
पुष्पाहृद्दरिद्रश्च पंगुर्यानापहृन्नरः ३१॥

टी०। और जो मनुष्य फल चुराता है वह नपुंसकहोताहै व काठ का कीड़ा और घुन होता है और फूल चुरानेवाला दरिद्री होताहै और बाहन चुरानेवाला पंगु होता है ३१॥

मू० शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः।
भूहर्त्ता नरकान्गत्वा रौरवादीन् सुदारुणान् ३२॥

टी०। और शाक का चुरानेवाला मनुष्य हारिल पक्षी का शरीर पाता है और पानी का चुरानेवाला पपीहा होता है और जमीन का हरण करने वाला रौरवादि भयानक नरकों में जाकर ३२॥

मू० तृणगुल्मलतावल्लित्वक्सारतरुतां क्रमात्।
प्राप्य क्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै ततः ३३॥

टी०। बाद उसके तृण और गुल्म और लता और बँवड़ और आम वगैरा वृक्ष का शरीर पाताहै तब पापक्षीणहो कम रहकर मनुष्य की योनि में पैदा होताहै ३३॥

मू०। कृमिः कीटः पतङ्गोऽथ पक्षी तोयचरो मृगः।
गोत्वं प्राप्य च चाण्डाल पुक्कशादि जुगुप्सितम् ३४॥

टी०। फिर कृमि और कीट और पतङ्ग और पक्षी और जलचर और मृग और गाय वगैरा की योनि में प्राप्त होकर फिर डोम और चाण्डाल आदि की निन्दित योनि में जन्म पाता है ३४॥

मू०। पंग्वन्धो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा च प्रपीडितः।
मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते ३५॥

टी०। और लूला और अन्धा और बहिरा और कुष्ठी और यक्ष्मा रोग से पीड़ित और आँख और मुँह और गुदा आदि के रोग से विकल रहताहै ३५॥

मू०। अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च सगच्छति।
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णापहारिणाम् ३६॥

टी०। और शूद्रके शरीर में प्राप्तहोकर धातु छिन्नकी बीमारी में ग्रसित रहताहै और वहीगति गाय और सोना चुरानेवाले की होती है ३६॥

मू०। विद्यापहारिणश्चोग्रा निष्क्रयक्लेशिनो गुरोः।
जायामन्यस्य पुरुषः पारक्यां प्रतिपादयन् ३७॥

टी०। और जो दुष्टमनुष्य विद्याका हरण करताहै और जो कोई गुरुदक्षिणा नहीं देता है और जो मनुष्य अन्य की स्त्री को दूसरे की स्त्री निरूपण करता है ३७॥

मू०। प्राप्नोतिशण्डतां मूढो यातनाभ्यः परिच्युतः।
यः करोति नरो होममसमिद्धे विभावसौ ३८॥

टी०। वह अज्ञान मनुष्य नरक भोग करने के बाद नपुंसक की योनि में जन्म पाता है और जो मनुष्य बग़ैर जलतीहुई अग्निमें होम करता है ३८॥

मू०। सोऽजीर्णव्याधिदुःखार्त्तो मन्दाग्निः संप्रजायते।
परनिन्दाकृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम् ३९॥

टी०। वह मनुष्य बदहज़मी की बीमारी में दुखी रहता है और

मन्दाग्नि हमेशा उसको बनी रहतीहै व पराई निन्दा और कृतघ्नी मनुष्य यानी वह आदमी जो किसीका उपकार नहीं मानता है और बुराई ही ढूँढ़ता है ३९ ॥

मू० नैष्ठुर्य्यं निर्घृणत्वञ्च परदारोपसेवनम्।
परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम् ४० ॥

टी०। और निठुर और बेदर्द और देवताओं का निन्दक और पर स्त्री का सेवन और पराया अंश हरण करनेवाला और अशुद्ध रहनेवाला ४०॥

मू० निकृत्यावञ्चनं नृणां कार्प्पण्यञ्च नृणां वधः।
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च सन्तता ४१ ॥

टी०। और कपट से जो दूसरे को ठगताहै और जो कृपिणहै और जो घातकहै और जो काममनाहै हमेशा उन्हीं बुरे कर्म्मोंही में रहताहै ४१ ॥

मू० उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु।
दयाभूतेषु संवादः परलोकप्रतिक्रिया ४२ ॥

टी०। ऐ राजन्! ऐसे मनुष्य जो नरकभोग करके दुनियां में आते हैं उनलोगों की यही पहिचान है सो जानिये और जो सब जीवोंपर दया व संवाद और परलोक के वास्ते सत्क्रिया करते हैं ४२ ॥

मू० सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्।
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः ४३ ॥

टी०। और सच्चे और सभों को अच्छी बातें बतानेवाले और वेद प्रमाण को देखनेवाले और गुरु और देवता और ऋषि और सिद्ध लोगों का पूजन और साधुवों का सङ्गम करनेवाले ४३ ॥

मू० सत्क्रियाभ्यसनं मैत्री मितिबुद्ध्येत पण्डितः।
अन्यानि चैव सद्धर्म्म क्रियाभूतानि यानिच ४४ ॥

टी०। और सत्क्रिया का अभ्यास और सभों से मित्रता यह पण्डित जानै और समीचीन धर्म और जितने अच्छे कर्म्म हैं उनके करने वाले जितने हैं ४४ ॥

मू० स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम्।
एतदुद्देशतो राजन् भवतः कथितं मया ४५॥

टी०। ऐ राजन्! स्वर्ग भोग करके वे पुण्यात्मा मनुष्य जो संसार में फिर जन्म लेते हैं उनलोगों की यही पहिचान है जो मैंने आप से उद्देश करके कही ४५॥

मू० स्वकर्म्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनान्तथा।
तदेह्यन्यत्रगच्छामो दृष्टं सर्व्वं त्वयाधुना॥
त्वया दृष्टोहि नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ४६॥

टी०। इसी तरह पापी और पुण्यात्मा सब कोई अपनेही कर्म्म का फल भोग करते हैं सो आपको मैंने इसकाल में दिखा दिया और आप भी सब नरक को देखचुके अब आप दूसरे स्थान को चलिये तुम नरक को देखचुके इससे आइये और जगह चलें ४६॥

पुत्रउवाच॥

मू० ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः।
ततश्चसर्वैरुत्कुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ४७॥

टी०। फिर सुमति पुत्र ने कहा कि ऐ पिता! बाद उसके उस यमदूत को आगे करके राजा विपश्चित जब चलने को मुस्तैद हुये तब नारकी लोग जो नरक के कष्टमें पड़े थे वे सब बोले ४७॥

मू० प्रसादं कुरुभूपेति तिष्ठतावन्मुहूर्त्तकम्।
त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनोह्लादवते हि नः ४८॥

टी०। कि ऐ राजन्! आप हम सभोंपर कृपाकरके तबतक एकघड़ी यहां और ठहर जाइये क्योंकि जो हवा आपके शरीर से ठोकर खाकर आती है उससे हम लोगोंके दिलको आराम मिलता है ४८॥

मू० परितापं च गात्रेभ्यः पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः।
अपहन्ति नरव्याघ्र दयां कुरु महीपते ४९॥

टी०। और हे राजन्! जितने परिताप और दुःख वगैरा जो हमलोगों के शरीर में हैं वह सब इस हवा के लगने से छूट जाते हैं इसवास्ते ऐ नर व्याघ्र! हम सभों पर दया कीजिये ४९॥

मू० एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृप।
पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ५०॥

टी०। यह वचन उन नारकियों का राजा ने सुनकर उस यमदूत की तरफ़ मुख़ातिब होकर पूछा कि ऐ याम्य पुरुष! मेरे रहने से ये लोग क्यों खुश होते हैं ५०॥

मू० किं मयाकर्म्मतत्पुण्यं मर्त्यलोके महत् कृतम्।
आह्लाददायिनी वृष्टिर्येनेयं तदुदीरय ५१॥

टी०। और मैंने मृत्युलोक में कौन ऐसा वह भारी पुण्य कियाहै कि जो यहां इनलोगोंके वास्ते आनन्द वृष्टिहोरही है सो तू मुझे बतला५१॥

यमपुरुष उवाच॥

मू० पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः।
पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतश्च मनोयतः ५२॥

टी०। यह बात राजाकी सुनकर यमदूत बोला कि ऐ राजन्! जो आपने देवता और पितर और अभ्यागत नौकर इत्यादिको पहिले समर्पण करके बाकी अन्न खाकर अपना शरीर पालाथा और जिसलिये आपका मन हर घड़ी इन्हीं बातों में रहताथा ५२॥

मू० ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनोह्लाददायकः।
पापकर्म्मकृतो राजन् यातना न प्रबाधते ५३॥

टी०। हे राजन्! इसी सबब से तुम्हारे अङ्ग की स्पर्शी हुई हवा आनन्द देनेवाली है कि जिसके स्पर्श से इन सब पाप कर्म्मी लोगों को सजा का कष्ट मालूम नहीं पड़ता ५३॥

मू० अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद्यतः।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः ५४॥

टी०। और जिससे अश्वमेध आदि यज्ञ वग़ैरा जो तुमने विधिवत् किया है इसी वास्ते तुम्हारे दर्शन से यमदूतों की सजा शस्त्र और अग्नि और कौवे वग़ैरा ५४॥

मू० पीडनं छेददाहादि महादुःखस्य हेतवः।
मृदुत्वमागता राजन् तेजसापहतास्तव ५५॥

टी०। जोकि पीड़न और छेदन और दाह वग़ैरा महा दुःख का सबब है सो तुम्हारी नेकनियती के तेज से हत होकर कोमलताको प्राप्त होजाते हैं ५५॥

राजोवाच॥

मू० न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः।
यदार्त्तजन्तु निर्व्वाणंदानोत्थमिति मे मतिः ५६॥

टी०। यह बात यमदूत की सुनकर फिर राजा विपश्चित बोले कि ऐ यमदूत! मेरी समझ में ब्रह्मलोक वग़ैरा स्वर्गमें वह सुख मनुष्योंको नहीं मिलताहै जो सुख दुखी लोगोंकी रक्षाकरने से मनुष्योंको प्राप्तहोताहै५६॥

मू० यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते।
ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ५७॥

टी०। ऐ भद्रमुख! अगर मेरे रहने से इन नारकियों को सज़ा का कष्टनहीं मालूमहोताहै तो मैं इन दुखी लोगोंके वास्ते इसीजगह खंभेके समान अचल होकर रहूँगा ५७॥

यमपुरुष उवाच॥

मू० एहि राजन् प्रगच्छामोनिजपुण्य समर्जितान्।
भुंक्त्व भोगाननपास्येह यातनाः पाप कर्म्मणाम् ५८

टी०। फिर यम दूत बोला कि ऐ राजन्! आपने जो पुण्य कमायाहै उसका फल यानी स्वर्गका सुखहै सो चलकर भोग कीजिये और ये पापी लोग अपनी करणी का फल भोग करते हैं सो छोड़ दीजिये ५८॥

राजोवाच॥

मू० तस्मान्नतावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः।
मत्सन्निधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ५९॥

टी०। यह सुनकर राजाने कहा कि ऐ यमदूत! ये दुःखीलोग जबतक कष्टमें रहैंगे तबतक मैं इसी सबब से यहां से न जाऊँगा क्योंकि मेरे रहने से इन लोगोंको स्वर्ग का सुख नरक ही में मिलरहा है ५९॥

मू० धिक् तस्यजीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम्।
योनार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपिध्रुवम् ६०॥

टी०। और उस मनुष्य के जीने पर धिक्कार है जो शरणार्थी व रोगी औरं दुखीलोगों की रक्षा नहीं करताहै अगर दुश्मन भी हो तो उसकी रक्षा ज़रूरही करनी चाहिये ६० ॥.

मू० यज्ञदानतपांसीह परत्र न च भूतये।
भवन्तितस्य यस्यार्त्तपरित्राणेन मानसम् ६१ ॥

टी०। क्योंकि यज्ञ और दान और तपस्या आदि के करने से इस लोक या परलोक में ऐसा पुण्य मनुष्यों को नहीं होता है जैसा कि दुखी लोगों की रक्षा करने के मन से प्राप्त होता है ६१ ॥

मू० नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु।
वृद्धेषु च नतं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ६२ ॥

टी०। और जिस आदमी का दिल बेरहम है कि दुखी और बालक और वृद्ध के ऊपर दया नहीं करता वह मेरी समझ में आदमी नहीं राक्षस है ६२ ॥

मू० एतेषां सन्निकर्षात्तुयद्यग्निपरितापजम्।
तथोग्रगन्धजंवापि दुःखं नरकसम्भवम् ६३ ॥

टी०। और इन सब नारकी लोगों के पास जो आग उत्पन्न है दुःख देनेवाली और नरक से उत्पन्न है दुर्गन्धि भी ६३ ॥

मू० क्षुत्पिपासाभवन्दुःखं यच्च मूर्च्छा प्रदम्महत्।
एतेषां त्राणदानन्तु मन्ये स्वर्गसुखात्परम् ६४ ॥

टी०। और जो भूँख और प्याससे पैदाहुआ बड़ा दुःखमूर्च्छा देनेवाला है उस दुःख से जो मनुष्य इन की रक्षा करता है उसके सुख को स्वर्ग के सुख से भी अधिक मैं जानता हूं ६४ ॥

मू० प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदिसुखं बहवो दुःखिते मयि।
किन्नु प्राप्तं मया नस्यात्तस्मात्त्वंव्रजमाचिरम् ६५ ॥

टी०। और जो सिर्फ़ मेरे दुःख में रहने से बहुत आर्त्त लोगों को सुख प्राप्त होता है तो मुझे भी कौन कौन सुख न प्राप्तहोंगे इसवास्ते मैं यहीं रहूंगा तुमजाव ६५ ॥

यमपुरुष उवाच ॥

मू० एषधर्म्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ।
अवश्य मस्माद्गन्तव्यं तस्मात्पार्थिवगम्यताम् ६६ ॥

टी०। फिर यमदूत ने कहा कि ऐ राजन्! देखिये ये धर्म्म और इन्द्र भी आपही के लेजाने के वास्ते यहाँ आये हैं इसलिये आपको जाना जरूर है सो हे राजन्! उसी सबब से चलिये ६६ ॥

धर्म्म उवाच ॥

मू० नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः।
विमानमेतदारुह्य साविलम्बस्वगम्यताम् ६७ ॥

टी०। तब धर्म्म बोले कि ऐ राजन! तुमने सब तरह से मेरी उपासना किया है इसवास्ते मैं तुमको स्वर्ग को लेजाऊंगा आओ इस विमान पर जल्द चढ़ो और चलो ६७ ॥

राजोवाच ॥

मू० नरके मानवा धर्म्म पीड्यन्तेत्र सहस्रशः।
त्राहीतिचार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ६८ ॥

टी०। तब राजा बोले कि ऐ धर्म्म! इस नरकमें हज़ारों आदमी कष्ट संयुक्त हैं वे रोतेहुये आर्त्त होकर मुझसे त्राहि २ कहते हैं इसी सबब से मैं यहां से नहीं जासक्ता हूं ६८ ॥

इन्द्र उवाच ॥

मू० कर्म्मणा नरकप्राप्तिरेतेषां पापकर्म्मिणाम्।
स्वर्गस्त्वयापि गन्तव्यो नृपपुण्ये न कर्म्मणा ६९ ॥

टी०। तब इन्द्र बोले कि ऐ राजन्! ये पापकर्म्मी लोग अपने पाप कर्म्म से नरक में प्राप्त होरहे हैं और तुमने भी पुण्य का कामकिया है इस लिये उसकर्म से तुमको स्वर्ग में जाना जरूर है ६९ ॥

राजोवाच ॥

मू० यदि जानासि धर्म्मत्वं त्वं वाशक्र शचीपते।
मम यावत्प्रमाणन्तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ७० ॥

टी०। फिर राजा बोले कि ऐ शचीके स्वामी इन्द्र ! और ऐ धर्म्म ! आपलोग जो जानते हों तो मुझे बतलाइये कि मेरे पुण्य का प्रमाण कितनाहै ७० ॥

धर्म्मउवाच ॥

मू० अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा च दिवितारका।
यथाचावर्षतोधारा गङ्गायांसिकता यथा ७१ ॥

टी०। यह सुनकर धर्म्म बोले कि जिस तरह आकाश के तारे और समुद्र के जल के कण और गङ्गाके किनारे की बालू के किनुके और महा वृष्टिके विन्दु ७१ ॥

मू० असंख्येया महाराज यथाबिन्द्वादयोह्यपाम्।
तथा तवापिपुण्यस्य संख्यानै वोपपद्यते ७२ ॥

टी०। बे गिनती हैं उसीतरह ऐ राजन् ! तुम्हारे पुण्यका भी हिसाब नहीं है जैसे कि जलके बूंद इत्यादि हैं ७२ ॥

मू० अनुकम्पामिमामद्यनारके ष्विहकुर्व्वतः।
तदेवशतसाहस्रं संख्यामुपगतं तव ७३ ॥

टी०। और आज इन नारकियों पर कृपा करते हुये तुम्हारा वह पुण्य सैकरों व हज़ारों गुनाहोगया ७३ ॥

मू० तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम्।
एतेऽपि पापन्नरके क्षपयन्तु स्वकर्म्मजम् ७४ ॥

टी०। इसवास्ते ऐ राजन् ! अब तुम स्वर्गलोक को चलो और वहां उस पुण्य का सुख भोग करो और ये पापीलोग भी अपने कर्म्मसे उपजा हुआ पाप नरक में भोगकरें ७४ ॥

राजोवाच ॥

मू० कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ७५ ॥

टी०। तब राजा बोले कि जो हमारे पास इन लोगों की भलाई नहीं हुई तो फिर कोई मनुष्य किसतरह हमसे किसी कामकी इच्छाकरैगा ७५॥

मू० तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः ७६॥

टी०। इसवास्ते ऐ देवराज! जो कुछ हमारा सुकृत यानी पुण्य हो तो उससे ये कष्ट में प्राप्तपापी लोग नरक से छूट जायँ ७६॥

इन्द्र उवाच॥

मू० एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वया प्राप्तं महीपते।
एताश्च नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकारिणः ७७॥

टी०। यहबात राजाकी सुनकर इन्द्र बोले कि ऐ राजन्! इसतरहसे तुमको बहुत ऊंचा स्थान वैकुण्ठ प्राप्तहुआ और देखो ये पापी नारकी लोग भी नरक के कष्टसे छूटगये ७७॥

पुत्र उवाच॥

मू० ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः।
विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ७८॥

टी०। सुमति ने कहा कि ऐ पिता! उसीसमय उस राजाके ऊपर फूल वर्षने लगे और विष्णुभगवान् राजा का हाथ पकड़कर विमान में बैठाकर इसको वैकुण्ठ में लेगये ७८॥

मू० अहं चान्ये च ये तत्र यातनाभ्यः परिच्युताः।
स्वकर्म्मफलनिर्द्दिष्टं ततो जात्यन्तरं गताः ७९॥

टी०। तब हम और जितने अन्य पापी नरक के कष्टमें थे उससे छूट कर अपने अपने कर्म्मानुसार दूसरी जाति में जन्म पाते गये ७९॥

मू० एवमेते समाख्याता नरकाद्द्विजसत्तम।
येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ८०॥

टी०। ऐ द्विजोत्तम! जिस जिस पाप से मनुष्य नरक में जाकर और फिर जिस जिस योनि में प्राप्तहोते हैं इसी तरह ये नरक कहे गये ८०॥

मू० तत्तत्सर्व्वं समाख्यातं यथा दृष्टं मया पुरा।
पुरानुभवजज्ज्ञान मवाप्यावितथं तव॥
अतः परं महाभाग किमन्यत् कथयामि ते ८१॥

टी०। और जो जो बात गुज़रे हुये ज़माने में मैंने देखी थी सो सब पहिले जन्म के ज्ञान होने से मैंने सत्य कही अब इसके बाद हे महाभाग! आगे जो कुछ आप पूँछिये सो मैं तुमसे कहूँ ८१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेपञ्चदशोऽध्यायः १।

अथ सोलहवां अध्याय॥

पितोवाच॥

मू० कथितं मे त्वया वत्स संसारस्य व्यवस्थितम्।
स्वरूपमतिहेयस्य घटीयन्त्रवदव्ययम् १॥

टी०। फिर पिता ने कहा कि ऐ पुत्र! संसार की व्यवस्था जो तुमने कहा कि जिस की सूरत घटीयन्त्र की है और अव्यय है और काबिल छोड़ देने के है १॥

मू० तदेवमेतदखिलं मया वगतमीदृशम्।
किम्मया वदकर्तव्य मेवमस्मिन् व्यवस्थिते २॥

टी०। तो इस ऐसे असत्य संसार को मैं खूब जानचुका मुझे इसकी ऐसी व्यवस्था होनेपर अब कौन बात करना चाहिये सो तुम कहो २॥

पुत्रोवाच॥

मू० यदिमद्वचनं तातश्रद्दधास्यविशङ्कितः।
तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यं वानप्रस्थपरो भव ३॥

टी०। यह सुनकर पुत्र बोला कि ऐतात! जो आप मेरे वचन पर श्रद्धा करें तो यह गृहस्थ धर्म्म छोड़कर निस्सन्देह हो वानप्रस्थ धारण कीजिये ३॥

मू० तमनुष्ठाय विधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम्।
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ४॥

टी०। और विधि के अनुसार उसका अनुष्ठान कीजिये और अग्नि का संयम छोड़कर अपनेही शरीर में आत्मा का ध्यान कीजिये और सुख दुःखदोनों को बराबर समझिये और दूसरे किसी का साथ न कीजिये ४॥

मू० एकान्तराशी वश्यात्मा भवभिक्षुरतन्द्रितः।
तत्र योगपरो भूत्वा बाह्यस्पर्शविवर्जितः ५॥

टी०। एक दिनके अन्तर से भोजन करते हुए इन्द्रियों को अपने वश करके भिखारी होकरके ऊपरके अरस परस और आलस्य छोड़कर योग में प्राप्त रहिये ५॥

मू० ततः प्राप्स्यसि तं योगं दुःखसंयोगभेषजम्।
मुक्तिहेतुमनौपम्य मनाख्येयमसङ्गिनम् ६॥

टी०। बाद इसके दुःख मिलने की औषधि जो योग है वह योग आपको प्राप्त होगा और वह मुक्ति की जड़ है और असंग है और उपाधि रहित है और अकथ है कि जिस्से फिर संसार में आने का संयोग नहोगा ६॥

पितोवाच॥

मू० वत्स योगं ममाचक्ष्व मुक्तिहेतुमतः परम्।
येन भूतैः पुनर्भूतो मे दग्दुःखमवाप्नुयाम् ७॥

टी०। यह सुनकर पितावोला कि ऐ पुत्र! उत्तम मुक्ति का देनेवाला वह कौनसा योग है उसका हाल तुम बयान करो कि जिस योग से पंच भूतों से पैदाहोकर मुझे फिर इस दुःख में न आना पड़े ७॥

मू० यत्राशक्तिपरास्यात्मा मम संसारबन्धनैः।
नैति योगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद ८॥

टी०। और जिसमें आशक्त होकर आत्मा मेरा इस दुनिया के फन्देमें फिर न फँसै अयोगभी योग को नहीं प्राप्तहोताहै और दुनिया मुझसे बिलकुल छूटजावै इस वक्त उस योगको कहिये ८॥

मू० संसारादित्यतापार्त्तिं विप्लुष्यद्देहमानसम्।
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिञ्च मां वाक्यवारिणा ९॥

टी०। और यह दुनिया मानिन्द सूर्य्यके है जिसकी गरमीसे मेरामन और शरीर दुखी होरहा है उसको तुम ब्रह्मज्ञान के शीतलजल और अपने वचन के बूंद से ठंढा करो ९॥

मू० अविद्याकृष्णसर्प्पेण दष्टंतद्विषपीडितम्।
स्ववाक्यामृतपानेन मां जीवय पुनर्मृतम् १०॥

टी०। और अविद्या रूप काले सर्प्प के काटने से जो विषमेरे शरीरमें है उससे पीडितहूं अपने वचन अमृतको पिलाकर मुझमुर्देको फिर जिलाओ १०॥

मू० पुत्रदार गृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम्।
मांमोचयेष्टसद्भाव विज्ञानोद्घाटनैस्त्वरन् ११॥

टी०। और पुत्र और स्त्री और घर और खेत इत्यादिकी ममता की जंजीर में जकड़ा हुआहूं तुम सद्भाव संयुक्त विज्ञान उत्पन्न कर के मुझे जल्द छुड़ाओ ११॥

पुत्र उवाच॥

मू० शृणु तात यथा योगो दत्तात्रेयेण धीमता।
अलर्काय पुराप्रोक्तः सम्यक् पृष्टेन विस्तरात् १२॥

टी०। पुत्र बोला कि ऐ तात! जो योग दत्तात्रेय महात्मा ने अगले जमाने में बुद्धिमान् अलर्क के पूंछने पर सम्यक् प्रकार से विस्तार पूर्व्वक कहा है वही मैं आप से कहताहूं सुनिये १२॥

पितोवाच॥

मू० दत्तात्रेयः सुतः कस्य कथं वा योगमुक्तवान्।
कश्चालर्को महाभागो यो योगं परिपृष्टवान् १३॥

टी०। फिर पिता बोला कि ऐ पुत्र! दत्तात्रेय किसकेपुत्रथे और किस तरह योगको वर्णन कियाहै और वह अलर्क महा भाग्यवान् कौन थे कि जिन्हों ने योग पूँछा है १३॥

पुत्र उवाच॥

मू० कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरे।
सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोभवत् १४॥

टी०। तब सुमति पुत्र ने कहा कि अगले जमाने में कौशिक नाम कोई एक ब्राह्मण इसी पुर में था और उस ब्राह्मणने पहिले जन्म में जो पाप कियाथा उसके सबबसे कोढ़ीहोगया १४॥

मू० तं तथाऽप्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्चयत् ।
पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाह स्नानाच्छादनभोजनैः १५ ॥

टी० । और उस कोढ़ी ब्राह्मण की स्त्री जो पतिव्रता थी अपने स्वामी को देवता समान समझ कर उसकी सेवा और उसके पांव व बदन में तेलफुलेल मलती और भोजन और वस्त्र खिलाती और पहिनाती थी १५ ॥

मू० श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक् प्रवाहक्षालनेन च ।
रहश्चैवोपचारेण प्रियसम्भाषणे न च १६ ॥

टी० । और उसके शरीर का रुधिर और पीब और कफ व विष्ठा और मूत्र वगैरा साफ़ किया करती थी और एकान्त में अपने स्वामीकी खिदमत में रहकर मीठी मीठी बातें किया करती थी १६ ॥

मू० स तया पूज्यमानोऽपि सदातीव विनीतया ।
अतीव तीव्रकोपत्वान्निर्भत्सयति निष्ठुरः १७ ॥

टी० । और इतनी सेवा नम्रता पूर्व्वक करने परभी वह ब्राह्मण बड़े कोपसे निठुर वाणी के साथ निन्दा किया करता था १७ ॥

मू० तथापि प्रणता भार्य्या तममन्यत दैवतम् ।
तं तथाप्यति वीभत्सं सर्व्वश्रेष्ठ ममन्यत १८ ॥

टी० । और बहुत निन्दा करता था तौभी वह पतिव्रता उसकोदेवता के समान समझती थी व वैसे बिगड़े हुये भी उसको सब से अधिक मानती थी १८ ॥

मू० अचंक्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ।
प्राहभार्य्यानयस्वेति त्वं मां तस्यानिवेशनम् १९ ॥

टी० । एक दिन उस ब्राह्मण ने जो मरने योग्य था अपनी स्त्री से कहा कि तू मुझे उसके घर पहुँचा दे १९ ॥

मू० या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहोषिता ।
तां मां प्रापय धर्म्मज्ञे सैवमे हृदि वर्त्तते २० ॥

टी० । कि घरमें रहती हुई जिस वेश्याको मैंने आज राजा के दरबार में जाते हुये देखा है मेरे दिल में सूरत उसकी गड़ गई है ऐ धर्म्म की जाननेवाली ! तू मेरी उससे मुलाक़ात करादे २० ॥

मू० दृष्टा सूर्य्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता।
दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्प्पति २१॥

टी०। क्योंकि सूर्य्य के निकलते वक्त मैंने उसको देखाथा और देखने के बाद से अब रात होगई मेरे दिल से वह भूलती नहीं है २१॥

मू० यदि सा चारुसर्व्वाङ्गी पीनश्रोणि पयोधरा।
नोपगूहति तन्वङ्गी तन्मां द्रक्ष्यसि वै मृतम् २२॥

टी०। इसलिये कि वह वेश्या शिर से पांव तक खूबसूरती में बे मिस्ल और जिसकी जांघें गुदारी गुदारी और स्तन कड़े कड़े हैं अगर वह मुझे न लिपटैगी व तू मेरी मुलाक़ात उससे न करावैगी तो मुझे मराहुआ देखेगी २२॥

मू० वामः कामो मनुष्याणां बहुभिः प्रार्थ्यते च सा।
ममाशक्तिश्च गमने संकुलं प्रतिभाति मे २३॥

टी०। सुमतिने कहा कि ऐ पिता! आदमियों के वास्ते कामदेव बहुत कठिन है उसकोही ब्राह्मण ने कहा कि उसे बहुत आदमी चाहते हैं और मैं चलने से मजबूर हूँ जाने में मुझे संकट मालूम होता है २३॥

मू० तत्तदा वचनं श्रुत्वा भर्त्तुः कामातुरस्य सा।
तत्पत्नी सत्कुलोत्पन्ना महाभागा पतिव्रता २४॥

टी०। तब उस कामातुर पतिकी यहबात सुनकर वह पतिव्रता उत्तम कुल की पैदा जो महाभागवती थी २४॥

मू० गाढं परिकरं बद्ध्वा शुल्कमादाय चाधिकम्।
स्कन्धे भर्त्तारमादाय जगाम मृदुगामिनी २५॥

टी०। पहिले अपनी कमर को कपड़े से मजबूत कसकर फिर बहुत धन देनेके लिये लेकर अपने स्वामी को कन्धेपै बैठाकर सुन्दर चालवाली वह आहिस्ता आहिस्ता चली २५॥

मू० निशि मेघास्तृते व्योम्नि चलद्विद्युत्प्रदर्शिते।
राजमार्गे प्रियं भर्त्तुश्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना २६॥

टी०। एक तो अँधेरी रात थी और आकाश पर बादल छाया हुआ

था पर बिजली की रोशनी से उस राजमार्ग पर अपने स्वामी के सुख को चाहती हुई चलीजाती थी २६ ॥

मू० पथि शूले तथा प्रोतमचौरं चौरशङ्कया।
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः २७ ॥

टी०। और उसी अंधियाले रास्ते पर एक शूली खड़ीथी कि जिसपर बहुत दुःख से विकल मांडव्य मुनि चोरी की इल्लत में चढ़ादिये गये थे उसी रास्ते से वह ब्राह्मण २७ ॥

मू० पत्नी स्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः।
पादाग्रमर्षणात् क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह २८ ॥

टी०। कौशिक नाम अपनी स्त्री के कन्धेपर चढ़ाहुआ चलाजाता था पांवका धक्का जो शूली में लगा तो उसके हिलने से उस मुनिको और जियादा तकलीफ़ हुई तो दुःख करके वह मुनि उससे कहने लगे २८ ॥

मू० येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा।
दशांकष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः २९ ॥

टी०। कि जिस पापी अधम मनुष्य ने शूली को पैर से हिलाकर मुझ कष्टित दुखी को और भी अधिक दुःख दिया है वह पापी है २९ ॥

मू० सूर्य्योदयेऽवशः प्राणैर्विमोक्ष्यति न संशयः।
भास्करालोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति ३० ॥

टी०। और वह बिनवश होके निश्चय करके सूर्य्य के निकलते और सूर्य्य को देखतेही मरजायगा ३० ॥

मू० तस्य भार्य्या ततः श्रुत्वा तं शापमति दारुणम्।
प्रोवाच व्यथिता सूर्य्यो नैवोदयमुपैष्यति ३१ ॥

टी०। यह अति दारुण शाप सुनकर उसकी स्त्री वह ब्राह्मणी दुःख में प्राप्त होकर बोली कि सूर्य्य न उदय होंगे ३१ ॥

मू० ततः सूर्योदयाभावादभवत् सन्तता निशा।
बहून्यहप्रमाणानि ततो देवाभयं ययुः ३२ ॥

टी०। उस पतिव्रता के कहने से बहुत दिनका प्रमाण गुजर गया और

सूर्य्य नहीं निकले हमेशा रातही रही तब सूर्योदय न होने से देवताओं को डर पैदा हुआ ३२ ॥

मू० निःस्वाध्याय वषट्कार स्वधा स्वाहा विवर्ज्जितम्।
कथं नु खल्विदं सर्व्वं नगच्छेत्संक्षयं जगत् ३३ ॥

टी०। कि स्वाध्याय और वषट्कार और स्वधा स्वाहा आदि सब छूट गया और कहने लगे कि जो निश्चय रातही रहैगी तो जगत् की आयुर्बल क्यों न घटैगी याने संसार नाश होजायगा ३३ ॥

मू० अहोरात्रव्यवस्थाया विनामासर्त्तु संक्षयः।
तत संक्षयान्नत्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ३४ ॥

टी०। और जो रात और दिन की व्यवस्था न रहैगी तो मास और ऋतु नाश होजायगा और बगैर उसके उत्तरायण और दक्षिणायन की पहिचान किसतरह होगी ३४ ॥

मू० विनाचायनविज्ञानात् कालः संवत्सरः कुतः।
संवत्सरं विनानान्यत् कालज्ञानं प्रवर्त्तते ३५ ॥

टी०। और बगैर अयन जानने के बर्ष और जमाना क्योंकर मालूम होगा और बगैर बर्ष के और वक्तका ज्ञान न होगा ३५ ॥

मू० पतिव्रतायावचसा नोद्गच्छति दिवाकरः।
सूर्य्योदयं विनानैव स्नानदानादिकाः क्रियाः ३६ ॥

टी०। और जो पतिव्रता के वचन से सूर्य्य न निकलैगा तो स्नान दानादि क्रिया क्योंकर होगी ३६ ॥

मू० नाग्नेर्विहरणञ्चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते।
नैवाप्यायनमस्माकं विना होमे न जायते ३७ ॥

टी०। और विना अग्नि के यज्ञका अभाव दिखलाई पड़ता है और विना यज्ञके होम भी न होगा और बिना होम के हम लोगों की तृप्ति भी न होगी ३७ ॥

मू० वयमाप्यायितामर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः।
वृष्ट्यातान नुगृह्णीमो मर्त्यान् सस्यादिसिद्धये ३८ ॥

टी०। और जब हम लोग यथोचित मनुष्यों से यज्ञका भाग पाके तृप्त होते हैं तब मृत्युलोक में वृष्टि से उनके ऊपर दया करते हैं कि जिसमें मनुष्यों के वास्ते अन्नादि उत्पन्न होता है ३८ ॥

मू० निष्पादितास्वोषधीषु मर्त्यायज्ञैर्यजन्ति नः।
तेषां वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिताः ३९ ॥

टी०। और सब अन्न जड़ी बूटी भी उससे सम्पन्न होती हैं और यज्ञ कर्त्ता मनुष्य यज्ञों से हमारा पूजन करते हैं तब उन सभोंका जो मनोरथ होता है उसको यज्ञादिकों से पूजेहुये हमलोग सिद्ध करदेते हैं ३९ ॥

मू० अधोहि वर्षामवयं मर्त्याश्चोर्द्ध्वप्रवर्षिणः।
तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः ४० ॥

टी०। और हमलोग नीचे की तरफ़ बरसाते हैं और वे लोग ऊपरको बरसाते हैं और हमलोग जल बरसाते हैं और मनुष्य लोग हविष्यान्न बरसाते हैं ४० ॥

मू० येनास्माकं प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः।
क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयं चाश्नन्ति लोलुपाः ४१ ॥

टी०। और जो दुष्ट व लोभी मनुष्य नित्य और नैमित्यकी क्रिया और यज्ञका भाग हम सभोंको नहीं समर्पणकरते हैं और आपहीखातेहैं ४१॥

मू० विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्य्याग्निमारुतान्।
क्षितिञ्च सन्दूषयामः पापानामपकारिणाम् ४२ ॥

टी०। तो उन पापकर्म्मी व अपकारी मनुष्यों के विनाश के लिये सूर्य्य और अग्नि और वायु से पृथ्वीको हमलोग दूषित करदेते हैं ४२ ॥

मू० दुष्टतोयादिभोगेन तेषां दुष्कृतिकर्म्मिणाम्।
उपसर्गाःप्रवर्त्तन्ते स्मरणाय सुदारुणाः ४३ ॥

टी०। और बुरा पानी और खाना वगैरा खाने से पापकर्म लोगों के मरने के लिये बड़े भयानक उत्पात होते हैं ४३ ॥

मू० ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जन्ते शेषमात्मना।
तेषां पुण्यान् वयंलोकान् विदधाम महात्मनाम् ४४ ॥

टी० । और जो लोग हम सभों को पहिले तृप्त करके बाकी अन्न इत्यादि पीछे आप खाते हैं उन पुण्यात्मा लोगों को हम लोग अच्छे अच्छे लोक देते हैं ४४ ॥

मू० तन्नास्ति सर्व्वमेवैतद्विनैषां व्युष्टि संस्थितिम् ।
कथन्नुदिनसर्गः स्यादन्योन्यमवदन् सुराः ४५ ॥

टी० । और बिन यह सुबह हुये यह सब न होगा यदि सूर्य्य न निकला तो सत्क्रिया कौन करैगा और स्वर्ग में कौन आवैगा ये बातैं देवलोग आपस में कर रहेथे ४५ ॥

मू० तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम् ।
देवानां वचनं श्रुत्वा प्राहदेवः प्रजापतिः ४६ ॥

टी० । सुमति ने कहा कि यज्ञके विनाश से शंकित उन सबही देवताओं की शोच बिचार संयुक्त बातैं सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे ४६ ॥

मू० तेजः परंतेजसैव तपसा च तपस्तथा ।
प्रशाम्यतेऽमरास्तस्माच्छ्रणुध्वं वचनं मम ४७ ॥

टी० । कि तेज से उत्तम तेज शान्त होता है और तप से उत्तम तपस्या शान्त होती है इसवास्ते ऐ देवतो ! तुम धीरज रक्खो और जो मैं कहता हूँ उस बचन को सुनो ४७ ॥

मू० पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ।
तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा ४८ ॥

टी० । कि पतिव्रता के माहात्म्य से सूर्य्योदय नहीं होताहै और बिना सूर्य्य के उदय हुये आदमियों का और आपलोगों का भी नुकसान है ४८ ॥

मू० तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ।
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदय काम्यया ४९ ॥

टी० । इस लिये तुम सब अत्रि मुनिकी स्त्री अनसूया जो तपस्विनी है उसके पास जाकर सूर्य्य के उदय होने के वास्ते बिनती करो उसी की कृपा से सूर्य्य उदय होंगे ४९ ॥

पुत्र उवाच ।

मू० तैःसा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति ।

अयाचन्तदिनं देवा भवत्विति यथा पुरा ५० ॥

टी०। फिर सुमति पुत्र ने कहा कि यह वचन ब्रह्माजीके सुनकर सब देवताओं ने अनसूया के पास जाकर बिनय और शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न किया तब अनसूया ने उन सबों से पूछा कि तुम किस बातकी अभिलाषा रखते हो उन देवताओं ने कहा कि पहिले के समान सूर्य्य उदय हों ५० ॥

अनसूयोवाच।

मू० पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथंत्विति।
सम्मान्यतस्मात्तां साध्वीमहःस्रक्ष्याम्यहं सुराः ५१ ॥

टी०। तब अनसूया कहने लगी कि पतिव्रता का माहात्म्य किसी तरह मिथ्या नहीं होसक्ता इस वास्ते ऐ देवता लोगो! उसका आदर करके मैं उससे दिन कराऊँगी ५१ ॥

मू० यथा पुनरहोरात्र संस्थान मुपजायते।
यथा च तस्याः स्वपतिनसाध्व्या नाशमेष्यति ५२ ॥

टी०। कि जिस तरह पहिले दिनरात होता था उसीतरह फिर होगा और उस पतिव्रता का अपना स्वामी भी जिस तरहसे नहीं नाश होगा ५२ ॥

पुत्र उवाच।

मू० एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सा मन्दिरंशुभा।
उवाचकुशलं पृष्टा धर्म्मं भर्त्तुस्तथात्मनः ५३ ॥

टी०। पुत्र बोला कि देवताओं से ऐसा कहकर वे उत्तम अनसूया जी उसके घरको जाकर पूछने पर कुशल कहा व पतिके और वैसेही अपने धर्म को कहा ५३ ॥

अनसूयोउवाच ॥

मू० कच्चिन्नन्दसि कल्याणि स्वभर्त्तुर्मुखदर्शनात्।
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकंपतिम् ५४ ॥

टी०। अनसूया जी बोलीं कि हे कल्याणि! अपने पतिका मुख देखने से क्या आनन्द होती हो व समस्त देवों से अधिक क्या अपने पतिको मानती हो ५४ ॥

मू० भर्तृशुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत्फलम्।
सर्वकामफलावाप्त्या प्रत्यूहाः परिवर्तिताः ५५॥

टी०। मैंने पतिकी सेवाही से बड़ा फल पाया है व समस्त कामनाओं के फल से विघ्न नाश करदिये गये ५५॥

मू० पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि देयानि सर्वदा।
तथात्मवर्णधर्मेण कर्तव्यो धनसञ्चयः ५६॥

टी०। हे पतिव्रते! मनुष्य को सदैव पांच ऋण देना चाहिये और वैसेही अपने वर्ण के धर्म से द्रव्य को इकट्ठा करना चाहिये ५६॥

मू० प्राप्तश्चार्थस्ततः पात्रे विनियोज्यो विधानतः।
सत्यार्जवतपोदानैर्दयायुक्तो भवेत्सदा ५७॥

टी०। उसके बाद पाये हुये धनको सत्पात्र में विधि से युक्त करना चाहिये व सत्य कोमलता तपस्या व दान करके सदैव दया संयुत होवै५७॥

मू० क्रियाश्च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेष विवर्जिताः।
कर्तव्या अन्वहं श्रद्धा पुरस्कारेण शक्तितः ५८॥

टी०। और प्रति दिन स्नेह व वैर से रहित शास्त्र में कहे हुये कर्मों को सामर्थ्य से श्रद्धा पूर्वक करना चाहिये ५८॥

मू० स्वजाति विहितानेव लोकान्प्राप्नोति मानवः।
क्लेशेन महता साध्वि प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ५९॥

टी०। हे पतिव्रते! अपनी जातिही से बनाये हुये प्रजापति इत्यादिकों के लोकों को मनुष्य क्रम पूर्वक बड़े क्लेश से प्राप्त होता है ५९॥

मू० स्त्रियस्त्वेवं समस्तस्य नरैर्दुःखार्जितस्य वै।
पुण्यस्यार्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैवहि ६०॥

टी०। ऐसेही मनुष्यों से दुःख करके इकट्ठा किये हुये सब पुण्य का आधा स्त्रियां पतिकी सेवाही से लेलेती हैं ६०॥

मू० नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धंनाप्युपोषितम्।
पतिशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टां व्रजन्तिहि ६१॥

टी०। स्त्रियों के लिये अलग यज्ञ व श्राद्ध और व्रत नहीं है क्योंकि वे स्त्रियां पतिकी सेवाही से इन प्रियलोकों को प्राप्त होती हैं ६१॥

मू० तस्मात्साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणंप्रति।
त्वयामतिः सदाकार्या यतोभर्ता परागतिः ६२॥

टी०। इस लिये हे महाभागे, पतिव्रते! तुमको पतिकी सेवामें सदैव बुद्धि करना चाहिये क्योंकि पतिउत्तम गति है ६२॥

मू० यद्देवेभ्यो यच्चपित्रागतेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियातः
तस्याप्यर्धंकेवलानन्यचित्तानारीभुंक्तेभर्तृशुश्रूषयैव ६३॥

टी०। जो देवताओं के लिये व पितरों तथा अभ्यागतों के लिये उत्तम कर्म से पति पूजन करता है उसका आधाभी केवल सावधान चित्तवाली स्त्री पति की सेवाही से पाती है ६३॥

पुत्रउवाच॥

मू० तस्यास्त द्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तथा दरात्।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीं तामनसूयामिदं वचः ६४॥

टी०। पुत्र कहता है कि उसका वह वचन सुनकर वैसेही आदर से पूजकर अत्रि की स्त्री उन अनसूया जी से उसने यह वचन कहा ६४॥

मू० धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि देवैश्चाप्यवलोकिता।
यन्मे प्रकृति कल्याणि श्रद्धां वर्धयसे पुनः ६५॥

टी०। कि देवों से भी देखी हुई मैं धन्य हूं व आपने मुझपर कृपा की जो कि हेस्वभावसेहीकल्याणरूपवाली!मेरीश्रद्धाको फिर बढ़ातीहो ६५॥

मू० जानाम्येतन्न नारीणां काचित्पति समागतिः।
तत्प्रीतश्चोपकाराय इह लोके परत्र च ६६॥

टी०। मैं यह जानती हूं कि पति के समान स्त्रियों की कोईगति नहीं है और उसकी प्रीति इसलोक और परलोकमें उपकारके लियेहोतीहै ६६

मू० पति प्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी।
नारीसुखमवाप्नोति नार्या भर्ता हि देवता ६७॥

टी०। हे यशस्विनि! पति की प्रसन्नता से यहां व परलोक में ही सुख को प्राप्त होता है क्योंकि स्त्री का पतिही देवता है ६७॥

मू० सात्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्ताया मम मन्दिरम्।
आर्यायायन्मया कार्य्यं तथार्येणापि वाशुभे ६८॥

टी०। हे महाभागे! सो तुम कहो कि मेरे मन्दिर में प्राप्त हुई आप का जो कुछ काम मुझ को करना हो ६८॥

अनसूयोवाच॥

मू० एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्यदुःखिताः।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्म दिननक्तं निरूपणाः ६९॥

टी०। अनसूया जी बोलीं कि इन्द्र समेत ये देवता मेरे पासआकर दुःखित होरहे हैं क्योंकि तुम्हारे वचन से उत्तम कर्म व दिन रात का निरूपण नाश होगया है ६९॥

मू० याचन्ते हर्निशां संस्थां यथावदविखण्डिताम्।
अहं तदर्थमायाता शृणुचैतद्वचो मम ७०॥

टी०। वे देवता दिनरातकी यथायोग्य पूर्ण स्थिति को मांगते हैं मैं उसी के लिये आई हूं और मेरे यह वचन सुनो ७०॥

मू० दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम्।
तदभावात् सुराः पुष्टिनोपयान्ति तपस्विनि ७१॥

टी० कि हे तपस्विनि! दिनके न होने से समस्त यज्ञ के कर्मों का अभाव होजाताहै व उसके न होनेसे देवता पुष्टिको नहीं प्राप्तहोतेहैं ७१॥

मू० अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणाम्।
तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति ७२॥

टी०। व दिन के नाश होने से सब कर्मों का नाश होजायगा और उन के नाशसे अनावृष्टि के कारण से संसार नाशको प्राप्तहोगा ७२॥

मू० तत्वमिच्छसि चेदेतज्जगदुद्धर्तुमापदः।
प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्त्ततां रविः ७३॥

टी०। इसलिये यदि तुम इस संसार को विपत्ति से उधारना चाहती

हो तो हे पतिव्रते ! प्रसन्न हूजिये और लोकों के मध्यमें पहले की तरह सूर्यनारायण वर्तमान होवें ७३ ॥

ब्राह्मण्युवाच ॥

मू० माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्त्ता ममेश्वरः ।
सूर्योदये विनाशंत्वं प्राप्स्यसीत्यति म प्युना ७४ ॥

टी० । तब वह ब्राह्मणी बोली कि ऐ महाभागवति ! माण्डव्य मुनि ने दुःखी होकर बड़े कोप से मेरे स्वामी को शाप दिया है कि सूर्य्यको निकलते देखकर तू मरजायगा ७४ ॥

अनसूयोवाच ॥

मू० यदि वारोचते भद्रे ततस्त्वद्वचनादहम् ।
करोमि पूर्ववद्देहं भर्त्तारञ्च नवं तव ७५ ॥

टी० । यह सुनकर फिर अनसूया बोली कि ऐ कल्याणी ! मेरा कहना जो तू माने तो मैं तुम्हारे बचन से तेरे पतिको जो पहिले नौजवान था फिर वैसाही नौजवान बना दूँगी ७५ ॥

मू० मयाहि सर्व्वथास्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनि ।
पतिव्रतानामाराध्यमितिसम्मानयामि ते ७६ ॥

टी० । और ऐ वरवर्णिनी ! मैं सब तरह से पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य को जानती हूँ और वह माहात्म्य आराधन करने योग्यहै और इसी कारण से मैं तेरी भलाई करूँगी ७६ ॥

पुत्रउवाच ॥

मू० तथेत्युक्ते तया सूर्य्यमाजुहाव तपस्विनी ।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदानिशि ७७ ॥

टी० । फिर सुमति ने कहा कि ऐ पिता ! यह बात अनसूया की सुन कर उस ब्राह्मणी ने एवमस्तु कहा व तपस्विनी अनसूयाने उस दश रातों वाली रात में अर्घ ऊपर करके सूर्य को बुलाया ७७ ॥

मू० ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः ।
शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः ७८ ॥

टी०। और उसके बाद उस अर्घ्य के उठातेही लाल कमल के समान सूर्य्य भगवान् उदयाचल पर्वतपर दीर्घ मण्डल से निकल आये ७८॥

मू० समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत।
पपात च महीपृष्ठे पतन्तंजगृहे च सा ७९॥

टी०। उस सूर्य्यमण्डल को देखतेही उस पतिव्रता का पति जमीन पर गिरकर मरगया तब पतिव्रता ने दौड़कर गिरते हुए अपने पतिकी लाश को गोद में लेलिया ७९॥

अनसूयोवाच॥

मू० नविषादस्त्वया भद्रे कर्त्तव्यः पश्यमे बलम्।
पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किञ्चिरेण ते ८०॥

टी०। फिर अनसूया बोली कि ऐ कल्याणी! तू दुःख न कर मेरे बल को देख जो बल स्वामी की सेवा करने से मुझको प्राप्त हुआ है तुम्हारी बहुत तपस्या से क्या है ८०॥

मू० यथा भर्त्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित्।
रूपतः शीलतो बुद्ध्यावाङ्माधुर्य्यादि भूषणैः ८१॥

टी०। इतना कहकर फिर वह बोली कि रूप और शील और बुद्धि और वाणी की माधुर्य्य इत्यादि भूषणों से कहीं जो मैंने सिवाय अपने पति के दूसरे पुरुष को न देखा हो तो ८१॥

मू० तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा।
प्राप्नोति जीवितं भार्य्यासहायः शरदां शतम् ८२॥

टी०। उस सत्य से यह ब्राह्मण सब बीमारियों से अच्छा होके फिर नौजवानहोकर जीउठे और सैकड़ोंवर्षतक अपनी स्त्रीकी पालनाकरै ८२॥

मू० यथा भर्त्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम्।
तेनसत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ८३॥

टी०। और जो अपने पतिके बराबर किसी और देवताको मैं न समझती हों तो उस सत्यसे यह ब्राह्मण आरोग्य होकर फिर जिन्दाहोजाय ८३॥

मू० कर्म्मणा मनसा वाचा भर्त्तुराराधनं प्रति।

यथामम्योद्यमो नित्यं तथायं जीवताद्विजः ८४ ॥

टी०। और जो मन और वचन और कर्म्मणा से पतिकी सेवामें हमेशा मेरी निष्ठा रही हो तो उस सत्य से यह ब्राह्मण जी उठे ८४ ॥

पुत्रउवाच ॥

मू० ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा।
स्वाभाभिर्भासयन् वेश्मवृन्दारक इवाजरः ८५ ॥

टी०। सुमति बोला कि ए पिता ! अनसूयाके इतना कहतेही वह ब्राह्मण सब रोगों से निरोग और फिर नौजवान होकर ज़िन्दा होगया और अपने शरीर के तेज से घर को प्रकाशित करदिया और देवता की तरह अजर रूप होगया ८५ ॥

मू० ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यादि निस्वनः।
लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथा ब्रुवन् ८६ ॥

टी०। बाद इसके देवतालोग फूल बरसानेलगे और देवताओं के बाजा वगैरा बजनेलगे व देवता आनन्दमें प्राप्त हो अनसूया से कहनेलगे ८६ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० वरं वृणीष्व कल्याणि देवकार्य्यं महत्कृतम्।
त्वयायस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि ८७ ॥

टी०। देवताबोले कि ऐ कल्याणी ! जिसलिये तूने देवतों का बड़ा कार्य्य किया है इसवास्ते हम सब देवता तुझे वर देंगे ऐ तपस्विनी ! जो तेरी इच्छाहो वर हम सभों से मांग ८७ ॥

अनसूयोवाच ॥

मू० यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः।
वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता ८८ ॥

टी०। तब अनसूया बोली कि यदि ब्रह्मासमेत देवता सब मुझपर प्रसन्न हैं और वर देनेको तैयार हैं और यदि आपलोगों के मतसे मैं वर देने योग्यहूं ८८ ॥

मू० तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

योगश्च प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये ८९ ॥

टी०। तो ब्रह्मा और विष्णु और शिव मेरे पुत्र होवें और मैं अपने पति के साथ योग में प्राप्त होकर क्लेश से छूट जाऊँ ८९ ॥

मू० एवमस्त्विति तां देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
प्रोक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनीम् ९० ॥

टी०। यह वचन अनसूया के सुनकर सब देवता ब्रह्मादिक प्रसन्नहो कर उस तपस्विनीसे एवमस्तु कहिकर व यथायोग्य पूंछकर अपने२ स्थान को चलेगये ९० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेपतिव्रतावरप्राप्तिःषष्ठदशोऽध्यायः १६ ॥

अथ सत्रहवां अध्याय ॥

पुत्र उवाच।

मू० ततः काले बहुतिथे द्वितीयो ब्राह्मणः सुतः।
स्वभार्यां भगवानत्रिरनसूयामपश्यत १ ॥

टी०। फिर सुमति ने कहा कि ऐ पिता! कितने दिनों के बाद एक दिन ब्रह्मा के दूसरे पुत्र भगवान् अत्रिने अपनी स्त्री अनसूयाको देखा १ ॥

मू० ऋतुस्नातां सुचार्व्वङ्गीं लोभनीयोत्तमाकृतिम्।
सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम् २ ॥

टी०। कि वह सर्व्वाङ्ग सुन्दरी मोहनी मूर्त्ति ऋतु से निवृत्त हो स्नान करचुकी है उसके रूपको देखकर वह मुनि उस सुन्दरीको मनसे ख्याल कर सकाम होरहे थे २ ॥

मू० तस्याभिध्यायतस्तान्तु विकारो योऽन्वजायत।
तमेवोवाहपवनास्तिरश्चोर्द्ध्वं च वेगवान् ३ ॥

टी०। यहां तक कि उसके देखने से काम इच्छा की उनको ऐसी बेचैनी हुई कि जिस विकारसे जल्द जल्द ऊर्द्ध्व श्वास लेनेलगे और वह वेगवान् पवन विकारको तिरछा ऊपर लेगया ३ ॥

मू० ब्रह्मरूपं च शुक्लाभं पतमानं समं ततः।

सोमरूपं रजोपेतं दिशस्तं जगृहुर्दश ४॥

टी०। उस समय रजोगुण युक्त जो ब्रह्मा हैं उनके शरीर की शुक्ल ज्योति और शीतल रूप था सबओर से गिरतेहुए उसको दशौ दिशाओं ने ग्रहण किया ४॥

मू० स सोमो मानसो जज्ञे तस्या मत्रेः प्रजापतेः।
पुत्रः समस्तसत्त्वाना मायुराधार एव च ५॥

टी०। वही तेज अत्रिजी का मानसी पुत्र उन अनसूया में होकर चन्द्रमा कहलाया जो सब जीवों का आधार और आयुर्बल है॥ ५॥

मू० तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयो महात्मना।
स्व शरीरात् समुत्पाद्य सत्त्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः ६॥

टी०। फिर विष्णु भगवान् जो सतोगुण संयुक्त हैं उनको भी द्विजोत्तम अत्रिजी महात्मा ने संतुष्ट करके अपने शरीर से दत्तात्रेयजी को उत्पन्न किया ६॥

मू० दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूयास्तनं पपौ।
विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेःसुतोऽभवत् ७॥

टी०। जो दत्तात्रेय ऐसे मशहूर हुये हैं व अनसूया की छाती से दूध पियाहै और दत्तात्रेय साक्षात् विष्णु अवतारहोकर अत्रिजी के दूसरे पुत्र कहलाये हैं ७॥

मू० सप्ताहात्प्रच्युतो मातुरुदरात् कुपितो यतः।
हैहयेन्द्रमुपावृत्त मपराध्यन्तमुद्धतम् ८॥

टी०। और जो दुर्वासाजी सातवें दिन अपनी माता के उदर से प्रकट होगये थे उसका कारण यह है कि कार्त्तवीर्य्य राजा ने आकर अनसूया को बहुत तरह का भय दिखलाया था इस बड़े अपराध को ८॥

मू० दृष्ट्वात्रौकुपितः सद्यो दग्धुकामः सहैहयम्।
गर्भवासमहायास दुःखामर्ष समन्वितः ९॥

टी०। अत्रिजी के लिये देखकर उस गर्भवास के बड़े दुःख में भी अधिक दुःखीहो आमर्ष युक्त वे दुर्वासाजी उसीक्षण क्रोधितहो उसराजा सहस्त्रार्जुन को नाश करने के वास्ते ९॥

मू० दुर्व्वासास्तमसोद्रिक्तो रुद्रांशः समजायत।
इति पुत्र त्रयं तस्या जज्ञे ब्रह्मेश वैष्णवम् १० ॥

टी०। तमोगुण संयुक्त श्री महादेवजी के अंश से श्री दुर्वासाजी प्रकट हुये बस इसी तरह ये तीनों यानी ब्रह्मा और विष्णु और शिवजी उन अनसूया के पुत्र कहलाये १० ॥

मू० सोमो ब्रह्मा भवद्विष्णुर्दत्तात्रेयो व्यजायत।
दुर्व्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ११ ॥

टी०। ब्रह्माजी चन्द्रमा और विष्णु भगवान् दत्तात्रेय और शिवजी दुर्वासाजी हुये देवताओं के वरदान देने के सबब से ११ ॥

मू० सोमः स्व रश्मिभिः शीतैर्वीरुधौषधिमानवान्।
आप्यायन् सदा स्वर्गे वर्त्तते सः प्रजापतिः १२ ॥

टी०। गरज कि चन्द्रमा तो आकाश पर वास करके अपनी ठंढी किरणों व संसार की जड़ीबूटी और मनुष्योंका पालन करतेहैं सो ब्रह्मा के अंश हैं जो हमेशा स्वर्ग में रहते हैं १२ ॥

मू० दत्तात्रेयः प्रजापाति दुष्टदैत्यनिवर्हणात्।
शिष्टानुग्रहकृच्चेति ज्ञेयश्चांशः स वैष्णवः १३ ॥

टी०। और दत्तात्रेयजी दुष्ट और दैत्यों को नाश करके प्रजा व सज्जन लोगों की रक्षा करते हैं व उत्तम जनों के ऊपर दया करते हैं और वह विष्णु के अंशहैं १३ ॥

मू० निर्दहत्यवमन्तारं दुर्व्वासा भगवानजः।
रौद्रं समाश्रित्यवपुर्दृङ्मनो वाग्भिरुद्धतः १४ ॥

टी०। और दुर्वासा भगवान् अजन्मा जिनका अत्यन्त उद्दण्ड मन और नेत्र और वचन और शरीर है अपमान करनेवाले को जलानेवाले हैं इनको महादेवजी का अंश जानना चाहिये १४ ॥

मू० सोमत्वं भगवानत्रिः पुत्रश्चक्रे प्रजापतिः।
दत्तात्रेयो ऽपि विषयान् योगस्थो बुभुजे हरिः १५॥

टी०। फिर प्रजापति अत्रिभगवान् ने चन्द्रमा पुत्रको सोमत्व की

पदवी देकर औषधि व मनुष्यादिकों को तृप्ति करना यह अधिकार दिया और दत्तात्रेय ने योगमें प्राप्त होकर विषयों का भोगकिया १५ ॥

मू० दुर्व्वासाः पितरं हित्वा मातरं चोत्तमं व्रतम्।
उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् १६ ॥

टी०। और दुर्वासाजी ने माता पिता इत्यादि को त्याग करके उत्तम व्रत इख़्तियार किया और दीवानों की तरह संसार में फिरने लगे १६ ॥

मू० मुनिपुत्रवृतो योगी दत्तात्रेयो ऽप्यसङ्गिताम्।
अभीप्स्यमानः सरसि निममज्ज चिरं प्रभुः १७ ॥

टी०। इत्तिफ़ाक़न एकदिन दत्तात्रेय योगी बहुत मुनियों के लड़कों के साथ एक तालावमें स्नान करने को गये और तालावमें ग़ोतालगाकर देरतक अन्तर्द्धान होगये क्योंकि असङ्ग की इच्छा करते थे १७ ॥

मू० तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम्।
तत्यजुर्न्नकुमारास्ते सरसस्तीरसंश्रिताः १८ ॥

टी०। पर मुनिकुमार लोग तौ भी बहुत दिनोंतक अत्यन्त प्रिय दर्श-नोंवाले उन मुनिको न छोड़ा किन्तु उस तालाबके किनारे खड़ेरहे १८ ॥

मू० दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदा तेन त्यजन्ति तम्।
तत्प्रीत्या सरसस्तीरं सर्व्वे मुनिकुमारकाः १९ ॥

टी०। जब देवताओं के वर्ष के प्रमाण से पूरा सौ वर्ष बीतगया और वे लोग उनको त्यागकर घर न फिरे बल्कि उनके स्नेह से सब मुनियों के लड़कोंने तालाव का किनारा न छोड़ा १९ ॥

मू० ततो दिव्याम्बरधरां चारुपीननितम्बिनीम्।
नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः २० ॥

टी०। तब दत्तात्रेय मुनि एक स्त्रीको कि जिसकी जांघ और स्तन पीनकठोर व सुन्दर थे और दिव्य वस्त्र धारण कियेहुये थी उस कल्याणी को अपने साथ लियेहुये इकवारगी पानी से निकल आये २० ॥

मू० स्त्री सन्निकर्षाद्यदेते परित्यक्ष्यन्ति मामिति।
मुनिपुत्रास्ततोऽसङ्गी स्थास्यामीति विचिन्तयन् २१ ॥

टी०। इस वास्ते कि मुनिकुमार लोग मुझको इस स्त्री के साथ देखकर त्याग करके चलेजायँगे तब मैं अकेला होकर यहां रहूँगा २१ ॥

मू० तथापि तन्मुनिसुता नत्यजन्ति यदा मुनिम्।
ततः सहतया नार्य्यामद्यपानमथापिबत् २२ ॥

टी०। जब इसपर भी मुनिकुमार लोगों ने इनका साथ न छोड़ा तब उस स्त्री के साथ वहां शराब पीनेलगे २२ ॥

मू० सुरापानरतन्तेन सभार्य्यं तत्यजुस्ततः।
गीतवाद्यादिवनिता भोगसंसर्गदूषितम् २३ ॥

टी०। जब दत्तात्रेय उस स्त्री के साथ शराब पीकर मस्त हुये और उसके साथ गान और नृत्य व स्त्रीके भोग व संसर्गसे दूषित होगये तब वे मुनिकुमार लोग उनको त्यागकर चलेगये २३ ॥

मू० मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम्।
नावापदोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि २४ ॥

टी०। व यह माना कि दत्तात्रेय महात्मा उस स्त्री के साथ कर्म्मोंसे अलग होगये यद्यपि वे वारुणी शराब पीते थे तौ भी उनको दोष नहीं लगता था क्योंकि वे योगीश थे २४ ॥

मू० अन्तावसायि वेश्मान्तर्मातरिश्वावसन्निव।
सुरांपिबन् स पत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित् ॥
योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकाङ्क्षिभिः २५ ॥

टी०। जैसे पवन नापित व चाण्डालादि के घरभीतर सब जगह पर व्याप्त रहता है और इसका उसको कुछ दोष नहीं लगता उसीतरह स्त्री समेत मदिरा पीतेहुये वे दत्तात्रेय योगी तप करते रहे जिनको मुक्ति के चाहने वाले योगी ध्यान करते हैं २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेदत्तात्रेयोत्पत्तिः १७ ॥

अथ अठारहवां अध्याय ॥

पुत्र उवाच ॥

मू० कस्यचित्त्वथकालस्य कृतवीर्य्यात्मजोऽर्जुनः।
कृतवीर्य्ये दिवं याते मन्त्रिभिः स पुरोहितैः १॥

टी०। फिर सुमति पुत्र ने कहा कि ऐ पिता! इधर तो दत्तात्रेय मुनि कुमारों का साथ छोड़कर तालाब पर वास करने लगे और उधर एक समय में कार्त्तवीर्य नाम राजाके मरजाने पर उसका बेटा अर्ज्जुन अपने मन्त्री और पुरोहित १॥

मू० पौरैश्चात्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम्।
नाहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् २॥

टी०। और नगर वासियों से अभिषेक के लिये बुलाया गया तो अपनी राज्यगद्दी के विषय में यह बात कहने लगा कि ऐ साहिबो जिस राज्य के भोग करने के बाद मनुष्य नरक भोग करता है ऐसा राज्य मैं न करूँगा २॥

मू० यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन् वृथा।
पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिक् जनः ३॥

टी०। क्योंकि जिस के लिये धन लिया जाता है वह सिद्ध न किया तो वृथा होता है और बनिये लोग अपनी खरीद और बिक्री में बारहवां हिस्सा राजा को ३॥

मू० दत्त्वार्थरक्षिभिर्मार्गे रक्षयायातिदस्युतः।
गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीबलाः ४॥

टी०। देते हैं कि जिस सबब से राजा को उनके धनकी रक्षा चोरादिक से करनी चाहिये और सब गोप भी घी और मही और किसान खेती में से छठाभाग ४॥

मू० दत्त्वान्यद्भुजेचाद्युर्यदिभागं ततो धिकम्।
पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः ५॥

टी०। राजाको देकर बाकी जो बचता है वह आप खाते हैं व सब धनको बनिये से जो राजा लेता है ५॥

मू० इष्टापूर्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्मिणः।
यद्यन्यैःपाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यं तरसंश्रितैः ६॥

टी०। उस चोर धर्म वाले राजा का यज्ञादि व कूपादि खुदाने का फल नाश होजाताहै व दूसरी जीविकावाले लोग मनुष्योंका पालन करतेहैं६॥

मू० गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरकोध्रुवम्।
निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वैरक्षणवेतनम् ७॥

टी०। तो जोकि पहिले राजाने अपने राज्यका छठाभाग उससे लिया और उसकी कुछ रक्षा न की इसलिये वहराजा जरूर नरक भोगकरताहै७॥

मू० अरक्षश्चौरतश्चौर्यन्तदेनोनृपतेर्भवेत्।
तस्माद्यदितपस्तप्त्वा प्राप्तो योगित्वर्माप्सितम् ८॥

टी०। और चोरों की चोरी से लोगों की रक्षा न किया तो भी वह दोष राजा को हुआ इस वास्ते यदि तप और योग करने की इच्छा करना अच्छा है ८॥

मू०। भुवः पालनसामर्थ्ययुक्त एको महीपतिः।
पृथिव्यां शस्त्रधृङ्नान्यस्त्वहमेवर्द्धि संयुतः॥
ततोभविष्येनात्मान करिष्ये पापभागिनम् ९॥

टी०। अगर भूमि की पालना करने और सब दुष्टों को नाश करने की सामर्थ्य मुझको हो और सिर्फ मैं ही बृद्धि संयुत एक राजा शस्त्र धारी रहूँ तो अलबत्ता राज्य करूं अन्यथा अपनाको पापभागी न करूंगा ९॥

पुत्र उवाच॥

मू० तस्य तान्निश्चयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्यस्थितोऽब्रवीत्।
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिश्रेष्ठो वयोऽतिगः १०॥

टी०। सुमति कहते हैं कि ये बातें अर्जुन की सुनकर उनका वह निश्चय जानकर एक मनुष्य गर्ग नाम जो अत्यन्त बुद्धिमान् और मुनियों में श्रेष्ठ और उमर में जियादा उनसभों के बीचमें बैठा था बोला १०॥

मू० यद्येवं कर्तुकामस्त्वराज्यं सम्यक् प्रशासितुम्।
ततः शृणुष्वमेवाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ११॥

टी०। कि ऐ राजकुमार! जो तुमको सम्यक् प्रकार राज्य पालन करने की इच्छा है तो मैं जो कहता हूँ उसको सुनो और करो ११॥

मू० दत्तात्रेयं महाभागसह्यद्रोणी कृताश्रयम्।
तमाराधय भूपाल पालियो भुवनत्रयम् १२॥

टी०। कि ऐ महाभाग! दत्तात्रेय सह्य पर्वत में वास करते हैं और वे तीनों लोकके पालकहैं इससे हे राजन्! जाकर उनकी सेवा करो १२॥

मू० योगयुक्तं महाभागं सर्व्वत्रसमदर्शिनम्।
विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णंमहीतले १३॥

टी०। और वे महाभाग योग युक्त सर्व्वत्र समदर्शी हैं और जगत् कर्त्ता विष्णु के अवतार भूमि में हैं १३॥

मू० यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान् पदमात्मना।
हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेः सुतान् १४॥

टी०। कि जिनकी आराधनासे इन्द्र ने दुष्टात्मा दैत्यों से हरे हुये अपने पद को पाया और दिति के बेटे दुरात्मा दैत्यों को नाश किया १४॥

अर्जुन उवाच॥

मू० कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान्।
कथञ्चापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः १५॥

टी०। तब अर्जुन बोला कि ऐ मुनि! देवतालोगों ने दत्तात्रेय महात्मा का आराधन किस तरह किया और इन्द्र ने दैत्यों को मारकर फिर किस तरह दैत्यों से हरे हुए इन्द्रत्व को प्राप्त हुवे १५॥

गर्ग उवाच॥

मू० देवानां दानवानाञ्च युद्धमासीत्सुदारुणम्।
दैत्यानामीश्वरो जम्भो देवानाञ्च शचीपतिः १६॥

टी०। गर्गजी बोले कि एक समय देवताओं और असुरों में बड़ा

भयानक युद्ध हुआ उसवक्त असुरों का राजा जंभ था और देवतों की तरफ़ इन्द्रथे १६ ॥

मू० तेषां च युद्ध्यमानानान्दिव्यः सम्वत्सरोगतः ।
ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् १७ ॥

टी०। उस महा युद्ध में उनको लड़ते हुए देवतों के बर्ष से एक बर्ष गुजर गया निदान देवतों की हार और असुरों की जीत हुई १७ ॥

मू० विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहाद्विषज्जये १८ ॥

टी०। तब विप्रचित्ति आदि चुने चुने दैत्यों से देवता लोग हार मान मैदान छोड़ शत्रुवों के जीतने में निरुत्साह हो भाग गये १८ ॥

मू० बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः ।
अमन्त्रयन्त सहिताबालिखिल्यैस्तथर्षिभिः १९ ॥

टी०। और बृहस्पति जी के पास जहां और और ऋषि और बाल खिल्य लोग थे दैत्यों के नाश होने की सलाह पूँछने के वास्ते गये और पूंछा १९ ॥

बृहस्पतिरुवाच ॥

मू० दत्तात्रेयं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ।
विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ २० ॥

टी०। तो बृहस्पति ने कहा कि दत्तात्रेय महात्मा जो अत्रिजी के पुत्र तपोधन हैं जिनका चलन देखने में अच्छा नहीं है उनकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करो २० ॥

मू० स वो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् ।
ततोहनिष्यथ सुरा सहिता दैत्यदानवान् २१ ॥

टी०। वही तुमको दैत्यों के नाश होने के वास्ते वरदान देवैंगे तब हे देवताओ ! मिलकर तुमलोग सब दैत्य और दानवों का नाश करो २१॥

गर्ग उवाच ॥

मू० इत्युक्तास्ते तदाजग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमंसुराः ।

दद्दशुश्च महात्मानं तं तेलक्ष्म्या समन्वितम् २२ ॥

टी०। गर्गजी कहते हैं कि उपरोक्त यह वचन बृहस्पतिजी के सुनकर देवता लोग दत्तात्रेय जी के आश्रम पर गये तो उन्हों ने उन महात्मा को लक्ष्मी जी के साथ देखा २२ ॥

मू० उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम्।
तेतस्य गत्वा प्रणतिमवदन् साध्यसाधनम् २३ ॥

टी०। जोकि सुरापान में रत होरहे हैं और गन्धर्व लोग गानकर रहे हैं वहां पर देवता लोग उनका प्रणामकर अपना प्रयोजन साधने के वास्ते कहा २३ ॥

मू० चक्रुः स्तवं चोपजह्रुर्भक्ष्यभोज्यस्रगादिकम्।
तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः २४ ॥

टी०। बहुत स्तुति किया और भक्ष्य और भोज्य इत्यादि और फूल माला वगैरा से पूजन करने लगे जब वह बैठते थे तब देवता लोग भी उनके बाद बैठते थे और उनके चलने पर चलते थे २४ ॥

मू० आराधयामासुरधः स्थितास्तिष्ठन्तमासने।
सप्राह प्रणतान्देवान्दत्तात्रेयः किमिष्यते।
मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियतेमम २५ ॥

टी०। खसूसन स्वर्ग के रहनेवाले देवता लोगों ने अधीनता से मुनि आसन के नीचे बैठकर प्रणत हो आराधन किया तब वह महात्मा प्रसन्न होकर प्रणाम किये हुये उन देवों से बोले कि मुझसे क्या चाहते हो जिससे आपलोग यह मेरी सेवा करते हो २५ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० दानवैर्मुनिशार्दूल जम्भाद्यैर्भूर्भुवादिकम्।
हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागश्च कृत्स्नशः २६ ॥

टी०। देवता लोगोंने कहा कि ऐ मुनिराज! जम्भ आदि दैत्योंने और भूर्भुवादि हम सभों का राज्य और तीनों लोक और सम्पूर्ण यज्ञका भाग छीन लिया है २६ ॥

मू० तद्वधे कुरु बुद्धिंत्वं परित्राणाय नोऽनघ।
त्वत्प्रसादादभीप्सामः पुनःप्राप्तुं त्रिविष्टपम् २७॥

टी०। इस वास्ते हे अनघ! हम सबों की रक्षा के लिये उन राक्षसों के वध होने की यत्न करना चाहिये कि जिससे हमलोग फिर तुम्हारी प्रसन्नता से अपना स्वर्ग पावैं २७॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो नचैवाहं जितेन्द्रियः।
कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवांशत्रुपराभवम् २८॥

टी०। तब दत्तात्रेय जी बोले कि मैं तो मद्य पीता हूँ और उच्छिष्ट हूँ और जितेन्द्रिय भी नहीं हूँ तो हे देवताओ! मुझसे आपलोग शत्रुवोंको जीतने की इच्छा कैसे करते हो २८॥

देवा ऊचुः॥

मू० अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तवविद्यते।
विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञान दीधिते २९॥

टी०। तब देवताओंने कहा कि हे महाराज! तुम सब दोषोंसे रहित हो तुमको कोई अहंकार नहीं है और जगत् के नाथ हो और सब विद्या और ज्ञान के प्रवेश होने से तुम्हारा चित्त शुद्ध है २९॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० सत्यमेतत् सुराविद्या ममास्ति समदर्शिनः।
अस्यास्तुयोषितः सङ्गादहमुच्छिष्टतां गतः ३०॥

टी०। फिर दत्तात्रेय जी बोले कि ऐ देवताओ! यद्यपि मैं समदर्शी हूँ व विद्या प्राप्त है यह सत्य है पर इस स्त्री की सङ्गति से उच्छिष्टता में प्राप्त हूँ ३०॥

मू० स्त्री सम्भोगो हि दोषाय सातत्येनोपसेवितः।
एवमुक्तास्ततोदेवाःपुनर्वचनमब्रुवन् ३१॥

टी० और स्त्री से हरवक्त सम्भोग करना दोष के लिये होताहै यह सुनकर फिर देवता लोग कहने लगे ३१॥

देवाऊचुः॥

मू० अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते।
यथांशुमालासूर्य्यस्य द्विजचाण्डाल सङ्गिनी ३२॥

टी०। देवता बोले कि ऐ द्विजोत्तम! यह जगत् की माता निर्दोष है जैसे सूर्य्य की किरण ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों के अङ्गपर पड़ती है और उस किरण में दोष नहीं लगता उसीतरह इनमें भी कोई दोषनहीं लगसक्ता है ३२॥

गर्ग उवाच॥

मू० एवमुक्तस्ततो देवैर्दत्तात्रेयो ब्रवीदिदम्।
प्रहस्य त्रिदशान् सर्व्वान् यद्येतद्भवतांमतम् ३३॥

टी०। गर्ग जी कहते हैं कि यह बात देवताओं से सुनकर दत्तात्रेय जी हँसकर देवताओं से यह कहने लगे कि अगर यह मेरी मति तुम लोगों को पसन्द है ३३॥

मू० तदाहूयासुरान् सर्व्वान् युद्धाय सुरसत्तमाः।
इहानयतमद्दृष्टिगोचरं माविलम्बत ३४॥

टी०। तो ऐ सुरोत्तमो! तुम सब देवता मिलकर सब असुरोंको युद्धकरने के वास्ते बुलाते जाव यहां मेरे सामने युद्धकरो देर मत करो ३४॥

मू० मद्दृष्टिपातहुतभुक् प्रक्षीणबलतेजसः।
येननाशमशेषास्ते प्रयान्तिममदर्शनात् ३५॥

टी०। मेरी दृष्टिपात की अग्नि से उन सब राक्षसों का तेज और बल जाता रहैगा जिससे वे लोग सब मुझ को देखने से नाशहोजायँगे ३५॥

गर्गउवाच॥

मू० तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैवैर्दैत्या महाबलाः।
आहवाय समाहूता जग्मुर्देव गणान् रुषा ३६॥

टी०। गर्गजी कहते हैं कि यह वचन दत्तात्रेयजीके सुनकर सब देवताओं ने बड़े बली दैत्यों को युद्ध करने की खबर दी और वे क्रोध से सुरगणों के पास गये ३६॥

मू० ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाः शीघ्रं भयातुराः।
दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समेताः शरणार्थिनः ३७॥

टी०। आख़िरकार देवताओं और दैत्यों में युद्ध होनेलगा तब साथही देवता लोग दैत्यों की मार खाते हुये मारे डरके जल्दी से उस स्थानपर पहुँचे जहां दत्तात्रेयजी थे ३७॥

मू० तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तोदिवौकसः।
ददृशुश्चमहात्मानं दत्तात्रेयं महाबलम् ३८॥

टी०। जब देवताओं को खदेरते हुये और दैत्य लोग उस स्थान पर पहुँचे तो महाबली महात्मा उन्हीं दत्तात्रेय जी को दैत्यों ने देखा ३८॥

मू० वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतांशुभाम्।
भार्य्याञ्चास्यसुचार्व्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ३९॥

टी०। कि सम्पूर्ण जगत् की प्यारी कल्याणमयी सर्व्वाङ्गसुन्दरी चन्द्रबदनी श्री लक्ष्मी जी उनकी स्त्री उनके बाँयें तरफ़ बैठी हैं ३९॥

मू० नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम्।
गदन्तीं मधुरां भाषां सर्व्वैर्योषिद्गुणैर्युताम् ४०॥

टी०। और उनकी आँखें नीले कमल के समान और जांघें और स्तन पुष्ट और खुश आवाज़ कहती हुई और स्त्रियों के सब उत्तम गुणों से संयुक्त हैं ४०॥

मू० ते तां दृष्ट्वाग्रतो दैत्याः साभिलाषा मनोभवम्।
नशेकुरुद्धतं धैर्य्यान्मनसावोढुमातुराः ४१॥

टी०। इसतरह वे दैत्य लोग लक्ष्मी जी को देखकर जी में कामदेव की अभिलाषा से अपने काम में लाने के वास्ते व्याकुलहुये याने धैर्य से मन को रोक न सके ४१॥

मू० त्यक्त्वा देवान् स्त्रियं तान्तुहर्त्तुकामाहतौजसः।
तेन पापेन मुह्यन्तःसंसक्तास्तततोऽब्रुवन् ४२॥

टी०। सो उस वक्त देवतालोगों की लड़ाई का ख़याल राक्षसों ने

अपने दिलसे उठादिया और नष्ट बल वाले वे उस स्त्री को लेजाने के इरादे के पाप से वे विचार होकर आपसमें कहने लगे ४२ ॥

मू० स्त्रीरत्नमेतत् त्रैलोक्ये सारंनो यदि वैभवेत् ।
कृतकृत्यास्ततःसर्व्वे इतिनोभावितंमनः ४३ ॥

टी०। कि यह स्त्री तीनों लोक की स्त्रियों में रत्न व सारांशहै इसके मिलने से सब हमलोग कृतार्थ होजाँयगे हमसभों का यही विचारहै ४३ ॥

मू० तस्मात्सर्व्वे समुत्क्षिप्य शिबिकायां सुरार्द्दनाः ।
आरोप्यस्वमधिष्ठानंनयाम इतिनिश्चिताः ४४ ॥

टी०। इस लिये सब दैत्य मिलकर इस स्त्री को डोलीपरचढ़ा अपने स्थानपर लेचलैं आखिरको यही बात आपुसमें उनलोगों के क़रारपाई ४४॥

गर्गउवाच ॥

मू० सानुरागास्ततस्तेतु प्रोक्त्वाश्चेत्थं परस्परम् ।
तस्यतांयोषितांसाध्वींसमुत्क्षिप्य स्मरार्द्दिताः ४५ ॥

टी०। गर्गजी कहते हैं कि स्नेह समेत वे सब दैत्यलोग आपस में इस तरहसे कहकर कामके वश हो उनकी उस पतिव्रता स्त्री को पकड़कर ४५॥

मू० शिबिकायां समारोप्य सहितादैत्यदानवाः ।
शिरस्सुशिबिकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखंययुः ४६ ॥

टी०। और डोली में बैठालकर सब मिलकर दैत्य और दानव उस डोली को अपने शिर पर उठाकर अपने घर की तरफ़ लेचले ४६ ॥

मू० दत्तात्रेयस्ततो देवान् विहस्येदमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्यावर्द्धथदैत्यानामेषा लक्ष्मीऽशिरोगता ॥
सप्तस्थानान्यतिक्रान्तातवमन्यमुपैष्यति ४७ ॥

टी०। तब उसवक्त दत्तात्रेयजी देवताओं की तरफ़ मुख़ातिब हो हँस कर कहने लगे कि आनन्दहै आपलोग बढ़ती को प्राप्तहोंगे देखते जाइये कि राक्षसों के इक़बाल का इन्तिहादरजा होचुका कि लक्ष्मी इनके माथे पर गई सात स्थान तक लक्ष्मी का जाना अच्छा है आठवें स्थान पर जाके अपमानकर आवैगी ४७ ॥

देवाऊचुः ॥

मू० कथयस्व जगन्नाथकेषु स्थानेष्ववस्थिता।
पुरुषस्य फलं किंवा प्रयच्छत्यथ नश्यति ४८ ॥

टी०। तब देवतालोगों ने पूँछा कि ऐ जगन्नाथ! यह तो बतलाइये कि कौन कौन स्थान पर लक्ष्मी जी जाने से मनुष्योंको कौन फल देती हैं और कौन २ स्थानपर जाने से नाश होती हैं ४८ ॥

दत्तात्रेय उवाच ॥

मू० नृणां पदेस्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति।
सक्थ्नोश्च संस्थितावस्त्रं तथानानाविधंवसु ४९ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी बोले कि जब लक्ष्मीजी पाँव पर रहती हैं तो उस को स्थानदेती हैं और जब मनुष्य की निरोहों पर रहती हैं तो उसको वस्त्र और तरह तरह का धन देती हैं ४९ ॥

मू० कलत्रञ्च गुह्यसंस्था क्रोडस्थापत्यदायिनी।
मनोरथान् पूरयति पुरुषाणां हृदिस्थिता ५० ॥

टी०। और जब गुह्य स्थान पर रहती हैं तब मनुष्य को स्त्री प्राप्तहोती है और जब गोद में रहती हैं तो सन्तान देती हैं और जब मनुष्यों के हृदय में रहती हैं तब उसकी सब अभिलाषा पूरी करती हैं ५० ॥

मू० लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कण्ठस्था कण्ठभूषणम्।
अभीष्टबन्धुदारैश्च तथाश्लेषंप्रवासिभिः ५१ ॥

टी०। और उत्तम लक्ष्मी जब धनवान् लोगों के कण्ठ परजाती हैं तो उसके कण्ठ में भूषण और सबकामना उसकी पूरी करके प्रिय भाई बन्धु स्त्री पुत्र और विदेश वासियों से उसका मिलाप कराती हैं ५१ ॥

मू० मृष्टानुवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा।
मुखसंस्थाकवित्वञ्च यच्छत्युदधिसम्भवा ५२ ॥

टी०। और जिस किसी के मुखपर लक्ष्मी आती हैं उससे शुद्ध व सत्य व कोमल वाणी और अच्छे २ कवित्त कहलाती हैं और उसके हुक्म पर सब कोई चलते हैं ५२ ॥

मू० शिरोगता सन्त्यजतिततोऽन्यंयाति चाश्रयम्।
सेयंशिरो गताचैतान् परित्यक्ष्यतिसाम्प्रतम् ५३॥

टी०। और जब मनुष्य के शिरपर जाती हैं तो उसको त्यागकर दूसरे के घर चलीजाती हैं इसवास्ते मैं कहता हूँ कि लक्ष्मी जी इन दैत्यों के शिरपर गईं अब इसी वक़ ज़रूर इनलोगों से अलगहोजायँगी ५३॥

मू० प्रगृह्यास्त्राणि बध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः।
नभेतव्यंस्पृशंचैते मया निस्तेजसः कृताः॥
परदारावमर्षाच्चदग्धपुण्या हतौजसः ५४॥

टी०। तुमलोग इसवास्ते अब अपना अपना अस्त्र उठाओ और इन दैत्यों को मार गिराओ डरोमत मैंने भी उन सबको अपनी दृष्टि की चोट से तेज हीन करादिया है और पर स्त्री हरण के पापसे उनलोगों का पुण्य जलगया इस सबब से वे सबकोई हतपराक्रम होरहे हैं ५४॥

गर्गउवाच॥

मू० ततस्ते विविधैरस्त्रैर्बध्यमानाःसुरारयः।
मूर्द्धिलक्ष्म्या समाक्रान्ता विनेशुरितिनः श्रुतम् ५५॥

टी०। गर्गजी कहते हैं कि तब सब देवताओं ने हरतरह का अस्त्र और शस्त्र लेकर दैत्यों के साथ युद्ध करके और उन सभों को नाशकरके फ़तह हासिल किया हमलोगों ने यह सुनाहै और लक्ष्मीजी भी उन सभों के माथे से अलग हो गईं और अन्तर्द्धान होकर ५५॥

मू० लक्ष्मीश्चोत्पत्यसम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम्।
स्तूयमाना सुरैः सर्व्वैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ५६॥

टी०। फिर लक्ष्मी जी अलग होकर महामुनि दत्तात्रेय जी के पास गईं और देवतालोग भी असुरों के नाश होजाने से परमानन्द हो लक्ष्मी जी की स्तुति करने लगे ५६॥

मू० प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं मनीषिणम्।
नाकपृष्ठमनुप्राप्ता यथा पूर्वं गतज्वराः ५७॥

टी०। फिर बुद्धिमान् दत्तात्रेयको प्रणाम कर सब देवता स्वर्ग को

जाते भये और दुखरहितहो अपना अपना स्थान और भाग पाकर पहिले के समानरहने लगे ५७ ॥

मू० तथात्वमपि राजेन्द्रयदीच्छसियथेप्सितम् ।
प्राप्तुमैश्वर्य्यमतुलंतूर्णमाराधयस्वतम् ५८ ॥

टी० । उसीतरह ऐ राजेन्द्र ! तुमभी जल्दी उन दत्तात्रेयजीकी आराधना जरूर करो अगर अतुल ऐश्वर्य्य और कामना पूरी होने की अभिलाषा रखते हो ५८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेगर्गवाक्यंअष्टादशोऽध्यायः १८ ॥

अथ उन्नीसवां अध्याय ॥

पुत्र उवाच ॥

मू० इत्यृषेर्व्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्य्यो नरेश्वरः ।
दत्तात्रेयाश्रमं गत्वा तम्भक्त्या समपूजयत् १ ॥

टी० । फिर सुमति पुत्र ने कहा कि ऐ पिता ! यह कथा गर्गजी से सुनकर अर्जुन राजा दत्तात्रेयजी के आश्रम पर गये और बड़ी भक्ति से उनकी पूजा और सेवा करनेलगे १ ॥

मू० पाद्यसंवाहनाद्येन मध्वाद्याहरणेन च ।
स्रक्चन्दनादिगन्धाम्बु फलाद्यानयनेन च २ ॥

टी० । और चरण संवाहन (मीड़ना) इत्यादि करके मद्य और फूल और माला और सुगन्ध और जल और फल और चन्दनादि उनके वास्ते लानेलगे २ ॥

मू० तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च ।
परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैवसः ३ ॥

टी० । और इसीतरह अन्न इत्यादिभी लाते थे और उनका जूँठाबरतन मांजतेथे कि जिसकारण वेमुनि संतुष्टहोकर उनराजासे इसतरह बोले ३ ॥

मू० यथैवोक्ताः पुरादेवा मद्यभोगादिकुत्सनम् ।
स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्ये तद्भोगाच्च कुत्सितम् ४ ॥

टी०। जिसतरह कि प्रहिले उन देवताओं से मदिरा पीना व भोगादिक अपने निन्दित कर्म्म वर्णन किये थे वही कहनेलगे कि देखो यह स्त्री जो मेरे पास बैठी है इससे मैं भोग किया करताहूं उसी से निन्दितहूं ४॥

मू० सदैवाहं न मामेव मुपरोद्धुं त्वमर्हसि।
अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ५॥

टी०। मैं सदा इसीकर्म्म में रहताहूं इसवास्ते हेराजन्! तुमको उचित है कि मेरी सेवा इत्यादि मत करौ और मैं उपकार करने की सामर्थ्य नहीं रखताहूं जिसमें यह सामर्थ्य हो उसकी सेवा करौ कि जिस में तुम्हारा मनोरथ सिद्धहो ५॥

जड़ उवाच॥

मू० तेनैव मुक्तो मुनिना स्मृत्वा गर्गवचश्चतत्।
प्रत्युवाच प्रणम्यैनं कार्त्तवीर्य्यार्जुनस्तदा ६॥

टी०। सुमति कहतेहैं कि यह बातैं उनमुनिकी सुनकर अर्जुन गर्गजी की कही हुई कथा खयाल में लाकर उसवक्त दत्तात्रेयजी को प्रणाम कर के कहने लगे ६॥

अर्जुन उवाच॥

मू० किंमां मोहयसे देव स्वां मायां स मुपाश्रितः।
अनघस्त्वं तथैवेयं देवी सर्व्व भवारणिः ७॥

टी०। कि ऐ देव! अपनी मायामें टिकेहुए आप मुझ अज्ञानको क्यों भुलावा देते हैं आप अनघ हैं और उसी तरह देवी भी सम्पूर्ण जगत् की उत्पन्न करनेवाली पवित्र हैं ७॥

मू० इत्युक्तः प्रीतिमान् देवस्ततस्तं प्रत्युवाच ह।
कार्त्तवीर्य्यं महाभागं वशीकृतमहीतलम् ८॥

टी०। यह वचन अर्जुन का सुनकर दत्तात्रेय देवजी अतिप्रसन्नहोकर फिर उनसे बोले जो कार्त्तवीर्य्य कि महाभाग महीतलको वश कियेथे ८॥

मू० वरं वृणीष्व गुह्यं मे यत् त्वया समुदीरितम्।
तेन तुष्टिः पराजाता त्वय्यद्य मम पार्थिव ९॥

टी०। हे राजन्! मेरे गुप्त नाम जो तूने जाहिर करादिये हैं इससे मैं इसवक्त तुझपर बहुत प्रसन्नहोकर कहताहूं कि अब तू मुझसे वर माँग९॥

मू० ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः।
मांसमद्योपहारैश्च मिष्टान्नैश्चाज्यसंयुतैः १०॥

टी०। और जो कोई मनुष्य सुगन्ध और माला इत्यादि से पूजनकरके मांस और मद्य और मीठा अन्न घी मिलाहुआ व उपहार चढ़ावेगा १०॥

मू० लक्ष्मीसमेतं गीतैश्च ब्राह्मणानां तथार्च्चनैः।
वाद्यैर्मनोरमैर्वीणा वेणुशंखादिभिस्तथा ११॥

टी०। लक्ष्मी समेत मुझे पूजकर और ब्राह्मणों का भी पूजन करके वहाँपर गाना व सुन्दर बाजा वीणा वेणु और शंख इत्यादि बजावेगा ११॥

मू० तेषामहं परां तुष्टिं पुत्रदारधनादिकम्।
प्रदास्याम्यवघातञ्च हनिष्याम्यवमन्यताम् १२॥

टी०। उस मनुष्य के ऊपर मैं परम संतुष्ट हो स्त्री और पुत्र और धन इत्यादि देकर प्रसन्न करूंगा और उसके अपमान व शत्रुवों का नाश करूंगा १२॥

मू० स त्वं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम्।
प्रसादसुमुखस्ते हं गुह्यनाम प्रकीर्त्तनात् १३॥

टी०। जो कि तुमने मेरे गुप्त नाम का वर्णन किया है इससे मैं तुम पर प्रसन्नहूं सो अब तुम अपने मनकी इच्छापूर्व्वक वरमांगो तुम्हारा कल्याण होवे १३॥

कार्त्तवीर्य्य उवाच॥

मू० यदि देव प्रसन्नस्त्वं तत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम्।
यथा प्रजापालयेऽहं न चाधर्म्ममवाप्नुयाम् १४॥

टी०। कार्त्तवीर्य्य बोला कि ऐ देव! जो आप प्रसन्न हैं तो मुझे वह उत्तम धन दीजिये कि जिससे मैं प्रजा का पालन करूं और अधर्म्म में न पड़ौं १४॥

मू० परानुसरणंज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतां रणे।
सहस्रमाशु मिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् १५ ॥

टी०। और दूसरे लोग जिसको चाहते हैं ऐसा ज्ञान और समर में भी मेरे समान कोई न होवै और हज़ार भुजा मेरे हों और उन भुजाओं में ऐसा बल हो कि कोई मेरी बराबरी न कर सकै १५ ॥

मू० असङ्गागतयः सन्तु शैला काशाम्बुभूमिषु।
पातालेषु च सर्व्वेषु बधश्चाप्यधिकान्नरान् १६ ॥

टी०। और आकाश और पर्व्वत और भूमि और पाताल में अकेला भी अगर मैं चला जाऊँ और वहाँ कोई बली शत्रु मेरा सामनाकरे तो उन अधिक मनुष्यों को भी मैं जीत लूँ १६ ॥

मू० तथोन्मार्गप्रवृत्तस्य चास्तु सन्मार्गदेशकः।
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथा क्षये १७ ॥

टी०। और इसी तरह बदचलनलोगों को अच्छी राहपर लाने का उपदेशहो और तारीफ़ करने योग्य अभ्यागतों को पालने और नाशरहित धन देने की मुझको श्रद्धा हो १७ ॥

मू० अनष्टद्रव्यताराष्ट्रे ममानुस्मरणेन च।
त्वयि भक्तिर्म्ममैवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी १८ ॥

टी०। और मेरेस्मरण से राज्य में धन न नाशहोवै और आपकी भक्ति में मेरा मन अचल रहै १८ ॥

दत्तात्रेय उवाच ॥

मू० यएते कीर्त्तिताः सर्व्वे तान् वरान् समवाप्स्यसि।
मत्प्रसादाच्च भविता चक्रवर्त्ती त्वमीश्वरः १९ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी बोले कि जो जो ये बरदान तूने माँगा वह सब मनोरथ तेरा पूरा होगा और मेरे आशीर्वाद से तू चक्रवर्त्ती राजा होगा १९ ॥

जड़ उवाच ॥

मू० प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्जुनः।
आनाय्यप्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णतः २० ॥

टी०। सुमति जड कहते हैं कि वे अर्जुन यह वरदान पाकर श्रीदत्तात्रेयजीको प्रणामकर अपने घर आये और सब प्रजाओंको आनकर अच्छी तरहसे तिलक लिया २० ॥

मू० आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः ।
दत्तात्रेयात् परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः २१ ॥

टी०। और उस वक्त राज्यगद्दी पर बैठकर उस कार्तवीर्य ने ढिंढोरा पिटवादिया जो कि श्रीदत्तात्रेयजीके वरदानसे परम ऐश्वर्य्य और बहुत कुछ जोर और ताक़त पाया है २१ ॥

मू० अद्यप्रभृति यः शस्त्रं मामृतेऽन्यो ग्रहीष्यति ।
हन्तव्यः स मया दस्युः परहिंसारतोऽपि वा २२ ॥

टी०। आज से लगाकर मेरे सिवाय और जो कोई शस्त्रधारण करेगा या किसीको सतावैगा या चोरी करैगा उसको मैं मार डालूँगा २२ ॥

मू० इत्याज्ञप्तेन तद्राष्ट्रे कश्चिदायुधधृङ्नरः ।
तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरुपराक्रमम् २३ ॥

टी०। यह ढिंढोरा सुनकर जो लोग शस्त्रधारी थे उन्हों ने अपना अपना हथियार रखदिया सिवाय उनके जो कि सम्पूर्ण पृथ्वी के एक राजा कार्त्तवीर्य्यार्जुन मनुष्यों में सिंह और बड़े पराक्रमी थे २३ ॥

मू० स एव ग्रामपालोऽभूत्पशुपालः स एव च ।
क्षेत्रपालः स एवासीद् द्विजातीनाञ्च रक्षिता २४ ॥

टी०। और वेही नगर और पशु और खेत इत्यादि और द्विजातियों के रक्षक और पालक होते भये २४ ॥

मू० तपस्विनां पालयिता सार्थपालस्तु सोऽभवत् ।
दस्युव्यालाग्निशस्त्रादिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् २५ ॥

टी०। और तपस्वियों और बनियों के धन और असबाबके ऐसे रक्षक हुये कि इनके भय से चोर सर्प्प और हथियारों का डर और अग्नि का भी भय किसी के दिलमें बाक़ी न रहा २५ ॥

मू० अन्यासु चैवमग्नानामापत्सु परवीरहा ।
स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् २६ ॥

टी० । और जिस किसी को किसी तरह की और आपत्ति या दुःख पड़ताथा तो उसी राजाको याद करने से उसका उसीवक्त उद्धार होजाता था जो राजा कि शत्रु वीरों के नाशक थे २६ ॥

मू० अनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ।
तेनेष्टम्बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः २७ ॥

टी० । और जब वे राजा राज्य करते थे तब चोरी नहीं होती थी उन्हों ने बहुत यज्ञोंको किया व उस दौलतको नेक काम यानी यज्ञादिक की समाप्ति पर ब्राह्मणोंकी दक्षिणा आदि में खर्च कर देताथा २७ ॥

मू० तेनैव च तपस्तप्तं संग्रामेष्वभिचेष्टितम् ।
तस्यर्द्धिमतिमानञ्च दृष्ट्वा प्राहाङ्गिरा मुनिः २८ ॥

टी० । और उस राजाकी तपस्या और लड़ाइयों में शूरवीरता और ऐश्वर्य्य व बहुत मानको देखकर अङ्गिरा मुनिने प्रशंसा किया है २८ ॥

मू० न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चातिचेष्टितैः २९ ॥

टी० । कि इस कार्त्तवीर्य्य राजा के समान सच्चे चलन पर दूसरा कोई राजा न चलेगा क्योंकि यज्ञ और दान और तप और संग्राम में कोई इस के बराबर नहीं है २९ ॥

मू० दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन् संप्रापर्द्धिं नरेश्वरः ।
तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् ३० ॥

टी० । और उस राजा कार्त्तवीर्य्य ने जिस दिन दत्तात्रेयजीसे वरदान पाया था उस उस दिन और तिथि को हमेशा दत्तात्रेयजी का यज्ञ किया करता था ३० ॥

मू० तत्रैव च प्रजाः सर्व्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः ।
तस्यर्द्धिं परमां दृष्ट्वा योगं चक्रुः समाधिना ३१ ॥

टी० । उस दिन उस स्थान पर उनके सब प्रजालोग भी आकर राजा का बड़ा ऐश्वर्य्य देखकर समाधि लगाकर योग करनेलगे ३१ ॥

मू० इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः ।
विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः ३२ ॥

टी०। सुमति कहतेहैं कि ऐ पिता! इसतरहके उन महात्मा भगवान् साक्षात् विष्णु चराचर गुरु बुद्धिमान् श्रीदत्तात्रेयजीकीमहिमाअपारहै ३२॥

मू० प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्विना।
अनन्तस्याप्रमेयस्य शङ्खचक्रगदाभृतः ३३॥

टी०। यह सब हाल पृथ्वी पर उनके प्रकट होने का पुराणों में कहा जाता है और वे शार्ङ्गधनुष और शंख चक्र गदा धारण करनेवाले और अविनाशी हैं जिनका गुण अप्रमाण और मनुष्यकी समझसे बाहरहै ३३॥

मू० एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ३४॥

टी०। इस के परम रूप का जो मनुष्य ध्यान करता है वह सदा सुख में प्राप्त रहकर इस संसारके आवागमनके दुःखसे जल्द छूटजाताहै ३४॥

मू० सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहं सुलभोस्मि भोः।
इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ३५॥

टी०। और जिन्होंने आप अपने मुखसे यही कहा है कि ऐ मनुष्यो! मैं सदा वैष्णवों और जो मेरे भक्त हैं उनको सुलभहूँ फिर उनको मनुष्य लोग क्यों न सेवैं ३५॥

मू० अधर्म्मस्य विनाशाय धर्म्माचारार्थमेव च।
अनादिनिधनो देवः करोति स्थितिपालनम् ३६॥

टी०। जो देव तरह तरहके रूप धारण करके अधर्मको नाशकरके धर्म्म के आचरण की रक्षा करते हैं और उनको संसार के पालन और स्थिति और जन्म नाश करने की सामर्थ्य है और अनादि व मौतसे रहितहैं ३६॥

मू० तथैव जन्म चाख्यातमलर्कं कथयामि ते।
तथा च योगः कथितो दत्तात्रेयेण तस्य वै॥
पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः ३७॥

टी०। फिर सुमति कहते हैं कि अब प्रसिद्ध अलर्क नाम कि जिनसे दत्तात्रेयजीने योग को वर्णन किया है उन अलर्क महात्मा जगविदित राजर्षि पिता भक्त के जन्म का वृत्तान्त कहताहूं सुनिये ३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयीयंव्याख्याननामैकोनविंशतितमोऽध्यायः १९॥

अथ बीसवां अध्याय॥

जड़ उवाच॥

मू० प्राग्बभूव महावीर्य्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः।
तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमावाप्त्या पुरन्दरः १॥

टी०। फिर जडरूपी सुमतिका बयान है कि ऐ पिता! पूर्व्वकाल में शत्रुजित नाम राजा बड़ा प्रतापी था कि जिसकी यज्ञमें आप इन्द्र आनन्दपूर्व्वक सोमवल्लीरस पाने से प्रसन्नहुये १॥

मू० तस्यात्मजो महावीर्य्यो बभूवारिविदारणः।
बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशक्राश्विभिः समः २॥

टी०। उस राजाका लड़का महावीर्य्यवान् अरिमर्दन बुद्धिमें बृहस्पति बल में इन्द्र रूप में अश्विनीकुमार के समान था २॥

मू० स समानवयोबुद्धिःसत्त्वविक्रमचेष्टितैः।
नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः ३॥

टी०। उसके हमजोलियों में बड़े बड़े बुद्धिमान् रूपवान् बलवान् गुणवान् और और राजाओं के लड़के नित्य आ आ कर मिलते थे ३॥

मू० कदाचिच्छास्त्रसंभारविवेककृतनिश्चयः।
कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसम्भवैः ४॥

टी०। कभी शास्त्र के विचार के निश्चय में रहते कभी काव्यकी चर्चा आपुस में रखते और कभी नाटक और गीतमें प्रवृत्त रहते थे ४॥

मू० तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च।
योग्यैर्नियुद्धनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्परः ५॥

टी०। और कभी चौसर का खेल और कभी अस्त्र शस्त्र की निशानाबाजी और कभी आपुस में विनय और कभी हमजोलियों में झगड़ा और कभी हाथियों व घोड़ों की लड़ाई और कभी रथ के अभ्यास में तत्पर रहते थे ५॥

मू० रेमे नरेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैस्सह।
यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदायुतः ६॥

टी०। इसी तरह वह राजा का लड़का आनन्दयुक्त राजाओं के लड़कों के साथ खेल कूद में रहा करता था जैसे दिन वैसे रात भी आनन्दही में जाती थी ६ ॥

मू० तेषान्तु क्रीडतां तत्र द्विजभूपविशां सुताः।
समानवयसः प्रीत्यारन्तुमायान्त्यनेकशः ७ ॥

टी०। और जहां ये लड़के खेलते थे वहां पर और कितने बहुत लड़के हमजोली ब्राह्मणों और वैश्यों और राजाओंके प्रीतिसंयुक्त आआ कर मिल मिलकर क्रीड़ा करते थे ७ ॥

मू० कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम्।
कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु ८ ॥

टी०। कितने दिनों के बाद किसीवक्त अश्वतर नाम नाग के दो बेटे पाताल से इस महीतल पर उस जगह आये ८ ॥

मू० ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ।
तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजन्मभिः ९ ॥

टी०। बड़े तेजस्वी ब्राह्मणका रूप किये छिपेहुये व प्यारे दर्शनोंवाले और युवा अवस्था धारण कर प्रीतिपूर्व्वक उस राजपुत्र और ब्राह्मण और वैश्य के लड़कों में आ शामिल हो ९ ॥

मू० विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ।
सर्व्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशां सुताः १० ॥

टी०। वहां तरह तरह का खेल कूद प्रीतिसंयुक्त करने लगे और वे सब राजकुमार व वे ब्राह्मण और वैश्यों के लड़के आपुस में इकट्ठा रहने लगे १० ॥

मू० नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकम्।
वस्त्रगन्धानुसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ११ ॥

टी०। और ये दोनों लड़के नागके और पहले कहेहुये वे सब प्रीति संयुक्त स्नान और सुगन्ध और वस्त्र और चन्दन और भोजन सब एक साथ करते थे ११ ॥

मू० अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ च नागकुमारकौ।
आजग्मतुर्मुदायुक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः १२॥

टी०। इसी तरह हररोज दोनों नागकुमार राजपुत्रके स्नेह से आकर उस के साथ बड़े प्रेम से आनन्दयुक्त रहा करते थे १२॥

मू० स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्व्वाणमाप्तवान्।
विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेव च १३॥

टी०। और वह राजपुत्र अनेक तरह के खेल व हँसी समेत बात चीत के सबब से उन दोनों नागपुत्रों से बड़ा सुख पाता था १३॥

मू० विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु।
न रराम न जग्राह शस्त्राण्यात्मगुणर्द्धये १४॥

टी०। उन दोनों के विना वह राजकुमार स्नान भोजन मद्य पान व क्रीडा नहीं करताथा व नअपने गुण बढ़न के लिये हथियार लेताथा १४॥

मू० रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना।
निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने १५॥

टी०। इसी तरह पाताल में ये दोनों लड़के उस महात्मा राजपुत्र के वियोग में रातभर शोच करके हररोज उसके पास आते थे १५॥

मू० मर्त्यलोके पराप्रीतिर्भवतोः केन पुत्रकौ।
सहेति पप्रच्छ पिता तावुभौ नागदारकौ १६॥

टी०। उन दोनों नागपुत्रों से इनके मां बाप ने पूछा कि ऐ लड़को! तुम दोनों को मृत्युलोक में ऐसी परम प्रीति किससे उत्पन्न हुई १६॥

मू० दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे।
दिवा रजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ १७॥

टी०। क्योंकि हम इस पाताल में बहुत दिनों से देखते हैं कि तुम दोनों को जोकि प्रियदर्शन हो रातही में देखते हैं दिनको नहीं इसका हाल कहो १७॥

जड उवाच ॥

मू० इति पित्रा स्वयं पृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली।
प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ १८ ॥

टी०। जड रूप सुमति कहतेहैं कि यह सवाल खुद बाप का सुनकर बड़े भाग्यवान् वह दोनों नागकुमार हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगे १८ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्नाख्यात ऋतध्वजः।
रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानी प्रियंवदः १९ ॥

टी०। पुत्र बोले कि ऐ तात! शत्रुजित्नाम राजाका पुत्र ऋतध्वजनाम बड़ा रूपवान् गुणवान् सिपाही प्रतिभावान् मिठबोला व नामवरहै १९॥

मू० अनापृष्टकथो वाग्मी विद्वान्मैत्रो गुणाकरः।
मान्यमानयिता धीमान् ह्रीमान् विनयभूषणः २०॥

टी०। और जिस बात को कोई न बतलासके उसका बतलानेवाला व उत्तम बोलनेवाला विद्यावान् मुहब्बती गुणोंकी खानि व मानने योग्य आदमियों को इज्जत देनेवाला लज्जावान् व नम्रता जिसका भूषण है २०॥

मू० तस्योपचारसम्प्रीतिस्सम्भोगापहृतं मनः।
नागलोके भुवोर्लोके न रतिं विन्दते पितः २१ ॥

टी०। उसके साथ रहनेसे उसकी प्रीति और विहार में हमलोगों का मन ऐसा लीन होगया है कि हे पिता! उसके विना यह नागलोक अथवा भूलोक हमको नहीं भाता है २१ ॥

मू० तद्वियोगेन नस्तात न पातालं च शीतलम्।
परितापाय तत्सङ्गादाह्लादाय रविर्दिवा २२ ॥

टी०। और ऐ तात! उसके वियोग में यह पाताल शीतल नहीं मालूम होता बल्कि जलाता है और उसकी सङ्गति में हमको दिनमें आनंद होता है सूर्य की गरमी नहीं जलाती है २२ ॥

पितोवाच ॥

मू० पुत्रः पुण्यवतो धन्यः स यस्यैवं भवद्विधैः।
परोक्षस्यापि गुणिभिः क्रियते गुणकीर्तनम् २३ ॥

टी०। तब नागराज उनके पिता बोले कि पुण्यवान् का वह पुत्र धन्य है जिसके पीठपीछे गुणकी प्रशंसा आप सरीखे लोग करते हैं २३॥

मू० सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खाः सुशीलिनः।
शास्त्रशीलसमं मन्ये पुत्रौ धन्यतरं सुतम् २४॥

टी०। शास्त्र के जाननेवाले विना शील होते हैं व मूर्ख सुशीली होते हैं इस वास्ते ऐ लड़को! शास्त्र और शील दोनों बराबर हैं जिसमें ऐसे उस राजपुत्रको मैं बहुत धन्य मानता हूँ २४॥

मू० यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम्।
कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता २५॥

टी०। और वही पिता सज्जनों में पुत्रवान् है जिसके दोस्त दोस्ती के गुण कहैं व शत्रु सदैव बलकहैं २५॥

मू० तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम्।
किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ परितोषाय चेतसः २६॥

टी०। ऐ लड़को! तुम दोनों ने उस उपकारी के चित्तके आनन्द के लिये कुछ मनोरथ सिद्ध किया है २६॥

मू० स धन्यो जीवितं तस्य तस्य जन्म सुजन्मनः।
यस्यार्थिनो न विमुखा मित्रार्थो न च दुर्बलः २७॥

टी०। और उसीका जीना सुलभ और जन्म सुजन्म है कि जिससे कोई याचक निराश न हो और मित्रके उपकार करनेमें हिम्मत न हारे २७॥

मू० मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नं वाहनमासनम्।
यच्चान्यत्प्रीतये तस्य तद्देयमविशङ्कया २८॥

टी०। इस लिये ऐ पुत्र! जो कुछ मेरे घर में रत्न सोना वाहन आसन इत्यादि और जो जो वस्तु उसकी प्रसन्नता के लिये होवै है उसमें से जो तेरा जी चाहै निःसन्देह अपने मित्र को दे २८॥

मू० धिक् तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामुपकारिणाम्।
प्रतिरूपमकुर्वन् यो जीवामीत्यवगच्छति २९॥

टी०। और उसके जीने पर धिक्कार है कि जो उपकारी मित्रों का बदला नहीं करता है और यह कहता है कि मैं जीता हूँ २६ ॥

मू० उपकारं सुहृद्वर्गे योऽपकारञ्च शत्रुषु।
नृमेघो वर्षति प्राज्ञास्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम् ३० ॥

टी०। और जो लोग मेघकी तरह मित्र का उपकार और दुशमनों का अपकार बरसते हैं बुद्धिमान् हमेशा उसकी उन्नति की इच्छा करतेहैं ३०॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० किं तस्य कृतकृत्यस्य कर्तुं शक्येत केनचित्।
यस्य सर्व्वार्थिनो गेहे सर्व्वकामैःसदार्च्चिताः ३१ ॥

टी०। यह वचन अपने पिता से सुनकर वे दोनों लड़के बोले कि ऐ पिता! वे तो कृतकृत्य हैं उनका उपकार कोई क्या करसक्ता है जिन के घर सम्पूर्ण अर्थार्थी लोग आकर हमेशा सब मनोरथोंसे पूजित होतेहैं ३१॥

मू० यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नःकुतः।
वाहनासनयानानि भूषणान्यम्बराणि च ३२ ॥

टी०। और जो जो वाहन और वसन और आसन और रथ और रत्न और भूषण उनके घर में हैं वे तो पाताल में कहां हैं ३२ ॥

मू० विज्ञानं तत्र यच्चास्ति तदन्यत्र न विद्यते।
प्राज्ञानामप्यसौ तात सर्व्वसन्देहहृत्तमः ३३ ॥

टी०। और ऐ पिता! जैसे वे ज्ञानवान् हैं ऐसा भी कोई कहीं अन्यत्र नहीं है और पंडितों के सन्देहों को वे छुड़ादेते हैं ३३ ॥

मू० एकं तस्यास्ति कर्त्तव्यमसाध्यं तच्च नो मतम्।
हिरण्यगर्भगोविन्दशर्व्वादीनां वराहते ३४ ॥

टी०। लेकिन उनके वास्ते एक कामकी बात करनी उचित थी पर वह हमसे बहुत कठिन है याने विष्णुभगवान् शिवादिकों के वरदान से अलग और कुछ नहीं उसको देने योग्य है ३४ ॥

पितोवाच ॥

मू० तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्य्यमुत्तमम्।

असाध्यमथवा साध्यं किंवासाध्यं विपश्चिताम् ३५ ॥

टी०। यह सुनकर उनका पिता बोला कि ऐ पुत्रो! वह उत्तम कार्य्य उनका मुशकिल या आसान भला या बुराहो उसको सुनना चाहता हूँ और बुद्धिमानों को कुछ असाध्य नहीं होता ३५ ॥

मू० देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वञ्च मानवाः।
प्रयान्ति वाञ्छितं वान्यद्दृढं ये व्यवसायिनः ३६ ॥

टी०। क्योंकि जो लोग पुष्ट काम करनेवाले हैं वे बड़े असाध्य कामों को भी दृढ़ता से पूरा करके देवपद और इन्द्रपद को पहुँचकर लोक में पूज्य होजाते हैं ३६ ॥

मू० नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ३७ ॥

टी०। और मेहनती और इन्द्रिय और चित्त को जीतनेवाले लोगों की न जानी हुई वस्तु व स्वर्ग और पाताल में न मिलने योग्य नहींहै ३७॥

मू० योजनानां सहस्राणि व्रजन् याति पिपीलिकः।
अगच्छन् वैनतेयोपि पादमेकं न गच्छति ३८ ॥

टी०। जैसे चींटा कम चाल भी अगर चलता रहै तो हजार योजन चलाजाय और ऊँचा उड़नेवाला गरुड़ भी न चलता हुआ एक क़दम नहीं जाता है ३८ ॥

मू० क्व भूतलं क्व च ध्रौवं स्थानं यत्प्राप्तवान् ध्रुवः।
उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सन् भूमिगोचरे ३९ ॥

टी०। देखो कहां ध्रुववाला स्थान और कहां मृत्युलोक का रहनेवाला राजा उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव अपने कर्त्तव्य से उस अचल स्थान पर पहुँचकर स्थिर होगया ३९ ॥

मू० तत्कथ्यतां महाभागः कार्य्यवान् येन पुत्रकौ।
स भूपालसुतः साधुर्य्येनानृण्यं भवेत्तु वाम् ४० ॥

टी०। मैं कहता हूँ कि इस वास्ते ऐ लड़को! जो काम उस साधु राजपुत्र का हो वह तुम कहो कि जिस काम के करदेने से तुम दोनों उऋण हो जाओ ४० ॥

पुत्राऊचतुः ॥

मू० तेनाख्यातमिदं तात पूर्व्ववृत्तं महात्मना।
कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः ४१॥

टी०। तब वे दोनों लड़के बोले कि ऐ तात! उस महात्मा राजकुमार ने यह पहले का हाल कहा था उस उत्तम आचरणवाले की कुमार अवस्था का वृत्तान्त सुनिये ४१॥

मू० तस्य शत्रुजितं तातं पूर्व्वं कश्चिद्द्विजोत्तमः।
गालवोऽभ्यागमद्धीमान् गृहीत्वा तुरगोत्तमम् ४२॥

टी०। कि उनके पिता जो शत्रुजित् नाम हैं उनके पास एक समय कोई गालव नाम ब्राह्मण बुद्धिमान् एक बहुत अच्छा घोड़ा अपने साथ लिये हुये आये ४२॥

मू० प्रत्युवाच च राजानं समुत्प्रेत्याश्रमं मम।
कोऽपि दैत्याधमो राजन् विध्वंसयति पापकृत् ४३॥

टी०। और कहा कि ऐ राजन्! मेरे आश्रम पर एक कोई पापकारी दैत्य अधम आकर बहुत तरह की उपाधि करता है ४३॥

मू० तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहे भवनचारिणाम्।
अन्येषां चाल्पकायानामहर्निशमकारणात् ४४॥

टी०। कभी बाघ कभी हाथी और कभी और छोटे जङ्गली जानवरों का रूपधारण कर बिना कारण ही दिनरात घूमा करता है ४४॥

मू० समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च।
तथा करोति विघ्नानि यथा चलति मे मनः ४५॥

टी०। और ध्यान युक्त और समाधि में रहते मौन व्रत ग्रहण किये हुये मेरे नेम में विघ्न डालता है कि जिस सबब से मेरा जी चलायमान हो जाता है ४५॥

मू० दग्धुं कोपाग्निना सद्यः समर्थाःस्म वयं ननु।
दुःखार्जितस्य तपसो व्ययं नेच्छामि पार्थिव ४६॥

टी०। और हे राजन्! यद्यपि मुझमें इतनी सामर्थ्य अवश्य है कि अ-

पने क्रोध की अग्नि में उसे जला हूँ पर बहुत दुःख से जो तप कमाया है उसके ख़र्च करने की नहीं इच्छा रखता हूँ ४६ ॥

मू० एकदा तु मया राजन्नतिनिर्विण्णचेतसा।
तत् क्लेशितेन निःश्वासो निरीक्ष्यासुरमुज्झितः ४७ ॥

टी०। फिर एक दिन ऐ राजन्! इसी क्लेश में शोच संयुक्त मैं बैठा हुआ था कि और उससे क्लेशित मैंने दैत्य को देखकर श्वास छोड़ा ४७॥

मू० ततोऽम्बरतलात्सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गमः।
वाक्चाशरीरिणी प्राह नरनाथ शृणुष्व ताम् ४८ ॥

टी०। उसके बाद यह घोड़ा जो मेरे साथ है जल्दी आकाश से उतरा और उस समय जो आकाशवाणी हुई वह हाल मैं कहता हूँ हे राजन्! उसको सुनिये ४८ ॥

मू० अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः।
समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः ४९ ॥

टी०। कि यह उत्तम घोड़ा ऐसा बलवान् और तेज है कि एक दम में तमाम ज़मीन पर विना परिश्रम घूम सक्ता है यह तुझको सूर्य्य देवता ने दिया है ४९ ॥

मू० पातालाम्बरतोयेषु न चास्य विहतागतिः।
समस्तदिक्षु व्रजतो न भङ्गः पर्व्वतेष्वपि ५० ॥

टी०। और आकाश और पाताल और सब दिशाओं और पर्व्वत और पानी में भी विना रोक टोकके जासक्ता है ५० ॥

मू० यतो भूवलयंसर्व्वमश्रान्तोऽयं चरिष्यति।
अतः कुवलयो नाम्ना ख्यातिं लोके प्रयास्यति ५१ ॥

टी०। जिस लिये सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा यह विना परिश्रम के एक दम में कर सक्ता है इस सबब से इस घोड़े का नाम कुवलयाश्व जगत् में विख्यात होगा ५१ ॥

मू० क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः।
तमप्येनं समारुह्य द्विजश्रेष्ठ हनिष्यति ५२ ॥

टी०। और ऐ द्विजोत्तम! वह पापी दैत्य जो तुझे दिनरात दुःख दिया करता है उसको इस घोड़े पर चढ़कर वह मनुष्य मारैगा ५२॥

मू० शत्रुजिन्नाम भूपालस्तस्य पुत्र ऋतध्वजः।
प्राप्यैतदश्वरत्नञ्च ख्यातिमेतेन यास्यति ५३॥

टी०। जो राजा शत्रुजित् का बेटा ऋतध्वज नाम है और वह यह रत्न घोड़ा पाकर जगत् में इससे प्रसिद्ध होगा ५३॥

मू० सोऽहं त्वां समनुप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम्।
तं निवारय भूपाल भागभाङ्नृपतिर्यतः ५४॥

टी०। इस वास्ते हे राजन्! मैं यह घोड़ा लेकर आया हूँ कि जो मेरे तप में विघ्न डालता है उससे मेरी रक्षा करो क्योंकि राजा भाग का भागी होता है ५४॥

मू० तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप निवेदितम्।
पुत्रमाज्ञापय तथा यथा धर्म्मो न लुप्यते ५५॥

टी०। इस लिये हे राजन्! अब तुम यह घोड़ा लेवो और अपने बेटे को देकर कहो कि जिस तरह से धर्म्म की रक्षा हो वैसाही करो ५५॥

मू० स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम्।
तमश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम् ५६॥

टी०। ये बातें गालवजी की सुनकर राजा ने अपने बेटे ऋतध्वज को मङ्गलाचार करके उस घोड़े पर सवार कराया ५६॥

मू० अप्रेषयत धर्म्मात्मा गालवेन समं तदा।
स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः ५७॥

टी०। और उस समय आज्ञा देकर गालवजी के साथ बिदा किया तब गालव जी भी उसको साथ लेकर अपने आश्रम को चले गये ५७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयव्याख्यानंनामविंशोऽध्यायः २०॥

अथ इक्कीसवां अध्याय

पितोवाच ॥

सू० गालवेन समं गत्वा नृपपुत्रेण तेन यत् ।
कृतं तत्कथ्यतां पुत्रौ विचित्रा युवयोः कथा १ ॥

टी० । फिर पिता अश्वतरनागराज बोले कि ऐ लड़को ! गालवजीके साथ जाकर उस राजकुमार ने जो काम किये हैं उसकी विचित्र कथाको तुम लोग बयानकरो १ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

सू० स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन् भूपालनन्दनः ।
सर्व्वविघ्नोपशमनञ्चकार ब्रह्मवादिनाम् २ ॥

टी० । तब वे लड़के कहनेलगे कि गालवजीके रम्य आश्रम पर राजकुमार ने रहकर मुनिलोगों के सब विघ्न को शान्त किया २ ॥

सू० वीरं कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे ।
मदावलेपोपहृतो नाज्ञानाद्दानवाधमः ३ ॥

टी० । और ये राजकुमार जो कुवलयाश्व घोड़ा समेत गालवजी के आश्रम पर डेरा किये हुये थे इस हाल को वह अधम दानव जिसको घमण्ड का नशा चढ़ा हुआथा नहीं जानता था ३ ॥

सू० ततस्तं गालवं विप्रं सन्ध्योपासनतत्परम् ।
सौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागमत् ४ ॥

टी० । उसके बाद एक दिन वे विप्रगालवजी अपने सन्ध्या कर्मकी
एक दम में नामें तत्पर थे कि वह राक्षस सूकर का रूप धारण करके उनके
जगत् में विख्यात हो रने के वास्ते वहां आ पहुँचा ४ ॥

सू० क्रियत्यहा[नि]ष्यैरथोत्क्रुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् ।
तमप्येनं स[ा]वद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी ५ ॥

समय गालवजी के शिष्यों ने हल्ला मचाया तब यह

राजकुमार जल्द घोड़े पर सवार हो शरासन ले क्रोध संयुक्त उस वाराह की तरफ़ दौड़े ५ ॥

मू० आजघान च बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्च्चसा।
आकृष्य बलवच्चापञ्चारुचित्रोपशोभितम् ६ ॥

टी०। और उसके सामने जाकर अर्द्धचन्द्रमा के आकार जो तीक्ष्ण बाण था उसको चित्रोंसे शोभित व सुन्दर और पुष्ट धनुषमें लगाके खैंच कर ऐसा मारा कि अचानक वह बाण उस राक्षस के शरीरमें छिदगया ६॥

मू० नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः।
गिरिपादपसंबाधां सोऽन्वक्रामन्महाटवीम् ७॥

टी०। लेकिन वह सुअर बाण से छिदा हुआ अपने प्राण बचाने के वास्ते बड़ी कठिन राहसे पहाड़ों व दरख़्तोंवाले जंगलकी तरफ़ भागा ७॥

मू० तमन्वधावद्वेगेन तुरगोसौमनोजवः।
चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ८ ॥

टी०। तब वह घोड़ा भी जो मनके समान चलनेवाला था राजकुमार के हांकने से जो पिताकी आज्ञा में था उस सुअर की तरफ़ जल्दी से चला ८ ॥

मू० अतिक्रम्याथवेगेन योजनानि सहस्रशः।
धरण्यां विवृते गर्त्ते निपपात लघुक्रमः ९ ॥

टी०। और वह जल्द चलनेवाला सूकर रूपी राक्षस इनके डरसे हज़ारों योजन नांघकर जल्द एक कुण्ड जो पृथ्वीमें खुलाथा उसमें कूद कर घुसगया ९ ॥

मू० तस्यानन्तरमेवाशु सोऽप्यश्वी नृपतेः सुतः।
निपपात महागर्त्ते तिमिरौघसमावृते १० ॥

टी०। तब उसके बादही राजकुमार भी जल्दी घोड़ा समेत उस अंधियारे से घिरे बड़े गड़हे में कूद पड़ा १० ॥ यहां पक्ष

मू० ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् राजसूनुना।
प्रविश्य च सपातालमपश्यत्तत्र नापि तम् ११ ॥

टी०। फिर वहाँ उस राक्षस को तो न देखा पर पैठकर पाताल में पहुँचे तो वहाँ भी उस शिकार को न पाया ११॥

मू० ततोऽपश्यत्स सौवर्णप्रासादशतसंकुलम्।
पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम् १२॥

टी०। तब वह राजकुमार एक स्थानपर जहाँ सोने के सैकड़ों मकान व इन्द्रपुरी के समान शोभायमान व छहरदिवारीसे शोभितथा गया१२॥

मू० तत्प्रविश्य स नापश्यत्तत्र कञ्चिन्नरं पुरे।
भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता १३॥

टी०। वहाँ भी राजकुमार ने उसको ढूंढ़ा पर उस पुरमें कोई आदमी न देख पड़ा बल्कि मुर्दे की सूरत भी वहाँ नजर न आई उसके बाद घूमतेहुये उसने एक स्थान पर एक स्त्री को देखा जो जल्दी समेतथी१३॥

मू० सा पृष्टा तेन तन्वङ्गी प्रस्थिता केन कस्य वा।
नोवाच किञ्चित्प्रासादमारुरोह च भामिनी १४॥

टी०। उस स्त्री से जब उसने उसका पता पूछा कि तू किसलिये व किस काम को आई है तो उस स्त्री ने कुछ जवाब न दिया बल्कि कोठे पर चढ़ गई १४॥

मू० सोप्यश्वमेकतो बद्धा तामेवानुससार वै।
विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशङ्को नृपतेः सुतः १५॥

टी०। तब वह राजकुमार भी घोड़े को उसी जगह बाँधकर हाल दरियाफ़्त करने के वास्ते उसी के पीछे उस कोठे पर निःशंक चढ़गया जिसकी आंखें तअज्जुब से खुशी थीं १५॥

मू० ततोऽपश्यत्सुविस्तीर्णपर्य्यङ्के सर्व्वकाञ्चने।
निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतीमिव १६॥

एक ६ जगत
टी०। तो वहाँ देखा कि एक बड़े से सब सोने के पलङ्ग पर एक खूब सूरत लड़की जिसका हुस्न कामदेवसमेत रति के समान था बैठीहै १६॥

मू० विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणिपयोधराम्।
बिम्बाधरोष्ठींतन्वङ्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् १७॥

टी०। जिसका मुख निर्म्मल पूर्णमासी के चन्द्रमा कासा और भौं सुन्दर और कठोर कुच व नाजुक कमर व छोटा शरीर लाल ओंठ और आँखें नील कमल सी थीं १७॥

मू० रक्ततुङ्गनखीं श्यामां मृद्वीं ताम्रकराङ्घ्रिकाम्।
करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मास्थिरालकाम् १८॥

टी०। और लाल हाथ की अँगुलियां और सुर्ख व ऊंचे नख और कोमल लाल २ हाथ पाँव सांवला रंग और सुन्दर दाँत और कालेबालों की चोटी शिर पर और कदली खम्भसी जांघें जिसकी हैं १८॥

मू० तां दृष्ट्वाचारुसर्व्वाङ्गीमनङ्गाङ्गलतामिव।
सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तां रसातलदेवताम् १९॥

टी०। ऐसी सर्व्वाङ्ग सुन्दरी को कन्दर्प्प के अङ्ककी लता के समान रूप देखकर राजकुमारने उसको रसातल का देवता समझा १९॥

मू० सा च दृष्ट्वैव तं बालानीलकुञ्चितमूर्द्धजम्।
पीनोरुस्कन्धबाहुं तममंस्तमदनं शुभा २०॥

टी०। और वह स्त्री भी राजकुमार के काले घूँघर वाले बाल और कन्धा और भुजा और जाँघ इत्यादि मोटी देखकर उनको कामदेव मानती भई २०॥

मू० उत्तस्थौ च महाभागा चित्तक्षोभमवाप्यसा।
लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वीवशंगता २१॥

टी०। व बड़ी भाग्यवती वह पलँग से उठी और चित्त से मोहित हो-कर वह स्त्री उसी वक्त लज्जा व तअज्जुब, दीनता इनके वश होगई २१॥

मू० कोऽयं देवो नु यक्षोवा गन्धर्व्वो वोरगोऽपिवा।
विद्याधरो वा सम्प्राप्तः कृतपुण्यरतिर्नरः २२॥

टी०। और मन में विचार करनेलगी कि यह कोई देवता या यक्ष या गन्धर्व या किन्नर या सर्प्प या विद्याधर कोई पुण्यवान् मनुष्य यहां आया है २२॥

मू० एवं विचिन्त्यबहुधा निश्वस्य च महीतले।
उपविश्य ततो भेजे सा मूर्च्छां मदिरेक्षणा २३॥

टी०। इसी तरह बहुत सी अपने मनमें चिन्ताकर श्वासलेके उनके सुरत बाण की चोट से मूर्च्छा में प्राप्तहो बेहोश ज़मीन पर बैठ गई व मूर्च्छाको प्राप्तहुई २३॥

मू० सोपि कामशराघातमवाप्य नृपतेःसुतः।
तां समाश्वासयामास न भेतव्यमितिब्रुवन् २४॥

टी०। और वह राजकुमार भी कामदेवके बाण से घायल और मोहित होकर उससे यह कहनेलगा कि तुम मत डरो २४॥

मू० सा च स्त्री या तदादृष्टा पूर्व्वं तेन महात्मना।
तालवृन्तमुपादाय पर्य्यवीज यदाकुलाम् २५॥

टी०। इतना कहकर उस स्त्री को देखा जिसको उस महात्माने पहिले देखा था कि एक पंखा ताड़का हाथ में लेकर उसकी हवा उस विकल सुन्दरी को देनेलगी २५॥

मू० समाश्वास्य तदा पृष्टा तेन संमोहकारणम्।
किञ्चिल्लज्जान्विताबाला तस्याः सख्युर्न्यवेदयत् २६॥

टी०। यद्यपि बहुत तरह की धीर्य्य की बातों से उसको निर्भय किया पर वह सुन्दरी लज्जा से शिर न उठासकी और उसने उस सखी से कह दिया २६॥

मू० सा चास्मैकथयामास नृपपुत्रायविस्तरात्।
मोहस्य कारणं सर्व्वं तद्दर्शनसमुद्भवम्॥
यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तञ्च भाविनी २७॥

टी०। तो वह सखी उस राजकुमार से विस्तार पूर्वक कहने लगी जिसतरह उसके दर्शन से उपजाहुआ मूर्च्छा का सबब था उसीतरह उस का हाल स्त्री ने कहा २७॥

सख्युवाच॥

मू० विश्वावसुरितिख्यातोदिविगन्धर्वराट्प्रभो।
तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्ना ख्याता मदालसा २८॥

टी०। सखी बोली कि हे प्रभू! विश्वावसु नाम एक गन्धर्वों का

राजा स्वर्ग का रहनेवाला मशहूर है उनकी यह बेटी है मदालसा इसका नाम ख्यात अर्थात् ज़ाहिर है २८ ॥

मू० वज्रकेतोः सुतश्चोग्रो दानवोऽरिविदारणः ।
पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः २९ ॥

टी०। और वज्रकेतु नाम दानव का बेटा उग्र व अपने शत्रुओं को नाश करनेवाला जिसका नाम पातालकेतु मशहूर है और पाताल ही के बीच में रहता है २९ ॥

मू० तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् ।
अपहृत्य मया हीना बालानीता दुरात्मना ३० ॥

टी०। वही पातालकेतु एक समय इस कन्या की फुलवारी में गया और यह कन्या भी संयोग पाय उस रोज़ उसी फुलवारी में गई हुई थी वहांपर उस दुरात्मा ने अपनी माया से अँधेरा करके इस कन्या को हर-कर यहां पर ले आया ३० ॥

मू० आगामिन्यां त्रयोदश्यां मुद्वयाति किलासुरः ।
सतुनार्हति चार्वङ्गी शूद्रो वेदश्रुतीमिव ३१ ॥

टी०। अब उस असुर ने इस कन्या से अपना विवाह करने की तिथि त्रियोदशी ठहराई है जो अब आवेगी और यह सर्वाङ्ग सुन्दरी उसके योग्य नहीं है जैसे शूद्र को वेद की श्रुति का पढ़ना ३१ ॥

मू० अतीते च दिने बालामात्म व्यापादनोद्यताम् ।
सुरभिःप्राह नायं त्वा प्राप्स्यते दानवोधमः ३२ ॥

टी०। सूरज उसी के डरसे दिन के बाद यह कन्या अपनी जान देने पर मुस्तैद हुई उस समय सुरभी जो सब गौओं की माता है बोली कि तू घबड़ा मत तुझे यह नीच दानव नहीं पावेगा ३२ ॥

मू० मर्त्यलोकमनुप्राप्तं य एनं छेत्स्यते शरैः ।
स ते भर्ता महाभागे अचिरेण भविष्यति ३३ ॥

टी०। बल्कि जब यह दानव मृत्युलोक में जायगा और वहाँ पर जो कोई इसको बाणसे छेदेगा वही तेरा पति होगा इस वास्ते हे महाभागे! तू अपना प्राण मत त्याग यह बात ज़रूर होगी इतना कहके चलीगई ३३॥

मू० अहं चास्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी।
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीरपुष्करमालिनः ३४॥

टी०। और मैं इसी कन्या की सखी हूँ मेरा नाम कुण्डला है मैं विन्ध्यवान् की बेटी हूँ और मेरे स्वामी का नाम पुष्करमाली था ३४॥

मू० हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात्तीर्थं मनुव्रता।
चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता ३५॥

टी०। जब से मेरा पति शुम्भ के हाथ से मारा गया तब से मैं अपने परलोक के वास्ते दिव्यगति से तीर्थ से तीर्थ में भ्रमण करती हूँ ३५॥

मू० पातालकेतुर्दुष्टात्मा वाराहं वपुरास्थितः।
केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां त्राणकारणात् ३६॥

टी०। और वह पातालकेतु दुष्टात्मा वाराह रूप धारण कर चुका है बल्कि किसी ने मुनियों की रक्षा के वास्ते उसे तीरसे भी छेदाहै ३६॥

मू० तं चाहन्तरवतोऽन्विष्यत्वरितासमुपागता।
सत्यमेव सकेनापि ताडितो दानवाधमः ३७॥

टी०। इतना तो सच हुआ मैं उसको यथार्थ ढूँढ़कर जल्दी आगई पर यह नहीं जानती हूं कि किसने उसे घायल कियाहै ३७॥

मू० इयञ्च मूर्च्छामगमत् कारणं यत् शृणुष्वतत्।
त्वयि प्रीतिमतीबाला दर्शनादेव मानद ३८॥

टी०। अब इस कन्या के मूर्च्छित होने का जो कारण है सो सुनिये कि ऐ मानद ! इसको आपके देखनेही से अत्यन्त प्रीति होगई है इसी सबब से वह स्त्री मूर्च्छित होगई ३८॥

मू० देवपुत्रोपमे चारु वाक्यादिगुणशालिनि।
भार्य्याचान्यस्य विहिता येन विद्धः सदानवः ३९॥

टी०। और जोकि आप देवपुत्र समान सुन्दर और वचन ललित और सब गुणों के आश्रय हैं इससे इसके हृदय में बस गये हैं और इस का विवाह उससे बदाहै जिसके हाथ से यह राक्षस घायल हुआहै ३९॥

मू० एतस्मात्कारणान्मोहं महान्तमियमागता।

यावज्जीवञ्च तन्वङ्गी दुःखमेवोपभोक्ष्यते ४० ॥

टी०। इसी सबब से यह भारी मोह इसको होगयाहै और तुम्हारे विरह का दुःख इसको जन्म भर भोगने के वास्ते है ४० ॥

मू० त्वय्यस्या हृदयंशार्ङ्गि भर्त्ता चान्यो भविष्यति।
यावज्जीवमतो दुःखं सुरभ्यानान्यथा वचः ४१ ॥

टी०। उस सुरभी का वचन किसी तरह झूंठ नहीं होसक्ता और तुमने इसके मन को हरलिया और यह दूसरे की स्त्री होगई इसलिये यह दुःख जन्म भर इसको उठाना पड़ैगा ४१ ॥

मू० अहं त्वस्याः प्रभो प्रीत्या दुःखितात्रसमागता।
यतो विशेषानैवास्ति स्वसखी निजदेहयोः ४२ ॥

टी०। और ऐ प्रभू! मैं इसी की मुहब्बत के सबब से दुखिया होके यहां आपड़ी हूं क्योंकि अपने शरीरसे अपनी सखी जुदा नहीं होतीहै ४२॥

मू० यद्येषाभिमतंवीरं पतिमाप्नोति शोभना।
ततस्तपस्त्वहं कुर्य्यां निर्व्यलीकेन चेतसा ४३ ॥

टी०। अगर इस सुन्दरी को मन माना स्वामी मिलजाय तो मैं निश्चल हृदय हो जाकर तप करूं ४३ ॥

मू० त्वन्तुको वा किमर्थं वा सम्प्राप्तोऽत्र महामते।
देवो दैत्योनुगन्धर्व्वः पन्नगः किन्नरोऽपि वा ४४ ॥

टी०। और ऐ महामति! अब यह बतलाइये कि आप कौन हैं और क्योंकर यहां आये आप देवता हैं या दैत्यहैं या नाग या गन्धर्व्व या किन्नरहैं ४४ ॥

मू० नह्यत्रमानुषगातिर्नचेदृङ्मानुषंवपुः।
तत्वमाख्याहि कथितं यथैवावितथं मया ४५ ॥

टी०। क्योंकि यहां मनुष्य की पहुंच नहीं और ऐसी सूरत और शरीर भी मनुष्य नहीं पासक्ता सो जिस तरह मैंने अपना हाल सच सच कह दिया उसी तरह आपभी अपना हाल सच सच कह दीजिये ४५ ॥

राजकुमारउवाच ॥

मू० यन्मां पृच्छसि धर्म्मज्ञे कस्त्वं किंवा समागतः।
तच्छृणुष्वमलप्रज्ञे कथयाम्यानिन्दिनस्तव ४६ ॥

टी०। तब राजकुमार बोले कि ऐ धर्म्मकी जानने वाली! निर्म्मलमति तूनेजो मेराऔर मेरे आनेका हालपूछा वहमैं शुरू से कहताहूँ सुन ४६ ॥

मू० राज्ञः शत्रुजितः पुत्रः पित्रासम्प्रेषितःशुभे।
मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः ४७ ॥

टी०। हे शुभे! कि शत्रुजित् नाम राजा का मैं पुत्र हूँ अपने पिता से पठाया हुआ मुनि लोगों की रक्षा के वास्ते गालव जी के आश्रम पर आया था ४७ ॥

मू० कुर्व्वतो मम रक्षाञ्च मुनीनां धर्म्मचारिणाम्।
विघ्नार्थमागतःकोऽपि सौकरं रूपमास्थितः ४८ ॥

टी०। वहां पर धर्म्मात्मा मुनि लोगों की रक्षा करताथा उसी काल में मुनि लोगों के धर्म्म में विघ्न डालने के वास्ते कोई सूकर का रूप धारण करके आया ४८ ॥

मू० मया स विद्धो बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्च्चसा।
अपक्रान्तोतिवेगेन तमस्म्यनुगतो हयी ४९ ॥

टी०। और मैंने अर्द्धचन्द्राकार तीक्ष्ण बाणसे उसे मारा जो उसके शरीर में छिदगया तब वह वहां से भागा और मैं भी अपने घोड़े पर सवार हो उसके पीछे लगा ४९ ॥

मू० पपात सहसागर्त्ते स क्रोडोऽश्वश्चमामकः।
सोहमश्वं समारूढस्तमस्येकः परिभ्रमन् ५० ॥

टी०। फिर वह सूकर जल्दी से एक कुण्ड में कूदा और अकेलामैंभी घोड़े पर सवार उसके पीछे उस अँधेरे गढे में कूदकर भटकने लगा ५० ॥

मू० प्रकाशमासादितवान् दृष्टा च भवतीमया।
पृष्टया च न मे किञ्चिद्भवत्या दत्तमुत्तरम् ५१ ॥

टी०। फिर नीचे आकर जब प्रकाश पाया और तुमको देख कर पूछा तब तुमने कुछ जवाब न दिया ५१ ॥

मू० त्वां चैवानु प्रविष्टोह मिमं प्रासादमुत्तमम्।
इत्येत्कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः ५२॥

टी०। फिर जब तुम इस उत्तम कोठे पर चली आईं तब से भी तुम्हारे पीछे पीछे यहां पर चला आया और मैं न देवता हूँ न दैत्य यही मेरा सच सच हाल है ५२॥

मू० नपन्नगो न गन्धर्व्वः किन्नरो वा शुचिस्मिते।
समस्ताःपूज्यपक्षा वै देवाद्या मम कुण्डले।
मनुष्योऽस्मि विशंका ते न कर्त्तव्यात्र कर्हिचित् ५३॥

टी०। और हे शुचिस्मिते कुण्डले! न मैं नागहूँ न गन्धर्व्व न किन्नर बल्कि मनुष्य हूँ और देवताओं का पूजक हूँ इस में तुम किसी तरह का सन्देह न करो ५३॥

पुत्रावूचतुः॥

मू० ततः प्रहृष्टा सा कन्या सखी वदन मुत्तमम्।
लज्जानतं वीक्षमाणा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ५४॥

टी०। दोनों नाग पुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! उसके बाद यह वचन राजपुत्र का सुनकर वह कन्या मदालसा बहुत आनन्द हो अपनी सखी का सुन्दर मुख जोकि लाज से नीचे झुका था ताकने लगी और कुछ न बोल सकी ५४॥

मू० सा सखी पुनरप्येनां प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह।
यथावत् कथितं तेन सुरभ्यावचनानुगम् ५५॥

टी०। लेकिन प्रसन्न होती हुई वही सखी जिसको सुरभी का वचन याद था फिर राजपुत्र से कहने लगी ५५॥

कुण्डलोवाच॥

मू० वीर सत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितं वचः।
नान्यत्र हृदयं त्वस्या दृष्ट्वास्थैर्यं प्रयास्यति ५६॥

टी०। कुण्डला बोली कि ऐ वीर! आपका कहना सब निस्सन्देह व सच है और अब इस कन्या को बिना तुम्हारे देखे दूसरे से चैन नहीं है ५६॥

मू० चन्द्रमेवाधिका कान्तिः समुपैति रविंप्रभा।
भूतिर्धन्यं धृतिर्धीरं क्षान्तिरभ्येति चोत्तमम् ५७॥

टी०। क्योंकि ज़ियादह शोभा चन्द्रही में और प्रकाश सूर्य्य में ऐश्वर्य धन्य पुरुष में व धैर्य धीर मनुष्य में और क्षमा उत्तम पुरुष में प्राप्त होती है ५७॥

मू० त्वयैव विद्धोऽसंदिग्धःसपापो दानवाधमः।
सुरभिः सा गवांमाता कथं मिथ्या वदिष्यति ५८॥

टी०। और उस अधम दानव को तुम्हारे घायल करने का मुझको पूरा यक़ीन है वह सुरभी सब गौवों की माता है उसका वचन क्योंकर मिथ्या होसक्ता है ५८॥

मू० तद्धन्येयं सभाग्या च त्वत्सम्बन्धं समेत्य वै।
कुरुष्व वीरयत्कार्य्यं विधिनैव समाहितम् ५९॥

टी०। ऐ वीर! इस लिये इस मदालसाके धन्य भाग हैं जो आप ऐसे से इसका सम्बन्ध हुआ अब जो कार्य होता हो आप इसके विवाह की वह विधि कीजिये ५९॥

पुत्रावूचतुः॥

मू० परधानहमित्याह राजपुत्रःसमाहितः।
सा च तं चिन्तयामास तुम्बुरुं स्वकुले गुरुम् ६०॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि यह वचन उस सखी से सुनकर राजपुत्र ने कहा कि यह बात मुझको भी पसन्द है तब उस सखी ने मदालसा के कुलगुरु तुम्बुरु को स्मरण किया ६०॥

मू० साचापितत्क्षणात्प्राप्तः प्रगृहीतसमित्कुशः।
मदालसायाः सम्प्रीत्या कुण्डलागौरवेणच ६१॥

टी०। उसके स्मरण करते ही उसी समय वह तुम्बुरु भी विवाह की सामग्री कुश और होम करने की लकड़ी इत्यादि लिये हुये आ पहुँचे जो कि कुण्डला प्रीति के गौरव और मदालसा की प्रीति से आये थे ६१॥

मू० प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रवित् कृतमङ्गलम्।
वैवाहिकंविधिंकन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ६२॥

टी०। वेद की विधि से अग्नि प्रज्वलित कर आहुति दे गीत और मङ्गल के साथ राजकुमार से मदालसा का विवाह विधि से कराके जैसे आया था ६२ ॥

मू० जगाम तपसेधीमान् स्वमाश्रमपदं तदा।
साचाहतां सखींबालां कृतार्थास्मि वरानने ६३ ॥

टी०। वैसेही उसवक्त वह बुद्धिमान् तुम्बुरु अपने स्थान पर तपकरने के वास्ते चला गया और वह सखी उस मदालसा से कहने लगी कि ऐ सुन्दरी! मैं अब कृतार्थ हुई ६३ ॥

मू० संयुक्ताममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिना।
तपंतप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेन चेतसा ६४ ॥

टी०। और ऐ रूपवती! इस समय तुझको इस रूपवान् अपने पति के साथ देखा अब मैं स्थिर चित्त होकर अतुल तपस्या करूँगी ६४ ॥

मू० तीर्थाम्बुधूतपापा च भवित्री नेदृशी यथा।
तं चाह राजपुत्रं सा प्रश्रया वनता तदा।
गन्तुकामानिजसखी स्नेहविक्लव भाषिणी ६५ ॥

टी०। और ऐ सखी! तीर्थके जल से अपने पाप को धोकर जिस तरह ऐसी न होऊँ इतना कहकर चलने की इच्छा से मदालसा की मुहब्बत के सबब से हाथ जोड़ नम्रता से झुकके अपनी सखी से विह्वल वाणी से उस राजकुमार से कहने लगी ६५ ॥

कुण्डलोवाच ॥

मू० पुम्भिरप्यमितप्रज्ञ नोपदेशोभवद्विधे।
दातव्यःकिमुतस्त्रीभिरतो नोपदिशामिते ६६ ॥

टी०। कुण्डला बोली कि ऐ अमितप्रज्ञ! यानी बड़े ज्ञानी आपको उपदेश देने योग्य कोई पुरुष नहीं है फिर स्त्रियों को क्या कहना है इस सबब से मैं कुछ नहीं कह सक्ती हूँ ६६ ॥

मू० किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा।
त्वयाविश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन ६७ ॥

टी० । परन्तु ऐ अरिनाशक ! इस कन्या के नेहसे खींचे चित्त करके मेरा चित्त फँसा है व तुमसे विश्वास को प्राप्त है इस वास्ते आपसे कहती हूँ और याद दिलाती हूँ ६७ ॥

मू० भर्त्तव्या रक्षितव्याच भार्य्याहि पतिना सदा ।
धर्म्मार्थकामसंसिद्धौ भार्य्या भर्त्तसहायिनी ६८ ॥

टी० । कि स्त्री अर्थ और धर्म्म और काम की सिद्धि में अपने स्वामी की सहायक है इस लिये स्वामी को चाहिये कि स्त्री की रक्षा और पालना सदा किया करै ६८ ॥

मू० यदा भार्य्या च भर्त्ता च परस्परवशानुगौ ।
तदाधर्म्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गतम् ६९ ॥

टी० । जो स्त्री और पुरुष दोनों आपुस में एक दूसरे के वश में हों तो अर्थ धर्म्म काम ये तीनों उसको प्राप्त होते हैं ६९॥

मू० कथं भार्य्यामृते धर्म्ममर्थंवा पुरुषः प्रभो ।
प्राप्नोति काममथवा तस्यां त्रितयमाहितम् ७० ॥

टी० । और ऐ प्रभु ! स्त्री को छोड़कर पुरुष किसी तरह अर्थ या धर्म्म या काम हासिल नहीं करसक्ता क्योंकि ये तीनों स्त्रीके सम्बन्धसे होतेहैं ७०॥

मू० तथैव भर्तारमृते भार्य्या धर्म्मादि साधने ।
नसमर्था त्रिवर्गोयं दाम्पत्ये समुपाश्रितः ७१ ॥

टी० । उसी तरह पुरुष को छोड़कर स्त्री भी समर्थ नहीं है कि धर्म्मादिक को साधसकै इस लिये ये तीनों दाम्पत्य यानी स्त्री पुरुष ही में रहते हैं ७१ ॥

मू० देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम् ।
नपुंभिःशक्यते कर्त्तुं मृते भार्य्यान्नृपात्मज ७२ ॥

टी० । और ऐ राजपुत्र ! देवता और पितर और नौकर और अभ्यागत वग़ैरा का पूजन विना स्त्री के पुरुषों से नहीं होसक्ता ७२ ॥

मू० प्राप्तोऽपिचार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ।
क्षयमेति विनाभार्य्या कुभार्य्यासंश्रयेऽपिच ७३ ॥

टी०। अगर मनुष्य धन प्राप्त करके घरमें लेआवै तो भी विना स्त्री के वह धन नाश हो जाता है और इसी तरह कुभार्य्या के रहने पर भी नाश हो जाता है ७३ ॥

मू० कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते।
दम्पत्योःसहधर्म्मेण त्रयीधर्म्ममवाप्नुयात् ७४ ॥

टी०। अगर पुरुष या स्त्री को किसी बात की इच्छा न भी हो तो भी धर्म्म युक्त दम्पति के सबब से धर्म्मादिक तीनों पदार्थ प्रत्यक्ष उनको प्राप्त होजाते हैं ७४ ॥

मू० पितॄन् पुत्रैस्तथैवान्न साधनैरतिथीन्नरः।
पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीभार्य्या नरोवति ७५ ॥

टी०। जैसे पुत्र से पितर और अन्नादि से अभ्यागत और पूजा से देवता लोगों को मनुष्य तृप्त करता है इसी तरह अच्छी स्त्री को पुरुष पालन करता है ७५ ॥

मू० स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्म्मकामार्थ सन्ततिः।
नैवतस्मात्त्रिवर्गोऽयंदाम्पत्यमाधिगच्छति ७६ ॥

टी०। फिर स्त्रियों को भी विना स्वामी के धर्म्म अर्थ काम की सन्तति नहीं मिल सक्ती इस सबब से कि ये तीनों वर्ग परस्पर स्त्री पुरुष की प्रीतिही में रहते हैं ७६ ॥

मू० एतन्मयोक्तं युवयोर्गच्छामि च यथेप्सितम्।
स्वंवर्द्धस्वानयासार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा ७७ ॥

टी०। और ये बातें आप दोनों के वास्ते मैं ने कहीं हैं अब मैं अपनी इच्छा के मुताबिक जाती हूँ आप इस स्त्रीके साथ धन और पुत्र और सुख और उमर इत्यादि से प्रफुल्लित हो बढ़ते रहिये ७७ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० इत्युक्त्वासा परिष्वज्य स्व सखीं तं नमस्य च।
जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रेतमात्मनः ७८ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! कुण्डला इतना कहकर और अ-

पनी सखी से मिलकर और उस राजपुत्र को नमस्कार करके सुन्दर गति से अपनी इच्छा से चली गई ७८ ॥

मू० सोऽपिशत्रुजितः पुत्रस्तामारोप्य तुरङ्गमम्।
निर्गन्तुकामः पातालाद्विज्ञातो दनुसम्भवैः ७९ ॥

टी०। और वह राजा शत्रुजित् के पुत्र ने भी मदालसा को अपने घोड़े पर चढ़ाकर जब पाताल से चलने की इच्छा किया तब वहां के दैत्य लोग भी जान गये ७९ ॥

मू० ततस्तैःसहसोत्कुष्टं ह्रियते ह्रियतेति वै।
कन्यारत्नं यदानीतं दिवः पातालकेतुना ८० ॥

टी०। तो फिर अचानकही उन्हों ने बहुत सा गुल और शोर मचाया कि पातालकेतु जो कन्या रत्न स्वर्ग से लाया था उसको हरण करके लिये जाता है ८० ॥

मू० ततःपरिघनिस्त्रिंसगदाशूलशरायुधम्।
दानवानांबलंप्राप्तं सहपातालकेतुना ८१ ॥

टी०। यह गुल सुनकर उस समय परिघ और खड्ग और गदा और शूल और शर इत्यादि अस्त्र शस्त्र ले लेकर बहुतसे दैत्यों का लश्कर बड़े ज़ोर शोर से पातालकेतु समेत प्राप्त हुआ ८१ ॥

मू० तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तंस्ते तदा दानवोत्तमाः।
शरवर्षैस्तथाशूलैर्ववर्षुर्नृपतन्दनम् ८२ ॥

टी०। उसवक्त खड़ा रहु खड़ा रहु यह शब्द कहतेहुये वे बड़े बड़े दानव लोग दौड़पड़े औरउस राजपुत्रपर हथियारोंका मेह बरसानेलगे ८२ ॥

मू० स च शत्रुजितः पुत्रस्तदस्त्राण्यतिवीर्य्यवान्।
चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निवलीलया ८३ ॥

टी०। और उस शत्रुजित् के पुत्र महा पराक्रमी ने अपने बाणों से हँसते हँसते खेल की तरह उन दैत्यों के बाणों को काटकरगिरादिया ८३॥

मू० क्षणेन पातालतलमसिशक्त्यृष्टिशायकैः।
छिन्नैः संछन्नमभवत्तध्वजशरोत्करैः ८४ ॥

टी०। और एक पलमात्र में वह पाताल ऋतध्वज के समान बाण और शक्ति यानी सांगि व बरछा और शूल इत्यादि से भरगया ८४॥

मू० ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रतिदानवान्।
तेन ते दानवाः सर्व्वे सह पातालकेतुना ८५॥

टी०। फिर उस समय अग्नि बाण लेकर उन दानवोंपर चलाया और उससे पातालकेतु वगैरा सब दानवों को ८५॥

मू० ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयाःकृताः।
निर्द्दग्धाःकापिलन्तेजः समासाद्येवसागराः ८६॥

टी०। सब हड्डी तक उस बाणकी ज्वाला से जलकर खाक सियाह होगई जैसे कपिल जी का तेज पाकर समुद्र सूख गये थे ८६॥

मू० ततः स राजपुत्रोऽश्वीनिहत्यासुरसत्तमान्।
स्त्रीरत्नेन समन्तेन समागच्छत्पितुः पुरम् ८७॥

टी०। तब वह राजपुत्र उन असुरोंके मारेजानेपर अपने घोड़ेपर सवार हो स्त्री रत्न सहित अपने बाप के शहर में आपहुँचा ८७॥

मू० प्रणिपत्य च तत्सर्व्वं सतु पित्रेन्यवेदयत्।
पाताल गमनंचैव कुण्डलायाश्चदर्शनम् ८८॥

टी०। और उसने अपने पिता को प्रणाम कर जिस तरह पाताल में गया और वहां कुण्डला से मुलाक़ात हुई सब हाल कह सुनाया ८८॥

मू० तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापिसङ्गरम्।
वधञ्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनन्तथा ८९॥

टी०। और जिस तरह मदालसा को पाया फिर दानवों से युद्ध हुआ और उन सबको मारकर जिस तरह फिर आया ८९॥

मू० इति श्रुत्वा पितातस्य चरितंचारुचेतसः।
प्रीतिमानभवच्चेदं परिष्वज्याहचात्मजम् ९०॥

टी०। राजा शत्रुजित् यह सुन्दर चित्त वाले उस बेटे का चरित्र सुनकर बड़े प्रेमसे अपने बेटे को गले लगाकर खुश हुआ व कहने लगा९०॥

मू० सत्पुत्रेण त्वयापुत्र तारितोऽहं महात्मना।
भयेभ्यो मुनयस्त्राता येनसद्धर्मचारिणः ६१ ॥

टी०। कि सत्पुत्र महात्मा तूने मुझको तार दिया क्योंकि जिस तूने मुनि लोगों की रक्षा की जो उत्तम धर्मवान् थे ६१ ॥

मू० मत्पूर्वैःख्यातिमानीतं मयाविस्तारितं पुनः।
पराक्रमवतावीर त्वया तद्बहुलीकृतम् ६२ ॥

टी०। ऐ वीर ! मेरे पहिले वालों ने जिस क़दर अपने यश को दुनिया में ज़ाहिर किया था उस यश को मैंने बिस्तार किया और तूने अपने पराक्रम से बहुत बढ़ा दिया ६२ ॥

मू० यदुपात्तं यशः पित्राधनं वीर्य्यमथापि वा।
तन्नहापयते यस्तु सनरोमध्यमः स्मृतः ६३ ॥

टी०। जिस पुत्र ने अपने पिता का पैदा किया हुआ धन यश बल इत्यादि को कम नहीं किया वह मध्यम पुरुष कहलाता है ६३ ॥

मू० तद्वीर्य्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः।
निष्पादयति तं प्राज्ञाः प्रवदन्तिनरोत्तमम् ६४ ॥

टी०। और जो पुत्र पिता के यश और पराक्रम के सिवाय अपना यश भी पैदा करके और अधिक बढ़ाता है उसको ज्ञानी लोग उत्तम पुरुष कहते हैं ६४ ॥

मू० यःपित्रासमुपात्तानिधनवीर्य्ययशांसिवै।
न्यूनतानयतिप्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ६५ ॥

टी०। और जो पुत्र पिता के यश और धन व पराक्रमको अपने समय में घटाता है उस को ज्ञानीलोग अधम पुरुष कहते हैं ६५ ॥

मू० तन्मयाब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया।
पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम् ६६ ॥

टी०। ब्राह्मणों की रक्षा तो जिस तरह मैंने किया उसी तरह तूने भी किया पर पाताल में जाकर जो असुरों का नाश तूने किया ६६ ॥

मू० एतदप्यधिकं वत्स तेन त्वं पुरुषोत्तमः।

तद्धन्योऽस्यथवाखत्वमहमेवगुणाधिकम् ९७॥

मो° टी०। ऐ पुत्र ! यह काम तुझसे भी अधिक तूने किया इस लिये तू पुरुषों में उत्तम है और इसी सबब से ऐ बेटे ! तू धन्य है मैं और भी दुनिया में मशहूर हुआ ९७॥

मू० त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यःपुण्यवतामपि।
न स पुत्रकृतांप्रीतिं मन्येप्राप्नोति मानवः ९८॥

टी०। क्योंकि तुझसा गुणों में अधिक पुत्र पाकर पुण्यवान् लोगों में प्रशंसित हूँ और पुत्र करके जो प्रीति यानी सुख हासिल होता है उसको मैं ही खूब जानता हूँ वह आदमी पुत्र से किये हुए स्नेह को नहीं प्राप्त होता है ९८॥

मू० न पुत्रेणातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः।
धिग्जन्म तस्य यः पित्रालोके विज्ञायते नरः ९९॥

टी०। कि जिस का पुत्र बुद्धि, दान व पराक्रम में अधिक नहो और जो आदमी पिता के गुणों से जाहिर हो उसके जन्म को धिक्कार है ९९॥

मू० यः पुत्राल्ख्यातिमभ्येति तस्यजन्म सुजन्मनः।
आत्मना ज्ञायतेधन्यो मध्यः पितृपितामहैः १००॥

टी०। और उसी पिता का जन्म सुजन्म है जो पुत्रके जरीए से दुनिया में नेक नाम मशहूर हो और वह पुत्र धन्य है जो अपने गुणों से जाना जावै और बाप दादे से जाना जावै वह मध्यम है १००॥

मू० मातृपक्षेण मात्रा चाख्यातिमेति नराधमः।
तत्पुत्रधनवीर्य्यैस्त्वं विवर्द्धस्व सुखेन च १०१॥

टी०। और जिस लड़के का नाम माता और नानिहाल के बदौलत जाहिर हुआ उसको धिक्कार है और अधम है इस वास्ते ऐ पुत्र ! तू धन और पुत्र व सुख से हमेशा बढ़े १०१॥

मू० गन्धर्वतनयो चेयं मा त्वया वै वियुज्यताम्।
इति पुत्रो बहुविधं प्रियमुक्तः पुनः पुनः १०२॥

टी०। और इस गन्धर्व की कन्या से तुझको कभी विरह नहो इस तरह की बहुत सी प्यार की बातें बार २ पुत्र से कहकर १०२॥

मू० परिष्वज्य स्वमावासं सभार्य्यः स विसर्ज्जितः।
स तया भार्य्यया सार्द्धं रेमे तत्र पितुः पुरे १०३ ॥

टी०। लड़के को गले से लगाया और उसको स्त्री सहित महल में भेज दिया उसदिन से राजकुमार अपने पिता के नगर में रहकर मदालसा स्त्री सहित सुख भोग करने लगा १०३ ॥

मू० अन्येषु च तथोद्यान वनपर्व्वतसानुषु।
श्वश्रूश्श्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा।
प्रातः प्रातस्ततस्तेन सह रेमे सुमध्यमा १०४ ॥

टी०। और वन और उपवन और पर्व्वतों की चोटी पर जहां चाहता था विहार करता था और वह सुन्दरी व अच्छी कमर वाली मदालसा नित्य प्रातःकाल उठकर अपने सास और ससुर को प्रणाम करके उसके साथ भोग विलास करती थी १०४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीये मदालसा परिणयनम् २१ ॥

अथ बाईसवां अध्याय॥

पुत्रावूचतुः॥

मू० तथा काले बहुतिथे गते राजा पुनः सुतम्।
प्राहगच्छाशु विप्राणां त्राणाय चरमेदिनीम् १ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! बहुत दिनों के बाद फिर एक दिन राजा शत्रुजित् ने अपने बेटे से कहा कि ऐ पुत्र! ब्राह्मणों की रक्षा के वास्ते जल्दी पृथ्वी में जाकर भ्रमण करो १ ॥

मू० अश्वमेनं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने।
अबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैवहि २ ॥

टी०। यानी इस घोड़े पर चढ़कर हमेशा हररोज सुबह के वक्त मुनि लोगों की रक्षा के वास्ते अबाधा ढूँढ़ा करो याने उनकोकोई क्लेशनहोवै २ ॥

मू० दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापयोनयः।

तेभ्यो नस्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ३ ॥

टी०। क्योंकि खराब चालचलन वाले दानव लोग जो पापयोनिसे उत्पन्न हैं बहुत हैं उन लोगों का नाश करो कि जिसमें मुनि लोगों को कोई बाधक न हो ३ ॥

मू० स यथोक्तस्ततः पित्रा तथा चक्रे नृपात्मजः।
परिक्रम्य महीं सर्व्वां ववन्दे चरणौ पितुः ४ ॥

टी०। तब उस राजपुत्र ने उसी समय अपने पिता की आज्ञानुसार सब पृथ्वी भ्रमण करके पिता के सामने जाकर प्रणाम किया ४ ॥

मू० अहन्यहन्यनुप्राप्ते पूर्व्वाह्णे नृपनन्दनः।
ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ५ ॥

टी०। और इसी तरह हररोज वह राजकुमार दो पहर दिन चढ़े तक सम्पूर्ण पृथ्वी घूम आताथा उसके बाद बाकी दिन उस मदालसाकेसाथ खुशी में काटता था ५ ॥

मू० एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुनातटे।
पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ६ ॥

टी०। एक दिन घूमते हुये यमुनाके किनारे जा निकला सो वह क्या देखता है कि उसी पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु नाम जिसने अपने रहने के वास्ते आश्रम बना रक्खा था ६ ॥

मू० मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समास्थितः।
स प्राह राजपुत्रं तं पूर्व्ववैरमनुस्मरन् ७ ॥

टी०। वही मायावी दानव मुनिका रूप धारण करके उस राजकुमार के साथ पहला वैर याद करके बोला ७ ॥

मू० राजपुत्र ब्रवीमि त्वां तत्कुरुष्व यदीच्छसि।
न च ते प्रार्थनाभङ्गः कार्य्यः सत्यप्रतिश्रव ८ ॥

टी०। कि ऐ राजपुत्र! तुम्हारे दिल को अगर पसन्द हो तो जो मैं कहता हूँ वह करो ऐ सत्यप्रतिज्ञावाले! तुमको याचना का भङ्ग न करना चाहिये ८ ॥

मू० यक्ष्ये यज्ञेन धर्म्माय कर्त्तव्याश्च तथेष्टयः।

वितयस्तत्र कर्त्तव्या न च वित्तं विना यतः ९ ॥

टी०। वह यह है कि जिस यज्ञ के करने से धर्म्म प्राप्त होता है वह यज्ञ करने की इच्छा में रखता हूँ और यज्ञ करना चाहिये व उसमें द्रव्य इकट्ठा करना चाहिये लेकिन दक्षिणा के वास्ते मेरे पास धन नहींहै ९॥

मू० अतः प्रयच्छ मे वीर हिरण्यार्थं स्वभूषणम्।
यदेतत्कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाश्रमम् १०॥

टी०। इस वास्ते ऐ वीर! मैं चाहता हूँ कि धन के लिये यह सोनेका जेवर जो तुम्हारे गले में है मुझको दो और उससमय तक तुम यहां रह कर मेरे इस आश्रम की निगाहबानी करो १०॥

मू० यावदन्तर्जले देवं वरुणं यादसांपतिम्।
वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः ११॥

टी०। जब तक मैं पानी के अन्दर जाकर जलों के स्वसी वरुण देवता का वैदिक वारुण मन्त्र से प्रजा की भलाई के वास्ते ११॥

मू० अभिष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीति वादिनम्।
तं प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् १२॥

टी०। जल्दी से आराधन करके आऊंगा यह वचन उसका सुनकर राजकुमार ने बड़ी खुशी से अपने गले का जेवर उतार कर उस दैत्य को जिसे मुनि समझा था हवाले करके प्रणाम किया १२॥

मू० प्राह चैनं भवान् यातु निर्व्यलीकेन चेतसा।
स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः १३॥

टी०। और इससे कहा कि आप निश्चिन्तहृदय होकर जाइये तबतक मैं यहीं आपके इस आश्रम के पास रहूँगा १३॥

मू० तवादेशान् महाभाग यावदागमनं तव।
न तेऽत्र कश्चिद्दाबाधां करिष्यति मयि स्थिते १४॥

टी०। हे महाभाग! आपकी आज्ञानुसार मेरे रहने से जबतक आप आवैंगे इस आश्रम में किसी तरह की बाधा कोई न करेगा १४॥

मू० विश्रब्धश्चात्वरन् ब्रह्मन् कुरुष्व त्वं मनोगतम् १५॥

टी०। ऐ ब्राह्मण! इस बात का विश्वास रखकर जो काम आपके दिलमें करना हो जाकर जल्द कीजिये १५॥

पुत्रावूचतुः॥

मू० एवमुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले।
रराक्ष सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् १६॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! यह बात राजपुत्र से सुनकर तालकेतु तो यमुनाजल में गया और राजपुत्र भी उस मायारचित आश्रम की निगाहबानी में रहा १६॥

मू० गत्वा जलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्परम्।
मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषाञ्चैतदुक्तवान् १७॥

टी०। फिर तो तालकेतु पानी के अन्दर जाकर अपनी माया के ज़ोर से दूसरी तरफ़ उस पानीसे निकलकर राजकुमार के घर जाकर मदालसा व और आदमियों के सामने कहने लगा १७॥

तालकेतुरुवाच॥

मू० वीरः कुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः।
केनापि दुष्टदैत्येन कुर्व्वन् रक्षां तपस्विनाम् १८॥

टी०। तालकेतु बोला कि वह कुवलयाश्व वीर मुनिलोगों की रक्षा के वास्ते मेरे आश्रम के समीप गया था वहां उससे किसी एक दुष्ट राक्षस से १८॥

मू० युद्ध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन् ब्रह्मद्विषो युधि।
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि १९॥

टी०। बड़ी लड़ाई हुई सो उस राक्षस के मारने के वास्ते जहांतक कोशिश करना चाहिये किया पर उस मायारूपी पापी ने इनकी छाती पर एक ऐसा त्रिशूल मारा जो आर पार होगया १९॥

मू० म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम्।
प्रापितश्चाग्निसंयोगं स वने शूद्रतापसैः २०॥

टी०। तब उसने अपने मरने के वक्त अपने गले का यह ज़ेवर मुझे

दे दिया बाद मरने के उसने वन में शूद्र और तपस्वी लोगों से अग्निका संस्कार पाया २० ॥

मू० कृतार्त्तहेषाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः ।
नीतः सोऽश्वश्च तेनैव दानवेन दुरात्मना २१ ॥

टी०। और दुःख से बोलता हुआ आंसुवों समेत आंखोंवाला वह उसका घोड़ा वही दुरात्मा दानव लेगया जिससे युद्ध हुआ था ग़रज़ कि यह सब बातें फ़रेब की बहुत अफ़सोस के साथ बयान किया २१ ॥

मू० एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा ।
यदत्रानन्तरं कृत्यं क्रियतां तदकालिकम् २२ ॥

टी०। फिर कहा कि यह सब हाल मुझ पापीने पत्थरकी छाती करके अपनी आंखों से देखा है अब यहां उसके बाद उनकी जो क्रिया हो वह आप जल्द कीजिये २२ ॥

मू० हृदयाश्वासनं चैतद् गृह्यतां कण्ठभूषणम् ।
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् २३ ॥

टी०। तुम्हारे दिल को समझाने के वास्ते यह कण्ठभूषण मैं लाया हूं इसको लेवो हम तपस्वियों को इसकी क्या ज़रूरत है २३ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० इत्युक्त्वोत्सृज्य तद् भूमौ स जगाम यथागतम् ।
निपपात जनः सोऽथ शोकार्तो मूर्च्छयातुरः २४ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि इतना कहकर वह भूषण ज़मीन पर रखकर जैसे आयाथा वैसे ही चला गया और जो लोग उस जगह मौजूद थे इस ख़बरके सुननेसे शोचसे विकलहो एकबारगी मूर्च्छित होगये २४॥

मू० तत्क्षणात् चेतनां प्राप्य सर्व्वास्ता नृपयोषितः ।
राजपत्न्यश्च राजा च विलेपुरतिदुःखिताः २५ ॥

टी०। फिर कुछ देर के बाद उसवक्त जब वे लोग होश में आये तब राजा और सब रानी और राजा की स्त्रियां भी अतिदुःखी हो रोने पीटने लगीं २५ ॥

मू० मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम्।
तत्याजाशु प्रियान् प्राणाञ्छ्रुत्वा च निहतम्पतिम् २६॥

टी०। और मदालसा अपने स्वामी के मरने की खबर सुन और उसके गले का ज़ेवर पहिचानते ही जल्द मरगई २६॥

मू० ततस्तथा महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत्।
यथैव तस्य नृपतेः स्वगेहे समवर्त्तत २७॥

टी०। मदालसा के मरजाने पर वहां के सब नगरवासियों के घर में मारे रंजके रोना पीटना होने लगा जैसे राजा का अपना घर वैसे ही तमाम शहर रंज से भरा हुआ था २७॥

मू० राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम्।
प्रत्युवाच जनं सर्व्वं विमृश्य स्वस्थमानसः २८॥

टी०। उस वक्त राजा शत्रुजित् उस मदालसा का अपने स्वामी के वियोग से मरण देखकर विचारकर स्वस्थमनहो वाणी कहकर सब आदमियों को समझाने लगा २८॥

मू० न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा।
सर्व्वेषामेव संचिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् २९॥

टी०। कि तुमलोग मत रोवो क्योंकि अपना और तुमलोगों का व सबका सब सम्बन्ध दुनियाका मिथ्याहै यह विचारकर मैं देखताहूं २९॥

मू० किन्नु शोचामि तनयं किन्नु शोचाम्यहं स्नुषाम्।
विमृश्यकृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि ३०॥

टी०। कहो मैं बेटे का अफ़सोस करूं या पतोहू का इसवास्ते विचार कर कृतार्थता से उन दोनोंके धन्यभाग समझना चाहिये ३०॥

मू० मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद् द्विजरक्षणतत्परः।
प्राप्तो स यः सुतो मृत्युं कथं शोच्यःसधीमताम् ३१॥

टी०। क्योंकि मेरी सेवा के साथ मेरी ही आज्ञा के मुताबिक़ ब्राह्मणोंकी रक्षा करने में लगेहुये मेरे जिस पुत्रने मृत्यु पाया तो उसके वास्ते बुद्धिमानों को कैसे शोच करना चाहिये? ३१॥

मू० अवश्यं याति यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि।
मम पुत्रेण संत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ३२॥

टी०। जिसने इस दुनिया में देह धारण कियाहै वह एकदिन अवश्य मरैगा और मेरा पुत्र तो ब्राह्मणों की रक्षा के वास्ते अपना यश दिखला कर समर में मरा है इससे उसने तो अच्छाही किया ३२॥

मू० इयञ्च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्य्येवमनुव्रता।
कथं नु शोच्या नारीणां भर्त्तुरन्यन्न दैवतम् ३३॥

टी। और यह मदालसा उत्तम कुल की पैदा पतिव्रता थी इसके वास्ते भी कुछ शोच न करना चाहिये क्योंकि स्त्री के वास्ते सिर्फ स्वामी देवता है ३३॥

मू० अस्माकं बान्धवानाञ्च तथान्येषां दयावताम्।
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ३४॥

टी०। हमलोगों को व भाइयों और अन्य दयावानों को उसका शोच न करना चाहिये शोच तो उस स्त्री के वास्ते करना चाहिये जो अपने स्वामी से जुदा होगई हो ३४॥

मू० यातु भर्त्तुर्व्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी।
भर्त्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम् ३५॥

टी०। यह तो स्त्री जोकि अपने स्वामी का मरना सुनकर उसी क्षण अपना शरीर त्यागकर अपने स्वामी से जा मिली इससे उसके वास्ते बुद्धिमानों को शोच न करना चाहिये ३५॥

मू० ताः शोच्या या वियोगिन्यो न शोच्या या मृताःसह।
भर्त्त्रा वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ३६॥

टी०। जो स्त्री अपने पति का मरना सुनकर उसके साथ नहीं मरती है उसी के वास्ते शोचहै और जिसने उसके साथ अपना भी शरीर त्याग करदिया उसको तो धन्य मानना चाहिये क्योंकि इस पुण्यवती ने पति का वियोग नहीं भोग किया ३६॥

मू० दातारं सर्व्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः।
लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम् ३७॥

टी० । यहां और परलोक में दोनों जगह स्वामी सब सुख देनेवाला है तो उसको कौनसी स्त्री मनुष्य समझती है ३७ ॥

मू० नासौ शोच्यो न चैवेयं नाहं तज्जननी न च ।
त्यजता ब्राह्मणार्थाय प्राणान् सर्व्वेस्म तारिताः ३८ ॥

टी० । और यह पुत्र व यह स्त्री और मैं व उसकी माता किसी का शोच करना न चाहिये क्योंकि उसने ब्राह्मण की रक्षा के वास्ते अपना शरीर त्याग करके हम सबों को भी तारदिया ३८ ॥

मू० विप्राणां मम धर्म्मस्य गतः स हि महामतिः ।
आनृण्यमर्द्धभुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ३९ ॥

टी० । और वह मुझसे व धर्म्म और ब्राह्मणों से उऋण होगया क्योंकि उस महामतिमान् मेरे पुत्र ने आधे भोगे हुये अपने शरीर को जो हमेशा काल के मुँह में रहता है युद्ध में त्याग करदिया ३९ ॥

मू० मातुः सतीत्वं मद्वंशे वैमल्यं शौर्य्यमात्मनः ।
संग्रामे सन्त्यजन्प्राणान् नात्यजद्द्विजरक्षणम् ४० ॥

टी० । जिसने लड़ाई में अपना प्राणतक दे दिया और ब्राह्मणों की रक्षा व माता का सतीपन व मेरे वंशकी निमलता व अपनी शूरताको न छोड़ा ४० ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्त्तुरनन्तरम् ।
श्रुत्वा पुत्रवधं तादृक् प्राह दृष्ट्वा तु तं पतिम् ४१ ॥

टी० । नागपुत्र कहते हैं कि उसके बाद कुवलयाश्व की माता अपने स्वामी के मुँह से बेटे का वैसा मरना सुनकर राजा की तरफ़ मुतवज्जह होकर कहने लगी कि ४१ ॥

मातोवाच ॥

मू० न मे मात्रा न मे स्वस्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ४२ ॥

टी० । ऐ राजन् ! मेरी माता व मेरी बहिन ने ऐसा आनन्द नहीं पाया

है जिसतरह मुनिलोगों की रक्षा के वास्ते मैंने पुत्र का समर में मरना सुन प्रीति पाया है ४२ ॥

मू० शोचतां बान्धवानां ये निःश्वसन्तोऽतिदुःखिताः ।
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा ४३ ।

टी० । शोचतेहुये भाइयों के बीच में जो अतिदुःखित हो श्वासलेते व रोगसे क्लेशितहोतेहुये मरते हैं उनकी माताको ऐसे पुत्र का पैदाकरना व्यर्थ है ४३ ॥

मू० संग्रामे युद्ध्यमाना येऽभीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः ४४ ॥

टी० । और जो समर में ब्राह्मण या गौ की रक्षा के वास्ते निडरहोकर युद्धकरतेहुये तीक्ष्ण हथियार से कटकर मरें भूमि में वेई मनुष्य हैं ४४॥

मू० अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषाञ्च पराङ्मुखः ।
यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः ४५ ॥

टी० । जो याचकों और दोस्तों व दुशमनों को भी पीठ नहीं देता उसीकी माताको पुत्रवती कहना चाहिये और उसीके पिताको पुत्रवान् ४५

मू० गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा ।
यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः ४६ ॥

टी० । और स्त्रियां जो गर्भ की पीड़ा उठाती हैं वह दुःख उनको तभी सुफल है जब कि पुत्र उनके लड़ाई में विजय पावैं या उसी में अपनी जान देदें ४६ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० ततः स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलम्भयत् ।
निर्गम्य च बहिः स्नातो ददौ पुत्राय चोदकम् ४७ ॥

टी० । नागपुत्र कहते हैं कि बाद खतम होने इनबातों के उस राजा शत्रुजित् ने अपने शहर से बाहर जाकर मदालसा का विधिवत् अग्नि संस्कार किया और स्नान करके बेटे को भी तिलाञ्जलि दिया ४७ ॥

मू० तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् ।

राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ४८ ॥

टी०। और वह तालकेतु राक्षस वहां पहुँच यमुना के पानीसे निकल अधीनता और बड़े प्रेम से राजपुत्र से कहने लगा ४८ ॥

मू० गच्छ भूपालपुत्र त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ।
कार्य्यं चिराभिलषितं त्वय्यत्राविचले स्थिते ४९ ॥

टी०। कि ऐ राजपुत्र! अब तू जा मैं तुझ से कृतार्थ हुआ और तेरे अचल होकर यहां रहने से बहुत दिनों से जो मेरे जी में इच्छा ४९ ॥

मू० वारुणं यज्ञकार्य्यं च जलेशस्य महात्मनः ।
तन्मया साधितं सर्व्वं यन्ममासीदभीप्सितम् ५० ॥

टी०। वारुणमन्त्र से महात्मा वरुण देवता के यज्ञकार्य करने की थी वह अभिलाषा सब मेरी पूरी हुई ५० ॥

मू० प्रणिपत्य स तं प्रायाद्राजपुत्रः पुरं पितुः ।
समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम् ५१ ॥

टी०। ये बातें उसकी सुनकर उस राजपुत्र ने उसको प्रणाम करके और अपने उसी घोड़े पर जिसकी चाल गरुड़ और पवन के समान थी सवार होकर अपने पिता के शहर की तरफ़ चला ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेमदालसावियोगेद्वाविंशोध्यायः २२ ॥

अथ तेईसवां अध्याय ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० स राजपुत्रः सम्प्राप्य वेगादात्मपुरन्ततः ।
पित्रोर्विवन्दिषुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् १ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि वह राजकुमार अपने माता पिता के चरणोंको प्रणाम करने और मदालसा के देखने की इच्छामें जल्दी से अपने नगर में पहुँचा १ ॥

मू० ददर्श जनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखम्पुरः ।

पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनन्ततः २ ॥

टी०। तो वहाँ के लोगोंको देखा कि चिन्तासे मुखमलिन और ऊबेहुये थे पर राजकुमार को देखकर फिर सब तअज्जुब समेत आकारवाले व हर्षित होगये २ ॥

मू० अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनम् ।
परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ३ ॥

टी०। और अन्य लोग प्रसन्न आँखों से देख पड़ते थे और अतिकौतूहल के साथ एक दूसरे से आपसमें मिलते व आनन्दहै २ यह कहतेथे३॥

मू० चिरंजीवोरुकल्याण हतास्ते परिपन्थिनः ।
पित्रोःप्रह्लादयसतस्तथास्माकमकण्टकम् ४ ॥

टी०। और सब कोई राजकुमार को आशीर्वाद देते थे कि हे बहुत कल्याणवाले ! तुम चिरंजीवी हो और तुम्हारे शत्रुका नाशहो और तुम अपने पिताको प्रसन्न करके हम सब को अकण्टक रक्खो ४ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० इत्येवंवादिभिः पौरैः पुरःपृष्ठे च संवृतः ।
तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेश पितुर्गृहम् ५ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि इसीतरह कहतेहुये सम्पूर्ण नगर के रहनेवाले राजकुमार के आगे पीछे बल्कि चारों तरफ़ से घेरे हुये थे और राजकुमार सब को उस वक्त आनन्द देतेहुये अपने पिता के मकानमें गये ५॥

मू० पिता च तं परिष्वज्य माता चान्ये च बान्धवाः ।
चिरञ्जीवेति कल्याणीर्ददुस्तस्मै तदाशिषः ६ ॥

टी०। उसवक्त वहाँ माता और पिता और जो जो भाई बन्धु थे सब किसीने राजकुमार को गलेसे लगाया और उनको यह आशीर्वाद दिया कि तुम चिरंजीव रहो ६ ॥

मू० प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः ।
पप्रच्छ पितरं तात सोऽस्मै सम्यक् तदुक्तवान् ७ ॥

टी०। बाद इसके राजकुमारने पिता को प्रणाम किया और विस्मित होकर उदास होनेका सबब पितासे पूछा कि ऐ पिताजी ! यह क्याहै तब

उनके पिताने मंदालसा के मरजाने का हाल अच्छीतरह से कहा ७॥

मू० स भार्य्यां तां मृतां श्रुत्वा हृदयेष्टां मदालसाम्।
पितरौ च पुरो दृष्ट्वा लज्जाशोकाब्धिमध्यगः ८॥

टी०। राजकुमार मनकी प्यारी अपनी स्त्री मदालसा के (जो हरदम दिलकी नक्शथी) मरने का हाल सुनकर और पिताको सामने देखकर शोच और लाज के समुद्र में डूबगया ८॥

मू० चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम्।
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ् मां निष्ठुरमानसम् ९॥

टी०। और दिलमें अफ़सोस करके कहनेलगा कि वह मदालसा प्यारी तो मेरा मरना सुनतेही मरगई मुझ को धिक्कार है मेरा मन निठुरहै ९॥

मू० नृशंसोऽहमनार्य्योऽहं विना तां मृगलोचनाम्।
मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः १०॥

टी०। और मैं क्रूर और अधम हूँ कि वह मृगलोचनी मेरे वास्ते मरजाय और मैं जीता रहा इससे मैं बड़ा निर्दयीहूं १०॥

मू० पुनः स चिन्तयामास परिसंस्तभ्य मानसम्।
मोहोद्गमपास्याशु निःश्वस्योच्छ्वस्य चातुरः ११॥

टी०। इसीतरह कभी फिर उसके विरह में मनको रोंककर अपनेको धैर्य्य देता और कभी उसके शोच में लम्बी २ सांसें लेलेकर व्याकुल होकर चिन्तन करता था ११॥

मू० सा मृता मन्निमित्तञ्च त्यजामि यदि जीवितम्।
किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् १२॥

टी०। वह मेरे वास्ते मरगई है अगर मैं भी उसके वास्ते मरजाऊं तो इससे मदालसा का कुछ उपकार न होगा और यह स्त्रियों को प्रशंसित है १२॥

मू० यदि रोदिमि वा दीनो हा प्रियेतिवदन्मुहुः।
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल १३॥

टी०। और बार बार हाय प्रिये की आवाज़ के साथ जो दीन होकर

विलाप करूं तौ इसमें भी मेरी बड़ाई नहीं है क्योंकि मैं मर्द हूं १३॥

मू० अथ शोकजडो दीनो स्रजाहीनो मलान्वितः।
विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम् १४॥

टी०। और जो इस समय दीन और मालाविहीन और कान्तिमलिन होरहूँ और शोच से विक्षिप्त होजाऊँ तो शत्रुओं से पराभव होऊँगा १४॥

मू० मयारिशातनं कार्य्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः।
जीवितं तस्य चायत्तं सन्त्याज्यं तत्कथं मया १५॥

टी०। और मुझको अपने शत्रुओं को नाश करना और राजा जो मेरे पिता हैं उनकी सेवा करना चाहिये और जो उनके अधीन है तो फिर उनके जीते जी किस तरह उन प्राणों को मुझे छोड़ना चाहिये १५॥

मू० किन्त्वत्र मन्ये कर्त्तव्यस्त्यागो भोगस्य योषितः।
स चापि नोपकाराय तन्वङ्ग्याः किन्तु सर्व्वथा १६॥

टी०। और जो इस समय से दूसरी स्त्री के साथ भोग करना हमेशा के वास्ते त्यागदूँ तो इससे भी मदालसा का कुछ उपकार न होगा १६॥

मू० मया नृशंस्यं कर्त्तव्यं नोपकार्य्यपकारि च।
या मदर्थेऽत्यजत् प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम १७॥

टी०। बल्कि मुझको क्रूरताही करना होगा व उपकारी न होकर अपकारी हूँ क्योंकि जिसने मेरे वास्ते अपना शरीर त्याग दिया है उसके वास्ते यह भी प्रण मेरा लघुहै १७॥

पुत्रावूचतुः॥

मू० इति कृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम्।
क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः १८॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! राजकुमारने यही बात अपने मनसें निश्चयकरके स्नान किया और मदालसा के नामसे तिलांजली दिया व अन्यकर्म करके ऋतध्वज बोला १८॥

ऋतध्वजउवाच॥

मू० यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्भार्य्या मदालसा।

अस्मिञ्जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी १९ ॥

टी०। ऋतध्वज बोले जब कि वह मेरी स्त्री मदालसा नाज़ुकबदन इस जन्म भरके वास्ते मेरे साथ न हुई इसलिये और मेरी स्त्री मेरे मनके मुताबिक़ न होगी १९ ॥

मू० तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्व्वतनयामहम्।
न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम् २० ॥

टी०। और उस मृगनयनी गन्धर्व्वकन्या के विना किसी दूसरी स्त्री से भोग न करूँगा यह बात मैं सत्य कहता हूँ २० ॥

मू० सद्धर्मचारिणीं पत्नीं तामुक्त्वा गजगामिनीम्।
काञ्चिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत् सत्यं मयोदितम् २१ ॥

टी०। फिर सत्य करके कहताहूँ कि उस समीचीन धर्म्म के मुताबिक़ चलनेवाली स्त्री गजगामिनी मदालसा के सिवाय किसी सुन्दरीको ग्रहण न करूँगा २१ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० परित्यज्य च स्त्रीभोगांस्तातसर्व्वांस्तया विना।
क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा २२ ॥

टी०। नागपुत्र कहते हैं कि ऐ पिता! राजकुमारने मदालसाके विरहमें स्त्री आदि सब भोग छोड़कर और हमजोलियों के साथ क्रीडा सब छोड़ दिया २२ ॥

मू० एतत्तस्य परं कार्य्यं तात तत् केन शक्यते।
कर्त्तुमत्यर्थदुष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः २३ ॥

टी०। ऐ तात! यही उनका उत्तम काम है इसको कौन करसक्ता है विना परमेश्वर के दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो करसकै २३ ॥

जड उवाच ॥

मू० इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा विमर्शमगमत्पिता।
विमृश्य चाह तौ पुत्रौ नागराट् प्रहसन्निव २४ ॥

टी०। जड सुमति कहते हैं कि पिता नागराज अपने पुत्रों से यह कथा

सुन कर विचार में प्राप्त हो विचारकर हँसतेहुये अपने लड़कों से कहने लगे २४॥

नागराडश्वतरउवाच॥

मू० यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः।
कर्म्मण्युद्यमनुद्योगहान्याहानिस्ततः परम् २५॥

टी०। नागराज अश्वतर बोले कि जो लोग कहतेहैं कि यह काम बहुत कठिन है मुझसे न हो सकैगा यह जानकर मनुष्य कर्म नहीं करते हैं तो उनके कर्म्म का उद्योग दिन दिन घटता है २५॥

मू० आरम्भेत नरः कर्म्म स्वपौरुषमहापयन्।
निष्पत्तिः कर्म्मणो दैवे पौरुष्ये च व्यवस्थिता २६॥

टी०। और अपने पौरुषको न छोड़कर मनुष्यको कर्म्म का आरम्भ करना चाहिये क्योंकि कर्मकी सिद्धि भाग्य व पौरुष दोनों में टिकी है २६॥

मू० तस्मादहं तथा यत्नं करिष्ये पुत्रकावितः।
तपश्चर्य्यां समास्थाय यथैतत् साध्यतेचिरात् २७॥

टी०। इसवास्ते ऐ लड़को! मैं तपमें स्थित हो वैसी यत्न करूँगा जिस सें यह कार्य्य जल्द सिद्ध हो २७॥

जडउवाच॥

मू० एवमुक्त्वा स नागेन्द्रः प्लक्षावतरणं गिरेः।
तीर्थं हिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुस्तरम् २८॥

टी०। सुमति कहते हैं कि नागराज यह बात कहकर हिमालय पहाड़ के किनारे प्लक्षावतरण तीर्थ में जाकर कठिन तपस्या करने लगे २८॥

मू० तुष्टाव गीर्भिश्च ततस्तत्र देवीं सरस्वतीम्।
तन्मना नियताहारो भूत्वा त्रिषवणाप्लुतः २९॥

टी०। और वहाँ सरस्वती देवी की स्तुति वाणी करके करने लगे और उनके चरण में जी लगाकर तीनवार स्नानकर भोजन इत्यादि बड़े नेम से करने लगे २९॥

अश्वतर उवाच ॥

मू० जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुश्शुभाम्।
स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम् ३० ॥

टी०। अश्वतर बोले कि जगत् की माता जो उत्तम देवी हैं उन का मैं आराधन करताहूं और उस ब्रह्मयोनि सरस्वती को मैं शिरसे नमस्कार करके स्तुति करता हूं ३० ॥

मू० सदसद्देवि यत्किञ्चिन्मोक्षवच्चार्थवत्पदम्।
तत्सर्व्वं त्वय्यसंयोगंयोगवद्देवि संस्थितम् ३१ ॥

टी०। और ऐ देवी! सत् और असत् और अर्थ और मोक्ष और योग युक्त है जो कुछ है सब आपही के वशमें है व अलग है ३१ ॥

मू० त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं देवि संस्थितं परमाणुवत् ३२ ॥

टी०। और ऐ देवि! परम अक्षर आपही हैं कि जिसमें सबजीव स्थित हैं और उसी परम अक्षर में संसार परमाणुवत् संस्थित है ३२ ॥

मू० अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत्क्षरात्मकम्।
दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ३३ ॥

टी०। और अक्षर यानी परब्रह्म और क्षर यानी यह संसार इन सबमें आपही स्थित है जिस तरह काठमें अग्नि और पृथ्वीमें धूलि स्थितहै ३३॥

मू० तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः।
ॐकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि स्थिरास्थिरम् ३४ ॥

टी०। और उसी तरह यह सब संसार और वह परब्रह्म दोनों आप में स्थितहैं और ॐकारका जोस्थान चराचरहै सो आपहीमें स्थितहै ३४॥

मू० तत्र मात्रात्रयं सर्व्वमस्ति यद्देवि नास्ति च।
त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ३५ ॥

टी०। और उस ॐकार में तीनमात्रा व अस्ति नास्ति (परब्रह्म) और तीन लोक और तीन विद्या और तीन वेद और तीन अग्नि सब ३५ ॥

मू० त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयोधर्म्मादयस्तथा।

त्रयोगुणास्त्रयोदोषास्त्रयो वेदास्तथाश्रमाः ३६ ॥

टी०। और तीन ज्योति याने चन्द्रमा सूर्य अग्नि और वर्ग आर तीनों धर्मआदि और तीनों गुण व तीनों दोष याने वातादिक और तीन वेद और आश्रम ३६ ॥

मू० त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः।
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ३७ ॥

टी०। और हे सरस्वति, देवि! तीनकाल और तीन अवस्था जाग्रत् आदि और पितर और दिन और रात और सन्ध्या व ॐकार यह सब आपही का रूपहै ३७ ॥

मू० विभिन्नदर्शना चाद्या ब्रह्मणो हि सनातना।
सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्चसप्तयाः ३८ ॥

टी०। और वेदके भिन्न दर्शी जो जीव हैं उनके वास्ते आप ब्रह्मकी आद्याशक्ति और सनातन हैं और चन्द्रमा हविष्य व पावक में सात अग्निकी जिह्वायें हैं ३८ ॥

मू० तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः।
अनिर्देश्यं तथाचान्यदर्द्धमात्रान्वितं परम् ३९ ॥

टी०। और ऐ देवी! ब्रह्मवादी लोग तुम्हारे उच्चारणसे वह सब करते हैं याने वह सब आपही के सबब से हैं और आप अनिर्देश्यहैं याने जिसे कोई नहीं बतलासक्ता वह और अर्द्धमात्रासंयुत पर याने प्रणव ३९ ॥

मू० अविकार्य्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्।
तवैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितम् ४० ॥

टी०। जोकि अविकारी और अक्षय और प्रकाशरूप और परिणाम रहितहै यह सब आपही का परमरूप है जिसके वर्णन की मुझे सामर्थ्य नहीं है ४० ॥

मू० न चास्ये न च तज्जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते।
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्राकौं ज्योतिरेव च ४१ ॥

टी०। क्योंकि वह मुखसे व जीभ, तालु और ओष्ठादिकों से नहीं

६॥ कहाजाता और इन्द्र और आठों वसु और ब्रह्मा और चन्द्रमा और सूर्य व नक्षत्रादि ४१ ॥
आरतीने वे

मू० विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम्।
सांख्यवेदान्तवेदोक्तबहुशाखास्थिरी कृतम् ४२ ॥

टी०। और यह संसार आप में रहता है और आप विश्वरूप हैं और विश्व के मालिक और परमेश्वर हैं और सांख्य और वेदान्त और वेदों की कही बहुत शाखा भी यही निश्चय करती हैं ४२ ॥

मू० अनादिमध्यनिधनं सदसन्नसदेवयत्।
एकन्त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम् ४३ ॥

टी०। आप अनादिहैं और जन्म और मरणसे रहितहैं और सत् असत् पदार्थों से रहित हैं और सत् हैं और आप एक और अनेक व न एक और संसार के छलसे रहित हैं ४३ ॥

मू० अनाख्यं षड्गुणाख्यं च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम्।
नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम् ४४ ॥

टी०। और आप अनाम हैं और छःहगुणों से संयुक्त हैं और चारों वर्ग धर्मादिक और तीनों गुण सब आप के वश में हैं बल्कि और और जो शक्तियां हैं वह सब आपही से उत्पन्न हैं ४४ ॥

मू० सुखासुखं महासौख्यरूपं त्वयि विभाव्यते।
एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्॥
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ४५ ॥

टी०। और ऐ देवि! सुख और दुःख और महासुखकारूप आपही में जाना जाता है व कलाओं समेत व विना कलाओं के जो है वह तुम में व्याप्त है और जो ब्रह्म अद्वैत में स्थितहै और जो द्वैत में टिका है ४५ ॥

मू०येर्थानित्यायेविनश्यन्तिचान्येयेवास्थूलायेचसूक्ष्मातिसूक्ष्माः
येवाभूमौयेन्तरिक्षेन्यतोवातेषांतेषांत्वत्तएवोपलब्धिः ४६ ॥

टी०। और जो अर्थ नित्य और जो अनित्य और जो स्थूल और सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म हैं और पृथ्वी और आकाश व अन्यत्र जो कुछ देखा जाता है वह सब आपही में है ४६ ॥

मू० यच्चामूर्त्तं यच्च मूर्त्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित्।
यद्दिव्यस्तिक्ष्मातले खेन्यतोवात्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ४७॥

टी०। और जो सब मूर्त्त जो अमूर्त्त पवनादि सम्पूर्ण भूतों में एक और अनेक और आकाश और पाताल और पृथ्वी जो स्वर्ग में है और स्वर और व्यञ्जन इत्यादि आप के सम्बन्धी हैं ४७॥

जडउवाच॥

मू० एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती।
प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः ४८॥

टी०। जडरूप सुमति कहते हैं कि ऐ पिता! उसवक्त इसतरह पर जब देवी की स्तुति की तब विष्णुजिह्वा जो सरस्वती है वह अश्वतर नागराज महात्मा से बोली ४८॥

सरस्वत्युवाच॥

मू० वरन्ते कम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप।
तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते ४९॥

टी०। कि ऐ कम्बल के भाई नागराज! जो इच्छा मनमें तुम्हारी हो वह वरदान मांगो मैं इस समय उसको तुम्हें दूंगी ४९॥

अश्वतरउवाच॥

मू० सहायं देहि देवि त्वं पूर्वं कम्बलमेव मे।
समस्तस्वरसम्बन्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च ५०॥

टी०। तब नागराज हाथ जोड़कर कहने लगे कि ऐ देवी! आप मेरी सहायता में कम्बलही को दीजिये व दोनों को सब सातों स्वरों को सम्बन्ध मुझको दीजिये ५०॥

सरस्वत्युवाच॥

मू० सप्तस्वरा ग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम।
गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः ५१॥

टी०। तब सरस्वती बोली कि ऐ नागराज! सात स्वर और ग्राम समेत सातराग और सातों गीत और उतनीही सातों मूर्च्छना ५१॥

मू० तालञ्चैकोनपञ्चाशत्तथाग्रामत्रयं च यत्।
एतत्सर्वं भवाञ् ज्ञाता कम्बलश्च तथानघ ५२॥

टी०। और उनचास ताल और तीनग्राम यह सब तुम्हारा भाई कम्बल व वैसाही तुम भी जानोगे ५२॥

मू० ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्रापरन्तथा।
चतुर्विधपदं तालं त्रिप्रकारं लयत्रयम् ५३॥

टी०। बल्कि ऐ नागराज! मेरी कृपा से अन्य चारतरह का पद और तीन तरह की ताल और तीन तरह की लय जानोगे ५३॥

मू० यतित्रयं तथातोद्यं मया दत्तं चतुर्विधम्।
एतद्भवान्मत्प्रसादात् पन्नगेन्द्रापरञ्च यत् ५४॥

टी०। हे पन्नगेन्द्र! और तीन तरह यति तथा तोद्य यानी (चारों तरह का बाजा) और मुझसे दियागया जो अपर चारों तरह का उसे मेरे प्रसाद से आप जानोगे ५४॥

मू० अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम्।
तदशेषं मया दत्तं भवतः कम्बलस्य च ५५॥

टी०। इसके अन्तरमेंप्रास और स्वर व्यञ्जन का विस्तार जो है उसे मैंने तेरेभाई कम्बल को दिया है और वह सब तुझकोभी प्राप्तहोगा५५॥

मू० तथा नान्यस्य भूर्लोके पाताले चापि पन्नग।
प्रणेतारौ भवन्तौ च सर्वस्यास्य भविष्यतः॥
पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ५६॥

टी०। और ऐ नाग! इस सब गान विद्या के जाननेवाले जिसतरह कि तुम दोनों भाई होगे वैसा भूर्लोक और नागलोक और स्वर्गलोक और पाताललोक में दूसरा कोई न होगा ५६॥

जडउवाच॥

मू० इत्युक्त्वा सा तदा देवी सर्व्वजिह्वा सरस्वती।
जगामादर्शनं सद्यो नागस्य कमलेक्षणा ५७॥

टी०। जडरूप सुमति कहतेहैं कि ऐ पिता! सबकी जिह्वारूप सरस्वती

देवी तो यह वरदान देकर उसी क्षण नागराज के सामने से अन्तर्द्धान होगई जिसकी आँखें कमल के समान थीं ५७॥

मू० तयोश्च तद्यथा वृत्तं भ्रात्रोः सर्व्वमजायत।
विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम् ५८॥

टी०। और वे नागराज दोनों भाई पद ताल स्वरादि जानने व गान की विधि में सबसे श्रेष्ठहुये ५८॥

मू० ततः कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम्।
गीतकैः सप्तभिर्नागो तन्त्रीलयसमन्वितम् ५९॥

टी०। बाद इसके दोनों भाई कैलासपर्व्वत पर टिकेहुये शिवजी को तन्त्री व लयसे संयुत अपना गान सुनानेलगे ५६॥

मू० आरिराधयिषु देवमनङ्गाङ्गहरंहरम्।
प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ ६०॥

टी०। और वह जो कामके नाश करनेवाले महादेवजी हैं उनका आराधन करनेवाले व उत्तमवाणी के शब्दवाले वे दोनों भाइयों उत्तम यत्न करना शुरूआकिया ६०॥

मू० प्रातर्निशायां मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि तत्परौ।
तयोः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः ६१॥

टी०।और सायंकाल और प्रातःकाल और मध्याह्नकालमें तत्परवाद होकर तरह तरहकी स्तुति,महादेवजी की करनेलगे व बहुत दिनोंकेबाद ६१

मू० तुतोष गीतकैस्तौ च प्राहेशो गृह्यतां वरः।
ततःप्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा ६२॥

टी०। तब शिव भगवान् ने उनके पूजन और गीत और स्तुति से प्रसन्न हो प्रकट होकर कहा कि तुम मुझसे वरदान माँगो तब उन्होंने साथही प्रणाम किया ६२॥

मू० विज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम्।
यदि नौ भगवान् प्रीतो देवदेवस्त्रिलोचनः ६३॥

टी०। और पार्वती के पति नीलकण्ठ महादेवजी से कहा कि ऐ देव-

तोंके देव ! पे त्रिलोचन ! मुझ दोनों भाइयों के ऊपर जो आप प्रसन्न हैं ६३ ॥

मू० ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ।
मृताकुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा ६४ ॥

टी०। तो जो इच्छा हमलोगोंकीहै वह पूरीकर दीजिये और वह इच्छा यह है कि कुवलयाश्व की मदालसा स्त्री मरगई है ६४ ॥

मू० तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे।
जातिस्मरा यथा पूर्वं तद्वत्कान्तिसमन्विता ॥
योगिनी योगमाता च मद्गेहे जायतां भव ६५ ॥

टी०। हे शिवजी! सुन्दरी योगिनी योगमाता जिस रूप और उमर में मरगई है उसी रूप और उमर से जैसी कि पहले थी मेरी लड़की होकर मेरेघर पैदाहोवे व जाति का स्मरण होवे ६५ ॥

महादेवउवाच ॥

मू० यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्व्वमेतद्भविष्यति।
मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम ६६ ॥

टी०। तब महादेवजी बोले कि ऐ नागराज! तुमने जो वर मांगा यह सब निस्सन्देह होजायगा और ऐ भुजङ्गम! मैं जो कहता हूं इसको सुनो ६६ ॥

मू० श्राद्धे तु समनुप्राप्ते मध्यमं पिण्डमात्मना।
भक्षयेथाः फणिश्रेष्ठ शुचिः प्रयतमानसः ६७ ॥

टी०। कि ऐ नागराज! जब तुम श्राद्ध करना तब उस श्राद्ध में मध्यम जो पिण्ड है उसको प्रसन्न और पवित्र मन से भोजन करलेना ६७ ॥

मू० भक्षिते तु ततस्तस्मिन् भवतो मध्यमात्फणात्।
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथा रूपा यथा मृता ६८ ॥

टी०। जब तुम मध्यम पिण्ड भोजन करोगे तब तुम्हारे मध्यम फण से वह सुन्दरी जिस अवस्था और रूप में मरगई है उसी रूप से प्रकट होगी ६८ ॥

मू० कामञ्चैममभिध्याय कुरु त्वं पितृतर्प्पणम्।

तत् क्षणादेव सा सुभ्रूः श्वसतो मध्यमात्फणात् ६९ ॥

टी०। अथवा इस कामना को विचारकर पितृ तर्पण करो तो उसी समय वह सुन्दरी तुम्हारे मध्यम फण के श्वास लेने के साथही ६९ ॥

मू० समुत्पत्स्यति कल्याणी तथा रूपा यथा मृता।
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम् ७० ॥

टी०। वह सुन्दरी जैसा रूप पहिले उसका था उसी रूप से उत्पन्न होगी वह बात महादेवजी से सुनकर उसके बाद नागराज दोनों भाई प्रसन्नहो महादेवजी को प्रणामकर ७० ॥

मू० रसातलं पुनः प्राप्तौ परितोषसमन्वितौ।
तथा च कृतवान् श्राद्धं स नागः कम्बलानुजः ७१ ॥

टी०। आनन्दपूर्व्वक फिर रसातल को चले आये और उस मतलब के हासिल होने के वास्ते कम्बल के छोटे भाई अश्वतर नाग ने श्राद्ध किया ७१ ॥

मू० पिण्डं च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान्।
तञ्चापि ध्यायतः कामं ततः सा तनुमध्यमा ७२ ॥

टी०। और जिस तरह शिवजी ने कहा था उसी तरह अपनी इच्छा के ध्यान के साथ पिण्ड भोजन किया तब उसी समय वह कल्याणी ७२ ॥

मू० जज्ञे निश्वसतः सद्यस्तद्रूपा मध्यमात्फणात्।
न चापि कथयामास कस्यचित् स भुजङ्गमः ७३ ॥

टी०। नागराज के मध्यम फण से श्वास के साथ जिस रूप से पहिले थी उसी रूप से प्रकट होगई इस बात को उस नागराज ने किसी से जाहिर न किया ७३ ॥

मू० अन्तर्गृहे तां सुदतीं स्त्रीभिर्गुप्तामधारयत्।
तौ चानुदिनमागम्य पुत्रौ नागपतेः सुखम् ७४ ॥

टी०। और उस सुन्दरी को अपने अन्तर्गृह में स्त्रियों के साथ गुप्त रक्खा और उनके दोनों पुत्र हररोज सुखसंयुक्त यहां आकर ७४ ॥

मू० ऋतध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव।

एकदा तु सुतौ प्राह नागराजो मुदान्वितः ७५ ॥

टी०। ऋतध्वज के साथ देवतों की तरह खेल क्रीडा किया करते थे और फिर अपने घर चले आते एक दिन नागराज प्रसन्न होकर अपने लड़कों से कहने लगे ७५ ॥

मू० यन्मया पूर्वमुक्तं तु क्रियते किं न तत्तथा।
स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममान्तिकम् ७६ ॥

टी०। कि तुमलोगों से जो बात मैंने पहिले कही थी वह क्यों नहीं करते यानी उस राजपुत्रको जो तुम लोगों के उपकारी हैं मेरे पास ७६ ॥

मू० कस्मान्नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः।
एवमुक्तौ ततस्तेन पित्रा स्नेहवता तु तौ ७७ ॥

टी०। ऐ लड़को! ऐसे मानद को उपकार के लिये क्यों नहीं लाते यह सुनकर वे दोनों स्नेहवान् अपने पिता की आज्ञानुसार आनन्द से ७७ ॥

मू० गत्वा तस्य पुरे सख्यु रेमाते तेन धीमता।
ततः कुवलयाश्वं तौ कृत्वा किञ्चित्कथान्तरम् ७८ ॥

टी०। अपने मित्रके नगरमें गये और उनके साथ खेल कूद किया फिर कुछ वार्त्ता विलास करके कुवलयाश्व से ७८ ॥

मू० अब्रूतां प्रणयोपेतं स्वगेहगमनं प्रति।
तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् ७९ ॥

टी०। हाथ जोड़कर बहुत विनती से अपने घर ले आने के वास्ते बड़ी अभिलाषा से प्रार्थना किया तब इस राजकुमार ने कहा कि यह भी घर तुम्हारा है ७९ ॥

मू० धनवाहनवस्त्राणि यन्मदीयं तदेव वाम्।
यत्तुवांवाञ्छितं दातुं धनरत्नमथापि वा ८० ॥

टी०। धन और वाहन और वस्त्र इत्यादि जो कुछ मेरे घरमें है वह सब तुम्हारा ही है आप लोगों को जो धन और रत्न इत्यादि देने की इच्छा है ८० ॥

मू० तद्दीयतां द्विजसुतौ यदि वां प्रणयो मयि।

एतावताहं दैवेन वञ्चितोऽस्मि दुरात्मना ८१ ॥

टी०। हे नागपुत्रो! तो कुछ डर नहीं क्योंकि जो आप लोगोंका प्रेम मुझपर ऐसाही है तो दीजिये पर मेरा इतनाही भाग्य बुरा है ८१ ॥

मू० यद्भवद्भ्यां ममत्वं नो मदीये क्रियते गृहे।
यदि वां मत्प्रियं कार्य्यमनुग्राह्योऽस्मि वां यदि ८२ ॥

टी०। जोकि आप लोगों ने मेरे घरको अपना नहीं समझा जो आप लोगोंकी मुझपर अनुग्रहहै व यदि तुम लोगोंको मेरा प्रिय करनाहै ८२ ॥

मू० तद्धने मम गेहे च ममत्वमनुकल्प्यताम्।
युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वकम् ८३ ॥

टी०। तो मेरे घर और धन को अपना ही जानिये आपका जो धन है वह मेरा है और मेरा धन आपका है ८३ ॥

मू० एतत् सत्यं विजानीतं युवां प्राणबहिश्चरौ।
पुनर्नैवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ ८४ ॥

टी०। और ऐ नागेश्वरलोगो! यह सच जानो कि तुम दोनों मेरे प्राण हो अब फिर ऐसा भिन्न अर्थ मत कहो ८४ ॥

मू० मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शायितौ हृदयेन मे।
ततः स्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ ८५ ॥

टी०। तुम दोनों मेरे मित्र हो और तुम्हारे प्रेम से मैं बहुत प्रसन्न रहताहूं और तुम मेरे हृदय में रहते हो यह बात सुनकर नागपुत्रलोग बहुत खुश होगये ८५ ॥

मू० ऊचतुर्नृपतेः पुत्रं किञ्चित्प्रणयकोपितौ।
ऋतध्वज न सन्देहो यथैवाह भवानिदम् ८६ ॥

टी०। परन्तु राजपुत्र के साथ किञ्चित् प्रेम समेत रोष युक्त विनयके साथ कहने लगे कि ऐ ऋतध्वज! इसमें सन्देह नहीं जैसाकि यह तुमने कहा ८६ ॥

मू० तथैव चास्मन्मनसि नात्रचिन्त्यमतोऽन्यथा।
किन्त्वावयोः स्वयं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना ८७ ॥

टी०। और यही बात मेरे दिलमें भी है कोई दूसरी चिन्ता नहीं पर हमलोगों के जो पिताहैं उन महात्मा की आज्ञानुसार हमने कहा ८७॥

मू० द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः।
ततः कुवलयाश्वो सौ समुत्थाय वरासनात्॥
यथाह तातेतिवदन् प्रणाममकरोद्भुवि ८८॥

टी०। वारंवार उन्होंने आपके देखने की इच्छा मुझसे जाहिरकी है इस बात के सुनतेही कुवलयाश्व सिंहासनसे उठकर हे तात! ऐसा कह कर माथा पृथ्वीमें झुकाकर प्रणाम किया ८८॥

कुलयाश्वउवाच॥

मू० धन्योऽहमतिपुण्योहं कोऽन्योस्ति सदृशो मया।
यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ८९॥

टी० और कुवलयाश्व ने कहा कि मैं धन्यहूं व बड़ा पुण्यवान्हूं मेरे समान दूसरा पुण्यवान् इस संसार में न होगा क्योंकि पिता मुझे देखने की इच्छा रखते हैं ८९॥

मू० तद्भुत्तिष्ठत गच्छामस्तातस्याज्ञां क्षणमप्यहम्।
नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ९०॥

टी०। पर आप लोग भी मेरे साथ चलिये मैं पैदल आप लोगों के साथ चलताहूँ उनकी आज्ञा को मैं किसीतरह क्षणभर नहीं नांघ सक्ता यह उस के पांवों की सौगन्ध खाताहूं ९०॥

जड उवाच॥

मू० एवमुक्त्वा ययौ सोऽथ सह ताभ्यां नृपात्मजः।
प्राप्तश्च गोमतीं पुण्यां निर्गम्य नगराद्बहिः ९१॥

टी०। सुमति कहते हैं कि इतना कहकर राजकुमार नागपुत्रों के साथ यात्राकर नगर से बाहर गोमती के किनारे गया ९१॥

मू० तन्मध्ये च ययुस्ते वै नागेन्द्रनृपनन्दनाः।
मेने च राजपुत्रोसौ पारे तस्यास्तथोगृहम् ९२॥

टी०। उसी के बीचमें नागराज व राजकुमार गये व इस राजकुमार ने उसके पार उनका घर जाना ९२॥

मू० ततश्चाकृष्य पातालम् ताभ्यां नीतो नृपात्मजः।
पाताले ददृशे चोभौ स पन्नगकुमारकौ ९३॥

टी०। फिर दोनों भाई राजकुमार की भुजा पकड़ेहुये पातालको लेगये वहां पर राजकुमारने नागकुमारों को देखा ९३॥

मू० फणामणिकृतोद्द्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ।
विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः ९४॥

टी०। कि उनके फणों के ऊपर जवाहिरात की ज्योति प्रकाशित है और उन दोनों के नागजातीय लक्षण जाहिर हैं सुन्दर रूपवाले नागकुमारों को देखकर राजकुमार की आंखें आश्चर्य से प्रसन्न होगईं ९४॥

मू० विहस्य चाब्रवीत्प्रेम्णा साधु भो द्विजसत्तमौ।
कथयामासतुस्तौ च पितरं पन्नगेश्वरम् ९५॥

टी०। और हँसकर प्रीतिपूर्वक नागकुमारों से कहा कि हे नागोत्तमो! यह सब तरह से मुझे भला मालूम होता है फिर नागकुमारों ने अपने पिता नागराज से जाकर कहा कि कुवलयाश्व को हम ले आये ९५॥

मू० शान्तमश्वतरं नाम माननीयं दिवौकसाम्।
रमणीयं ततोऽपश्यत् पातालं स नृपात्मजः ९६॥

टी०। और वहां राजकुमार ने अश्वतरनामक दूसरे नागराज को देखा कि सर्प्प स्वरूप व शान्त और देवताओं से प्रतिष्ठित हैं और उस पातालको देखा कि बहुतही शोभायमान है ९६॥

मू० कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम्।
तथैव नागकन्याभिः क्रीडन्तीभिरितस्ततः ९७॥

टी०। और लड़के और बूढ़े और जवान नागलोगों से शोभित हैं और उसीतरह जहां तहां नागकन्या सब वहां क्रीड़ा कररही हैं ९७॥

मू० चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा।
गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वनानुगैः ९८॥

टी०। जो कि सुन्दर सुन्दर कुण्डल और भूषण रत्नों को पहिने हुये हैं मानो गगन में तारे शोभा देरहे हैं और कहीं गीत और वेणु वीणा के शब्द होरहे हैं ९८॥

मू० मृदङ्गपणवास्तोद्यं हारिवेश्मशताकुलम्।
वीक्ष्यमाणः स पातालंययौ शत्रुजितः सुतः ९९॥

टी०। और मृदंग और पणव व चार तरहके बाजोंकी आवाज व सैकड़ों सुन्दर मकान वहां हैं ग़रज़ कि इसतरह का शोभायमान जो पाताल है उस को देखते हुये राजकुमार नागकुमारों के साथ चले जाते थे ९९॥

मू० सह ताभ्यामभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरिंदमः।
ततःप्रविश्यते सर्व्वे नागराजनिवेशनम् १००॥

टी०। यहां तक कि शत्रुवों के नाश करनेवाले राजकुमार अपने मित्र नागकुमारों के साथ नागराजके मकान में गये उसके बाद उन सबों ने नागराज के घर में पैठकर १००॥

मू० ददृशुस्ते महात्मानमुरगाधिपते स्थितम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम् १०१॥

टी०। और उन्हों ने देखा कि दिव्य माला और वस्त्र और कुण्डल इत्यादि भूषण जवाहिरात के पहिने हुये नागराज बैठे हुये हैं १०१॥

मू० स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम्।
केयूरिणं महाभागमासने सर्व्वकाञ्चने १०२॥

टी०। जैसे सफ़ेद मोती लता में सुन्दर होता है उसीतरह महाभाग्यवान् नागराजके गले में हार शोभायमान और बजुल्ला पहिने आप सोने के सिंहासन पर विराजमान हैं १०२॥

मू० मणिविद्रुमवैदूर्य्यजालान्तरितरूपके।
स ताभ्यां दर्शितस्तस्य तातोस्माकमसावित्ति १०३॥

टी०। और उस सिंहासन में लाल और मूँगा और वैदूर्य्य जड़ाहुआ था उस वक्त नागकुमारों ने राजकुमार को दिखाया कि हमारे पिता यही हैं १०३॥

मू० वीरः कुवलयाश्वोऽयं पित्रे चासौ निवेदितः।
ततो ननाम चरणौ नागेन्द्रस्य ऋतध्वजः १०४॥

टी०। और अपने पिता से भी कह दिया कि यही वीर राजकुमार हैं तब ऋतध्वज ने बड़े अदब से भुककर नागराजको प्रणाम किया १०४॥

मू० तमुत्थाप्य बलाद्गाढं नागेन्द्रः परिषस्वजे।
मूर्ध्निचैनमुपाघ्राय चिरञ्जीवेत्युवाच सः १०५॥

टी०। तब नागराज ने बल से उठाकर राजकुमार को गले से लगा लिया और मस्तक सूंघकर उनको आशीर्वाददिया कि चिरञ्जीवरहो१०५॥

मू० निहतामित्रवर्गश्च पित्रोः शुश्रूषणं कुरु।
वत्स धन्यस्य कथ्यन्ते परोक्षस्यापि ते गुणाः १०६॥

टी०। और तुम अपने शत्रुवों को नाश कर अपने पिताकी सेवाकरो हे वत्स! और धन्य जो तुमहो उनके गुणों का वर्णन तुम्हारे पीठ पीछेभी मेरे लड़कों ने कहा १०६॥

मू० भवतो मम पुत्राभ्याम् सामान्या निवेदिताः।
त्वमेवानेनवर्द्धथा मनोवाक्कायचेष्टितैः १०७॥

टी०। मुझ से जाहिर किया जोकि विशेष हैं और तुमहीं मन और बचन और काया और उद्यम से बढ़ते रहो १०७॥

मू० जीवितं गुणिनः श्लाघ्यं जीवन्नेवमृतोऽगुणः।
गुणवान्निर्वात्तिं पित्रोः शत्रूणांहृदयज्वरम् १०८॥

टी०। क्योंकि गुणी लोगों का जीवन सफल है और जो अगुणी हैं उनका जीवन मुर्दे के बराबर है गुणवान् पुत्र मा बाप को दुःख से निवृत्त करताहै और शत्रुवों के हृदय में ज्वर उत्पन्न करताहै १०८॥

मू० करोत्यात्महितं कुर्वन् विश्वासञ्च महाजने।
देवताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविकलादयः १०९॥

टी०। और अपनी भलाई का काम करता है और महात्मा लोगों में अपना विश्वास बढ़ाता है और देवता और पितर और अभ्यागत और ब्राह्मण और मित्र व दुखी आदि १०९॥

मू० बान्धवाश्च तथेच्छन्ति जीवितं गुणिनश्चिरम्।
परिवादनिवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम्।
गुणिनां सफलं जन्मसंश्रितानां विपद्गतेः ११० ॥

टी०। और भाई बन्धु लोग उस गुणी की ज़िन्दगी की बढ़ती मनाते हैं और जो लोग निन्दासे निवृत्त और दुःखियोंके ऊपर दयावान् हैं वे दुःख में भी दुखीलोगों के दुःख को दूर करते हैं इसवास्ते उन गुणी लोगों का जन्म सफल है ११० ॥

जड उवाच ॥

मू० एवमुक्त्वा स तं वीरं पुत्राविदमथाब्रवीत्।
पूजां कुवलयाश्वस्य कर्त्तुकामो भुजङ्गमः १११ ॥

टी०। सुमति कहते हैं कि ऐ पिता! राजकुमार से इतनी बात कह कर कुवलयाश्व के पूजन करनेकी इच्छावाला नागराज ने अपने लड़कों से कहा १११ ॥

मू० स्नानादिकं कर्म कृत्वा सर्व्वमेव यथाक्रमम्।
मधुपानादि सम्भोगमाहारञ्च यथेप्सितम् ११२ ॥

टी०। कि स्नानादि जो कर्म्म है उनको क्रम से करके मधुपानादि जो सम्भोग हैं,इच्छानुसार भोजन करते जाव ११२ ॥

मू० ततःकुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया।
कथयास्वल्पकङ्कालं स्थास्यामोहृष्टचेतसः ११३ ॥

टी०। तब कुवलयाश्व समेत उसके हृदय की आनन्द देनेवाली बात सुनाकर सब कोई प्रसन्न चित्त होकर थोड़े वक्त तक साथ बैठेंगे ११३ ॥

मू० अनुमेने च तन्मौनी वचः शत्रुजितः सुतः।
तथा चकार नृपतिः पन्नगानामुदारधीः ११४ ॥

टी०। राजकुमार ने भी इन बातों को खुशी से मानलिया और जो जो बातें राजकुमार को भली मालूम होतीथीं उन्हीं बातों को उदार बुद्धि वाले नागराज कह कहकर आनन्द देतेथे ११४ ॥

मू० समेत्यतैरात्मजभूपनन्दनै-
र्म्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ।
मुदान्वितोऽन्नानि मधूनि चात्मवान्
यथोपयोगं वुभुजे स भोगभुक् ११५ ॥

टी०। और भोगों के भोजनकरनेवाले उन नागराज सत्यवादी ने अपने लड़कों और राज कुमार के साथ आनन्द से अच्छे २ अन्न और मदिरा आदिक यथायोग्य भोजन किया ११५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानेकुवलयाश्व
पातालगमनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चौबीसवां अध्याय ॥

जडउवाच ॥

मू० कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् ।
उपासां चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयस्तथा १ ॥

टी०। जडरूप सुमति कहते हैं कि ऐ पिता! जब नागराज भोजन करचुके तब नागपुत्र लोग राजकुमार सहित नागराजकी सेवा करनेलगे १ ॥

मू० कथाभिरनुरूपाभिः स महात्मा भुजङ्गमः ।
प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसख्युरुवाच च २ ॥

टी०। फिर वे महात्मा नागराज पुत्रों के मित्र राजकुमार की रुचियुक्त कथा कहकर आनन्द पैदा करते भये व यह कहने लगे २ ॥

मू० तव भद्र सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत् ।
कर्त्तव्यमुत्सृज्याशङ्कां पितरीव सुतो मयि ३ ॥

टी०। कि ऐ राजपुत्र! तुम कल्याण व सुख से रहो और तुम मेरे पाहुन हो जैसे पिता को पुत्रके साथ प्रीति होती है उसी तरह मेरी प्रीति तुम्हारे साथ है इस वास्ते शङ्का छोड़कर जो तुम्हारी इच्छाहो मुझ से कहो मैं पूरी करूंगा ३ ॥

मू० रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्रवाहनमासनम् ।

यद्वाभिमतमस्त्यर्थे दुर्लभं तद् वृणुष्व माम् ४ ॥

टी०। चांदी सोना वस्त्र वाहन आसन इत्यादि अथवा दूसरी मनोरथ वाली वस्तु जिसको तुम बहुत दुर्लभ जानतेहो उसको भी मुझसे मांगो४॥

कुवलयाश्वउवाच ॥

मू० तवप्रसादाद्भगवन् सुवर्णादि गृहेमम।
पितुरस्ति ममाद्यापि न किञ्चित् कार्य्यमीदृशम् ५ ॥

टी०। तब कुवलयाश्वने कहा कि ऐ तात! आपकी कृपासे सोना वगैरा सब कुछ मेरे पिताके घरमें मौजूद है ऐसी कोई वस्तु नहींहै जो दुर्लभ है और मेरे पिता मौजूदहैं मुझको ऐसा कोई काम नहीं है जो आपसे कहूं५॥

मू० तातो वर्षसहस्राणि शासतीमां वसुन्धराम्।
तथैव त्वयि पाताले न मे याञ्चोन्मुखं मनः ६ ॥

टी०। और मेरे पिता हजारों वर्षसे पृथ्वीपर राज्य करते हैं जैसे आप इस पाताल में तो फिर मेरे जी में कोई अभिलाषा बाक़ी नहीं है जो आपसे कहूं ६ ॥

मू० ते स्वर्ग्याश्च सुपुण्याश्च येषां पितरि जीवति।
तृणकोटिसमं वित्तं तारुण्याद्वित्तकोटिषु ७ ॥

टी०। और उसी पुरुष को पुण्यवान् स्वर्गवासी समझना चाहिये जो अपने पिताकी जिन्दगी में युवा होकर क़ायम रहे और धनको तिनुकाके अग्रभागके बराबर समझै इसके सामने दूसरा धन दौलत कुछ नहींहै ७॥

मू० मित्राणि तुल्य शिष्टानि तद्वद्देहमनामयम्।
जनिता ध्रियते वित्तं यौवनं किन्नु नास्ति मे ८ ॥

टी०। और मेरे मित्रलोग भी मेरे योग्यहैं और वैसेही शरीर से भी आरोग्यहूं और यह जो युवा अवस्था मेरीहै इससे क्या धन नहीं हासिल करसक्ताहूं ८ ॥

मू० असत्यर्थे नृणां याञ्चाप्रवणं जायते मनः।
सत्यशेषे कथं याञ्चां मम जिह्वा करिष्यति ९ ॥

टी०। जब धन नहीं होताहै तब मनुष्योंका मन मांगने की तरफ़ झु-

कताहै औरसेरे घरमें अशेष धन मौजूद है तो मेरी जीभ किसतरह कोई वस्तु मांगेगी ९ ॥

मू० यैर्न चिन्त्यं धनं किंचिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा।
पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते १० ॥

टी०। और जो लोग इसका खयाल नहीं रखते कि हमारे घरमें कुछ धनहै या नहीं है और अपने पिताकी भुजारूपी वृक्षकी छांहमें रहते हैं वेई लोग सुखी और भाग्यवान हैं १० ॥

मू० येनुबाल्यात्प्रवृत्तेव विना पित्रा कुटुम्बिनः।
ते सुखास्वादविभ्रंसान्मन्ये धात्रैव वञ्चिताः ११ ॥

टी०और जो कुटुम्बीलोग लड़कपनसे लगाके विनाछांह अपनेपिताके, होश सँभालते हैं और धनकी चिन्ता रखते हैं उनको सुखका स्वाद नहीं है और वेई बदनसीब हैं मैं इस बातको मानता हूँ ११ ॥

मू० तद्वयं त्वत्प्रसादेन धनरत्नादिसञ्चयान्।
पितृमुक्तान् प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम् १२ ॥

टी०। और मैं आपकी कृपा से अपने पिताके रक्खेहुये धन और रत्न और खजाने में से याचकों को इच्छापूर्वक हमेशा देता हूँ १२ ॥

मू० तत्सर्व्वमिहसम्प्राप्तं यदङ्घ्रियुगलं तव।
मच्चूडामणिना स्पृष्टं यच्चाङ्गस्पर्शमाप्तवान् १३ ॥

टी०। और अब तो मेरे मुकुट का रत्न आपके दोनों चरणों से मिल कर और मेरा शरीर आपके चरणों की धूर पड़ने से पवित्र हुआ इसी से यहां मुझे सब कुछ हासिल होगया १३ ॥

जडउवाच ॥

मू० इत्येवं प्रसृतंवाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः।
प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् १४ ॥

टी०। जड यानी सुमति कहतेहैं कि यह मीठी मीठी बातें राजकुमार की सुनकर नागराज बहुत प्रसन्नता से उनको अपने लड़कों का उपकारी मित्र समझकर फिर बोले १४ ॥

नागउवाच ॥

मू० यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽवाप्तुं न ते मनः।
यदन्यमनसः प्रीत्यै तद्ब्रूहि त्वं ददाम्यहम् १५ ॥

टी०। नाग बोले कि ऐ राजकुमार! अगर सोना चांदी इत्यादि की मुझसे तुमको जरूरत नहीं है तो अच्छा कोई दूसरी ही वस्तु जो तुम्हें पसन्दहो कहो कि मैं उसको दूँ १५ ॥

कुवलयाश्व उवाच ॥

मू० भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम।
सर्व्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् १६ ॥

टी०। कुवलयाश्व बोले कि आपकी कृपासे मेरे घरमें मांगनेकी सब वस्तु हासिल है विशेष आप के दर्शन से मुझको सब कुछ हासिल होगया १६ ॥

मू० कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितञ्च मे।
यदङ्गसंश्लेषमितस्तव देवस्य मानुषः १७ ॥

टी०। और मैं कृतकृत्य हूँ और इतने से मेरा जीवन सफल होगया क्योंकि मैंने मनुष्य होकर आप ऐसे देवता के अङ्ग का स्पर्शपाया १७ ॥

मू० ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम्।
कृतंतेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर १८ ॥

टी०। और ऐ नागराज! मेरे इस अङ्गमें जो आपके चरणों की धूर लगी इसी से सब इच्छा मेरी पूर्ण होगई १८ ॥

मू० यदित्ववश्यं दातव्यो वरो मम यथेप्सितः।
तत्पुण्यकर्म्मसंस्कारो हृदयान्माव्यपैतुमे १९ ॥

टी०। और अगर मेरे मन मानता वर आपको देनाही मंजूर है तो मैं यही मांगता हूँ कि मेरे हृदयसे पुण्य कर्मका संस्कार कभी न छूटे १९ ॥

मू० सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम्।
स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम् २० ॥

टी०। और सोना व मणि और रत्न और वाहन और गृह और आसन

और स्त्री और अन्न और पान और पुत्र और सुन्दर माला और चन्दन २० ॥

मू० एते च विविधाः कामा गीतवाद्यादिकञ्चयत्।
सर्व्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्पतेः २१ ॥

टी०। और मेरे मतमें गीत और बाजा इत्यादि जितना है यह सब और हर तरहका मनोरथ यह सब पुण्य रूपी वृक्ष का फल है २१ ॥

मू० तस्मान्नरेण तन्मूलः कार्य्यो यत्नः कृतात्मना।
कर्त्तव्यः पुण्यशक्तानां न किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् २२ ॥

टी०। इसवास्ते बुद्धिमान् मनुष्य को ऐसा यत्न करना उचितहै जिस में पुण्य रूपी वृक्षकी जड़ मजबूत रहे क्योंकि पुण्यवान् के वास्ते संसार में कुछ दुर्लभ नहीं है २२ ॥

अश्वतर उवाच ॥

मू० एवं भविष्यति प्राज्ञ तव धर्म्माश्रिता मतिः।
सत्यञ्चैतत्फलं सर्व्वं धर्म्मस्योक्तं यथा त्वया २३ ॥

टी०। अश्वतर नागराजने कहा कि ऐ राजकुमार महाबुद्धिमान्! तुम्हारा हृदय सदा धर्म्म से विराजमान रहैगा और तुमने जैसा कहा कि यह सब धर्म्मरूपी वृक्षका फलहै सो सचहै २३॥

मू० तथाप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वया धुना।
ग्राह्यं यन्मानुषे लोके दुष्प्राप्यं भावतो मतम् २४ ॥

टी०। पर तौ भी तुम मेरे घर आगये हौ इस वास्ते कहताहूं कि जिस चीजका पृथ्वी में मिलना आपके मतमें दुर्लभहो इसवक्त जरूर वह मुझ से मांगो २४ ॥

जड़उवाच ॥

मू० तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनन्दनः।
मुखावलोकनंचक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः २५ ॥

टी०। जड़रूप सुमति कहते हैं कि उस वक्त उनकी यह बात सुनकर राजकुमार नागकुमारों का मुख ताकने लगे २५ ॥

मू० ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम्।

तत् पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् २६ ॥

टी०। तब वे दोनोंवीर नागकुमार अपने पिता को प्रणाम करके कुवलयाश्व के जी की बात समझकर सब प्रगट कहने लगे २६ ॥

पुत्रावूचतुः ॥

मू० तातोऽस्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम्।
अत्यजद्दयितान् प्राणान् विप्रलब्धा दुरात्मना २७ ॥

टी०। पुत्र बोले कि ऐ पिता! इनकी परम प्यारी स्त्री मदालसा से किसी दुष्ट दानव ने इनके मरने की बात झूठ कहदिया जिसको सुनकर उस वियोगिनी ने अपना प्राण त्याग दिया २७ ॥

मू० केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना।
गन्धर्व्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा २८ ॥

टी०। व बैर किये हुये किसी कुबुद्धि ने यह हाल कहा था और वह गन्धर्व्वराज की कन्या थी जिसका नाम मदालसा तमाम पृथ्वी में विख्यात है २८ ॥

मू० कृतज्ञोऽयं ततस्तात प्रतिज्ञां कृतवानिमाम्।
नान्या भार्य्या भवित्रीति वर्जयित्वा मदालसाम् २९ ॥

टी०। और ऐ पिताजी! इसकृतज्ञ राजपुत्र का यह प्रण है कि विना मदालसा के दूसरी स्त्री मेरी न होगी २९ ॥

मू० द्रष्टुं तां चारुसर्वाङ्गीमयं वीररितध्वजः।
तात वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत्कृतं भवेत् ३० ॥

टी०। हे पिताजी! उसी सर्वाङ्ग सुन्दरी के देखने की इस राजकुमार को अभिलाषा है यह बात अगर हो तो अलबत्ता इसकी कामना पूरी होजावे ३० ॥

अश्वतर उवाच ॥

मू० भूतैर्वियोगिनो योगस्तादृशैरेव तादृशः।
कथमेतद्विनास्वप्नं मायां वा शम्बरोदिताम् ३१

टी०। तब नागराज ने कहा कि ऐसे बिछुड़ेहुये को वैसे प्राणियों से

मिला देना कठिन है और अगर मिला भी तो स्वप्न में अथवा राक्षसी माया के बलसे ३१॥

जड़ उवाच॥

मू० प्रणिपत्य भुजङ्गेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः।
प्रत्युवाच महात्मानं प्रेम लज्जा समन्वितः ३२॥

टी०। जड़ रूपी सुमति कहते हैं कि फिर राजकुमार लज्जा संयुक्त बड़े अदब से महात्मा नागराज को प्रणाम करके प्रेम व लज्जा से संयुक्तहो बोले ३२॥

मू० माया मयीमप्यधुना मम तात मदालसाम्।
यदि दर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम् ३३॥

टी०। कि हे तात! इसवक्त माया की मदालसा भी जो आप दिखलाइये तो भी आप की बड़ी कृपा की हुई मानूँ ३३॥

अश्वतर उवाच॥

मू० तस्मात्पश्येह वत्स त्वं मायाञ्चेद्द्रष्टुमिच्छसि।
अनुग्राह्यो भवान् गेहं बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ३४॥

टी०। नागराजने कहा कि हे राजकुमार! जो तुम मायाकी मदालसा- देखना चाहते हो तो मैं यहां तुम्हें दिखला दूँगा क्योंकि अपने घर में जो कोई लड़का भी मिहिमान आवे तो उस को श्रेष्ठही जानना चाहिये इससे आप दया करने योग्यहो ३४॥

जड़ उवाच॥

मू० आनयामास नागेन्द्रो गृहगुप्तां मदालसाम्।
तेषां सम्मोहनार्थाय जजल्प च ततःस्फुटम् ३५॥

टी०। जड़ अर्थात् सुमति कहते हैं कि इतना कहकर नागराज मदालसा को जिसे अपने घर में छिपा रक्खा था राजकुमार के सामने ले आये और उनके मोहके वास्ते प्रकट कहदिया कि यह मायाकी है ३५॥

मू० दर्शयामास च तदा राजपुत्रायतां शुभाम्।
सेयं नवेति ते भार्या राजपुत्र मदालसा ३६॥

टी०। और उसवक्त राजकुमार को वह उत्तम मदालसा दिखलादिया और पूंछा कि हे राजपुत्र! यह तेरी वही मदालसा स्त्रीहै या नहीं ३६॥

जड़ उवाच॥

मू० स दृष्ट्वा तां तदातन्वीं तत्क्षणात् विगतत्रपः।
प्रियेति तामभिमुखं ययौवाचमुदीरयन्।
निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन ३७॥

टी०। जड़ अर्थात् सुमति कहते हैं कि उससमय वह राजकुमार उस मदालसा को देखतेही लाज को त्याग प्रिया प्रिया कहते हुये उसकी तरफ दौड़े उस समय अश्वतर नागराजने दौड़कर उनको जल्द रोका ३७॥

अश्वतर उवाच॥

मू० मायेयं पुत्र मास्प्राक्षीः प्रागेव कथितं तव।
अन्तर्द्धानमुपैत्याशु माया संस्पर्शनादिभिः ३८॥

टी०। और अश्वतरने कहा कि हे राजकुमार! मैंने तुम से पहलेही कहा था यह मायाकी मदालसा है इसको न छूना यदि तुम इसको छुवोगे तो तत्कालही माया अलोप होजायगी ३८॥

मू० ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छा परिप्लुतः।
हाप्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् ३९॥

टी०। तब राजकुमार हा प्रिया हा प्रिया! कहते हुये मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिरपड़ा जब चेत हुआ तब भी वही चिन्ता मदालसा की बनीरही ३९॥

मू० अहो स्नेहोऽस्य नृपतेर्म्ममोपर्य्यचलं मनः।
येनायं पातनोऽरीणां विना शस्त्रेण पातितः ४०॥

टी०। और इधर मदालसा अपने जी में कहती थी कि इन राजा की प्रीति बड़े अचम्भे की है कि इनका चित्त मुझपर अचल होरहा है जिनकी मार से शत्रुलोग घायल हो गिरते थे सो बिना चोट हथियार के गिरपड़े ४०॥

मू० मायेति दर्शिता तेन मिथ्या मायेति यत्स्फुटम्।

वाय्वम्बुतेजसां भूमेराकाशस्य च चेष्टया ४१॥

टी०। और उसने माया दिखलाया इन्हों ने मुझको माया की मदालसा समझाहै जो जल और वायु और आकाश और तेज इत्यादि के बल से पैदा होती है माया झूंठ है यह जो प्रगटहै इसकोनहीं जानता ४१॥

जड़ उवाच॥

मू० ततः कुवलयाश्वं तं समाश्वास्य भुजङ्गमः।
कथयामास तत्सर्वं मृतसञ्जीवनादिकम् ४२॥

टी०। जड़रूप सुमति कहते हैं कि फिर नागराज ने कुवलयाश्व राजकुमार को बहुत समझा कर जिसतरह फिर मदालसा को पाया और इस से मिलाया याने मरेही जिला देना वह सब कथा कहसुनाया ४२॥

मू० ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्यकान्ताम्
प्रणम्य नागं निजगाम सोऽथ।
सुशोभमानः स्वपुरं तमश्व
मारुह्य सञ्चिन्ति तमभ्युपेतम् ४३

टी०। तब कुवलयाश्व अर्थात् राजकुमार मदालसा को पाने से बहुत प्रसन्न हुये और अपने घोड़े को याद किया और घोड़ा आया तब राजकुमार नागराज को प्रणाम कर बिदा हो घोड़े पर सवारहो मदालसा को साथ लेकर शोभा संयुक्त अपने नगर को चले ४३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसाप्राप्तिर्नामचतुर्विंशोऽध्यायः २४॥

अथ पच्चीसवां अध्याय॥

जड़ उवाच॥

मू० आगम्य स्वपुरं सोऽथ पित्रोःसर्वमशेषतः।
कथयामास तन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनर्मृता १॥

टी०। जड़ याती सुमति कहते हैं कि कुवलयाश्व जब अपने नगर

पहुँचे तो अपने माता पिता को प्रणाम करके जिसतरह मरीहुई मदालसा को पाया वह सब हाल कह सुनाया १ ॥

मू० ननाम सा च चरणौ श्वश्रूश्वशुरयोः शुभा।
स्वजनञ्च यथा पूर्व्ववन्दनाश्लेषणादिभिः २ ॥

टी०। और मदालसा ने भी पहले की नाईं अपने सास और ससुर के चरणों को प्रणाम करके और दूसरे लोगों को भी जो प्रणाम के योग्य थे उनको प्रणाम किया और जो मिलने योग्यथीं उनसे गलेमिलीं २ ॥

मू० पूजयामास तन्वङ्गी यथा न्यायं यथा वयः।
ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ३ ॥

टी०। और उमर और न्यायके अनुसार सब किसीका मदालसाने पूजन किया फिर तो उसनगर में पुरवासियोंके घरों में बड़ा उत्सव हुआ ३ ॥

मू० ऋतध्वजश्च सुचिरं तया रेमे सुमध्यया।
निर्झरेषु च शैलानां निम्नगापुलिनेषु च ४ ॥

टी०। ऋतध्वज ने उस मदालसाके साथ बहुत दिनोंतक आनन्द संयुक्त झरना और पहाड़ों और नदियों के किनारों में विहार किया ४ ॥

मू० काननेषु च रम्येषु तथैवोपवनेषु च।
पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः ५ ॥

टी०। और मदालसा भी काम के उपभोग से पुण्यकानाश चाहती हुई अच्छे अच्छे वनों व उपवनों में ५ ॥

मू० सह तेनाति कान्तेन रेमे रम्यासु भूमिषु।
ततःकालेन महता शत्रुजित स नराधिपः ६ ॥

टी०। कान्ति संयुक्त उसपति के साथ अच्छे अच्छे स्थानों में भोग विलास करती थी फिर बहुत दिनों के बाद राजा शत्रुजित् ६ ॥

मू० सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्म्ममुपेयिवान्।
ततः पौरामहात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ७ ॥

टी०। सम्यक् प्रकार से पृथ्वी का राज्य करके परलोक में प्राप्तहुये तब नगर वासियों ने उसके महात्मा पुत्र ऋतध्वज को ७ ॥

मू॰ अभ्यषिञ्चत राजानमुदाराचारचेष्ठितम्।
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ८॥

टी॰। जो दाता और वीर था उसे राजगद्दी दिया और उन्हों ने भी प्रजाओं को पैदाकिये हुये पुत्र के समान पालनकिया ८॥

मू॰ मदालसायाः सञ्जज्ञे पुत्रः प्रथमजस्ततः।
तस्य चक्रे पिता नाम विक्रान्त इति धीमतः ९॥

टी॰। कुछ दिनों के बाद जब मदालसा के प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ तब बुद्धिमान् राजा ऋतध्वज ने नाम उसका विक्रान्त ऐसा रक्खा ६॥

मू॰ तुतुषुस्तेन वै भृत्या जहास च मदालसा।
सावै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम्॥
उल्लापनच्छलेनाह रुदमानमविस्वरम् १०॥

टी॰।और उसके उत्सव में सब नौकर चाकर संतुष्ट हुये पर जिसवक्त राजा ने अपने लड़केका नाम रक्खा उसवक्त मदालसा हँस पड़ी और उस लड़के को जो उसवक्त उताना पड़ाहुआ अप्रकट स्वर से रोता था उसको गोद में लेकर दुलार के बहाने से कहने लगी १०॥

मू॰ शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं तवै तन्नस्तेऽस्तितत्त्वं रोदिषिकस्य हेतोः ११

टी॰। ऐ तात! तू तो शुद्ध और अनाम और अगुण और निर्विकार है नाम तो गुणवान्का रक्खा जाताहै लेकिन जोकि पञ्चात्मक शरीर में तू प्राप्तहुआ इस वास्ते तेरा नाम भी कल्पना से रक्खागया और यह पञ्चात्मक शरीर तेरा नहींहै तू क्यों रोताहै ११॥

मू॰ नवामवान्रोदिति वै स्वजन्मा
शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमानाविविधागुणास्ते
गुणाश्चभौताः सकलेन्द्रियेषु १२॥

टी॰। और वास्तव में तुम रोते नहींहो यह शरीर जो तुम्हारा राजा का पुत्र और इस शरीर पञ्च तत्त्वात्मक में जो आकाशका गुणहै इसी

सबब से आप से आप शब्द होताहै और हरतरहका गुण और पञ्च महाभूत कृत जो सब इन्द्रियों में है १२ ॥

मू० भूतानिभूतैःपरिदुर्बलानि
वृद्धिंसमायान्तियथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेककस्य
न तेऽस्ति वृद्धिर्नचतेऽस्ति हानिः १३ ॥

टी०। और इस पञ्च तत्व से जो शरीर बनाहै सो अन्न और जलके योग से मोटा और दुबला हुआ करता है और तुमको तो असलमें न वृद्धि है न हानिहै ज्योंके त्योंहो १३ ॥

मू० त्वं कञ्चुके शीर्य्यमाणे निजेऽस्मि
स्तस्मिंश्च देहेमूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैःकर्म्मभिर्देहमेत
न्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेपि नद्धः १४ ॥

टी०। और यह जो रचित कञ्चुक यानी रचाहुआ शरीर तुम्हारा है इसमें मूढ़ता मतकरो किसवास्ते कि शुभाशुभ कर्म्मों के सबब से यह शरीर क़ायम है और मदादि और मूढ़ताई से यह शरीर बँधाहै १४ ॥

मू० तातेति किञ्चित्तनयेति किञ्चिदंबेति
किञ्चिद्दयितेति किञ्चन्।
ममेति किञ्चिन्नममेति किञ्चित्
त्वं भूतसङ्घं बहुमानयेथाः १५ ॥

टी०। और तात यानी पिता और पुत्र और माता और स्त्री और मैं और तू और मेरा और तेरा यह सब बातें इस भूत समूह की तुम बहुत मानतेहो १५ ॥

मू० दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान्
सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि
जानातिविद्वान्नविमूढचेताः १६ ॥

टी०। और दुःख और दुःखके नाश करनेवाले जो उपभोग हैं उनको सुखके लिये अज्ञानी लोग मानते हैं और ज्ञानवान् विद्वान् उन्हीं दुःखोंको सुख जानताहै परन्तु वास्तव में न दुःखहै न सुख १६॥

मू० हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्म
मत्युज्ज्वलं तर्जनमङ्गनायाः।
कुचादि पीनं पिशितं घनं तत्
स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् १७॥

टी०। और संसार के प्राणियों में स्त्री की रतिका स्थान क्या नरक नहींहै जैसे नरक में हड्डियां रहती हैं उसी तरह स्त्री की हँसी में दांत मानो नरक की हड्डियां हैं और उसकी दोनों आंखें जो हैं वह उस नरक मूढ़ जीवोंके वास्ते ताड़ना हैं और मोटे व कड़े स्तन उसके मानो नरक के मांस हैं १७॥

मू० यानं क्षितौ यानगतं च देहं
देहेपिचान्यःऽपुरुषो निविष्टः।
ममत्व बुद्धिर्नतथा यथा स्वे
देहेतिमात्रं वत मूढतैषा १८॥

टी०। और वाहन पृथ्वीपर है और वाहनपर शरीर है और इस शरीर में भी दूसरा पुरुष व्याप्त है तो भी अज्ञानी मूढ़ लोग जैसी ममता अपने शरीर की रखते हैं वैसी दूसरे की नहीं रखते इसी बहुत मूर्खता से बहुत दुःखहै १८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानेपञ्चविंशोऽध्यायः २५॥

अथ छब्बीसवां अध्याय॥

जडउवाच॥

मू० वर्द्धमानं सुतं सा तु राजपत्नी दिने दिने।
तमुल्लापादिनाबोधमनयन्निर्म्ममात्मकम् १॥

टी०। जड़रूप सुमति कहते हैं कि ऐ पिता ! जैसे वह पुत्र बढ़ता गया वैसेही दिन २ मदालसा उसको दुलार और प्यार के साथ यही निर्म्ममात्मक ज्ञान उपदेश करती गई १ ॥

मू० यथा यथं बलं लेभे यथा लेभे मतिं पितुः ।
तथा तथात्मबोधञ्च सोऽवापमातृभाषितैः २ ॥

टी०। और फिर जैसे जैसे उस लड़केको बल होता गया पिता तो उस लड़के को संसारी व्यवहार सिखलाता गया परन्तु उस लड़के को जिस तरह उसकी माता उसको उपदेश करती गई उसीतरह उसको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ २ ॥

मू० इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृतिबोधितः ।
चकारनमतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रतिनिर्म्ममः ३ ॥

टी०। इसीतरह जन्म से युवा अवस्था तक अपनी माता से ज्ञानपाकर वह बुद्धिमान् गृहस्थ आश्रम से न्यारा होगया ३ ॥

मू० द्वितीयोऽस्याः सुतो जज्ञे तस्यनामाकरोत्पिता ।
सुबाहुरयमित्युक्ते साजहासमदालसा ४ ॥

टी०। जब दूसरा लड़का मदालसा के पैदा हुआ तब राजाने उसका नाम सुबाहु रक्खा यह नाम सुनकर मदालसा फिर हँसी ४ ॥

मू० सप्येवं यथा पूर्वं बालमुल्लापनादिना ।
प्राह बाल्यात् स च प्राप तथा बोधं महामतिः ५ ॥

टी०। और जिस तरह लड़कपन से पहिले लड़के को दुलार से उपदेश दिया था उसी तरह इस लड़के को भी मदालसाने आत्मज्ञान सिखलाया जिस सबब से वह बड़ा बुद्धिमान् भी सयाना होनेपर आत्मज्ञानपाकर गृहस्थाश्रम से विरक्त होगया ५ ॥

मू० तृतीयं तनयं जातं स राजा शत्रुमर्द्दनम् ।
यदाहतेन सा सुभ्रुर्जहासाति चिरम्पुनः ६ ॥

टी०। फिर जब तीसरा लड़का मदालसा के पैदा हुआ तब राजा ने उसका नाम अरिमर्द्दन रक्खा उस समय भी वह मदालसा बहुत देर तक हँसी ६ ॥

मू० तथैव सोऽपि तन्वङ्ग्याबालत्वादवबोधितः ।
क्रियाश्चकारनिष्कामो न किञ्चिदुपकारकम् ७ ॥

टी० । और वैसेही उस लड़के को भी लड़कपनही से मदालसा ने आत्मज्ञान सिखाया निदान यह लड़का भी निष्काम हो कर्म करतारहा गृहस्थाश्रम से न्यारा होगया कुछ उपकार वाला कर्म नहीं किया ७ ॥

मू० चतुर्थस्य सुतस्याथ चिकीर्षुर्नाम भूमिपः ।
ददर्शतां शुभाचारामीषद्धासां मदालसाम् ॥
तामाह राजा हसतीङ्किञ्चित् कौतूहलान्वितः ८ ॥

टी० । फिर जब मदालसा के चौथा लड़का पैदा हुआ उसका भी नाम रखने की इच्छा जब राजाने किया तब उत्तम आचरण वाली मदालसा मुसकराई उस पतिव्रता का मुसकराना देखकर कुछ आश्चर्य संयुतहो राजा ने मदालसा से कहा ८ ॥

राजोवाच ॥

मू० क्रियमाणे सकृन्नाम्नि कथ्यतां हास्यकारणम् ।
विक्रान्तश्च सुबाहुश्च तथान्यश्शत्रुमर्द्दनः ९ ॥

टी० । कि मैं तो लड़के का नाम रखता हूँ और तू उसी वक़्त जो हँसती है इसका सबब क्या है कहु विक्रान्त और सुबाहु और अरिमर्द्दन ६ ॥

मू० शोभनानीति नामानि मया मन्ये कृतानि वै ।
योग्यानि क्षत्रबन्धूनां शौर्य्याटोपयुतानि च १० ॥

टी० । ये अच्छे अच्छे कियेहुये नाम शूर और क्षत्रियों के योग्यमाना है वेई मैंने रक्खा १० ॥

मू० असन्त्येतानि चेद्भद्रे यदि ते मनसि स्थितम् ।
तदस्य क्रियतां नाम चतुर्थस्य सुतस्य मे ११ ॥

टी० । ऐ कल्याणी ! ये सब नाम अगर तेरे पसन्द न हों तो मेरे इस चौथे का नाम तूही अपनी पसन्द से रख ११ ॥

मदालसोवाच ॥

मू० मयाज्ञा भवतः कार्य्या महाराज यथात्थमाम् ।

तथानामकरिष्यामि चतुर्थस्यसुतस्यते १२॥

टी०। मदालसा बोली कि हे महाराज! आपका हुक्म मानना मुझको हर तरह से ज़रूर है इसलिये मुझसे जैसा कहिये आपके हुक्म के मुताबिक़ वैसाही इस तुम्हारे चौथे लड़के का नाम मैं ही रक्खूंगी १२॥

मू० अलर्क इति धर्म्मज्ञः ख्यातिंल्लोके प्रयास्यति।
कनीयानेपते पुत्रो मतिमाँश्च भविष्यति १३॥

टी०। और फिर कहने लगी कि ऐ स्वामी! इस तुम्हारे छोटे लड़के का नाम मैंने अलर्क ऐसा रक्खा और यह लड़का अत्यन्त बुद्धिमान् धर्म्मात्मा तमाम दुनिया में मशहूर होगा १३॥

मू० तच्छ्रुत्वा नाम पुत्रस्य कृतं मात्रा महीपतिः।
अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् १४॥

टी०। यह पुत्रका नाम अलर्क निरर्थक मदालसा का रक्खा हुआ सुन कर राजा हँसे और कहने लगे १४॥

राजोवाच॥

मू० भवत्या यदिदंनाममत्पुत्रस्य कृतंशुभे।
किमीदृशमसम्बद्धमर्थःकोऽस्य मदालसे १५॥

टी०। राजा बोले कि ऐ मदालसा! तुमने जो इस मेरे लड़के का यह नाम ऐसा अनर्थक रक्खा है सो इसका क्या अर्थ है मुझसे कहो १५॥

मदालसोवाच॥

मू० कल्पनेयं महाराज कृता सा व्यवहारिकी।
त्वत्कृतानां तथा नाम्नां शृणु भूपनिरर्थताम् १६॥

टी०। मदालसा ने कहा कि नाम रखना संसार का एक व्यवहार है और हे राजन्! आपने जो तीनों लड़कों का नाम रक्खा है और भी निरर्थ हैं पर मैं उन नामों का अर्थ बयान करती हूँ सुनिये १६॥

मू० वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषं यतः।
क्रान्तिश्चगतिरुद्दिष्टा देशाद्देशान्तरन्तुया १७॥

टी०। जिसलिये ज्ञानी लोग पुरुष को व्यापी कहते हैं और जो

देश से देशान्तर में जाना है उसको क्रान्ति और गति कहते हैं १७॥

मू० सर्व्वगो न प्रयातीति व्यापी देहेश्वरो यतः।
तते विक्रान्त संज्ञेयं मतामम निरर्थका १८॥

टी०। और जिसलिये यह पुरुष तो सर्व्वगामी व व्यापी और सब शरीरों का मालिक है गति तो है नहीं इसी सबब से विक्रान्त यह नाम रखना मेरे जान में निरर्थक है १८॥

मू० सुबाहुरिति या संज्ञा कृतान्यस्य सुतस्य ते।
निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात्पुरुषस्य महीपते १९॥

टी०। और ऐ राजन्! दूसरे का नाम जो आपने सुबाहु ऐसा रक्खाहै वह भी कुछ नहीं है क्योंकि उस पुरुषके तो स्वरूपही नहीं है तो फिर सुबाहु नाम निरा निरर्थक है १९॥

मू० पुत्रस्य यत्कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्द्दनः।
मन्येतदप्यसम्बद्धं शृणु चाप्यत्रकारणम् २०॥

टी०। और तीसरे लड़के का नाम जो आपने अरिमर्द्दन रक्खा है उसका भी मैं कुछ अर्थ नहीं मानतीहूँ इस में सबब सुनिये २०॥

मू० एकएवशरीरेषु सर्व्वेषु पुरुषो यदा।
तदास्य राजन् कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते २१॥

टी०। जब एकही पुरुष सब शरीरमें विराजमान रहता है दूसरा तो कोई है ही नहीं तो फिर यहां किसका कौन दोस्त और दुश्मनहै २१॥

मू० भूतैर्भूतानि मृद्यन्ते अमूर्त्तो मृद्यते कथम्।
क्रोधादीनां पृथग्भावात्कल्पनेयं निरर्थका २२॥

टी०। प्राणियों से जीवधारियोंका नाश होताहै और जो अशरीर है वह किसतरह नाश होगा और नाश करैगा और क्रोधादिकों के अलग होनेसे तो उसका नाम अरिमर्द्दन रखना निरर्थक है २२॥

मू० यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते।
नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यंभवतोमतम् २३॥

टी०। जब कि ये सब खराब नाम जो आपने रक्खे हैं व्यवहारी हैं तो

यह अलर्क नाम जो मैंने रक्खा है उसको आप क्यों अनर्थमानते हैं २३॥

जड उवाच ॥

मू० एवमुक्तस्तया साधुमहिष्या समहीपतिः।
तथेत्याह महाबुद्धिर्दयितां तत्थ्यवादिनीम् २४॥

टी०। जड़रूप सुमति कहते हैं कि ऐ पिता! यह सुन्दर सुन्दर बातें उत्तम स्त्री मदालसा की बड़े बुद्धिमान् राजा ऋतध्वजने सुनकर सत्यवादेनी स्त्री से कहा कि ऐ प्यारी! तूने जो कहा वही सत्यहै २४॥

मू० तं चापि सा सुतं सुभ्रूर्यथा पूर्व्वसुतांस्तथा।
प्रोवाच बोधजननं तामुवाच स पार्थिवः २५॥

टी०। और मदालसा इस चौथे लड़के को भी उन पहिले तीनों लड़कों के समान ज्ञान पैदा होनेवाला उपदेश देनेलगी यह देखकर राजा मदालसा से कहने लगे २५॥

मू० करोषि किमिदं मूढे ममाभावाय सन्ततेः।
दुष्टावबोधदानेन यथापूर्व्वं सुतेषु मे २६॥

टी०। कि ऐ अज्ञानवति! मेरी सन्तानके अभावके लिये यह तू क्या करती है जैसे मेरे पहिले लड़कों को तूने ज्ञान सिखलाया उसी तरह इस लड़के को भी क्यों दुष्ट ज्ञान देकर सिखाती है २६॥

मू० यदि ते मत्प्रियं कार्य्यं यदि ग्राह्यं वचो मम।
तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय २७॥

टी०। अगर तुमको मेरा प्रिय करनाहै और मेरा कहा मानती हैं तो इस लड़केको प्रवृत्ति मार्गमें युक्तकरो यानी संसारी व्यवहार सिखलाव२७॥

मू० कर्म्ममार्गसमुच्छेदं नैवं देवि गमिष्यति।
पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवं साध्विभविष्यति २८॥

टी०। और ऐ देवि! इस तरह से कर्म्म मार्ग नाश न होगा और ऐ पतिव्रते! पितरों का पिण्डादिक भी निवृत्त न होगा २८॥

मू० पितरो देवलोकस्थास्तथातिर्य्यक्त्वमागताः।
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गेच संस्थिताः २९॥

टी०। क्योंकि जो पितर देवलोक में और जो तिर्य्यग् योनि में और जो पितर मनुष्य योनि में और जो भूतादिक योनि में प्राप्त हैं २९॥

मू० स पुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामान् तृट्परिप्लुतान्।
पिण्डोदकप्रदानेन नरःकर्म्मण्यवस्थितः ३०॥

टी०। और जो पाप में हैं और जो पुण्य में हैं और जो भूख और प्यासमेंहैं इनसबको कर्ममें टिकाहुआ मनुष्य पिण्ड और जलकेदानसे३०॥

मू० सदाप्याययते सुभ्रु तद्वद्देवातिथीनपि।
देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः ३१॥

टी०। हमेशा तृप्तकरते रहते हैं व वैसाही देवों और पाहुनों को तृप्त करतेहैं और ऐप्रिये! देवता और मनुष्य और पितर और प्रेत और भूत गुह्यक ३१॥

मू० वयोभिः कृमिकीटैश्च नरएवोपजीव्यते।
तस्मात्तन्वङ्गि पुत्रं मे यत्कार्य्यं क्षत्रयोनिभिः ३२॥

टी०। और पक्षी व कृमि और कीट इत्यादि सब लोग उस मनुष्य से जीतेहैं इस वास्ते ऐ तन्वङ्गि! इस मेरे लड़केको जो क्षत्रियोंका कर्म्महै ३२॥

मू० ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक्प्रतिपादयाति।
नैवमुक्ता सा भर्त्रा वरनारी मदालसा ३३॥

टी०। जिससे इसलोक और परलोक में फल हो उन्हीं बातों को अच्छीतरह से सिखलाओ जब इस तरह उस राजा ऋतध्वज ने उस उत्तम स्त्री मदालसा से कहा ३३॥

मू० अलर्कनामतनयमुत्राचोल्लापवादिनी।
पुत्रवर्द्धस्व मद्भर्त्तुर्मनोनन्दय कर्म्मभिः॥
मित्राणामुपकाराय दुर्हृदांनाशनाय च ३४॥

टी०। तब दुलारसे कहनेवाली मदालसा अलर्क नाम पुत्र से कहने लगी कि ऐ पुत्र! तू आनन्द युक्त बढ़ और कर्म्म करके मेरे स्वामीका चित्त संतुष्ट कर और मित्रों का उपकार और दुष्टों का नाश कर ३४॥

मू० धन्योऽसिरेयो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्रः।

तत्पालनादस्तुसुखोपभोगो धर्म्मात्फलं प्राप्स्यसि चामरत्वं ३५॥

टी०। और ऐ पुत्र! तू अन्यहै शत्रु रहित होकर बहुत दिनोंतक एक क्षत्र पृथ्वी का पालनकरो व उसके पालने से तुझे सुख हो और धर्म्म के फल से तू देव पदवी में प्राप्तहो ३५॥

मू० धरामरान् पर्व्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनःपरस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ३६॥

टी०। और पर्व्वों में ब्राह्मणों को भोजन और दान दे और भाई बन्धु की इच्छा पूरी किया कर और दूसरे की बेहतरी का हमेशा दिलमें खयाल और पर स्त्री गमन से हमेशा परहेज रखना ३६॥

मू० यज्ञैरनेकैर्व्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान्प्रीणयसंश्रिताश्च।
स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिराययुद्धैश्चारींस्तोषयितासिवीर ३७॥

टी०। और हमेशा अनेक यज्ञादिकों से देवतों को और धनसे ब्राह्मणों व जो अपने सहारे में होवें उनको और बहुत कामनाओं से बहुत दिनों तक स्त्री को संतुष्ट रख और हे वीर! वैरियों का युद्ध से तोष रख ३७॥

मू० बालो मनोनन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञा करणैःकुमारः।
स्त्रीणां युवासत्कुलभूषणानां वृद्धोवने वत्सवनेचराणाम् ३८॥

टी०। हे वत्स! बाल अवस्था में दोस्त आशना भाई बन्धु का दिल खुश कर और कौमार अवस्था में आज्ञा करके अपने गुरु का मन आनन्दकर और युवा अवस्था में उत्तम कुलों से भूषित अपनी स्त्री को खुश रख और बुढ़ापे में वनवासी हो ३८॥

मू० राज्यं कुर्व्वन् सुहृदो नन्दयेथाः
साधून्रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्ये
गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ३९॥

टी०। और राज्य करते वक्त दोस्तों को खुश कर और साधु की रक्षा के साथ यज्ञों से पूजन किया कर और दुष्टों व बैरियों का युद्ध में नाश करके और गऊ ब्राह्मण की बेहतरी के वास्ते अगर प्राण भी जाय तो शोच मत कर ३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपुत्रानुशासनंषड्विंशोऽध्यायः २६॥

अथ सत्ताईसवां अध्याय ॥

जडउवाच ॥

मू० एवमुल्लाप्यमानस्तु स तु मात्रा दिने दिने।
ववृधे वयसा बालो बुद्ध्या चालर्कसंज्ञितः १ ॥

टी०। जड़रूपी सुमति कहते हैं कि हे पिता! इसी प्रकार प्रतिदिन माता मदालसा उस लड़के को उपदेश देती थी सो अलर्क बालक उमर व बुद्धिसे बढ़े १ ॥

मू० सकौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्ततः।
कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याह मातरम् २ ॥

टी०। जब राजा ऋतध्वज का पुत्र कौमार अवस्थाको प्राप्त हुआ तब उसका यज्ञोपवीत किया गया तत्पश्चात् बुद्धिमान् अलर्क अपनी माता को प्रणाम करके कहने लगा २ ॥

मू० मया यदत्र कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै।
सुखाय वदतत्सर्व्वं प्रश्रयावनतस्य मे ३ ॥

टी०। कि ऐ माता! यहां और परलोक में सुख देनेवाला जो कर्म्म यहां मेरे करने योग्यहो वह सब उपदेश तू नम्रता से झुकेहुये मुझे दे कि मैं वही करूं ३ ॥

मदालसोवाच ॥

मू० वत्स राज्येऽभिषिक्ते न प्रजारञ्जनमादितः।
कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्म्मस्य महीभृता ४ ॥

टी०। मदालसा ने कहा कि हे पुत्र! राजतिलक होनेपर पहिलेही से राजाओं को चाहिये कि अपने धर्म संयुक्त प्रजा का पालन करैं ४ ॥

मू० व्यसनानि परित्यज्य सप्तमूलहराणि वै।
आत्मारिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ५ ॥

टी०। और मूल हरन करनेवाले जो सात व्यसन हैं उनकोत्याग

---

१ स्त्रियोऽक्षा मृगयापानं वाक्पारुष्यंच पञ्चमम्। महच्च दंड पारुष्यमर्थ दूषण मेवच ॥

करके शत्रुओं से अपने बचने का प्रबन्ध करै और मन्त्रियों की सम्मति से काम करै ५॥

मू० अष्टधानाशमाप्नोति सुवक्रात् स्यन्दनाद्यथा।
तथा राजाप्यसंदिग्धं बहिर्म्मन्त्रविनिर्गमात् ६॥

टी०। जैसे बहुत टेढ़े रथसे उसका चढ़ने वाला नाश होता है वैसेही सलाह बाहरी तरफ़ से जाने से राजा भी निस्सन्देह आठ प्रकार से नाश होजाता है ६॥

मू० दुष्टादुष्टांश्चजानीयादमात्यानरिदोषतः।
चरैश्चरास्तथाशत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ७॥

टी०। और शत्रुवों के दोष से भले बुरे मन्त्रियों को जाने व बड़े उपाय से बैरियों के भेदिहा लोगों को अपने दूतों से ढूंढ़ना चाहिये ७॥

मू० विश्वासो न तु कर्त्तव्यो राज्ञामित्राप्तबन्धुषु।
कार्य्ययोगादमित्रेऽपि विश्वसीत नराधिपः ८॥

टी०। और राजा को चाहिये कि अपने मित्र और विश्वासवाले बन्धु और मित्रों का भी न विश्वास करै कार्य के संयोग से शत्रु का भी विश्वास करै ८॥

मू० स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना।
भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्त्तिना ९॥

टी०। और राजा को छः गुणों को जानना चाहिये और कामके वश न हो और वृद्धि और क्षय व स्थान यानी अपने हानि और लाभ व सामान्यको देखता रहै ९॥

मू० प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्यो महीभृता।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः १०॥

टी०। और पहिले अपने मन और मन्त्री और नौकर चाकर इत्यादि को अपने वश में करै और उसके बाद पुरवासी और प्रजा को मिलावै तब शत्रुवों से विरोध करै १०॥

मू० यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते।

सोऽजितात्माजितामात्यःशत्रुवर्गेण वाध्यते ११ ॥

टी०। जो मनुष्य इन सभों को अपने वश न करैगा और दुश्मनों से लड़ैगा वह विन जीतेहुये मन व मन्त्रियों वाला अवश्य दुश्मन के हाथ से मारा जायगा ११ ॥

मू० तस्मात्कामादयःपूर्व्वं जेयाःपुत्रमहीभुजा ।
तज्जये हि जयोऽवश्यं राजानश्यति तैर्जितः १२ ॥

टी०। इस वास्ते ऐ पुत्र ! राजा को चाहिये कि पहिले कामादिक को जीते उसके जीतने से ज़रूर जीत होती है जो राजा इसको अपने वश नहीं करता है उसी का नाश होता है १२ ॥

मू० कामः क्रोधश्च लोभश्च मदोमानस्तथैवच ।
हर्षश्च शत्रवो ह्येते विनाशाय महीभृताम् १३ ॥

टी०। क्योंकि काम क्रोध लोभ मद मान और हर्ष यह सब राजाओं के नाश करने के लिये शत्रु हैं १३ ॥

मू० कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम् ।
निवर्त्तयेत्तथाक्रोधादनुह्रादंहतात्मजम् १४ ॥

टी०। और यह भी याद करना चाहिये कि चाहिये कि काम के वश होने से पाण्डुका नाश हुआ क्रोधसे अनुह्राद का बेटा मारागया इस लिये काम और क्रोध से निवृत्त रहना चाहिये १४ ॥

मू० हतमैलं तथालोभान्मदाद्वेणुं द्विजैर्हतम् ।
मानादनायुषः पुत्रं बलिं हर्षात्पुरञ्जयम् १५ ॥

टी०। और लोभ करने से राजा पुरूरवा मारागया और मदके सबब से राजा वेणु को ब्राह्मणों का शाप हुआ उसी से मरा और मान के सबब से अनायुष का पुत्र बलि और हर्ष से राजा पुरञ्जय मारेगये १५ ॥

मू० एभिर्जितैर्जितं सर्व्वं मरुत्तेन महात्मना ।
स्मृत्वा विवर्जयेदेतान् दोषान् स्वीयान्महीपतिः १६ ॥

टी०। और इन्हीं सबको अपने वश में करने से राजा मरुत महात्मा ने सब को जीतलिया इससे इन बातों को यादकर राजा को चाहिये कि अपने इन कामादिक दोषों से निवृत्त रहै १६ ॥

मू० काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम्।
हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः १७॥

टी०। और काक कोकिल भौंरा मृग सर्प मोर हंस कुक्कुट (मुर्गा) लोहा इत्यादि का जो चरित है उसको राजा सीखै १७॥

मू० कीटकस्य क्रियां कुर्य्यात् विपक्षे मनुजेश्वरः।
चेष्टां पिपीलिकानाञ्च काले भूयः प्रदर्शयेत् १८॥

टी०। और राजा शत्रुओं से अपना काम ऐसा निकालै कि जैसे कीड़ा आहिस्ता आहिस्ता अपना घर काठमें करता है और समय में चींटी का ऐसा स्वभाव दिखलाना चाहिये कि अपने समाजके खाने के वास्ते थोड़ा थोड़ा करके बहुत कुछ जमा करलेती है १८॥

मू० ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः।
चन्द्रसूर्य्यस्वरूपेण नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता १९॥

टी०। और अग्नि का कण और शाल्मली (सेमर) वृक्षके बीज की चेष्टारक्खै और नीति के वास्ते सूर्य्य और चन्द्रमाके समान राजा पृथ्वी पर ताकतारहै १९॥

मू० बन्धकी पद्मशरभशूलिका गुर्व्विणीस्तनात्।
प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः २०॥

टी०। और बन्धकी याने व्यभिचारिणी स्त्री और पद्म और शरभ और शूलिका और गुर्व्विणी के स्तनसे और इसी तरह ग्वाल की स्त्री इत्यादि से राजाको बुद्धि और गुण सीखना चाहिये २०॥

मू० शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः।
रूपाणि पञ्च कुर्व्वीत महीपालनकर्म्मणि २१॥

टी०। और राजा इन्द्र और सूर्य्य और चन्द्रमा और यम और वायु इत्यादि के पांच स्वरूप पृथ्वी पालन के कर्म में धारण करे २१॥

मू० यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम्।
आप्याययेत्तथा लोकं परिहारैर्महीपतिः २२॥

टी०। जैसे इन्द्र चार महीने पृथ्वीको जलसे तृप्तकरते हैं उसीतरहराजा

को भी चाहिये कि पहिले अपनी प्रजाको अन्न और वस्त्र देकरतृप्तकरै २२॥

सू० मासानष्टौ यथा सूर्य्यस्तोयंहरति रश्मिभिः।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकंनृपः २३॥

टी०। और जैसे आठ महीने सूर्य्य अपनी किरण से आहिस्ता आहिस्ता उस जल को खींचते हैं उसी तरह राजा को चाहिये कि थोड़ेही उपाय से अपना महसूल वग़ैरा आहिस्ता आहिस्ता वसूल करै २३॥

सू० यथायमः प्रियद्वेष्ये प्राप्तकाले नियच्छति।
तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टेसमोभवेत् २४॥

टी०। फिर जैसे यमराज शत्रु और मित्र को अन्त समय में दुःख और सुख यथा योग्य देते हैं उसीतरह राजा प्रिय व अप्रिय व दुष्ट लोगों और अच्छे लोगों पर बराबर दृष्टि रखकर न्याय करै २४॥

सू० पूर्णेन्दुमालोक्ययथा प्रीतिमान् जायतेनरः।
एवं यत्र प्रजाः सर्व्वानिर्वृत्तास्तच्छशिव्रतम् २५॥

टी०। और जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं उसीतरह जहां सब प्रजा खुशहो वह शशिव्रत राज्यहै २५॥

सू० मारुतः सर्व्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा।
एवंनृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यादिबन्धुषु २६

टी०। और जिसतरह वायु निगूढ़ होकर सब्जगह स्थानों में व्याप्त रहती है उसीतरह राजा को चाहिये कि गोइन्दा याने भेदिहा नौकर रखकर तमाम नगर वासियों और नौकरों चाकरों और परिवार के अच्छे और बुरे हालात से खबर रक्खै २६॥

सू० नलोभाद्यानकामाद्यानार्थाद्यायस्य मानसम्।
यथान्यैःकृष्यते वत्स स राजा स्वर्गमृच्छति २७॥

टी०। हे वत्स! जैसे अन्य वस्तुओं से खींचाजाता है उसीतरह जिस राजा के मन को लोभ और काम और अर्थ नहीं खींच सक्ता है वही राजा स्वर्ग वासी होता है २७॥

सू० उत्पथग्राहिणो मूढान्स्वधर्माच्चलतोनरान्।

यःकरोति निजे धर्म्मे स राजास्वर्गमृच्छति २८ ॥

टी०। और जे मूर्ख मनुष्य अपना धर्म्म छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं उन मनुष्यों को जो राजा अपने धर्म्म मार्गपर लाता है उसको भी स्वर्गवासी समझना चाहिये २८ ॥

सू० वर्णधर्म्मानसीदन्ति यस्य राज्ये तथाश्रमाः।
वत्स तस्य सुखंप्रेत्य परत्रे हचशास्वतम् २९ ॥

टी०। मदालसा कहती है कि ऐ पुत्र!जिस राजा के राज्य में जातिके धर्म्म व आश्रम किसी का नाश होने नहीं पाता उस राजा को इस लोक और परलोक में भी हमेशा सुख बना रहता है २९ ॥

सू० एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतत् सिद्धिकारकम्।
स्वधर्म्मे स्थापनं नृणां चाल्यन्ते येबुद्धिभिः ३० ॥

टी०। और राजा के वास्ते यही उत्तम कार्य व यही सिद्ध करनेवाला है जोकि सब मनुष्योंका अपने धर्ममें स्थापन करना है जोकि कुबुद्धियों से चलाये जातेहैं ३० ॥

सू० पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः।
सम्यक्पालायता भागं धर्म्मस्याप्नोति यत्नतः ३१ ॥

टी०। और जीवोंकी रक्षा करने से राजा कृतकृत्य होताहै और उपाय समेत अच्छी तरह से प्रजापालन करने से जो धर्म्म प्रजाओं से होताहै उस धर्म्म में राजाको भी हिस्सा मिलताहै ३१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपुत्रानुशासनम् २७ ॥

अथ अट्ठाईसवांअध्याय ॥

जड उवाच ॥

सू० तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्को मातरं पुनः।
पप्रच्छ वर्णधर्म्मांश्च धर्म्माये चाश्रमेषु च १ ॥

टी०। जड़ यानी सुमति कहते हैं कि माताके उस वचनको सुनकर

फिर अलर्कने जो वर्णाश्रमका धर्म्म अपनी माता से पूछा उसका हाल मैं कहताहूं सुनिये १॥

अलर्क उवाच ॥

सू० कथितोयं महाभागे राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया।
धर्म्मं तमहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् २॥

टी०। यानी अलर्क ने अपनी मातासे पूछा कि ऐ महाभाग्यवती! राज धर्म्म तो तूने कहा अब उस वर्णाश्रम धर्म्म सुनने की मेरी इच्छा है सो कहिये २॥

मदालसोवाच ॥

सू० दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधामतः।
नान्यश्चतुर्थो धर्म्मोस्तिधर्म्मस्तस्यापदं विना ३॥

टी०। तब मदालसाने कहा कि ऐ पुत्र! दान और यज्ञ और अध्ययन यही तीनों धर्म्म ब्राह्मण के वास्ते हैं इसके सिवाय विपत्तिके विना उस ब्राह्मणको चौथा कोई धर्म्म नहीं है ३॥

सू० याजनाध्यायने शुद्धे तथापूतप्रतिग्रहः।
एषा सम्यक्समाख्याता त्रिविधा चास्य जीविका ४॥

टी०। और शुद्ध याजन यानी यज्ञ कराना और अध्यायन यानी पढ़ाना और पवित्र दान लेना यही तीन तरहकी जीविका ब्राह्मण के वास्ते अच्छी तरह से कहीहैं ४॥

सू० दानमध्ययनं यज्ञः क्षत्रियस्याप्ययंत्रिधा।
धर्म्मः प्रोक्तः क्षिते रक्षा शस्त्राजीवं च जीविका ५॥

टी०। और दान और अध्ययन और यज्ञ करना ये तीन क्षत्रियोंके भी धर्म्म हैं और पृथ्वी पालन करना और अस्त्र धारण करना यह क्षत्रियों के वास्ते जीविका है ५॥

सू० दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैवसः।
वाणिज्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिश्चैवास्य जीविका ६॥

टी०। और दान करना और यज्ञ करना और अध्ययन करना वैश्य

का भी धर्म्म है और वाणिज्य और पशुका पालन और खेती करना इस की जीविका है ६ ॥

मू० दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया।
व्याख्यातः शूद्रधर्म्मोऽपि जीविका कारुकर्म्म च ७ ॥

टी०। और दान और यज्ञ और ब्राह्मणों की सेवा करना यह तीन तरहका शूद्रका धर्म्म कहा है और जीविका उसकी कारीगरी है ७ ॥

मू० तद्वद्द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयौ।
वर्णधर्म्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयंतां चाश्रमाश्रयाः ८ ॥

टी०। और वैसेही ब्राह्मणों की सेवा और पालन करना और खरीद बिक्री भी उसकी जीविका है ऐ पुत्र! ये वर्ण धर्म्म तो मैं कहचुकी अब आश्रम के धर्म्म को कहती हूँ सुनो ८ ॥

मू० स्ववर्णधर्म्मात्संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः।
प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिषिद्धनिषेवनात् ९ ॥

टी०। यानी अपने वर्ण के धर्म्म से मनुष्य सिद्धता को प्राप्त होताहै और स्वर्ग से कभी नहीं गिरता है और अपना धर्म्म छोड़कर दूसरे वर्ण का कर्म्म सेवन करने से मनुष्य मरकर नरक में पडता है ९ ॥

मू० यावत्तुनोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः।
कामचेष्टोक्तिभक्ष्यश्च तावद्भवति पुत्रक १० ॥

टी०। और ऐ पुत्र! ब्राह्मण का जबतक यज्ञोपवीत न कियाजावे तबतक जो कुछ उसके जी में आवे करै व कहै व भोजन करै १० ॥

मू० कृतोपनयनः सम्यक् ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे।
वसेत्तत्र च धर्म्मोऽस्य कथ्यते तंनिबोधमे ११ ॥

टी०। और जब अच्छीतरहसे यज्ञोपवीत होजाय तब गुरू के घर जाकर ब्रह्मचारी होकर रहै वहां उसको जो धर्म्मकरना चाहिये मुझसे वह सुनो ११ ॥

मू० स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा।
गुरोर्निवेद्यतच्चान्नमनुज्ञातेन सर्व्वदा १२ ॥

टी०। यानी वहां पर गुरु से वेद पढ़ै और अग्निकी सेवाकरै और स्नान करै और सदा भिक्षाटन करके अन्न लाकर गुरूके हवाले करै व उसकी आज्ञा से उस अन्न को भोजन करै १२॥

मू० गुरोः कर्म्मणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादनम्।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः १३॥

टी०। और गुरुके कर्म्मों में सहायता करै और सब तरहसे प्रीति पैदाकरै और जब गुरु आज्ञा दें तब पढ़ै और हर तरहसे चित्त को सुचित्त करके गुरू की सेवा करै १३॥

मू० एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात्।
अनुज्ञातोऽथ वन्दित्वा दक्षिणां गुरवे ततः १४॥

टी०। इसी तरह एक या दो या चारों वेद भी गुरू के मुख से पढ़कर उसके बाद गुरुदक्षिणा देकर प्रणाम करके आज्ञा लेकर १४॥

मू० गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत्।
वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं चेच्छयात्मनः १५॥

टी०। जो गृहस्थ आश्रमके कर्म्म करने की इच्छा हो तो गृहस्थाश्रम में बसै और जो वानप्रस्थाश्रम की इच्छा हो तो वानप्रस्थाश्रम में रहै और जो चतुर्थाश्रम की अपनी इच्छा हो तो उस में रहै १५॥

मू० तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात्।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतंविना १६॥

टी०। अथवा गुरुके वहीं घरपर रहकर वानप्रस्थाश्रम की निष्ठा (सिद्धि) प्राप्त करै और जो गुरु न रहैं तो उनके पुत्र से और जो उनका पुत्र भी न रहै तो गुरु के शिष्य से सीखे १६॥

मू० शुश्रूषुर्निरभीमानो ब्रह्मचर्य्याश्रमं वसेत्।
उपावृत्तस्ततस्तस्मात् गृहस्थाश्रमकाम्यया १७॥

टी०। और अभिमान रहित गुरूकी सेवाकरै और ब्रह्मचर्य्याश्रम में रहै जब ब्रह्मचर्य्याश्रम से निवृत्त होकर गृहस्थाश्रमकी इच्छाकरै १७॥

मू० ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्य्यामरोगिणीम्।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गां गृहस्थाश्रमकारणात् १८॥

टी०। तो अपने गोत्र व प्रवर व कुलके सिवाय समान कुलमें अपनी उम्रके योग्य आरोगिनी और जो बिगड़े अंगोंवाली न हो ऐसी स्त्री से अपना गृहस्थाश्रम धर्म्म चलाने के वास्ते न्यायसे विवाह करै १८॥

मू० स्वकर्म्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा।
सम्यक्सम्प्रीणयन् भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा १९॥

टी०। तब अपने कर्म्म से जो धन प्राप्तकरै उससे पितर और देवता और अभ्यागत इत्यादि को हरतरह से भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट करै और उसी तरह आश्रित (सहारे गीर) लोगों को पालनकरै १९॥

मू० भृत्यात्मजान् जामयोऽथ दीनान्धपतितानपि।
यथा शक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा २०॥

टी०। और नौकर, चाकर, लड़का, लड़की, बहन व कुलवधू, दरिद्री, अन्धे, पतित इत्यादि को यथाशक्ति भोजन दे बाद इसके पक्षी और पशु इत्यादि को भी यथाशक्ति भोजन देवै २०॥

मू० एष धर्म्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा।
पञ्चयज्ञविधानन्तु यथा शक्त्या न हापयेत् २१॥

टी०। यही गृहस्थों के वास्ते धर्म है और ऋतुकाल में स्त्रीगमन करै और यथाशक्ति पञ्च यज्ञ कियाकरै छोड़े नहीं २१॥

मू० पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः।
भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथा विभवमादृतः २२॥

टी०। पितर और देवता व अभ्यागत और कुटुम्बी इन सभोंको आपही अन्न देकर फिर अपने भृत्यों के साथ जैसा अपना विभवहो उसके अनुसार आदर से आप भोजनकरै २२॥

मू० एषतूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया।
वानप्रस्थस्य धर्म्मन्ते कथयाम्यवधार्य्यताम् २३॥

टी०। ऐ पुत्र! यह गृहस्थाश्रम का धर्म्म मैंने उद्देश से कहा अब वानप्रस्थाश्रम का धर्म्म तुमसे कहतीहूं सुनो २३॥

मू० अपत्यसन्ततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम्।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनःशुद्धिकारणात् २४॥

टी०। वह यहहै कि जब मनुष्य के सन्तान होजावै उसको देखकर तब वह मनुष्य अपना बुढ़ापा जानकर आप वानप्रस्थाश्रम में अपनी आत्मा शुद्ध करने के वास्ते जावै २४॥

मू० तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चानुकर्षणम्।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्य्यं पितृदेवातिथिक्रिया २५॥

टी०। वहां वनमें बासकरके तपकरै और सब इन्द्रियों के विषयभोगसे अपने मनको खींचकर अपने वशकरै और भूमिपरशयनकरै व ब्रह्मचर्यसे रहै और देवता और पितर और अभ्यागत लोगों की सेवा और पूजा किया करै २५॥

मू० होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम्।
योगाभ्यासः सदाचैववन्यस्नेहानिषेवनम् २६॥

टी०। और त्रिकाल स्नान और होम किया करै जटा और वल्कल धारण करै और सदा योगाभ्यास में रहकर वनवासियों से प्रीति रक्खै २६॥

मू० इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः।
वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तुचरमोऽपरः २७॥

टी०। और ऐ पुत्र! येही धर्म्म जीवात्माको पापसे शुद्ध करनेवाला और उपकारक है और इसी वानप्रस्थाश्रम के धर्म्म के अन्त में भिक्षुकाश्रम दूसरा है २७॥

मू० चतुर्थस्य स्वरूपं तु श्रूयतामाश्रमस्य मे।
यःस्वधर्म्मोऽस्य धर्म्मज्ञैः प्रोक्तस्तात महात्मभिः २८॥

टी०। अब इस चौथे आश्रम के धर्म्म का स्वरूप मैं कहती हूँ सुनो ऐ पुत्र! इस आश्रम के जिस निज धर्म को महात्मा लोग कह गये हैं २८॥

मू० सर्व्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्य्यमकोपिता।
यतेन्द्रियत्वमावासेनैकस्मिन् वसतिश्चिरम् २९॥

टी०। वह यह है कि सब किसी का सङ्ग छोड़कर ब्रह्मचर्य्य में प्राप्त रहै और क्रोध न करै इन्द्रियों का संयम रक्खै और बहुत दिनों तक एक स्थान पर न रहै २९॥

मू० अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नेनैककालिना।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथाचात्मावलोकनम् ३० ॥

टी०। और किसी काम का आरम्भ न करै और भिक्षा मांगकर एक बार भोजन करै और आत्मज्ञान समझनेकी इच्छा रक्खै और आत्माको अवलोकन करै ३० ॥

मू० चतुर्थेत्वाश्रमे धर्म्मो मयायन्ते निवेदितः।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणां च मे शृणु ३१ ॥

टी०। ऐ पुत्र! यह चौथे आश्रम का धर्म्म मैंने तुमसे कहा अब और और वर्णाश्रमों का सामान्य धर्म्म कहती हूँ उसको मुझसे सुनो ३१ ॥

मू० सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा।
आनृशंस्यमकार्प्पण्यंसन्तोषश्चाष्टमोगुणः ३२ ॥

टी०। सत्य और शौच और अहिंसा और अनसूया यानी किसी से ईर्षा न करना और क्षमा रखना और अक्रूरता और कृपणता न करना इन बातों को स्वीकार करै और आठवां गुण सन्तोष रक्खै ३२ ॥

मू० एते संक्षेपतः प्रोक्ता धर्म्मा वर्णाश्रमेषु ते।
एतेषु च स्वधर्म्मेषु स्वेषु तिष्ठेत् समन्ततः ३३ ॥

टी०। ऐ पुत्र! यह संक्षेप ते वर्णाश्रम धर्म्म जो मैंने कहा है इसमें सब वर्णाश्रमी लोगों को अपने अपने धर्म्म में रहना चाहिये ३३ ॥

मू० यश्चोल्लङ्घ्यस्वकं धर्म्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम्।
नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्ड्योभूभृतोभवेत् ३४ ॥

टी०। और जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म्म को छोड़कर दूसरे वर्णाश्रम धर्म्म को अङ्गीकार करता है राजा को उसे दण्ड देना चाहिये ३४ ॥

मू० ये च स्वधर्म्मसन्त्यागात् पापंकुर्व्वन्तिमानवाः।
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तं प्रणश्यति ३५ ॥

टी०। और जो मनुष्य अपना धर्म्म छोड़कर पाप करताहै और राजा उस को दण्ड नहीं देताहै तो उस राजा के यज्ञादिक व पूर्त याने कुआँ बावली आदि खुदाने का फल नष्ट होजाताहै ३५ ॥

मू० तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्व्वे वर्णाः स्वधर्म्मतः।
प्रवर्त्तन्तोऽन्यथा दण्ड्याः स्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ३६॥

टी०। इसवास्ते राजा को चाहिये कि बड़े उपायसे सब वर्णों के धर्म्म के कर्म्म करने की सब किसी पर ताकीद रक्खे कि जिसमें सब कोई अपने अपने धर्म में प्रवृत्त रहैं और जो न वर्त्तमान होवैं तो दण्डदेवै३६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपुत्रानुशासने मदालसावाक्यम्॥ २८॥

अथ उनतीसवां अध्याय॥

अलर्क उवाच॥

मू० यत्कार्य्यं पुरुषाणां च गार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम्।
बन्धश्चस्यादकरणेक्रियाया यस्यचोच्छ्रितिः १॥

टी०। फिर अलर्क ने कहा कि हे माता! गृहस्थाश्रम में रहने वाले लोगोंका जो धर्म्म है जिसपर चलने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्तहोते हैं और वह उत्तम क्रिया जिसके न करने से मनुष्य संसार के बन्धन में पड़ते हैं व जिस कर्म की श्रेष्ठता है १॥

मू० उपकाराययन्नृणां यच्चवर्ज्यंगृहेतता।
यथा च क्रियते तन्मे यथावत्पृच्छतोवद २॥

टी०। और मनुष्यों का उपकारक कर्म्म जो करने योग्य है और फिर वह कर्म्म जो अच्छे लोगों के करने योग्य नहीं है व जिसतरह से किया जाताहै उन सब बातों को पूँछतेहुए मुझसे यथायोग्य वर्णन करिये २॥

मदालसोवाच॥

मू० वत्स गार्हस्थ्यमादाय नरःसर्व्वमिदंजगत्।
पुष्णाति तेन लोकांश्चसजयत्यभिवाञ्छितान् ३॥

टी०। मदालसा बोली कि हे पुत्र! गृहस्थी में रहकर जो मनुष्य यथाशक्ति सम्पूर्ण जगत् का पालन करताहै वह उससे चाहेहुए सब लोकों को जीत लेता है ३॥

मू० पितरो मनुयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ।
कृमिकीट पतङ्गाश्च वयांसिपशवोऽसुरः ४ ॥

टी० । और हे पुत्र ! पितर और मुनि और देवता और भूत और मनुष्य और कृमि और कीट और पतङ्ग और पक्षी और पशु और राक्षस ४ ॥

मू० गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिंप्रयान्तिच ।
मुखंचास्य निरीक्षन्तेऽपिनोदास्यतीतिवै ५ ॥

टी० । ये सब गृहस्थ ही से जीते हैं और उसीसे तृप्त होते हैं और ये सब कोई गृहस्थ ही का मुख ताकते रहते हैं कि जरूर हमलोगों को भोजन देंगे ५ ॥

मू० सर्व्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ।
यस्यांप्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च यामता ६ ॥

टी० । हे पुत्र ! तीनों वेद के संयुक्त गृहस्थ का जो कर्म्म है वह एक कामधेनु है जो सबका आधार है क्योंकि जिस धेनु में सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है और संसार का कार भी यही कामधेनु है ६ ॥

मू० ऋक्पृष्ठासौयजुर्मध्यासामवक्त्राशिरोधरा ।
इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा ७ ॥

टी० । और ऋग्वेद इस गाय की पीठ है और यजुर्वेद इसका मध्य शरीर है और सामवेद इसका मुख है और पृथ्वी माथा है और यज्ञ और कूपादिखुदाने का फल उसका शृङ्ग है और साधुसूक्त सज्जनों का उत्तम वचन उसका रोम है ७ ॥

मू० शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।
आजीव्यमाना जगतां साक्षयानापचीयते ८ ॥

टी० । और शान्ति उसका गोबरहै और पुष्टि मूत्रहै और वर्ण उसका चरण है और वह धेनु संसार को जिलानेवाली और सदा अक्षय है कभी घटती नहीं ८ ॥

मू० स्वाहाकारस्वधाकारो वषट्कारश्च पुत्रक ।
हन्तकारस्तथावान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ९ ॥

टी०। और हे पुत्र! स्वाहाकार और स्वधाकार और वषट्कार और अन्य हन्तकार ये चारों इस गाय के स्तन हैं ६॥

मू० स्वाहाकारंस्तनं देवाः पितरश्चस्वधामयम्।
मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः १०॥

टी०। स्वाहा स्तन को देवतालोग पीते हैं और स्वधाकार स्तन को पितर लोग और बषट्कार स्तन को मुनि लोग व देवताओं को छोड़ देवभूत याने यक्षआदि पीते हैं १०॥

मू० हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततंस्तनम्।
एवमाप्यायपत्येषा वत्सधेनुस्त्रयी मयी ११॥

टी०। और हन्तकार स्तन को हमेशा मनुष्य लोग पीते हैं हे पुत्र! इस तरह यह त्रयी वेदमयी गाय सब किसी का पालन करती रहती है ११॥

मू० तेषामुच्छेदकर्त्ता च यो नरोऽत्यन्त पापकृत्।
सतमस्यन्धतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति १२॥

टी०। इस धेनु को नाश करके जो मनुष्य बहुत पाप कर्म करता है वह अँधियाले तामिस्र व अन्धतामिस्र नरकों में पड़ता है १२॥

मू० यश्चेमां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः।
पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते १३॥

टी०। और जो मनुष्य इसधेनु के स्तनों को देवतादि रूपी बछड़ों को उचितकालों में पिलाताहै वह पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गसे प्राप्त होताहै १३॥

मू० तस्मात्पुत्रमनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः।
भूतानि चानुदिवसं पोष्याणिस्वतनुर्यथा १४॥

टी०। इसवास्ते हे पुत्र! मनुष्यको चाहिये कि देवता और पितर और ऋषि और मनुष्य इत्यादि सब जीवों को हर रोज अपने शरीर के समान पालन करै १४॥

मू० तस्मात् स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्प्पणम्।
प्रजापते तथैवाद्भिः काले कुर्य्यात्समाहितः १५॥

टी०। और इसलिये स्नान करके पवित्र होकर सावधानहो देवता और पितर और ऋषि और प्रजापति इत्यादि को उचित कालों में निश्चिन्त होकर जल से तर्प्पण करै १५॥

मू० सुमनो गन्धपुष्पैश्च देवानभ्यर्च्च्यमानवः ।
ततोऽग्नेस्तर्प्पणं कुर्य्याद्दियाश्च वलयस्तथा १६ ॥

टी०। और फूल और गन्ध और नैवेद्यादि से देवताओं का पूजन करके उसके बाद मनुष्य अग्नि का तर्प्पण करै और वैसेही बलि देवै १६ ॥

मू० ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एव च ।
धन्वन्तरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां वलिं क्षिपेत् १७ ॥

टी०। और घर में ब्रह्मा और विश्वेदेवों को बलि देवै और धन्वन्तरि का उद्देश करके पूर्व व उत्तर दिशा में बलि देवै १७ ॥

मू० प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय वलिमाहरेत् ।
प्रतीच्यां वारुणायाथ सोमायोत्तरतो वलिम् १८ ॥

टी०। और पूर्व दिशामें इन्द्रको और दक्षिण दिशामें यमको बलि देवै और पश्चिमदिशामें वरुणको और उत्तरदिशामें चन्द्रमाकोबलिदेवै १८॥

मू० दद्याद्धात्रे विधात्रे च वलिद्वारे गृहस्यतु ।
अर्य्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमन्ततः १९ ॥

टी०। और घर के द्वार पर धाता और विधाता को बलि देवै और घर के बाहर चारो दिशा में अर्य्यमा को बलि दे और इसी तरह फिर चारों दिशा में १९ ॥

मू० नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो वलिमाकाशतो हरेत् ।
पितृणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखस्थितः २० ॥

टी०। राक्षसों को वलिदेना चाहिये और भूतगणको बलि आकाशमें दे और पितरों को बलि दक्षिण मुख होकर देना चाहिये २० ॥

मू० गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ।
ततस्तोयमुपादाय तेष्वेवाचमनाय वै २१ ॥

टी०। और गृहस्थ को चाहिये कि उसकार्यमें परायण हो सुचित्तहो

कर उसके बाद देवता इत्यादि के आचमनके वास्ते जललेकर उन्हीं२१॥

मू० स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्य देवताः।
एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहपतिः शुचिः २२॥

टी०। उत्तम स्थानों में उन सब देवों का उद्देश करके बुद्धिमान् नर जल देवै इस तरह से गृहस्थ अपने घर में पवित्र होकर गृहबलिदेवै२२॥

मू० अप्यायनाय भूतानां कुर्य्याद्रुत्सर्गमादरात्।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि २३॥

टी०। फिर भूतों के तृप्त होनेके वास्ते आदरसे उत्सर्ग करै यानी बलि देवै तदनन्तर कुत्ता और डोम और पक्षी इत्यादिको भूमिमेंबलिदे२३॥

मू० वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातरुदाहृतम्।
आचम्य च ततः कुर्य्यात् प्राज्ञो द्वारावलोकनम् २४॥

टी०। इसीको वैश्वदेव नाम कहते हैं इसको सायङ्काल और प्रातःकालमें करना चाहिये और इन कर्मोंके पश्चात् आचमन करके उसके बाद बुद्धिमान् मनुष्य अपने द्वारको अवलोकन करै २४॥

मू० मुहूर्त्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्योऽप्यतिथिर्भवेत्।
अतिथिं तत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च २५॥

टी०। और मुहूर्त्त के आठवें भागभर देखने से जो आवै वह भी अतिथिहै उस समय जो कोई अतिथि या अभ्यागत वहां आजावै तो उसको भी अन्न और जल देकर तृप्तकरै २५॥

मू० सम्पूजयेद्यथा शक्तिगन्धपुष्पादिभिस्तथा।
नमित्रमतिथिं कुर्य्यान्नैकग्रामनिवासिनम् २६॥

टी०। और यथाशक्ति गन्ध पुष्पादि से पूजन करै जो कोई अभ्यागत नगर वासी हो या मित्रहो उसको अतिथि न करै २६॥

मू० अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम्।
बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम् २७॥

टी०। और जिस अभ्यागत का नाम और कुल न जानते हो और अकिञ्चिन हो व भूखा या थका आयाहो मांगता हो ऐसा जो उस वक्त प्राप्तहुआ हो २७॥

मू० ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं सम्पूज्यः शक्तितोबुधैः।
नप्रच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायञ्चापि पण्डितः २८॥

टी०। तो ऐसे ब्राह्मणकोभी अतिथिही समझना चाहिये ज्ञानीलोगों को चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार उसका पूजन करे पण्डित लोगों को चाहिये कि इन सबका गोत्र और आचरण और स्वाध्याय याने वेद-पाठ यह कुछ न पूँछें २८॥

मू० शोभनाशोभनाकारं तम्मन्येत प्रजापतिम्।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते २९॥

टी०। वे लोग स्वरूपवान् हों या कुरूपहो उसको ब्राह्मण तुल्य समझे जिस से कि वे लोग सदा एक स्थानपर नहीं रहते इससे वे अतिथि कहाते हैं २९॥

मू० तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी।
तस्माददत्वा योभुङ्क्ते स्वयं किल्विषभुङ्नरः ३०॥

टी०। ऐसे अभ्यागतों के वास्ते गृहस्थाश्रमी को चाहिये कि उनको तृप्तकरे उनके तृप्त होनेसे मनुष्य ऋणसे छूटजाता और उनको भोजन दिये विना जो कोई खाता है वह मनुष्य पाप भोग करता है ३०॥

मू० स पापं केवलं भुंक्ते पुरीषञ्चान्यजन्मनि।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्त्तते ३१॥

टी०। और वह मनुष्य दूसरे जन्म में सिर्फ़ पाप भोग करके विष्ठा भक्षण करता है और जिस घरसे आशाहीन हो अभ्यागत विमुख जाताहै ३१॥

मू० स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।
अप्यम्बुशाकदानेन यद्वाप्यश्नाति स स्वयम् ३२॥

टी०। वह अपना कियाहुआ पाप उस घरवालेको देकर उसका पुण्य आप लेकर चलाजाता है इस वास्ते शाक अथवा जलदेनेसे व जो अपने भोजन के वास्तेहो ३२॥

मू० पूजयेत्तु नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात्।

कुर्य्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ३३ ॥

टी०। उसी से आदरपूर्व्वक शक्तिसे अतिथि का पूजन करै और पितरोंका उद्देश करके हररोज़ अन्न और जल से श्राद्धकरै ३३ ॥

मू० पितॄनुद्दिश्यविप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा।
अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्य ब्राह्मणायोपपादयेत् ३४ ॥

टी०। और पितरों का उद्देश करके बहुत ब्राह्मणों को अथवा एक ब्राह्मण को भोजन करावै और जो अन्न का अग्रभाग होवै उसको उठाकर याने अगरासन भी ब्राह्मणको देदेवै ३४ ॥

मू० भिक्षाञ्चयाचतां दद्यात् परिव्राड् ब्रह्मचारिणाम्।
ग्रासप्रमाणभिक्षास्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ३५ ॥

टी०। और जो कोई दण्डी अथवा ब्रह्मचारी आकर भिक्षा मांगै तो उसको भी भिक्षा अवश्य देना चाहिये और भिक्षा एक ग्रासको कहते हैं और चार ग्रासको एक अग्र कहते हैं ३५ ॥

मू० अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः।
भोजनं हन्तकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा ३६ ॥

टी०। और उत्तम ब्राह्मणलोग चार अग्रको एक हंतकार कहते हैं गृहस्थको चाहिये कि क्षुधाभर भोजन अभ्यागत को दे अथवा हंतकार प्रमाण अथवा अग्र प्रमाण अथवा भिक्षा प्रमाण देवै ३६ ॥

मू० अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथा विभवमात्मनः।
पूजयित्वा तिथीनिष्टान् ज्ञातीन् बन्धूंस्तथार्थिनः ३७॥

टी०। जैसी सामर्थ्य अपने को हो उसके अनुसार उनको दिये बिना भोजन करना न चाहिये पहिले प्रिय अतिथि और जाति और भाई बन्धु और याचक इत्यादि का पूजन करके ३७ ॥

मू० विकलान् बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा।
वाञ्छिते क्षुत्परीतात्मा यश्चान्योऽन्नमकिञ्चनः ३८ ॥

टी०। तब उन लोगोंको जो विकल हैं और बालकों और बूढ़ों व रो-

गियोंको और जो अत्यन्त भूँखे और प्यासे हों और अन्य जो दरिद्री अन्नको चाहे ३८ ॥

मू० कुटुम्बिना भोजनीयः समर्थो विभवे सति।
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ३९ ॥

टी०। उनको ऐश्वर्य होनेपर वह कुटुम्बी समर्थ गृहस्थ यथाशक्ति भोजनदे और ऐश्वर्य्यवाले कुटुम्बी के सामने जो कोई उसकी जातिवाला कष्टमेंहो ३९ ॥

मू० सीदता यत्कृतं तेन तत्पापं ससमश्नुते।
सायञ्चैव विधिः कार्य्यः सूर्य्योढं तत्र चातिथिम् ४० ॥

टी०। तो वह कष्टी जो कुकर्म्म लाचारी से करता है उसका दोष वही ऐश्वर्य्यवाला भोग करता है जो सामर्थ्य होनेपर भी उसको उस कष्टसे नहीं छुड़ाता है और गृहस्थको सन्ध्याकाल में जो विधि करना चाहिये कियाकरे और उस समय जो अभ्यागत आवै उसको सूर्य्य समान समझकर ४० ॥

मू० पूजयीत यथा शक्तिशयनासनभोजनैः।
एवमुद्वहतस्तात गार्हस्थ्यं भारमाहितम् ४१ ॥

टी०। यथाशक्ति शय्या व आसन देकर पूजाकरै और भोजन देवै इतना कहकर मदालसाने फिर कहा कि हे तात! गृहस्थीके बोझको कन्धे पर धरेहुये जो पुरुष इसप्रकार से लेजाताहै ४१ ॥

मू० स्कन्धे विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः।
श्रेयोभिवर्षिणः सर्व्वे तथैवातिथिबान्धवाः ४२ ॥

टी०। उसको ब्रह्मा और देवता और ऋषि और पितर और कल्याण के बरसानेवाले सब अभ्यागत और भाई बन्धु ४२ ॥

मू० पशुपक्षिगणास्तसा ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः।
गाथाश्चात्र महाभाग स्वयमत्रिरगायत ४३ ॥

टी०। और पशु और पक्षीगण और कीट पतङ्ग इत्यादि और और जो छोटे जीवहैं वे सब तृप्त होकर आशीर्वाद देतेहैं और हे महाभाग! इस विषयमें एक कथा अत्रि मुनिने आप कहीहै ४३ ॥

मू० ताः शृणुष्व महाभाग गृहस्थाश्रमसंस्थिताः।
देवान् पितृंश्चातिथींश्च तद्वत्संपूज्यबान्धवान् ४४॥

टी०। ऐ महाभाग! गृहस्थाश्रम में प्राप्त उसको मैं कहतीहूं सुनौ कि देवता और पितर व पाहुन और भाई बन्धु का पूजन करने के पश्चात् ४४॥

मू० जामयश्च गुरूंश्चैव गृहस्थोविभवे सति।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ४५॥

टी०। विभव होनेपर गृहस्थ बहन व कुल स्त्री और गुरूको सन्तुष्ट करके फिर कुत्ता और डोम और पत्ती इत्यादि को भूमिमें भोजन देवै ४५॥

मू० वैश्वदेवंहि नामैतत् कुर्य्यात्सायं तथा दिने।
मांसमन्नं तथाशाकं गृहे यच्चोपसाधितम्।
न च तत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्ननिर्व्वपेत् ४६॥

टी०। इसीका नाम वैश्वदेव है इसको सायंकाल में और दिनमें भी करना चाहिये मांस अथवा अन्न अथवा शाक इत्यादि जो कुछ घरमें पकायाजाय बिना विधिपूर्वक उनको खिलाये उसको आप न खाय ४६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपदेशोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

तीसवां अध्याय॥

मदालसोवाच॥

मू० नित्यं नैमित्तिकञ्चैव नित्यनैमित्तिकंतथा।
गृहस्थस्य तु यत्कर्म्म तन्निशामयपुत्रक १॥

टी०। फिर मदालसा बोली कि हे तात! एक नित्य और दूसरा नैमित्तिक और तीसरा नित्य नैमित्तिक जो गृहस्थ का कर्म्म है वह मैं कहती हूं सुनौ १॥

मू० पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत्कथितंतव।
नैमित्तिकंतथैवान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम् २॥

टी०। पञ्च यज्ञके आश्रित जो यह कर्म्म तुमसे कहागया है उसको

नित्य कहते हैं और दूसरा पुत्रके जन्मके उत्सवमें जो कर्म्म कियाजाता है उसको नैमित्तिक कहते हैं २ ॥

मू० नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्व्वश्राद्धादिपण्डितैः।
तत्रनैमित्तिकंवक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयंतव ३ ॥

टी०। और पर्व्वोंमें जो श्राद्धादिक कियाहैं उसको पण्डितलोग नित्य नैमित्तिक कहते हैं और वहांपर अभ्युदयिक श्राद्ध जो नैमित्तिक है वह मैं तुमसे कहती हूं सुनो ३ ॥

मू० पुत्रजन्मनियत्कार्य्यं जातकर्म्मसमन्नरैः।
विवाहादौ च कर्त्तव्यंसर्वं सम्यक् क्रमोदितम् ४ ॥

टी०। और मनुष्यों को पुत्र जन्म में जातकर्म के साथ जो कार्य्य करना चाहिये वह सब अच्छीतरह से क्रमपूर्वक कहा हुआ कर्म विवाहादिकों में भी करना चाहिये ४ ॥

मू० पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्याता नान्दीमुखास्तुये।
पिण्डाश्च दधिसंमिश्रान् दद्याद्यवसमन्वितम् ५ ॥

टी०। और इसमें उन पितरों को भी पूजना चाहिये जिनको नान्दी मुख कहते हैं और दधि और यव मिश्रित पिण्डा देना चाहिये ५ ॥

मू० उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः।
वैश्वदेवविहीनं तत् केचिदिच्छन्तिमानवाः ६ ॥

टी०। और यजमानको चाहिये कि सावधानहोकर पूर्व्व या उत्तर मुख होकर करै और किसी किसीकी यह भी मतिहै कि उस समय विश्वेदेवों का कर्म्म न करै ६ ॥

मू० युग्माश्चात्र द्विजाः कार्य्यास्ते च पूज्याःप्रदक्षिणम्।
एतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्द्ध्वदेहिकम् ७ ॥

टी०। और इसमें सम ब्राह्मण रक्खै और उनका पूजनकरके प्रदक्षिण करै इसीको वृद्धिमें नैमित्तिक कहते हैं और अन्य और्द्ध्वदेहिक भी नैमित्तिक में समझी जाती है ७ ॥

मू० मृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टंश्रृणुष्वतत्।

दैवहीनं तथाऽर्घ्यं तथैवैकपवित्रकम् ८ ॥

टी०। जिसदिन जिसकी मृत्यु हो उस दिन उसका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये और वह यह है कि वहां पर विश्वेदेवों का आवाहन पूजन न करै और एकही पवित्री भी रखना चाहिये ८ ॥

मू०। आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्ज्जितम्।
प्रेतस्य पिण्डमेकञ्च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ९ ॥

टी०। और उसमें आवाहन और अग्नौकरण भी न करना चाहिये केवल प्रेत को एक पिण्डा दे वह भी बिकरा के पात्र में ९ ॥

मू० तिलोदकं चापसव्यं तन्नामस्मरणान्वितम्।
अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्रविसर्ज्जने १० ॥

टी०। फिर तिल और जल ले अपसव्य हो अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने से बायें बगल में करके मृतक का नाम लेकर कहै कि यह उसको अक्षय्य प्राप्तहो फिर वहां ब्राह्मण के विसर्जन स्थान में १० ॥

मू० अभिरम्यतामितिब्रूयाद्ब्रूयुस्तेऽभिरताःस्मह।
प्रतिमासं भवेदेतत् कार्य्यमावत्सरन्तरैः ११ ॥

टी०। याने ब्राह्मण के विसर्जन में यजमानको यह कहना चाहिये कि अभिरम्यतां तब ब्राह्मण कहैं कि अभिरताःस्म वह मास २ में करने से मासिक श्राद्ध कहलाताहै और मनुष्यों को इसको वर्ष दिनतक करना चाहिये ११ ॥

मू० अथ संवत्सरे पूर्णे यदावाक्रियते नरैः।
सपिण्डीकरणं कार्य्यं तस्यापि विधिरुच्यते १२ ॥

टी०। फिर वर्ष दिनके बाद जब सपिण्डीकरण करै उसकी विधि भी मैं कहती हूँ सुनो १२ ॥

मू० तत्रापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।
नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्ज्जितम् १३ ॥

टी०। अर्थात् उस सपिण्डीकरण में भी आवाहन और अग्नौकरण व विश्वेदेवा इत्यादि न करै केवल एक अर्घ्य दे और एकही पैंती रक्खै १३ ॥

मू० अपसव्यश्च तत्रापि भोजयेदयुजोद्विजान्।
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः १४ ॥

टी०। वहां भी अपसव्य रहना चाहिये और अयुग अर्थात् विषम ब्राह्मण को भोजन करावै और वहां पर अन्य विशेष है कि मास मास प्राति अधिक अधिक क्रिया करता जाय १४ ॥

मू० तंकथ्यमानमेकाग्रो वदन्त्या मे निशामय।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् १५ ॥

टी०। और हे पुत्र ! उस क्रिया को मैं कहती हूँ तुम एकाग्र चित्तहो कर सुनौ कि तिल और चन्दन और जल संयुक्त चार पात्र वहांधरै१५॥

मू० कुर्य्यात् पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक।
पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यञ्चैव प्रसेचयेत् १६ ॥

टी०। हे पुत्र ! उसमें तीन पात्र पितर के वास्ते और एक पात्र प्रेत के वास्ते रक्खै और उन तीनों पात्रों को तीन कोनों पर रक्खै और उसके बीच में प्रेत पात्र को रखकर उसपर जल सेचनकरै १६ ॥

मू० ये समाना इति जपन् पूर्ववच्छेषमाचरेत्।
स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् १७ ॥

टी०। और वहांपर येसमाना इत्यादि जो मन्त्र हैं उनको पढ़ता हुआ अर्घदेवै व जिस तरह पहिले कहागया है उसी तरह बाकी जो कर्म है उस को भी करै और स्त्रियोंकी एकोद्दिष्ट भी इसी तरह करनी चाहिये १७ ॥

मू० सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते।
प्रतिसम्वत्सरं कार्य्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः १८ ॥

टी०। और जिस स्त्री के पुत्र न हो उसका सपिण्डी करण भी नहीं होता और स्त्री की एकोद्दिष्ट हरसालमें मनुष्यों को करना चाहिये १८॥

मू० मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्।
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः १९ ॥

टी०। और जिस दिन स्त्री मरै उस दिन जैसा कि मनुष्यों को ऊपर

कहा गयाहै उसी तरह उसकी भी क्रिया करनी चाहिये और जो लड़का न हो तो सपिण्ड लोग और जो वे भी नहों तो उसका कर्म सहोदक वाले करें १९ ॥

मू० मातुः सपिण्डा ये च स्युर्येवमातुः सहोदकाः ।
कुर्य्युरेनं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुतः २० ॥

टी०। अथवा उसकी माता का जो सपिण्ड हो वह करे या माताका सहोदक करे और जो उसकी माता भी अपुत्र हो तो उसकी बेटी का बेटा उसकी क्रिया करे २० ॥

मू० कुर्य्युर्मातामहायैवं पुत्रिकास्तनयास्तथा ।
द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् २१ ॥

टी०। और मातामह की श्राद्धादिक क्रिया कन्या का बेटाकरे और द्व्यामुष्यायणनामक याने दोनों कुलके सम्बन्ध वाले नाती मातामह और पितामह २१ ॥

मू० पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि ।
सर्वाभावे स्त्रियः कुर्य्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् २२ ॥

टी०। इन इन लोगों की भी पूजा नित्य और नैमित्तिक श्राद्धके साथ करे और जिसके कोई नहो उसकी क्रिया उसकी स्त्री करे पर उसमें वेद मन्त्र न पढ़े २२ ॥

मू० तदभावे च नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बिना ।
तज्जातीयैर्नरैः सम्यक्दाहाद्याः सकलाःक्रियाः २३ ॥

टी०। और जो उसकी स्त्री भी नहो तो उसकी दाहादिक सब क्रिया उसके जाति वालों से राजा को अच्छी तरह से करा देना चाहिये २३ ॥

मू० सर्व्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः ।
एतास्ते कथिता वत्स नित्यनैमित्तिकास्तथा २४ ॥

टी०। किस वास्ते कि राजा सब वर्णों का परिवार होताहै मदालसा कहती है कि ऐ पुत्र ! यह इतनी नित्य और नैमित्तिक क्रिया तो तुमसे मैं कह चुकी २४ ॥

मू० क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु ।

दर्शस्तत्रनिमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः॥
नित्यतां नियतः कालस्तस्याः संसूचयत्यथ २५॥

टी०। अब और श्राद्ध के आश्रय की क्रिया भी जो नित्य नैमित्तिक हैं वह मैं कहती हूँ सुनो कि दर्शयानी अमावास्या उसमें निमित्त काल है और चन्द्र क्षयात्मक अर्थात् चन्द्र ग्रहण काल जो है उसको नित्य कहते हैं उस समय जो क्रिया की जाती है वह नित्यमें दाखिल है २५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेअलर्कानुशासनेनैमित्तिकादिश्राद्धकल्पः ३०

इकतीसवां अध्याय॥

मदालसोवच॥

मू० सपिण्डी करणादूर्द्ध्वंपितुर्यः प्रपितामहः।
सतुलेपभुजोयाति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः १॥

टी०। फिर मदालसा बोली कि हे पुत्र! सपिण्डीकरण के पीछे लेपभुजके भागी पिताके प्रपितामह हैं क्योंकि उनका पिण्डा आगे नहीं दियाजाता १॥

मू० तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक्।
सोऽपि सम्बन्धतोहीनमुपभोगं प्रपद्यते २॥

टी०। और हे पुत्र! उन सभों में जो चौथे वृद्धप्रपितामह हैं वे सम्बन्ध हीन हैं इसवास्ते वे भी भुजान्नलेप के भागी हैं २॥

मू० पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
पिण्ड सम्बन्धिनोह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ३॥

टी०। और पिता और पितामह और प्रपितामह यही तीन पुरुष पिण्ड सम्बन्धी जानने योग्य हैं ३॥

मू० लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात्।
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्चसप्तमः ४॥

टी०। और पितामह के जो हैं पितामह उनसे लगाकर तीन पुरुष लेपसम्बन्धी हैं और सातवां यजमान है ४॥

मू० इत्येषमुनिर्भिः प्रोक्तःसम्बन्धः सप्तपौरुषः ।
यजमानात् प्रभृत्यूर्द्धमनुलेपभुजस्तथा ५

टी० । इसी को मुनिलोग सातों पौरुष सम्बन्ध कहते हैं और यजमान से लगाकर ऊपर सब अनुलेप भोगी हैं ५ ॥

मू० ततोऽन्येपूर्व्वजाः सर्व्वे येचान्ये नरकौकसः ।
येच तिर्य्यक्त्वसापन्नायेच भूतादिसंस्थिताः ६

टी० । और उन अनुलेप भागी लोगों से ऊपर जो पहले पैदाहुए लोग हैं और जो लोग नरक में अथवा तिर्य्यक् योनि अथवा भूत योनि में प्राप्त हैं ६ ॥

मू० तान् सर्व्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्व्वन् यथा विधि ।
समाप्याययते वत्स येन येन शृणुष्वतत् ७ ॥

टी० । हे पुत्र ! उन सबों को यजमान विधि पूर्व्वक श्राद्ध करके जिस जिस तरह सम्यक् प्रकार से तृप्त करता है वह सुनो ७ ॥

मू० अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ।
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ८ ॥

टी० । कि श्राद्ध के स्थान पर मनुष्य जो अन्न छिटकातेहैं उससे वे पितर जो पिशाच योनि में हैं तृप्त होते हैं ८ ॥

मू० यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ।
तेन ते तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्ति प्रजायते ९ ॥

टी० । और स्नान करने के बाद श्राद्ध कर्त्ता के वस्त्र से जो पानी ज़मीन में टपकताहै उससे वे पितरलोग तृप्त होतेहैं जो वृक्षादिकमें प्राप्तहैं९ ॥

मू० यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ।
ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः १० ॥

टी० । और उसके अङ्ग से जो बूँद चूकर पृथ्वी पर गिरते हैं उन से वे पितर तृप्त होते हैं जो देव योनि में हैं १० ॥

मू० उद्धृतेष्वथपिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि ।
ताभिराप्यायनं प्राप्ता ये तिर्य्यक्त्वं कुले गताः ११ ॥

टी०। और पिण्डाउठाने में जो अन्न का किनुका उससे जमीन में गिरताहै उससे वे पितर लोग तृप्त होतेहैं जो तिर्य्यग् योनिमें प्राप्तहैं ११॥

मू० ये वादग्धाः कुले बालाः क्रिया योग्याह्यसंस्कृताः।
विपन्नास्तेऽन्नविकिरसम्मार्जनजलाशिनः १२॥

टी०। और मार्ज्जन करने में जो जल पृथ्वी पर गिरता है उससे व छिटकेहुए अन्न से उस कुल के वे लड़के तृप्त होते हैं जो क्रिया योग्य होकर विना संस्कारही के मर गये हैं १२॥

मू० भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलं यच्चाङ्घ्रिसेचने।
ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै १३॥

टी०। और ब्राह्मण लोग भोजन करके जो आचमन करते व हाथ पाँव धोते हैं उनके हाथ पाँव का जो जल पृथ्वी पर गिरताहै उससे और और पितर तृप्त होते हैं १३॥

मू० एवं योयजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम्।
कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा १४॥

टी०। इसी तरह उन ब्राह्मणों या यजमान का फेंकाहुआ अन्न जल जूँठा हो या पवित्र होवै १४॥

मू० तेनान्येतत्कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः।
प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक् श्राद्ध क्रियावताम् १५॥

टी०। हे पुत्र! उससे हरतरह श्राद्ध कर्म करनेवाले के पितर लोग जहां कहीं जिस योनि में प्राप्त रहते हैं वहीं पर वे तृप्त होते हैं १५॥

मू० अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः।
तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुक्कशाद्या सुयोनिषु १६॥

टी०। और अन्याय करके उपार्ज्जित वस्तु से जो मनुष्य श्राद्ध करते हैं उस से उन के वे पितर लोग तृप्त होते हैं जो डोम अथवा चाण्डाल की योनि में प्राप्त हैं १६॥

मू० एवमाप्यायनं वत्स बहूनामिह बान्धवैः।
श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बुविन्दुक्षेपेण जायते १७॥

टी०। और हे पुत्र! इसतरह श्राद्ध करतेहुए मनुष्योंसे श्राद्ध में अन्न और जलका बूंद गिराने से भी बहुतेरों को तृप्ति होती है १७॥

मू० तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्याशाकैरपि यथा विधि।
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति १८॥

टी०। इस वास्ते बान्धवों को श्राद्ध अवश्य करना चाहिये और हे पुत्र! विधि पूर्वक श्राद्ध शाक से भी जो कोई करता है तो श्राद्ध करतेहुए उसके कुल में कोई दुःख नहीं पाता है १८॥

मू० तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान्।
विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे १९॥

टी० और उस श्राद्धके नित्य और नैमित्तिक रूपकाल में जिस विधि से मनुष्य को करना उचित है उसको मैं कहती हूं सुनो १६॥

मू० कार्य्यं श्राद्धममावस्यां मासि मास्युडुपक्षये।
तथाष्टकास्वप्यवश्यमिच्छाकालं निबोध मे २०॥

टी०। कि हरमहीने श्राद्ध चन्द्रक्षय याने अमावास्यामें अष्टका समय में और इच्छाकाल में भी जो करना चाहिये वह मुझ से सुनो २०॥

मू० विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्य्येन्दुग्रहणेऽयने।
विषुवेरविसंक्रान्तौ व्यतिपाते च पुत्रक २१॥

टी०। ऐ पुत्र! और फिर उस समय में जिससमय कोई उत्तम ब्राह्मण आजावै और सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहणमें और अयनमें और विषुवकाल अर्थात् मेष और तुला की सूर्य संक्रान्ति में और व्यतिपात योगमें २१॥

मू० श्राद्धार्हद्रव्यसम्प्राप्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने।
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया २२॥

टी०। और श्राद्ध योग्यद्रव्य जहां प्राप्तहोवै वहां श्राद्ध करना चाहिये और जब दुःस्वप्न देखै और जब जन्म का नक्षत्र आवै और जब अरिष्ट ग्रहों का दोष शरीर में पहुँचै तब इच्छासे श्राद्धकरै २२॥

मू० विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः।
त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् २३॥

टी०। और श्राद्ध में उत्तम ब्राह्मण वे लोग हैं जो सज्जन और वेद पाठी अथवा योगी वेदके जाननेवालेहों या जो ज्येष्ठ सामवेद जानतेहों और त्रिणाचिकेत अर्थात् अथर्वणवेद के तीन भागोंके जाननेवाले और त्रिमधु अर्थात् मधुवाताऋतायते इत्यादि ऋग्वेद की ऋचाओं के जानने-वाले और त्रिसुपर्ण अर्थात् वहवृचों के वेदभाग का जाननेवाला और वे जो वेद के षडङ्ग जाननेवालेहों २३॥

मू० दौहित्रऋत्विग्जामातृस्वस्रीयाःश्वशुरस्तथा।
पञ्चाग्निकर्म्मनिष्ठश्च तपो निष्ठोऽथ मातुलः २४॥

टी०। और जो उस श्राद्धमें नातीहो या ऋत्विज या जामात या भगिनीका वेटा या श्वशुरहो और जो पञ्चाग्नि कर्म्म में निष्ठहो अथवा तपोनिष्ठहो अथवा मातुल अर्थात् मामाहो २४॥

मू० माता पितृपरश्चैव शिष्यसम्बन्धिवान्धवाः।
एतेद्विजोत्तमाः श्राद्धे समस्ता केतनक्षमा २५॥

टी०। और जो माता पिताका भक्तहो अथवा शिष्य या सम्बन्धी या बान्धवहो ये लोग श्राद्धस्थान में रहनेयोग्य उत्तम ब्राह्मण हैं २५॥

मू० अवकीर्णी तथारोगी न्यूने चाङ्गे तथाधिके।
पौनर्भवस्तथाकाणः कुण्डो गोलोऽथ पुत्रक २६॥

टी०। और हे पुत्र! जो लोग अवकीर्णी अर्थात् व्रतखण्डी या रोगी या अङ्गहीन या अधिकाङ्ग या उढ़रीका पुत्र या काना या कुण्ड याने पति के जीतहुये अन्य पुरुष से पैदाहुआ पुत्र या जो गोलक याने विधवा का पुत्रहे २६॥

मू० मित्रध्रुक्कुनखी क्लीवःश्यावदन्तो निराकृतिः।
अभिशस्तस्तु तातेन पिशुनः सोमविक्रयी २७॥

टी०। और मित्रद्रोही और कुनखी अर्थात् खिड़बिड़ नखवाला और नपुंसक और काले दाँतवाला और जातिसे भ्रष्ट और जिसको माता पिताने मिथ्यापवाद लगायाहो और चुगुल और सोमविक्रयी २७॥

मू० कन्यादूषयिता वैद्यो गुरुपित्रोस्तथोज्झकः।
भृतकाध्यापको मित्रः परपूर्व्वापतिस्तथा २८॥

टी०। और कन्यामें जो दूषण लगावै और वैद्य और जिसने गुरू या पिताको त्यागदियाहो और जो नौकरी करके पढ़ाताहो और जो मित्रहो और जो उद्दरी स्त्रीका पतिहो २८॥

मू० वेदोज्झोऽथाग्निसंत्यागी वृषलीपतिदूषितः।
तथान्ये च विकर्म्मस्था वर्ज्याः पित्र्येषु वै द्विजाः २९॥

टी०। और जो वेदका त्यागी होवे और अग्नि त्यागी और वृषलीपति याने शूद्रा स्त्रीका पति होवे और जो बिराने कर्ममें स्थित हो ऐसे ब्राह्मण पितरों के श्राद्ध स्थान में न रहें २९॥

मू० निमन्त्रयेत् पूर्व्वेद्युः पूर्व्वोक्तान् द्विजसत्तमान्।
दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत् ३०॥

टी०। और श्राद्धमें रहने योग्य जो ब्राह्मण हैं जिनका वर्णन पहिले होचुकाहै उन ब्राह्मणों को एक दिन पहिले निमन्त्रण देकर बुलाना चाहिये देवकर्म्महो अथवा पितृकर्म्महो उसमें वैसेही कल्पित करै ३०॥

मू० तैश्च संयतिभिर्भाव्यं यश्चश्राद्धं करिष्यति।
श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ३१॥

टी०। और जो श्राद्धकरै व वे ब्राह्मण जितेन्द्रिय होवैं जो श्राद्ध देकर व भोजनकर उस दिन स्त्री गमनकरै ३१॥

मू० पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते।
गत्वाच योषितं श्राद्धे यो भुंक्ते यश्चयच्छति ३२॥

टी०। तो उसके पितरों को उसी स्त्री और पुरुष के रज और वीर्यमें एक महीनेतक सोना पड़ता है और स्त्रीके पास जाकर जो श्राद्धमें भोजन करताहै व देताहै ३२॥

मू० रेतो मूत्रकृताहारास्तन्मासंपितरस्तयोः।
तस्मात्तु प्रथमं कार्य्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ३३॥

टी०। तो उसके पितरों को उस महीने भर तक रेत और मूत्र खाना पीना पड़ता है इस वास्ते हे पुत्र! ज्ञानी लोगों को चाहिये कि पहिले उत्तम ब्राह्मण को नेवता दें ३३॥

मू० अप्राप्तौतद्दिनेचापिवर्ज्यायोषित्प्रसङ्गिनः ।
भिक्षार्थमागतान् वापि काले संयमिनो यतीन् ३४ ॥

टी० । और जो उस दिन योग्य ब्राह्मण न मिले तो योषित प्रसङ्गी ब्राह्मणों को न बुलावै किन्तु उस समय जो भिखारी भिक्षाके वास्ते आये हों उनको व यतीहों अथवा संयमी ३४ ॥

मू० भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्ययतमानसः ।
यथैवशुक्लपक्षाद्वै पितॄणामसितः प्रियः ३५ ॥

टी० । उनको मनरोंके हुये श्राद्धकर्त्ता प्रणामादिक करके प्रसन्नकर भोजन करावै और जिस तरह शुक्लपक्ष से कृष्णपक्ष पितरों को अधिक प्रिय है ३५ ॥

मू० तथा पराह्णःपूर्वाह्णात् पितॄणामतिरिच्यते ।
सम्पूज्य स्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहे द्विजान् ३६ ॥

टी० । उसी तरह पूर्वाह्ण काल से अपराह्ण काल पितरों को प्यारा है तो फिर जो ब्राह्मण घरमें आगयेहों उन्हीं को कुशलप्रश्न से पूजकर आदर पूर्वक भोजन करावै ३६ ॥

मू० पवित्रपाणि राचान्तानासनेषूपवेशयेत् ।
पितॄणामयुजः कामं युग्मान् दैवे द्विजोत्तमान् ३७ ॥

टी० । और पवित्र हाथ वाला श्राद्धकर्ता आचमन किये हुये ब्राह्मणों को आसन पर बैठावै और पितृकर्म्मवाले श्राद्ध में ब्राह्मण विषम अर्थात् ताक और देवकर्म्म में सम अर्थात् जुफ्त भोजन कराना चाहिये ३७ ॥

मू० एकैकं वा पितॄणाञ्च देवानाञ्च स्व शक्तितः ।
तथा माता महानाञ्च तुल्यं वा वैश्वदेविकम् ३८॥

टी० । या पितृकार्य्य में और देवकार्य्य में अपनी सामर्थ्य से एकही एक ब्राह्मण भोजन करावै इसी तरह मातामह लोगों के वास्ते तुल्य वैश्वदेव कर्म्म है ३८ ॥

मू० पृथक् तयोस्तथाचान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
प्राङ्मुखान्दैवसंङ्कल्पान् पैत्र्यान् कुर्य्यादुदङ्मुखान् ३९॥

टी० । और किसी २ की यह भी मति है कि पितर और मातामहादि के वास्ते वैश्वदेवीय कर्म्म पृथक् पृथक् है और देवतों के वास्ते सङ्कल्प पूर्व मुख और पितरों के वास्ते उत्तर मुख होकर करना चाहिये ३६ ॥

मू० तथैव माता महानां विधिरुक्तो मनीषिभिः ।
विष्टरार्थे कुशान्दत्त्वापूज्य चार्घ्यादिना बुधः ४० ॥

टी० । इसी तरह मातामह इत्यादि की विधि पितरों की विधि के अनुसार करनी चाहिये और उनके आसन के वास्ते कुश रखदे और अर्घ्य इत्यादि से पूजन करे ४० ॥

मू० पवित्रकादि वै दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ।
कुर्य्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ४१ ॥

टी० । और पवित्रकादि देकर और उनसे आज्ञालेकर विद्वान् ब्राह्मण मन्त्रसे देवतोंका आवाहन करै ४१ ॥

मू० यवाम्भोभिस्तथा चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदेविकम् ।
गन्धमाल्याम्बुधूपञ्च दत्त्वासम्यक्सदीपकम् ४२ ॥

टी० । और यव और जलसे अर्घ्य विश्वेदेवको देवे और गन्ध माला धूप दीप नैवेद्य आचमन इत्यादि अच्छीतरहसे पञ्चोपचार करै ४२ ॥

मू० अपसव्यं पितॄणाञ्चसर्व्वमेवोपकल्पयेत् ।
दर्भांश्च द्विगुणान्दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्यच ४३ ॥

टी० । फिर आप अपसव्य होकर यही सब पितरोंको भी देवै फिर द्विगुण कुश देकर और उनसे आज्ञालेकर ॥ ४३ ॥

मू० मन्त्रपूर्व्वं पितॄणाञ्च कुर्य्यादावाहनंबुधः ।
अपसव्यं तथाचार्घ्यं यवार्थञ्च तथातिलैः ४४ ॥

टी० । विद्वान् अपसव्य होकर मन्त्र पूर्व्वक पितरों का आवाहन करै फिर यव की जगह तिल से पितरों को अर्घ्य दे ४४ ॥

मू० निष्पादयेन्महाभाग पितॄणाम्प्रीणनेरतः ।
अग्नौकार्य्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ४५ ॥

टी० । और हे महाभाग । पितरोंके भक्तोंको चाहिये कि इस विधि को

कर के ब्राह्मणों से आज्ञालेकर अग्नौकरण जो कार्य्य है वह करै ४५ ॥

मू० जुहुयाद्व्यञ्जनं क्षारवर्ज्यमन्नं यथा विधि ॥
अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ४६ ॥

टी०। और व्यञ्जन लवण छोड़कर केवल अन्न लेकर "कव्यवाहनाय स्वाहा" यह मन्त्र कहकर विधिपूर्वक होमकरै यह प्रथम आहुतिहै ४६॥

मू० सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत्।
यमाय प्रेतपतये स्वाहेति त्रितयाहुतिः ४७ ॥

टी०। और "सोमाय पितृम ते स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर दूसरी आहुति दे और "यमाय प्रेतपतये स्वाहा" इस मन्त्रको पढ़कर होम दे यह तीसरी आहुति है ४७ ॥

मू० हुतावशिष्टं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम्।
भाजनालम्भनं कृत्वा दद्यान्नं यथा विधि ४८ ॥

टी०। और आहुति देकर जो अन्न बाकी रहजाय उसको ब्राह्मण के पात्रमें देदे और पात्रको छूकर विधिपूर्वक और और अन्नभी देवै ४८ ॥

मू० यथा सुखं जुषध्वं भो इति वाच्यमनिष्ठुरम्।
भुञ्जीरंश्चततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ४९ ॥

टी०। फिर प्रीतिपूर्वक यह ब्राह्मणों से कहै कि हे विश्वेदेवो। आप लोग सुख संयुक्त भोजन कीजिये उस समय ब्राह्मणों को भी चाहिये कि सुख समेत एक चित्त होकर भोजन करैं ४९ ॥

मू० यद्यदिष्टतमं तेषां तत्तदन्नमसत्वरम्।
अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात् सम्भवेन प्रलोभयन् ५० ॥

टी०। और भी जो जो अन्न ब्राह्मणों को रुचै वह श्रद्धापूर्वक जल्दी देवै और अच्छे अच्छे अन्न लेकर ब्राह्मणों के सामने खड़ा रहै और लोभ देदे कर खिलावै ५० ॥

मू० रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रांस्तिलैश्चविकिरेन्महीम्।
सिद्धार्थकैश्चरक्षार्थं श्राद्धेहिप्रचुरच्छलम् ५१ ॥

टी०। और रक्षा के वास्ते रक्षोघ्न मन्त्र पढ़कर तिल और सरसों को वहां पृथ्वी पर छिड़कदे क्योंकि श्राद्ध में बहुत छलहोते हैं ५१ ॥

मू० पृष्टैस्तस्तैश्च तृप्ताःस्थतृप्ताःस्मइतिवादिभिः।
अनुज्ञातो नरस्त्वन्नंप्रकिरेतभुविसर्व्वतः ५२॥

टी०। फिर ब्राह्मणों से पूछे कि आपलोग तृप्त हुये और ब्राह्मणलोगकहैं कि तृप्त होगये उनसे आज्ञा लेकर मनुष्य भूमि में सब ओर अन्न छिड़के ५२॥

मू० तद्वदाचमनार्थायदद्यादापः सकृत् सकृत्।
अनुज्ञाञ्चलततःप्राप्य यतवाक्कायमानसः ५३॥

टी०। और वैसेही उन ब्राह्मणों के आचमन के वास्ते बार २ जल देवै और उन लोगों से आज्ञा लेकर मन वचन कायाको रोंककर ५३॥

मू० सतिलेन ततोऽन्नेनपिण्डान् सर्वेण पुत्रक।
पितॄनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ५४॥

टी०। ऐ पुत्र! तिलके साथ सब अन्न का पिण्डा बनाकर पितरों के वास्ते उच्छिष्ट के पास कुशों में रख देवै ५४॥

मू० पितृतीर्थेन तोयञ्च दद्यात्तेभ्यः समाहितः।
पितॄनुद्दिश्ययद्भक्त्या यजमानोनृपात्मज ५५॥

टी०। और ऐ राजकुमार! सावधान होतेहुए यजमान पितरों का उद्देशकर भक्ति पूर्व्वक पितृ तीर्थ अर्थात् तर्जना और अंगुष्ठ के बीच होकर पितरों को जल देवै ५५॥

मू० तद्वन्मातामहानाञ्च दत्त्वा पिण्डान् यथाविधि।
गन्धमाल्यादिसंयुक्तं दद्यादाचमनंततः ५६॥

टी०। और वैसेही विधि के अनुसार मातामह लोगों को भी पिण्डा दे और गन्ध और माला इत्यादि देकर उसके बाद आचमन दे ५६॥

मू० दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्यासुस्वधास्त्वितितान् वदेत्।
तैश्चतुष्टैस्तथेत्युक्तेवाचयेद्वैश्वदेविकान् ५७॥

टी०। और यथाशक्ति दक्षिणा देकर सुस्वधा अस्तु यह कहदेवै और उन संतुष्ट ब्राह्मणों के हां कहने पर ब्राह्मणों से वैश्वदेविक मन्त्र पढ़ावै ५७॥

मू० प्रीयंतामिति भद्रंवोविश्वेदेवा इतीरयन्।
तथेति चोक्ते तैर्विप्रैःप्रार्थनीयास्तदाशिषः ५८॥

टी०। बाद इसके "वैश्वदेवाभद्रंवः प्रीयन्तां" इस मन्त्र का उच्चारण करके जब वे ब्राह्मण लोग तथा कहैं तब वह यजमान आशीर्वाद की प्रार्थना करै ५८॥

मू० विसर्जयेत् प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः।
आद्वारमनुगच्छेच्चागच्छेच्चानुप्रमोदितः ५९॥

टी०। और प्रियवचन कहकर भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को प्रणाम कर के बिदा करै किन्तु अपने दरवाजे तक पहुँचाकर उनसे आज्ञालेकर फिर आवै ५९॥

मू० ततो नित्यक्रियां कुर्य्याद्भोजयेच्च तथातिथीन्।
नित्यक्रियां पितॄणाञ्चकेचिदिच्छन्ति सत्तमाः ६०॥

टी०। और उसके बाद नित्य कर्म करै व अभ्यागतों को भोजन करावै और कोई कोई कहते हैं पितरों की नित्यक्रिया अर्थात् पितृश्राद्ध हररोज करना चाहिये ६०॥

मू० नपितॄणां तथैवान्ये शेषंपूर्व्ववदाचरेत्।
पृथक्पाकेनचेत्यन्ये केचित् पूर्व्वञ्च पूर्व्ववत् ६१॥

टी०। और बाज़े लोगों की यह मतिहै कि हररोज पितरों की श्राद्ध न करै और बाकी जो कर्म्म है उसको जैसा कि पहिले कहागया उसी तरह करै और कोई कोई कहते हैं कि पृथक् पाक से करै और कोई कहते हैं कि पहले की तरह सब करै ६१॥

मू० ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्न्नरः।
एवंकुर्व्वीत धर्म्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः ६२॥

टी०। बाद इसके वह अन्न अपने भृत्यादिकों के साथ मनुष्य भोजन करै मदालसा कहती है कि धर्मात्मा लोगोंको चाहिये कि सावधान हो कर इसीतरह पितरों की श्राद्ध कियाकरै ६२॥

मू० यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः ६३ ॥

टी०। या जिस तरह उत्तम ब्राह्मणोंको तुष्टिहो वैसाकरे और श्राद्धमें तीन बहुत पवित्र हैं नाती और तिल और कुतुप काल अर्थात् दोपहर से नीचे एक दण्ड और दोपहर से ऊपर एक दण्डतकयही एक मुहूर्त्त ६३॥

मू० वर्ज्यानि चाहुर्विप्रेन्द्र कोपोऽध्वगमनं त्वरा।
राजतञ्च तथापात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक ६४॥

टी०। और ऐ पुत्र! विधिके जाननेवाले लोग कहते हैं कि श्राद्ध में क्रोध और अध्व याने मार्ग्गगमन और शीघ्रताये तीन बातें निषिद्ध हैं और हे अलर्क! श्राद्ध में चांदीका पात्र प्रशस्त (उत्तम) है ६४॥

मू० रजतस्य तथाकार्य्यं दर्शनं दानमेव वा।
राजतेहि स्वधा दुग्ध्वा पितृभिः श्रूयते मही॥
तस्मात्पितॄणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्द्धनम् ६५॥

टी०। और चांदीका दर्शनही या दान करना चाहिये क्योंकि चाँदी के पात्रमें पितरों ने स्वधा कहकर पृथ्वी को दुहाहै यह सुनाजाता है इस वास्ते चाँदी पितरों को अभीष्ट और प्रीतिको बढ़ानेवाली है ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेअलर्कानुशासनेपार्वणश्राद्धकल्पः ३१॥

बत्तीसवां अध्याय॥

मदालसोवाच॥

मू० अतः परं शृणुष्वेमं पुत्रभक्त्या यदाहृतम्।
पितॄणां प्रीतये यद्वा वर्ज्यं वा प्रीतिकारकम् १॥

टी०। फिर मदालसा ने कहा कि ऐ पुत्र! इसके उपरान्त इसको सुनिये कि भक्ति से लाईहुई जो वस्तु पितरोंकी प्रसन्नता के लिये होती है और फिर जो बातें अनुचितहैं व जो प्रीति कारकहैं वह मैं कहतीहूँ १॥

मू० मासं पितॄणां तृप्तिश्च हविष्यान्नेन जायते।
मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः २॥

टी०। वह यह है कि हविष्यान्न अर्थात् खीरपूरी इत्यादि अन्नके देने से पितृ लोग एक महीने तक तृप्त रहते हैं और मछली का मांस देने से दो महीने तक बाबालोग तृप्त रहते हैं २॥

मू० त्रीन्मासान् हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये।
चतुर्म्मासास्तु पुष्णाति शशस्य पिशितं पितॄन् ३॥

टी०। और हरिण के मांससे तीन महीने तक पितरोंकी तृप्तिके लिये जानना चाहिये और चौगड़ाके मांससे चारमहीनेतक पितर तृप्तरहतेहैं ३॥

मू० शाकुनंपञ्चवैमासन्षण्मासान्शूकरामिषम्।
छागलं सप्तवैमासानैणेयञ्चाष्टमासिकीम् ४॥

टी०। और तीतर के मांस देने से पांच महीने तक और सुअर के मांससे छः महीने तक और छाग के मांससे सात महीने तक और ऐण हिरणके मांससे आठ महीने तक पितृ लोग तृप्त रहते हैं ४॥

मू० करोति तृप्तिं नव वै रुरोर्म्मांसं न संशयः।
गवयस्यामिषं तृप्तिं करोति दशमासिकीम् ५॥

टी०। और चित्राङ्ग हिरण के मांससे नव महीने तक तृप्तिरहती है इसमें सन्देह नहीं और गवय हिरणके मांस से दश महीने तक पितर तृप्त रहते हैं ५॥

मू० तथैकादशमासांस्तु औरभ्रंपितृतृप्तिदम्।
सँव्वत्सरं तथागव्यं पयः पायसमेववा ६॥

टी०। और भेड़ा के मांससे ग्यारह महीने तक और गऊ के दूध से व उसमें खीर बनाकर देनेसे वर्ष दिन तक पितृ तृप्त रहते हैं ६॥

मू० वाध्रीणस्यामिषं लौहं कालशाकं तथा मधु।
दौहित्रामिषमन्यच्चयच्चान्यत् स्वकुलोद्भवैः ७॥

टी०। और वाध्रीणस और लौह याने कुछ सुर्ख छाग के मांससे और कालशाक और मधु और नाती व मांस और अपने कुल परिवार के लाये हुये अन्य मांस से भी पितृ लोग तृप्त होते हैं ७॥

१ त्रिपिबंत्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वाध्रीणसं तुतं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृ कर्मणि॥

मू० अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा।
पितॄणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धञ्च पुत्रक ८॥

टी०। फिर मदालसा ने कहा कि हे पुत्र! गया की श्राद्ध और गौरी पुत्र याने दश वर्ष की स्त्री का पुत्र पितरों को अत्यन्त तृप्ति देते हैं इसमें सन्देह नहीं ८॥

मू० श्यामाक राजश्यामाकौ तद्वच्चैव सतीनकाः।
नीवारा पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये ९॥

टी०। और अन्नमें श्यामाक और राजश्यामाक और मटर नीवार और पौष्कल ये सब पितरों को तृप्त करने के वास्ते उत्तम हैं ६॥

मू० यवव्रीहिसगोधूमतिलामुद्गाः ससर्षपाः।
प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चाति शोभनाः १०॥

टी०। और यव और गेहूँ और तिल और मूँग और सरसों और काकुनि और कचनार और निष्पाव यानेलोबिया इत्यादि सब श्रेष्ठ हैं १०॥

मू० वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः।
विप्राषिकामसूराश्च श्राद्धकर्म्मणि गर्हिताः ११॥

टी०। और मकई और राजभाषा (भटवांस) व चनवां और विप्राषी और मसूर ये सब श्राद्ध कर्म्म में वर्ज्जनीय हैं ११॥

मू० लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम्।
करम्भं यानिचान्यानि हीनानि रसवर्णतः १२॥

टी०। और लहसुन व गाजर और पियाज और मूली और करम्भ याने दही व सत्तू और इस के सिवाय और और जो रसवरंग से नीच वस्तुहैं वह सब वर्ज्जित हैं १२॥

मू० गान्धारिकामलाबूनि लवणान्यूषराणि च।
आरक्ताये च निर्य्यासाः प्रत्यक्षलवणानिच १३॥

टी०। और गान्धारिका और अलाबू (लौकी) और भूमिमें पैदाहुए लवण और सुर्खगोंद और प्रत्यक्ष लवण १३॥

मू० वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वा चानशस्यते।

यच्चोत्कोचादिनाप्राप्तं पतिताद्यदुपार्ज्जितम् १४ ॥

टी०। ये सब श्राद्ध में वर्ज्जित हैं और जो वस्तु कहने में अच्छी न हो और जो घूसिलेने से धन मिला है वह भी वर्ज्जित है और पतित की कमाई हुई द्रव्य श्राद्ध में न लगाना चाहिये १४॥

मू० अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम्।
दुर्गन्धिफेनिलञ्चाम्बु तथैवाल्पसरोदकम् १५॥

टी०। और जो धन अन्यायसे कमाया गया हो या कन्या बेचकर जो धन प्राप्त कियाहो और जिस चीज में दुर्गन्ध हो और जिस जल में फेना हो और छोटे सरोवर का जल यह सब श्राद्ध में न लगाना चाहिये १५॥

मू० नलभेद्यत्रगौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम्।
यच्चसर्व्वापयोत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् १६॥

टी०। और जिस जगह के जल से गऊ न तृप्त होसके और बासी और जिस तालाव का यज्ञ न हुआ हो या जिस तालाब का जल अपेय हो १६॥

मू० तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्म्मणि।
मार्गमाविकमौष्ट्रञ्च सर्वमैकशफञ्च यत् १७॥

टी०। हे तात! यह सब जल हमेशा श्राद्ध कर्म में वर्ज्जित है और मृगा और भेड़ा और ऊँट और सब एकशफ अर्थात् जिस जानवरका खुर चिरा नहो जैसे घोड़ा इत्यादि १७॥

मू० माहिषञ्चामरञ्चैवधेन्वागोश्चाप्यनिर्द्दशम्।
पित्रार्थंमेप्रयच्छस्वेत्युक्त्वायच्चाप्युपाहृतम् १८॥

टी०। और भैंस और चमरी गाय और देशी तुरन्तकी ब्याई हुई गऊ का दूध जो कि ब्याने से दश दिन के भीतरहै और जो दूध कोई मांगकर लायाहो कि मुझे पितरों के लिये देवो १८॥

मू० वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पयः श्राद्धकर्म्मणि।
वर्ज्या जन्तुमतीरूक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना १९॥

टी०। ये सब वृध अच्छे लोगों को श्राद्ध कर्म में ग्रहण करना न चाहिये और जिस जगह पर कोई जानवर हो या रूखी हो और जो पृथ्वी अग्नि से जल गईहो १६॥

मू० अनिष्टदुष्टशब्दोग्रदुर्गन्धाचात्र कर्म्मणि।
कुलापमानकाः श्राद्धे व्यायुज्वकुलहिंसकाः २०॥

टी०। इन जगहों पर श्राद्ध करना न चाहिये और इस कर्म्म में जो जो चीजें निषेध हैं और कुवाक्य और जिस चीज में दुर्गन्ध हो और जो मनुष्य कुलापमानी और कुलघाती हो उनको इसकर्म में वर्जित करै२०॥

मू० नग्नाःपातकिनश्चैवहन्युर्दृष्ट्यापितृक्रियाम्।
अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः २१॥

टी०। और जो नङ्गा हो और जो पापी हो ऐसी ऐसी चीजों और ऐसे ऐसे लोगों के श्राद्ध देखने से निष्फल होजाता है और नपुंसक और स्त्री और लूले लंगड़े और मुर्गा और ग्रामसूकर २१॥

मू० श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्चदर्शनात्।
तस्मात्सुसंवृतो दद्यात्तिलैश्चावकिरन्महीम् २२॥

टी०। और कुत्ता और राक्षस इत्यादि के देखने से श्राद्ध नाश होजाता है इस वास्ते वसन से ओट करके उस जगह पर तिल छिटका देना चाहिये २२॥

मू० एवं रक्षाभवेच्छ्राद्धे कृता तातोभयोरपि।
शावसूतकसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेवच २३॥

टी०। हे तात! इस तरह श्राद्ध करने से रक्षा होती है और बालक व जिसको अशौचहो और बहुत दिनका रोगीहो इनसे छुईहुई श्राद्ध २३॥

मू० पतितैर्मलिनैश्चैव न पुष्णाति पितामहान्।
वर्जनीयन्तथा श्राद्धे तथोदक्याश्चदर्शनम् २४॥

टी०। और जिस श्राद्ध को पतित और मलीन जन देखैं वह पितरों को तृप्ति नहीं देती है और रजस्वला स्त्री का दर्शन ये सब श्राद्ध में वर्जित हैं २४॥

मू० मुण्डशौण्डसमाभ्यासो यजमानेन चादरात्।
केशकीटावपन्नञ्च तथाश्वभिरवेक्षितम् २५॥

टी०। और संन्यासी और मदिरा पीनेवालों का समीप स्थान न होना चाहिये और जिस चीज़ में बाल अथवा कीड़ा पड़गया हो और जिस चीज़ पर कुत्तेकी दृष्टि पड़गईहो उसको यजमान आदर से छोड़देवै२५॥

मू० पूतिपर्य्युषितञ्चैव वार्त्ताक्यभिषवांस्तथा।
वर्जनीयानि वैश्राद्धे यच्च वस्त्रानिलाहतम् २६॥

टी०। और जो चीज बासी और दुर्गन्धित हो और वार्ताकी अर्थात् भांटा और सोमवल्लीका रस और जो चीज कपड़े की हवा से सुखलाई गई हो ये सब चीजें उस जगह पर न रहैं २६॥

मू० श्रद्धया परयादत्तं पितॄणां नामगोत्रतः।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेतितत् २७॥

टी०। किन्तु श्रद्धा पूर्वक पितरों का नाम और गोत्र उच्चारण करके जो पिण्डा इत्यादि दियाजाता है वह वही भोजन होजाताहै कि जिस भोजनवाले उसके पितर होते हैं २७॥

मू० तस्माच्छ्रद्धावतापात्रे यच्छस्तं पितृकर्म्मणि।
यथावच्चैवदातव्यं पितॄणां तृप्तिमिच्छता २८॥

टी०। इसवास्ते जो वस्तु पितृ कार्य्य में उत्तम हो वह पितरों के तृप्त होने के वास्ते सुपात्र को श्रद्धायुक्त देना चाहिये २८॥

मू० योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता।
योगाधाराहि पितरस्तस्मात्तान् पूजयेत् सदा २९॥

टी०। और जिस लिये पितर लोग योगाधार हैं इसवास्ते विद्वान्को श्राद्ध में सदा योगियों को भोजन कराना चाहिये और सदा उनको पूजना चाहिये २९॥

मू० ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगीत्वग्राशनो यदि।
यजमानञ्च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ३०॥

टी०। क्योंकि हजार ब्राह्मणों समेत यदि योगी पहिले भोजन करता

है यजमान और खानेवाले उसी तरह ये दोनों श्राद्ध के द्वारा संसार पार होजाते हैं जिसतरह नौका पर चढ़कर पार उतरते हैं २० ॥

मू० पितृगाथास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ।
यागीताः पितृभिः पूर्व्वमैलस्यासीन्महीपतेः ३१ ॥

टी०। ब्रह्मके जाननेवाले लोगों ने ऐसे स्थानपर पितरों की कथा गाया है जिस को महाराज ऐल के पितरों ने गायारहै ३१ ॥

मू० कदानः सन्ततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः ।
योयोगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ३२ ॥

टी०। कि कब हमारे वंश में किसी के ऐसा मनुष्य अवतार लेगा जो योगी को भोजन कराके भूमि में पिण्डा देगा ३२ ॥

मू० गयायामथवापिण्डं खड्गमांसंमहाहविः ।
कालशाकंतिलाढ्यं वा कृसरं मास तृप्तये ३३ ॥

टी०। गयाजी में पिण्ड देने से और खड्ग याने गैंड़े के मांस से और खीर और काल शाक और तिल और खिचड़ी इन सभों से एक महीने तक पितरलोग तृप्त रहते हैं ३३ ॥

मू० वैश्वदेवञ्च सौम्यञ्च खड्गमांसं परं हविः ।
विषाणवर्ज्यंखड्गाप्त्या आसूर्य्यञ्चाऽश्नुवामहे ३४ ॥

टी०। और विश्वेदेव का कर्म्म और उत्तम वस्तु और खड्ग का मांस और हविष्यान्न और विना सींग के खड्गका मांस इन सब चीजों से पितरलोगों ने कहा है कि हम दिनमें तृप्त होते हैं ३४ ॥

मू० दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ।
मधुसर्पिः समायुक्तं पायसं दक्षिणायने ३५ ॥

टी०। और त्रयोदशी और मघा नक्षत्र में विधि पूर्व्वक श्राद्ध करना चाहिये और जब सूर्य्य दक्षिणायन हों तब मधु और घी संयुक्त खीर पितरों को देना चाहिये ३५ ॥

मू० तस्मात्सम्पूजयेत् भक्त्या स्वपितॄन् पुत्र मानवः ।
कामानभीप्सन् सकलान् पापाच्चात्मविमोचनम् ३६ ॥

टी०। हे पुत्र ! जोकि इससे मुक्ति और मनकीकामना इत्यादि प्राप्त होती है और शरीर का पाप सब छूट जाता है इसवास्ते मनुष्योंको भक्ति-पूर्व्वक पितरों का पूजन करना चाहिये ३६ ॥

मू० वसून् रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः।
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरःश्राद्धतर्पिताः ३७ ॥

टी०। और आठों वसु और एकादश रुद्र और द्वादश सूर्य्य और सम्पूर्ण ग्रह नक्षत्र तारा इन सबों को पितरलोग उस मनुष्य के ऊपर प्रसन्न कराते हैं जो श्राद्ध में पितरों को तृप्त करता है ३७ ॥

मू० आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ३८ ॥

टी०। और जो मनुष्य श्राद्ध में पितरों को तृप्त करताहै उसको पितर लोग आयुर्बल और बुद्धि और धन और विद्या और मोक्ष और स्वर्ग और राज्य और सुख यह सब कुछ देते हैं ३८ ॥

मू० एतत्ते पुत्र कथितं श्राद्धकर्म्म यथोदितम्।
काम्यानां श्रूयतां वत्स श्राद्धानां तिथिकीर्त्तनम् ३९ ॥

टी०। मदालसा कहती है कि हे पुत्र ! यह श्राद्धकर्म्म की जैसी विधि है वह मैंने तुमसे कही अब काम्य श्राद्ध का तिथिकीर्त्तन मैं कहती हूँ सुनो ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेश्राद्धकल्पोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ३२ ॥

अथ तेंतीसवां अध्याय ॥

मदालसोवाच ॥

मू० प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा।
वरार्थिनी तृतीयातु चतुर्थी शत्रुनाशिनी १ ॥

टी०। फिर मदालसा कहती है कि हे अलर्क ! परिवामें श्राद्धकरनेसे धन होताहै और द्वितीया में श्राद्धकरने से द्विपदकी प्राप्तिहोती है और तृतीया में करने से इच्छा पूरी होती है और चौथ में करने से शत्रु नाशहोता है १ ॥

मू० श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः ।
गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् २ ॥

टी०। और पञ्चमी में श्राद्धकरने से लक्ष्मी प्राप्त होती है और षष्ठी में करने से मनुष्य लोकमें पूज्यहोता है और सप्तमी में करने से गणाधिप होता है और अष्टमी में करने से हरतरह की वृद्धि होती है २ ॥

मू० स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् ।
वेदांश्च प्राप्नुयात् सर्व्वानेकादश्यां क्रियापरः ३ ॥

टी०। और नवमी में श्राद्ध करने से स्त्री मिलती है और दशमी में करने से कामना पूरी होती है और एकादशी में करने से मनुष्य चारों वेद जानता है ३ ॥

मू० द्वादश्यां जयलाभञ्च प्राप्नोति पितृपूजकः ।
प्रजां मेधां पशुं वृद्धिं स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ४ ॥

टी०। और द्वादशी में श्राद्ध करने से जय होती है और प्रजा और बुद्धि और पशु इत्यादि की वृद्धि और स्वतन्त्रता और उत्तम पुष्टि होती है ४ ॥

मू० दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्व्वाणस्तुत्रयोदशीम् ।
अवाप्नोति न सन्देहः श्राद्धं श्रद्धापरो नरः ५ ॥

टी०। और दीर्घायु और ऐश्वर्य्यादि त्रयोदशी में श्रद्धासंयुत श्राद्ध करनेवाले मनुष्य को मिलता है इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है ५॥

मू० यथा सम्भाविताऽन्नेन श्राद्धसम्पत्समन्वितः ।
युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ६ ॥

टी०। और जो अन्न प्राप्त हो उसी से श्राद्धकी वस्तु से संयुत मनुष्य को श्राद्ध करना चाहिये और जो पितृ युवा अवस्थामें मरगये हों अथवा शस्त्र से मारे गये हों ६ ॥

मू० तेन कार्य्यञ्चतुर्दश्यां तेषां प्रीतिमभीप्सता ।
श्राद्धं कुर्व्वन्नमावस्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ७ ॥

टी०। उनकी प्रीति को चाहनेवाले पुरुष को चतुर्दशी में श्राद्ध करना

चाहिये और जो मनुष्य पवित्र होके यत्न सहित अमावस्या में श्राद्ध करता है ७॥

मू० सर्व्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गञ्चानन्तमश्नुते।
कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानवः ८॥

टी०। वह मनुष्य सम्पूर्ण कामना और अनन्त स्वर्ग को प्राप्त होताहै और कृत्तिका नक्षत्रमें भी पितरों का पूजन करने से मनुष्य को स्वर्ग होताहै ८॥

मू० अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये चौजस्वितां लभेत्।
शौर्य्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्व्वसौ ९॥

टी०। और जिस किसी को सन्तान की कामना हो उसको रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये और मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य बलवान् और प्रतापवान् होताहै और आर्द्रा में श्राद्ध करने से शूर होताहै और पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करने से खेत वगैरह मिलताहै ९॥

मू० पुष्टिं पुष्ये सदाभ्यर्च्य श्लेषासु च वरान्सुतान्।
मघासु स्वजनश्रेष्ठ्यं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च १०॥

टी०। और पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करने से पुष्टि और श्लेषा में करने से उत्तम पुत्र और मघा में करने से निजजनों में श्रेष्ठता मिलती है और पूर्व्वाफाल्गुनी में श्राद्ध करने से मनुष्य भाग्यवान् होताहै १०॥

मू० प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च।
प्रयाति श्रेष्ठतां सत्यं हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ११॥

टी०। और उत्तराफाल्गुनी में श्राद्ध करने से मनुष्य दानी और पुत्रवान् होताहै और हस्त में श्राद्ध करने से मनुष्य सत्य और श्रेष्ठता को पाताहै ११॥

मू० रूपयुक्तश्च चित्रासु तथापत्यान्यवाप्नुयात्।
वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा १२॥

टी०। और चित्रा में श्राद्ध करने से सुन्दरता व सन्तान पाताहै और स्वाती में करने से मनुष्य को व्यापार में लाभ होता है और विशाखा में श्राद्ध करने से पुत्र प्राप्त होता है १२॥

मू० कुर्व्वन्तश्चानुराधासु लभन्ते चक्रवर्त्तिताम्।
आधिपत्यञ्च ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम् १३॥

टी०। और जो लोग अनुराधा में श्राद्ध करते हैं वे चक्रवर्त्ती राजा होते हैं और ज्येष्ठा में श्राद्ध करने से स्वामी होताहै और मूल में श्राद्ध करने से मनुष्य आरोग्य रहता है १३॥

मू० आषाढासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकता।
श्रवणे च शुभाल्लँलोकान् धनिष्ठासु धनं महत् १४॥

टी०। और पूर्व्वाषाढ में श्राद्ध करने से यश होताहै और उत्तराषाढ में श्राद्ध करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होताहै और श्रवण में श्राद्ध करने से सुन्दर लोक मिलता है और धनिष्ठा में श्राद्ध करने से बहुत अच्छा धन और महत्त्व मिलता है १४॥

मू० वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिन्तु वारुणे।
अजाविकं प्रौष्ठपदे विन्देद्गावस्तथोत्तरे १५।

टी०। और अभिजित् में श्राद्ध करने से मनुष्य वेदवित् होताहै और शतभिष में श्राद्ध करने से मनुष्य वैद्य होताहै और पूर्व्वाभाद्र में श्राद्ध करने से भेड़ी और बकरी पाताहै और उत्तराभाद्रमें श्राद्ध करनेसे गोधन प्राप्त होताहै १५॥

मू० रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान्।
श्राद्धंकुर्व्वंस्तथाप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम्॥
तस्मात्काम्यानिकुर्व्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् १६॥

टी०। और रेवती में श्राद्ध करने से सोना और चाँदी हाथ आता है और अश्विनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से घोड़ा प्राप्त होताहै और भरणी में श्राद्ध करने से आयुर्बल बढ़ता है इसलिये तात्पर्य्य यह है कि इन्हीं नक्षत्रों में ज्ञानी लोग श्राद्ध करें १६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकाम्यश्राद्धफलकथनन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३॥

अथ चौंतीसवां अध्याय ॥

मदालसोवाच ॥

मू० एवं पुत्रगृहस्थेन देवताःपितरस्तथा ।
सम्पूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः १ ॥

टी० । फिर मदालसाने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थ लोगों को चाहिये कि देवतों की पूजा हव्य से और पितरों की पूजा कव्य से और अतिथि व भाइयोंकी पूजा अन्नादि से करें १ ॥

मू० भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवोयाचमानाश्च ये चान्ये वसतागृहे २ ॥

टी० । और भूत और प्रेत व नौकर चाकर और पशु और पक्षी और पिपीलिका और याचक व अन्य जीवजन्तु २ ॥

मू० सदाचारवता तात साधुना गृहमेधिना ।
पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ३ ॥

टी० । घरमें बसते हुये अच्छे व उत्तम आचारवाले गृहस्थ को चाहिये के इन सब को अन्न देवैं और हे पुत्र ! जो मनुष्य नित्य नैमित्तिक क्रिया को छोड़कर भोजन करते हैं वे पाप भोग करते हैं ३ ॥

अलर्कउवाच ॥

मू० कथितं मे त्वया मात र्नित्यं नैमित्तिकञ्च यत् ।
नित्यनैमित्तिकञ्चैव त्रिविधं कर्म्मपौरुषम् ४ ॥

टी० । फिर अलर्क ने कहा कि हे माता ! नित्य और नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिकतीनोंप्रकारकी मनुष्यकी क्रिया तो आपने मुझसे कही ४॥

मू० सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामि कुलनन्दिनि ।
यत्कुर्व्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ५ ॥

टी० । ऐकुलनन्दिनि ! अब मुझको सदाचार सुननेकी इच्छाहै जिस के करने से मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख पाता है ५ ॥

मदालसोवाच ॥

मू० गृहस्थेन सदाकार्य्यमाचारपरिपालनम् ।

नह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा ६ ॥

टी०। तब मदालसा कहने लगी कि हे पुत्र ! गृहस्थ लोगों को चाहिये कि आचार को सदा पालन करैं क्योंकि जो लोग आचार हीन हैं उनको इस लोक और परलोक में सुख नहीं है ६ ॥

मू० यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते ७ ॥

टी० जो मनुष्य उत्तम आचार को छोड़कर दान और तपस्या में तत्पर रहता है उसको उसका भी फल कदाचित् नहीं मिलता है ७ ॥

मू० दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
कार्य्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ८ ॥

टी०। इसी सबबसे अनाचारियों की आयुर्बल कम होतीहै इससे उत्तम आचारमें यत्न अवश्य करना चाहिये क्योंकि आचार अलक्षण को दूर करदेता है ८ ॥

मू० तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा तथैव परिपालय ९ ॥

टी०। इसवास्ते हे पुत्र ! अब उस उत्तम आचारका स्वरूप मैं तुमसे कहतीहूं उसको सावधान मनहोकरसुनो और उसपर उसीतरहसे चलो९॥

मू० त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना।
तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च १० ॥

टी०। वह यहहै कि गृहस्थको तीनों वर्गोंका साधन याने धर्म, अर्थ, काममें यत्न करना चाहिये क्योंकि त्रिवर्ग सिद्धहोनेसे गृहस्थको इसलोक और परलोक में सिद्धि प्राप्त होतीहै १० ॥

मू० पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्य्यात्सञ्चयमात्मवान्।
अर्द्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ११ ॥

टी०। गृहस्थको जो धन प्राप्तहो उसके चार भागकरै एक भाग तो परलोक के वास्ते और दूसरा आत्मभरण के वास्ते रक्खै और तीसरे से नित्य नैमित्तिक इत्यादि करै ११ ॥

मू० पादं चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्द्धयेत्।
एवमाचरतः पुत्र अर्थः साफल्यमर्हति १२॥

टी०। और लाभके चौथे भागमें अपना गृहस्थी कर्म्म करै और जो मूलहो उसे बढ़ावै हे पुत्र! इसीतरह के आचारवालोंका धन सफलहै१२॥

मू० तद्वत् पापनिषेधार्थं धर्म्मः कार्य्यो विपश्चिता।
परत्रार्थं तथैवान्यः काम्योऽत्रैव फलप्रदः १३॥

टी०। उसीतरह पाप दूर करने के वास्ते ज्ञानियों को धर्म्मकरना चाहिये जिसमें स्वर्ग प्राप्तहो और काम्यको भी सिद्ध करना चाहिये क्योंकि वह इसीलोकमें फल देताहै १३॥

मू० प्रत्यवायभयात् काम्यस्तथान्यश्चाविरोधवान्।
द्विधाकामोऽपि गदितस्त्रिवर्गस्याविरोधतः १४॥

टी०। और काम दोतरहकाहै एक तो पापके डरसे कियाजाताहै और दूसरा धनके वास्ते और ये दोनों त्रिवर्ग से मिलेहुये हैं १४॥

मू० परस्परानुबन्धांश्च सर्व्वानेतान् विचिन्तयेत्।
विपरीतानुबन्धांश्च धर्म्मादींस्ताञ्छृणुष्व मे १५॥

टी०। इन सबको परस्परमें अनुबन्ध और विपरीत अनुबन्ध विचार करना चाहिये उन धर्मादिकोंको मुझसे सुनो १५॥

मू० धर्म्मोधर्म्मानुबन्धार्थो धर्म्मो नात्मार्थबाधकः।
उभाभ्यां च द्विधाकामस्तेन तौ च द्विधा पुनः १६॥

टी०। धर्म अधर्मकी निवृत्तिके लिये होताहै और धर्म्मसे आत्माका अर्थ सिद्ध होता है और इन दोनोंके सबब से काम दो तरह का है और काम करके फिर धर्म्म अर्थ दो तरह का है १६॥

मू० ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चापि चिन्तयेत्।
समुत्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः १७॥

टी०। मनुष्यको चाहिये कि ब्राह्म मुहूर्त्तमें जागै और धर्म्म और अर्थ का विचारकरै तब उठकर पूर्व्वमुखहोकर आचमन करके पवित्रहोवै १७

मू० पूर्व्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्।

उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि १८ ॥

टी० । पूर्व सन्ध्या को तारा रहते वक्त करै इसी को प्रातः सन्ध्या कहतेहैं और सन्ध्याकाल की जो सन्ध्याहै उसको सूर्य्य रहतेहुये पश्चिम मुख होकर न्यायपूर्वक करै इसको विना विपत्ति के त्याग न करै १८ ॥

मू० असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यञ्च वर्ज्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवाञ्च पुत्रक १९ ॥

टी० । और हे पुत्र ! झूंठा प्रलाप न करै और झूंठ न बोलै और किसी से दुर्वचन न बोलै और असत् शास्त्रों को न पढ़ै और झूंठ वाद और असत् सेवा न करै १९ ॥

मू० सायं प्रातस्तथाहोमं कुर्वीत नियतात्मवान् ।
नोद्यास्तमने बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः २० ॥

टी० । और सायंकाल और प्रातःकाल में मनको स्थिरकरके होमकरै और उदय और अस्तकाल में सूर्य्य की लाली को न देखै २० ॥

मू० केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दन्तधावनम् ।
पूर्व्वाह्ण एव कार्य्याणि देवतानाञ्च तर्प्पणम् २१ ॥

टी० । और केश को झाड़ना और बनाना और दर्प्पणसें मुख देखना और दन्तधावन और देव तर्प्पण इत्यादि पूर्व्वाह्ण काल में करै २१ ॥

मू० ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणाञ्चैव वर्त्मनि ।
विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे २२ ॥

टी० । और गाँव और वासस्थान और क्षेत्र और तीर्थों के रास्ता में और गौशाला व जोतीहुई जमीन इन जगहों में मूत्र और विष्ठा न करै २२॥

मू० नग्नां परस्त्रियं नेक्षेत्र पश्येदात्मनः शकृत् ।
उदक्यादर्शनं स्पर्शो वर्ज्यं संभाषणन्तथा २३ ॥

टी० । और रजस्वला स्त्री का दर्श स्पर्श बातचीत न करै और नग्नपर-स्त्री को न देखै और अपने मूत्र और विष्ठा को न देखै २३ ॥

मू० नाप्सुमूत्रं पुरीषं वा मैथुनम्वा समाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिकाः २४ ॥

टी०। और जल में मूत्र और विष्ठा और मैथुन न करे और जिस जगह विष्ठा व मूत्र हड्डी और केश और भस्म हो उस जगह पर भी न बैठे २४॥

मू० तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च।
नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथिचैवन्तथा भुवि २५॥

टी०। और भूसी और अग्नि और हड्डी और टूटीहुई रस्सी और कपड़ा इत्यादि व रास्ता और भूमि में न बैठे २५॥

मू० पितृदेवमनुष्याणां भूतानाञ्च तथार्च्चनम्।
कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति २६॥

टी०। और पितृ और देवता और मनुष्य और जितने जीव हैं इन सबों का पूजन अपने यथाशक्ति करले तब गृहस्थ आप भोजन करे २६॥

मू० प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः।
भुञ्जीतान्नञ्च तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः २७॥

टी०। भोजन के समय पूर्व्व या उत्तर मुख आचमनकर पवित्र होकर एक चित्त हो मन लगाकर और दोनों हाथ जानू के अन्दर रखकर मौन हो मनुष्य सदा भोजन करे २७॥

मू० उपघाताहते दोषं नान्यस्योदीरयेद्बुधः।
प्रत्यक्षलवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च २८॥

टी०। और विद्वान् विना उपघात के किसी का दोष वर्णन न करे और प्रत्यक्ष लवण और अत्यन्त उष्ण (गर्म) अन्न न भोजनकरे २८॥

मू० न गच्छन्न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्।
कुर्व्वीत नैवचाचामन्यत् किञ्चिदपि भक्षयेत् २९॥

टी०। और चलते हुये और खड़ेहोकर विष्ठा मूत्र न करे और आचमन करने के समय कुछ खाय नहीं २९॥

मू० उच्छिष्टो नालपेत् किञ्चित्स्वाध्यायं च विवर्जयेत्।
गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्द्धानञ्च न स्पृशेत् ३०॥

टी०। और जूठे मुँह होकर कुछ बोलना या पढ़ना या पढ़ाना या गऊ या ब्राह्मण या अग्नि या अपने शिर को छूना न चाहिये ३०॥

मू० न च पश्येद्रविं नेन्दुं ननक्षत्राणिकामतः।
भिन्नासनं तथा शय्यांभाजनञ्च विवर्जयेत् ३१॥

टी०। और जूठे मुँह होकर सूर्य्य या चन्द्रमा या तारागण को न देखे और भी जूठे मुँह होकर दूसरे आसन पर बैठने और दूसरी शय्या पर सोने और वर्त्तन के छूने से परहेज़ करै ३१॥

मू० गुरूणामासनन्देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम्।
अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्व्वकम् ३२॥

टी०। और पहिले गुरुको प्रणामकर आसन देना चाहिये और स्तुति करके उनको प्रसन्न करै और आसन देवै नम्रता के साथ ३२॥

मू० तथानुगमनं कुर्य्यात् प्रतिकूलं न संजपेत्।
नैकवस्त्रश्चभुञ्जीत न कुर्य्याद्देवतार्च्चनम् ३३॥

टी०। फिर जब गुरु चलैं तो उनके पीछे पीछे चलै और गुरुके विपरीत न कहना चाहिये और एक वस्त्र पहिनकर देवता का पूजन और भोजन न करै ३३॥

मू० न वाहयेद्द्विजानाग्नौ मेहं कुर्व्वीत बुद्धिमान्।
स्नायीत न नरो नग्नो न शयीत कदाचन ३४॥

टी०। और बुद्धिमान् ब्राह्मण से किसी तरह का बोझा अपना न ढुलावै और अग्नि में विष्ठा और मूत्र न करै और कभी नङ्गा होकर न नहाय न शयन करै ३४॥

मू० नपाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेच्छिरस्तथा।
नचाभीक्ष्णं शिरः स्नानं कार्य्यं निष्कारणं नरैः ३५॥

टी०। और दोनों हाथों से शिर न खुजलावै और हमेशा विना प्रयोजन वार वार शिर से स्नान न करै ३५॥

मू० शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत्।
अनध्यायेषु सर्व्वेषु स्वाध्यायञ्च विवर्जयेत् ३६॥

टी०। और शिरसे स्नान करने पर किसी अङ्गमें तेल न लगावै और सब अनध्याय में वेद न पढ़ै ३६॥

मू० ब्राह्मणानलगोसूर्य्यान्न मेहेत कदाचन।
उदङ्मुखो दिवारात्रावुत्सर्गं दाक्षिणोन्मुखः ३७॥

टी०। और ब्राह्मण और अग्नि और गऊ और सूर्य्य की तरफ मुँह करके मूत्र विष्ठा न करे और रात्रि में दक्षिणमुख और दिनमें उत्तरमुख होकर विष्ठा मूत्र करे ३७॥

मू० आबाधासु यथाकामं कुर्य्यान्मूत्रपुरीषयोः।
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ३८॥

टी०। और जो इसमें किसी तरह की बाधा आ पड़े तो उस समय मजबूरी में जैसा सुभीता देखे वैसा करे और गुरुका पाप न कहै और गुरु के क्रोध को सहिकर जिसमें गुरु प्रसन्न रहैं वही करे ३८॥

मू० परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्व्वताम्।
पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ३९॥

टी०। और गुरु की निन्दा अन्य किसी से न सुने और राजा और ब्राह्मण और दुखी राह चलने वाले को राहदे ३९॥

मू० विद्याधिकस्य गुर्व्विण्या भारार्त्तस्य यवीयसः।
मूकान्धबधिराणाञ्च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ४०॥

टी०। और जिसको विद्या अधिकहो और गर्भवती स्त्री को और जो बोझ से पीडितहो और जो अपने से छोटाहो और गूँगा और अन्धा और बहिरा और मतवाला और दीवाने को ४०॥

मू० पुंश्चल्याः कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च।
देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ४१॥

टी०। और पुंश्चली स्त्री और शत्रु और बालक और पतित इन लोगों को भी राह देना चाहिये अर्थात् राह छोड़दे और देवालय और देव वृक्ष और चतुष्पथ ४१॥

मू० विद्याधिकं गुरुं देवं बुधः कुर्य्यात् प्रदक्षिणम्।
उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत् ४२॥

टी०। और विद्यामें अधिक और गुरु और देवता इन सबकी विद्वान्

प्रदक्षिणा करै और जूता और वस्त्र और माला इत्यादि और किसी का पहिना हुआ न पहिनै ४२ ॥

मू० उपवीतमलङ्कारं कर्कञ्चैव वर्जयेत्।
चतुर्द्दश्यान्तथाष्टम्यां पञ्चदश्याञ्च पर्व्वसु ४३ ॥

टी०। और जनेउ और भूषण और करवा दूसरे का न ग्रहण करै और अष्टमी और चतुर्दशी और अमावस और पर्व्वों में भी ४३ ॥

मू० तैलाभ्यङ्गं तथाभोगं योषितश्च विवर्जयेत्।
न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ४४ ॥

टी०। तेल शरीरमें न लगावै और स्त्री से भोग न करै और बैठकर जाँघ और पाँव न हिलावै ४४ ॥

मू० न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाक्रमेत्।
मर्म्माभिघातमाक्रोशं पैशून्यञ्च विवर्जयेत् ४५ ॥

टी०। और दोनों पाँव एक साथ न चलावै और पाँव पर पाँव न रक्खै और किसी के सुकुमार स्थान में न मारै और व्यर्थ शाप न दे और चुगली न करै ४५ ॥

मू० दम्भाभिमानतीक्ष्णानि न कुर्व्वीत विचक्षणः।
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान्मायिनस्तथा ४६ ॥

टी०। और दम्भ और अभिमान और कठोरताज्ञानियों को न करना चाहिये और मूर्ख पागल और व्यसनी और कुरूप और मायावी ४६ ॥

मू० न्यूनाङ्गञ्चाधिकाङ्गञ्च नोपहासैर्विदूषयेत्।
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ४७ ॥

टी०। और अङ्गहीन और अधिकाङ्ग इत्यादि को न हँसना चाहिये और न दोष लगाना चाहिये और शिष्य और पुत्र की शिक्षा के वास्ते और को न मारना चाहिये ४७ ॥

मू० तद्वन्नोपविशेत् प्राज्ञः पादेनाक्रम्य चासनम्।
संयावं कृशरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत् ४८ ॥

टी०। और वैसेही पाँव से आसन खींच कर या दाब कर न बैठना

चाहिये और खिचड़ी और मांस और खीर केवल अपनेही खाने के वास्ते न बनाना चाहिये ४८ ॥

मू० सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि वाग्यतो दन्तधावनम् ४९ ॥

टी० । और सायंकाल और प्रातःकाल पहिले अतिथिको भोजन कराले तब आप भोजन करै और पूर्व और उत्तर मुँह चुपचाप बैठकर दातून न करै ४९ ॥

मू० कुर्वीत सततं वत्स वर्जयेद्वर्ज्ज वीरुधः ।
नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः ५० ॥

टी० । और हे पुत्र! जिस जिस वृक्ष की दातून करना मना है उसकी नकरै और कभी उत्तर और पश्चिमतरफ शिरहाना करके मनुष्यनसोवै५०॥

मू० शिरस्यगस्त्यमास्थाय शयीताथ पुरन्दरम् ।
न तु गन्धवतीष्वप्सु स्नायीन्न तथा निशि ५१॥

टी० । किन्तु दक्षिण या पूर्वतरफ शिरहाना करके सोया करै और जिस जल में दुर्गन्धि हो उसमें और रात्रि में स्नान न करै ५१ ॥

मू० उपरागेपरं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् ।
अपमृज्यान्न चास्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ५२ ॥

टी० । परन्तु चन्द्रग्रहण में रात्रि को भी स्नान करै और स्नान करने पर हाथों से देह को न पोंछे ५२ ॥

मू० न चापि धूनयेत्केशान् वाससी न च धूनयेत् ।
नानुलेपनमादद्यादस्नातः कर्हिचिद्बुधः ५३ ॥

टी० । भीगे हुये केश और और वस्त्र को हिलाना न चाहिये और कभी विना स्नान किये विद्वान् को चन्दन भी न लगानाचाहिये ५३ ॥

मू० न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ।
न च कुर्य्याद्विपर्य्यासं वाससोर्नापि भूषणे ५४ ॥

टी० । और लाल कपड़ा और सफ़ेद बूटेदार कपड़ा न पहिने और जो भूषण पहिने उसे कपड़े के ऊपर न रक्खे ५४ ॥

मू० वर्ज्यञ्च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतञ्च यत्।
केशकीटावपन्नञ्च क्षुण्णं श्वभिरवेक्षितम् ५५॥

टी०। और जो वस्त्र बहुत मैला व विन किनारों का हो और फटाहो न पहिने और जिस पिसीहुई चीज में बाल या कीड़ा पड़ा हो और जिस चीज़ पर कुत्तेकी दृष्टि पड़ी हो ५५॥

मू० अवलीढावपन्नञ्च सारोद्धरणदूषितम्।
पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यं मांसं च पुत्रक ५६॥

टी०। और हे पुत्र! किसी की जुठाली हुई चीज और सारोद्धरण से दूषित और पीठका मांस और विना देवता का चढ़ायाहुआ मांस और जिस मांसको लोग न खाते हों भोजन न करै ५६॥

मू० न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च।
वर्ज्यंचिरोषितं पुत्र भक्तं पर्य्युषितं च यत् ५७॥

टी०। और ऐ पुत्र! प्रत्यक्ष लवण भक्षण न करै और हमेशा बासी भात या बहुत देरका रींधाहुआ भात न खाय ५७॥

मू० पिष्ठशाकेक्षुपयसां विकारान्नृपनन्दन।
तथामांसविकारांश्च ते च वर्ज्याश्चिरोषिताः ५८॥

टी०। और हे राजपुत्र! पिष्ठ और शाक और ऊख और दूध व मांस इत्यादि का विकार व बहुत देरकी धरीहुई ये चीज़ें न खाये ५८॥

मू० उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत्।
नास्नातो नैव सम्विष्टो न चैवान्यमनानरः ५९॥

टी०। और सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त काल में न सोवै और स्नान न करके व सुचित्त न होकर और निद्रामें व्याप्त होकर भोजन करै ५९॥

मू० न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत्।
न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च ६०॥

टी०। और लेटकर और खाली जमीनपर बैठकर भोजन न करै और भोजन करने में भी न बोले और न एक वस्त्र पहिन कर भोजन करै

और भोजन करते हुये जो कोई देखता रहै तो उसको विना कुछ दिये भोजन न करै ६० ॥

मू० भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायं प्रातर्यथाविधि।
परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ६१ ॥

टी०। और प्रातःकाल और सन्ध्याकाल स्नान सन्ध्या करके विधि पूर्वक भोजनकरै और अच्छे लोगोंको चाहिये कि परस्त्री गमन न करें ६१॥

मू० इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारागतिर्नृणाम्।
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चिन्न विद्यते ६२ ॥

टी०। क्योंकि परस्त्री गमन करने से इष्टापूर्त्त की पुण्य और आयुर्बल की हानि होती है किन्तु ऐसी आयुर्बल की घटानेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है ६२ ॥

मू० यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्षणम्।
देवार्चनाग्निकार्य्याणि तथा गुर्वभिवन्दनम् ६३ ॥

टी०। जैसे कि परस्त्रीगमन पुरुषकी आयुर्बल घटा देताहै और देवता का पूजन और होम और गुरुकी स्तुति और प्रणाम इत्यादि ६३ ॥

मू० कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम्।
अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ६४ ॥

टी०। सम्यक् प्रकार आचमन करके करै और उसी तरह अन्न भोजन भी पवित्र होकर करै और जिस जल में फेना अथवा दुर्गन्धि न हो उस निर्मल जलको आदर से लेकर ६४ ॥

मू० आचामेत्पुत्र पुण्याभिःप्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपिवा।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ६५ ॥

टी०। ऐ पुत्र! पूर्व या उत्तर मुख होकर पवित्रजल से आचमन करै और जलके भीतर की माटी और घरकी माटी और बेंबौरि की माटी और चूहोंके बिलकी माटी ६५ ॥

मू० कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत् पञ्च वै मृदः।
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः ६६ ॥

टी०। और जिस माटीको किसी ने हाथ पांव धोकर छोड़ दियाहो इन पांचों मिट्टियोंको छोड़कर पवित्र माटीसे हाथ पांवधोकर एकचित्तहो६६॥

मू० अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्व्वापि वेदपः।
परिमृज्यद्विशस्यान्तं स्वानि मूर्द्धानमेवच ६७॥

टी०। और जानुके भीतर हाथ रखकर तीन या चार बार आचमन करै या जलपिये और वेद जाननेवाले को चाहिये कि दोबार मुख को धो डालै और शिर के ऊपर पानी उछालकर छिड़कै ६७॥

मू० सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्व्वीत वै शुचिः।
देवतानामृषीणाञ्चपितृणाञ्चैव यत्नतः ६८॥

टी०। और सम्यक् प्रकार जल में आचमन कर पवित्र हो देवतों और ऋषियों और पितरों की क्रिया यत्न से करै ६८॥

मू० समाहितमना भूत्वा कुर्व्वीत सततं नरः।
क्षुत्वा निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेद्बुधः ६९॥

टी०। व एक चित्त होकर सदैव मनुष्य यह सब करै और जब छींके अथवा थूंके तब कपड़े बदलकर विद्वान् आचमन करै ६९॥

मू० क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु।
कुर्य्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ७०॥

टी०। और जब छींक आवै या कोई जानवर बदन को चाटले या वमन हो तो ऐसी दशामें आचमनकरै व गऊ की पीठ छूलेवै या सूर्य्य का दर्शन करले ७०॥

मू० कुर्व्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै।
यथाविभवतो ह्येतत् पूर्व्वाभावे ततः परम् ७१॥

टी०। या अपना दहिना कान छूलेवै ये सब बातें अपने विभव के अनुसार करै अगर पहलेकाअभाव हो तो दूसरा करै ७१॥

मू० अविद्यमाने पूर्व्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते।
न कुर्य्याद्दन्तसङ्घर्षनात्मनोदेहताडनम् ७२॥

टी०। अर्थात् पहिले जो कह आई हूँ वह नहोवै तो उसके पीछे जो

कहागया है वहीकरे और हे पुत्र ! दांतपर दांत न पीसना चाहिये और अपने शरीर पर ताली न बजावे ७२ ॥

मू० स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत् ।
सन्ध्यायां मैथुनञ्चापि तथा प्रस्थानमेव च ७३ ॥

टी० । और दोनों सन्ध्याओं में पढ़ना और सोना और मैथुन करना न चाहिये और संध्यामें यात्रा भी न करे ७३ ॥

मू० पूर्वाह्णे तात देवानां मनुष्याणाञ्चमध्यमे ।
भक्त्या तथापराह्णे च कुर्वीत पितृतर्प्पणम् ७४ ॥

टी० । और ऐपुत्र ! भक्तिसे पूर्वाह्णकालमें देवतों का और मध्याह्न कालमें मनुष्यों का और अपराह्ण कालमें पितरों का तर्पण करनाचाहिये ७४ ॥

मू० शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि श्मश्रुकर्म्म च कारयेत् ७५ ॥

टी० । और देवता और पितरों का पूजन शिरसे स्नान करके करै और पूर्व या उत्तर मुख होकर हजामत बनवावे ७५ ॥

मू० व्यङ्गिनीं वर्जयेत्कन्यां कुलजामपि रोगिणीम् ।
विकृतां पिङ्गलाञ्चैव वाचाटां सर्व्वदूषिताम् ७६ ॥

टी० । और जो कन्या बिगड़े अङ्गोंवाली व रोगिणी और कठोर भाषिणी और विकारिणी और कर्कशा और पीले रंगवाली व सबसे दूषित यद्यपि वह कुलीन घर की भी हो तौभी उसके साथ अपना विवाह न करै ७६ ॥

मू० अव्यङ्गीसौम्यनासाञ्च सर्व्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत् कन्यां श्रेयः कामो नरः सदा ७७ ॥

टी० । और जो कन्या व्यङ्ग न हो और जिसकी नासिका अच्छी हो और सब अच्छे लक्षणों से युक्त हो ऐसी कन्या से हमेशा अपने कल्याण के वास्ते मनुष्य विवाह करै ७७ ॥

मू० उद्वहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीन्तथा ।
रक्षेद्दारान् त्यजेदीर्षां दिवा च स्वप्नमैथुने ७८ ॥

टी० । और पिता के सात सम्बन्ध और माता के पाँच सम्बन्ध बरा-

यकर विवाह करना चाहिये और स्त्री की रक्षा करै और ईर्षा न करै और दिन को शयन और मैथुन न करै ७८ ॥

मू० परोपतापकं कर्म्म जन्तुपीडाञ्च वर्जयेत् ।
उदक्या सर्व्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिं चतुष्टयम् ७९ ॥

टी०। और जिस कर्म्म के करने से दूसरे को क्लेश पहुँचै वह कभी न करै व प्राणियों को पीडा न देवै और चारों वर्णों को चाहिये कि ४ रात्रि तक रजस्वला स्त्री से परहेज करैं ७९ ॥

मू० स्त्री जन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपि वर्जयेत् ।
ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां श्रेष्ठायुग्मासु पुत्रक ८० ॥

टी० और ऐ पुत्र ! जो पुरुष पाँच रात्रि तक रजस्वला स्त्री से बचा रहैगा उस के कन्या न होगी उसके बाद छठी रात्रि में पुरुष को स्त्री गमन करना चाहिये जोकि समरात्रियों में श्रेष्ठ है ८० ॥

मू० युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ८१ ॥

टी०। क्योंकि समरात्रियों में वीर्य्य ठहरजाने से पुत्र उत्पन्न होताहै और अयुग्मरात्रि में भोगकरने से कन्या उत्पन्न होती है इस वास्ते पुत्र की वाञ्छा रखनेवालों को चाहिये कि हमेशा युग्मरात्रिमें स्त्रीगमनकरैं ८१ ॥

मू० विधर्म्मिणोऽह्नि पर्व्वाद्ये सन्ध्याकाले च षण्डकाः ।
क्षुरकर्म्मणि वान्ते च स्त्रीसंभोगे च पुत्रक ८२ ॥

टी०। जो कोई अमावस आदिपर्व के दिन स्त्री गमनकरैगा तो उसके अधर्म्मी पुत्र होगा और सन्ध्याकाल में स्त्री गमनकरने से नपुंसक होता है और हे अलर्क ! हजामत और वमन और स्त्री गमनकरने पर ८२ ॥

मू० स्नायीत चेलवान् प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च ।
देववेदद्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम् ८३ ॥

टी०। बुद्धिमानों को चाहिये कि वस्त्र समेत स्नान करैं अर्थात् जो वस्त्र उस समय पहिनेहों उस समेत स्नान करैं और अशुद्ध भूमि परजाने में भी उसी तरह स्नान करैं और देवता और वेद और ब्राह्मण और साधु और सत्यवादी व महात्मा ८३ ॥

मू० गुरोः पतिव्रतानाञ्च तथा यज्वितपस्विनाम्।
परिवादं न कुर्व्वीत परिहासञ्च पुत्रक ८४॥

टी०। ऐ पुत्र! गुरु और पतिव्रता और यज्ञकर्त्ता और तपस्वी इनसबोंकी निन्दा और हँसी न करै ८४॥

मू० कुर्व्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथञ्चन।
नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत् ८५॥

टी०। और जहां कहीं कोई दुष्ट मनुष्य शिव या विष्णु की निन्दा करताहो वहां किसीतरहसे आप न जाय और न सुने और जो कोई अपने से श्रेष्ठ है अथवा नीचहै उसकी शय्यावआसन पर पाँव न रक्खै८५॥

मू० नचामङ्गल्यवेषः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत्॥
धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ८६॥

टी०। और अमङ्गल वेष अपना न बनावे और कुवाक्य न बोले और श्वेत वस्त्र पहिने और श्वेतही फूलों का माला धारण करे ८६॥

मू० नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः।
गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्य्यादिदूषितैः ८७॥

टी०। पण्डित बौरहा और सिड़ी और मूर्ख और अविनीत और बेशील और चोर इत्यादि लोगों से मित्रता न करे ८७॥

मू० न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः।
नवन्धकीभिर्न्नन्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ८८॥

टी०। और बहुत फ़जूल खर्च और लोभी और शत्रु और कुलटास्त्री और उसके पति से व अपने से कमसे भी मित्रता न करे ८८॥

मू० सार्द्धं न बलिभिःकुर्य्यान्न च न्यूनैर्न निन्दितैः।
न सर्व्वशङ्किभिर्न्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ८९॥

टी०। और अपने से अधिक बली से अथवा अति नीच और अति निन्दित और सब से शंका करनेवाले व कादर इत्यादि से भी मित्रता न करे ८९॥

मू० कुर्व्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः।

प्राज्ञैरपि शुनैः शक्तैः कर्म्मण्युद्योगभागिभिः ९० ॥

टी०। और साधु और जो लोग उत्तम नेम निष्ठा में रहते हैं और जो समर्थ हैं और जो चुगुली नहीं करते हैं और जो सदा कर्म्म के उद्योगी हैं ऐसेही लोगों से मित्रता करना चाहिये ९०॥

मू० सुहृद्दीक्षितभूपालःस्नातकःश्वशुरैः सह।
ऋत्विगादीन् षडर्घार्हानर्च्चयेच्च गृहागतान् ९१ ॥

टी०। और सुहृद और दीक्षित अर्थात् यज्ञादि करने के वास्ते जिसने दीक्षा लिया हो और श्वशुर और राजा और ऋत्विज और ब्रह्मचारी ये अर्घ के योग्य छहों जो घर में आवें तो इनका पूजन करना चाहिये९१॥

मू० यथाविभवतः पुत्र द्विजान् सम्वत्सरोषितान्।
अर्च्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः ९२ ॥

टी० और हे पुत्र! जैसा अपना विभव हो उसके अनुसार समय पर उस ब्राह्मण का पूजन मधुपर्क इत्यादि से मिलनेपर निरालसहोकर करना चाहिये जो वर्ष दिन का व्रती हो ९२ ॥

मू० तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः।
न च तान् विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ९३ ॥

टी०। कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान् द्विजोत्तम को चाहिये कि उनसे विवाद न करे और हमेशा उनकी आज्ञामें रहे चाहे वे शाप भी देवें ९३॥

मू० सम्यग्गृहार्च्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात्।
सम्पूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ९४ ॥

टी०। और हरतरह से क्रम पूर्वक स्थानों के अनुसार अपने गृह का पूजन करके जिस स्थान में जो देवता हों उनका भी पूजन करे फिर अग्निका पूजनकरे और क्रम से आहुति दे ९४ ॥

मू० प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतये ततः।
तृतीयाञ्चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथापरां ९५ ॥

टी०। अर्थात् पहिले आहुति ब्रह्मा को फिर प्रजापति को तीसरी गुह्यकों को फिर कश्यप को आहुति दे ९५ ॥

मू० ततोऽनुमतये दत्त्वा दद्याद्गृहबलिंततः।
पूर्व्वाख्यातं मया यत्ते नित्यकर्म्मक्रियाविधौ ९६॥

टी०। और पांचवीं आहुति अनुमतिको दे फिर घरमें बलिदेकर नित्य कर्म की विधि में जिन २ क्रियाओं को ऊपर कह आई हूं उनको करे ९६॥

मू० वैश्वदेवं ततः कुर्य्याद्बलयस्तत्र मे शृणु।
यथास्थानविभागन्तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ९७॥

टी०। ततपश्चात् वैश्वदेव कर्म्म करे वहां पर जिस तरह बलिदेना चाहिये और जैसा जैसा जिस स्थान का विभाग और जहां २ जिन देवतों को उद्देशकर अलग जो कुछ देना चाहिये वह मैं,कहती हूं सुनो ९७॥

मू० पर्जन्याय धरित्रीणां दद्याच्च माणके त्रयं।
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ९८॥

टी०। कि पर्जन्य कहिये मेघ और पृथ्वी और वायु इन तीनोंको मण्डप में बलि देवै और पूर्व्व दिशा के क्रम से सब दिशाओं के लिये भी बलि देवै ९८॥

मू० ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्य्याय च यथाक्रमम्।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ९९॥

टी०। और यथाक्रम ब्रह्मा और अन्तरिक्ष और सूर्य्य और विश्वेदेव और विश्वभूत को बलि देवै ९९॥

मू० उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः।
स्वधा नम इतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चापि दक्षिणे १००॥

टी०। और उसके बाद उषस् और भूतपति को उत्तर दिशामें बलि देवै और स्वधानमः यह कहकर दक्षिण दिशा में अपसव्य होकर पितरों को भी बलि देवै १००॥

मू० कृत्वापसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात्।
अन्नावशेषमिच्छन् वै तोयं दद्याद्यथाविधि १०१॥

टी०। और अपसव्य करके अन्न बाकी रहजाय यह इच्छाकरके बर्तन से निकालकर यक्ष्मै तत्ते यह कहिकर वायुकोण में देदे अर्थात् रखदेवै और विधिपूर्व्वक जल भी देवै १०१॥

मू० ततोऽन्नार्थं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम्।
यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् १०२॥

टी०। तत्पश्चात् आधे जो अन्न इत्यादि हो उस अन्नाशन को न्याय पूर्वक हन्तकार कहकर विधि समेत ब्राह्मण को देदेवै १०२॥

मू० कुर्य्यात् कर्म्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि।
देवादीनां तथा कुर्य्याद्ब्राह्म्येणाचमनक्रिया १०३॥

टी०। और जिस२ तीर्थ से देवतादिकों को अर्घ्यादिक देना चाहिये उसी अपने २ तीर्थ से उन सबोंका कर्म करै व ब्राह्म्यतीर्थ से आचमन करै १०३॥

मू० अंगुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु।
एतद्ब्राह्म्यमिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै १०४॥

टी०। और दाहिनेहाथ के अंगुष्ठके उत्तर की रेखा जो ब्रह्मतीर्थ कहलाती है उसी से आचमन करना चाहिये १०४॥

मू० तर्ज्जन्यंगुष्ठयोरन्तः पैत्र्यं तीर्थमुदाहृतम्।
पितॄणान्तेन तोयादि दद्यान्नान्दीमुखादृते १०५॥

टी०। और तर्जनी और अँगूठा के बीचका भाग पित्रतीर्थ कहलाता है उसी से पितरों को जल इत्यादि देना चाहिये पर नान्दीमुख पितरों की श्राद्धको छोड़कर १०५॥

मू० अंगुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः।
तीर्थं कनिष्ठिकामूले कार्यन्तेन प्रजापतेः १०६॥

टी०। और अँगुलियों का अग्रभाग यानी ऊपर का हिस्सा देवतीर्थ कहलाता है उसी से देवकर्म्म की विधि करना चाहिये और कनिष्ठिका की जड़ प्राजापत्य तीर्थहै उससे प्राजापत्य कर्मकरना चाहिये १०६॥

मू० एवमेभिः सदातीर्थैर्देवानां पितृभिः सह।
सदा कार्य्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थेन कर्हिचित् १०७॥

टी०। इसीतरह पितरों के साथ हमेशा देवतों की क्रिया इन्हीं तीर्थों

से करनी चाहिये दूसरे तीर्थों में दूसरों की क्रिया कदाचित् न करनी चाहिये १०७॥

मू० ब्राह्म्येणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्र्येण सर्व्वदा।
देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं निजेन च १०८॥

टी०। हमेशा ब्रह्मतीर्थ से आचमन करै और पितृतीर्थ से पितृकर्म्म और देवतीर्थ से देवकर्म और प्राजापत्य तीर्थ से प्राजापत्य कर्म्म करना चाहिये १०८॥

मू० नान्दीमुखानां कुर्व्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम्।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजापतेः १०९॥

टी०। और नान्दीमुख पितरों की पिण्डोदक क्रिया और जो कुछ प्राजापत्य क्रियाहो उसको प्राजापत्यही तीर्थसे करना चाहिये १०६॥

मू० युगपज्जलमग्निञ्च बिभृयान्न विचक्षणः।
गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ११०॥

टी०। और अच्छे लोगोंको चाहिये कि एकही साथ आग और पानी न ले चलैं और गुरु और देवता की तरफ़ पाँव न पसारैं ११०॥

मू० नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत्।
शौचकालेषु सर्व्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः १११॥

टी०। और दूध पीते गऊ के बछड़े को दूध पीने से न रोकै और न किसी को रोकने की आज्ञा दे और अञ्जुली से जल न पीवै और सब शौचकालमें चाहै वह छोटाहो या बड़ा १११॥

मू० न विलम्बेत शौचार्थे न मुखेनानलं धमेत्।
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रनास्ति चतुष्टयम् ११२॥

टी०। बहुत देर न करै और मुख से अग्नि को न फूँकै और हे पुत्र! जहां ये चार वस्तु (जो आगे कहती हूँ) न हों वहां न रहै ११२॥

मू० ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी।
जितामित्रो नृपो यत्र बलवान् धर्म्मतत्परः ११३॥

टी०। एक तो ऋणदाता दूसरे वैद्य तीसरे पण्डित चौथे सजलानदी

और इनके सिवाय जहां बलवान् निःकण्टक राजा धर्मात्माहो ११३॥

मू० तत्र नित्यं वसेत् प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम्।
यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवती मही ११४॥

टी०। वहां हमेशा बसे क्योंकि अधर्म्मी राजा के राज्य में बसने से सुख नहीं मिलताहै इसवास्ते जिस भूमि पर बहुत पैदावारहो और जहां का राजा बलिष्ठहो ११४॥

मू० पौराः सुसंयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिनः।
यत्रामत्सरिणोलोकास्तत्र वासः सुखोदयः ११५॥

टी०। और जिस नगर के रहनेवाले हमेशा अच्छे नियमों में बँधे और न्याय जाननेवाले हों और जहां मनुष्य डाह और विरोध न रखतेहों वहीं का वास सुखदायक है ११५॥

मू० यस्मिन् कृषीबला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिनः।
यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ११६॥

टी०। और जिस देशमें खेत करनवाले बहुत हों और बहुधा भोगनेवाले कमहों और सब तरहकी औषधि मिल सकें ऐसे स्थान में अच्छे लोगों को वास करना चाहिये ११६॥

मू० तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा।
जिगीषुः पूर्व्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ११७॥

टी०। और हे पुत्र! जहां पर ये तीनों हों वहांपर भी बास करना न चाहिये एक तो वे जो हमेशा अपनीही जीत होने की इच्छा रखतेहों दूसरे वे जिनसे पहिलेही वैरहो तीसरे वह जहांके मनुष्यों को सदा उत्सव ही बना रहताहो ११७॥

मू० वसन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः।
इत्येतत्कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ११८॥

टी०। और पण्डित लोगों को वहीं पर बसना चाहिये कि जहांके सहवासी लोग सुशील हों हे पुत्र! ये सब बातें तुम्हारी भलाई की मैंने कहीं ११८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेसदाचारोनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३४॥

अथ पैंतीसवां अध्याय ॥

मदालसोवाच ॥

मू० अतः परं शृणुष्व त्वं वर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् ।
भोज्यमन्नं पर्य्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम् १ ॥

टी० । फिर मदालसा कहती है कि हे पुत्र ! अब जो जो वस्तु ग्रहण करना और त्याग करना मनुष्य को उचित है उसको मैं कहती हूँ सुनो और वह यह है कि घी की पकी हुई खानेवाली चीज यदि वह देरकीहो अथवा बासी भी हो तो उसको खाना चाहिये १ ॥

मू० अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ।
शशकः कच्छपो गोधाश्वावित्खड्गोऽथ पुत्रक २ ॥

टी० । और जो चीज गेहूँ या यव या गोरस की भी बनीहो तो उसको भी खाना चाहिये और ऐ पुत्र ! खरहा और कछुआ और गोह और साही और गैंड़ा २ ॥

मू० भक्ष्याह्येते तथा वर्ज्यौ ग्रामसूकरकुक्कुटौ ।
पितृदेवादिशेषञ्च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ३ ॥

टी० । यह सब खाना चाहिये और जिसका ग्रहण करना निषेध है वह यह है कि ग्रामसूकर और मुर्गा वर्ज्य हैं और जो मांस पितर और देवता के नैवेद्य का हो और जो मांस श्राद्ध में ब्राह्मणों के निमित्त बनाहो ३ ॥

मू० प्रोक्षितं चौषधार्थञ्च खादन्मांसं न दुष्यति ।
शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ४ ॥

टी० । और जो मांस मंत्रित हो और जो मांस ब्राह्मणों के खाने से बच रहै और जो मांस औषधि के लिये हो इन सबके खाने में कुछ दोष नहीं है और शंख, पत्थर, सोना, चांदी, रस्सी, कपड़ा ४ ॥

मू० शाकमूलफलानाञ्च तथा विदलचर्म्मणां ।
मणिवज्रप्रवालानां तथामुक्ताफलस्य च ५ ॥

टी० । और शाक, मूल, फल, और विना पत्ता और छाल की चीज और मणि, हीरा, प्रवाल, (मूंगा) मुक्ता ५ ॥

मू० गात्राणाञ्च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते।
यथायसानां तोयेन ग्राव्णांसंघर्षणेन च ६ ॥

टी०। और मनुष्यों के शरीर की अशुद्धता जल से धोने से दूर होती है जैसे लोहे के हथियार आदि की शुद्धता जल से और पत्थल पै घिसने से होती है ६ ॥

मू० सस्नेहानाञ्च भाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा।
शूर्पधान्याजिनानाञ्च मुशलोलूखलस्य च ७ ॥

टी०। और घी तेल का वर्त्तन गरम पानी से शुद्ध होता है और सूप का अन्न और अजिन वस्त्र और ओखली और मूशल ७ ॥

मू० संहतानाञ्च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सञ्चयस्य च।
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ८ ॥

टी०। और पहनेहुए वस्त्र ये सब धोने से पवित्र होजाते हैं और सब वल्कल वस्त्र केवल जल व मिट्टी का छींटा देने से शुद्ध होता है ८ ॥

मू० तृणकाष्ठौषधीनाञ्च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते।
आविकानां समस्तानां केशानाञ्चापिमेध्यता ९ ॥

टी०। और तृण और काष्ठ और जड़ी बूटी इत्यादि भी जलही के छींटा देनेसे शुद्ध होजातीहैं और भेड़ इत्यादिका जो ऊनअपवित्रहै ९ ॥

मू० सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः।
साम्बुना तात भवति उपघातवतां सदा १० ॥

टी०। ऐ पुत्र! यदि वह अशुद्ध होगयाहो तो सरसों या तिलकी खरी व जल से हमेशा शुद्धि होती है १० ॥

मू० तथाकार्पासिकानाञ्च विशुद्धिर्जलभस्मना।
दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ११ ॥

टी०। इसीतरह सूती कपड़े जितने हैं वे क्षार लगाकर जल से धोने से पवित्र हो जाते हैं और लकड़ी और दाँत और अस्थि और शृंग काटने से शुद्ध होते हैं ११ ॥

मू० पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाञ्च मेध्यता।

शुचिर्भैक्ष्यं कारुहस्तः पण्यं योषिन्मुखन्तथा १२ ॥

टी०। और माटी का बर्त्तन दुबारा आग में पकालेने से पवित्र हो जाताहै और भिक्षा और बाजार की चीज और कारीगर का हाथ और स्त्रियों का मुख सदा पवित्र है १२ ॥

मू० रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गादिना हृतम्।
वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु १३ ॥

टी०। और जो चीज गली कूचे होकर आई हो और जो वस्तु अजान हो और जो वस्तु दास वर्ग की लाई हुई हो ये चीजें वचन से पवित्र हैं और जो चीज बहुत दिन की लाई हुई हो और जो चीज बहुत चीजों में छिपी हो और जो छोटी हो १३ ॥

मू० अतिप्रभूतं बालञ्च वृद्धातुरविचेष्टितम्।
कर्म्माराङ्गारशालाश्च स्तनन्धयसुताःस्त्रियः १४ ॥

टी०। और जो बहुत अधिक हो और बालक और बूढ़ा और रोगी इन सबों की क्रिया और बात का घर और अग्निशाला और स्तन पीता हुआ बालक और स्त्री भी १४ ॥

मू० शुचिन्यश्च तथैवापःस्रवन्त्योऽगन्धबुद्बुदाः।
भूमिर्विशुद्ध्यते कालाद्दाहमार्जनगोक्रमैः १५ ॥

टी०। और बहता हुआ पानी और बिनदुर्गंध वाला और विना फेन का जल ये सब शुद्ध हैं और पृथ्वी समय से और जला देने अथवा गऊ के लात मर्दन करा देने से शुद्ध हो जाती है १५ ॥

मू० लेपादुल्लेखनात् सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्च्चनात्।
केशकीटावपन्ने च गोघ्राते मक्षिकान्विते १६ ॥

टी०। और लीपने या गोड़ने या छिड़क देने से भी पवित्र होजाती है और घर केवल लीपने और बुहारकर उसमें देवता का पूजन कर देने से शुद्ध होजाता है और जिस चीज में बाल या कीड़ा पड़गयाहो या गऊ ने सूंघ दिया हो या मक्खी पड़गई हो १६ ॥

मू० मृदम्बुभस्मना तात प्रोक्षितव्यं विशुद्धये।

औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुशीसयोः १७ ॥

टी०। तो ऐ पुत्र ! उसको शुद्ध होने के वास्ते माटी और जल या राख से धोदे और तांबा पीतल खटाई से और रांगा शीसा राख से शुद्धहो-जाता है १७ ॥

मू० भस्माम्बुभिश्चकांस्यानां शुद्धिःप्लावाद्द्रवस्य च।
अमेध्याक्तस्य मृत्तो यैर्गन्धापहरणेन च १८ ॥

टी०। और काँसा राख और जल से मल देने से शुद्धहोजाता है और बहनेवाली अशुद्धता जल से बहा देने से शुद्ध है और जो चीज अशुद्ध हो अथवा किसी अशुद्धवस्तु से छुलाई गई हो उसको माटी और जलसे शुद्धकरदेना चाहिये या दुर्गन्धि उसकी निकाल दे १८ ॥

मू० अन्येषाञ्चैव तद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः।
शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् १९ ॥

टी०। इसीतरह और और चीजों को भी जिसके लगाने से वह चीज साफ़ होजाय लगाकर साफ़ करके शुद्ध करलेवे अर्थात् मैल और दुर्गन्धि उसकी निकाल दे और जो जल एक गऊ को तृप्त करने भर को हो और पवित्र भूमि पर निर्मलहो वह जल पवित्र है १९ ॥

मू० तथा मांसञ्च चाण्डालं क्रव्यादादिनिपातितम्।
रथ्यागतञ्च चेलादि तात वाताच्छुचिस्मृतम् २० ॥

टी०। इसीतरह पवित्र जानवरों का मांस यद्यपि वह चाण्डाल अथवा व्याघ्रादि का मारा हुआ हो पवित्र है और ऐ पुत्र ! गली कूचे का पड़ा-हुआ वस्त्र भी वायु के लगने से पवित्र कहागया है २० ॥

मू० रजोऽग्निरश्वो गौश्छाया रश्मयः पवनो मही।
विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः २१ ॥

टी०। और धूल और अग्नि और घोड़ा गाय और छाया और किरण और वायु और भूमि और पाठ करतेहुए ब्राह्मणके मुख से निकलेहुए थूक के किनुके और मक्खी इत्यादि इन सबों का स्पर्श यद्यपि अशुद्ध स्थानोंपर रहता है तो भी इनकी छूत नहीं ली जाती है २१ ॥

मू० अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम्।

मातुः प्रस्रवणे मेध्यं शकुनिः फलपातने २२॥

टी०। और घोड़ा और बकरी का मुख शुद्ध है और गऊ का मुख अशुद्ध है और गऊ का बच्चा जब तक मां का दूध पीता रहै उतनी देरतक उसका भी मुख शुद्ध है और पक्षी का गिरायाहुआ फल भी शुद्ध है २२॥

मू० आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च।
सोमसूर्य्यांशुपवनैः शुद्ध्यन्ते तानि पण्यवत् २३॥

टी०। और आसन और शय्या और सवारी और नाव और रास्ते की घास फूस चन्द्र और सूर्य्य की ज्योति पड़ने से और वायु के लगने से बाजार की वस्तु की तरह पवित्र है २३॥

मू० रथ्यावसर्पणस्नानक्षुत्पानग्लानकर्म्मसु।
आचामेत यथान्यायं वासो विपरिधाय च २४॥

टी०। और गली कूचे होकर चलने फिरने पर और स्नान के समय और छींकने और पानी पीनेमें और वीर्य्यपात होनेपर सम्यक् प्रकार आचमन करके कपड़े बदलदेना चाहिये २४॥

मू० स्पृष्टानामप्यसंसर्गैर्विरथ्याकर्दमाम्भसाम्।
पक्वेष्टरचितानाञ्च मेध्यता वायुसङ्गमात् २५॥

टी०। और जो कोई उत्तम वस्तु लेकर गली कूचे या कीचड़ कांदो में होकर चले और वह वस्तु राहमें किसी से छुआ छूत होजाय तो वह वस्तु केवल वायु के लगने से शुद्ध होजाती है २५॥

मू० प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य संत्यजेत्।
शेषस्य प्रोक्षणं कुर्य्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा २६॥

टी०। और जन्तुओं से दूषित अन्न में से अगरासन निकाल कर जो बाक़ी रहै उसको जल छिड़ककर अभिमन्त्रित करले और आचमन के समय हाथ में माटी लगावै २६॥

मू० उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत्।
अज्ञाते ज्ञानपूर्व्वन्तु तद्दोषोपशमेन तु २७॥

टी०। और दूषित अन्न जो जानकर या अनजाने खालेवै तो उसका दोष मिटाने के वास्ते त्रिरात्रि उपवास करै २७॥

मू० उदक्याश्वशृगालादीन् सूतिकान्त्यावसायिनः।
स्पृष्ट्वास्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः २८॥

टी०। और रजस्वला स्त्री और श्वान और सियार और प्रसूता स्त्री और चाण्डालादि आठौं अन्त्यावसायी और जिसने मुर्दा छुवाहो इनसब को छूजाने पर पवित्रताके लिये स्नान करना चाहिये २८॥

मू० नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा २९॥

टी०। जो कोई मनुष्य मुर्देकी हड्डी छुवै तो तेल लगाकर स्नान करै या तेल न लगाकर आचमन करके सूर्य्यका दर्शन करै या गऊका अङ्ग छूले तो शुद्ध हो २९॥

मू० न लङ्घयेत्तथैवासृक् ष्ठीवनोद्वर्त्तनानि च।
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ३०॥

टी०। और रुधिर और थूक और खखार और उद्वान्त को नांघना न चाहिये और बुद्धिमानों को चाहिये कि बाग़ वग़ैरा में बेवक्त कभी न जायाकरैं ३०॥

मू० न चालपेज्जनद्विष्टं वीरहीनान्तथा स्त्रियम्।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ३१॥

टी०। और मनुष्यों से वैर रखनेवाले और बिनपति पुत्रवाली स्त्री से ठिलग्गी न करै और जूठन और विष्ठा और मूत्र और पैर धोयाहुआ पानी यह सब घरके बाहेर फेंकना चाहिये ३१॥

मू० पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि।
स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरित्सु च ३२॥

टी०। और मिट्टी के बिन पांच पिण्ड निकाले दूसरे के खुदाये हुये जलमें न नहावै व देवखात या गङ्गा या कुण्ड या किसी पुण्या नदी में स्नान करै ३२॥

मू० देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः।
कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुद्ध्येतार्कावलोकनात् ३३॥

टी०। और देवता और पितृ और सच्छास्त्र और यज्ञ और मन्त्र का जो कोई निन्दक हो उससे स्पर्श या बात चीत करने के दोष मिटने के वास्ते सूर्य्य का अवलोकन करे ३३॥

मू० अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम्।
विधर्म्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ३४॥

टी०। इसी तरह रजस्वला स्त्री और अन्त्यज और पतित और मृतक और पापी और सूतिका और हिजड़ा और नङ्गा और नाई ३४॥

मू० मृतनिर्य्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये।
एतदेव हि कर्त्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ३५॥

टी०। और मुर्दों को लेजाने वाले और जो पुरुष पर स्त्री में रत रहते हैं इन सबों को देखने से जो दोष होताहै वह भी सूर्य्य के अवलोकन से छूटजाताहै ३५॥

मू० अभोज्यसूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटान्।
पतिताविद्धचाण्डालमृतहारांश्च धर्म्मवित् ३६॥

टी०। और अभोज्य (न खानेवाली चीज़) और सूतिका और हिजड़ा और मार्जार और मूष और कुत्ता और मुर्गा और पतित व त्यागे हुये और चाण्डाल और मृतक उठानेवालेसे धर्म्मात्मा लोग छूजायँ तो ३६॥

मू० संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामसूकरौ।
तद्वच्च सूतिकाशौच दूषितौ पुरुषावपि ३७॥

टी०। स्नान करने से शुद्ध होते हैं और रजस्वला स्त्री और ग्रामीण सूकर और इसीतरह प्रसूती और अशौचसे छूजाने पर भी पुरुष स्नान करने से शुद्ध होताहै ३७॥

मू० यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्म्मणः।
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्बिषी स नराधमः ३८॥

टी०। और जिस मनुष्य के घरमें प्रतिदिन नित्य कर्म्म की हानि होती है व जो ब्राह्मणसे त्यागा गयाहै वह मनुष्य अधम व पापी है३८॥

मू० नित्यस्य कर्म्मणो हानिं न कुर्व्वीत कदाचन।
तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु ३९॥

टी०। और नित्य कर्म्म को कभी छोड़ना न चाहिये केवल जन्म और मरण के सूतकमें न करै ३९॥

सू० दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्ज्जितः।
क्षत्रियो द्वादशाहञ्च वैश्योमासार्द्धमेवच ४०॥

टी०। और ब्राह्मण को सूतक दश दिन तक और क्षत्री को बारह दिन तक और वैश्य को पन्द्रह दिन तक होताहै उतने दिनों तक दान होमादि न करै ४०॥

सू० शूद्रस्तुमासमासीत निजकर्म्मविवर्ज्जितः।
ततः परं निजं कर्म्म कुर्य्युः सर्व्वे यथोचितम् ४१॥

टी०। और शूद्र को एक महीने तक अपने कर्मों से अलग रहे बाद इसके जिस जिस को जो बात करना चाहिये वे सब अपना अपना काम करैं ४१॥

सू० प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रकैः।
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ४२॥

टी०। और बाहर मृतक को दाह करने पर सगोत्रों को चाहिये कि प्रेतको जल देवैं व पहिले दिन तीसरे दिन सातवें दिन या नवें दिन ४२॥

सू० भस्मास्थिचयनं कार्य्यं चतुर्थे गोत्रकैर्दिने।
ऊर्ध्वं सञ्चयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ४३॥

टी०। और चौथे दिन सगोत्र को अस्थिसञ्चय करना चाहिये और अस्थिसञ्चय के बाद उनका अङ्ग स्पर्श होना चाहिये ४३॥

सू० सोदकैस्तुक्रियाः सर्व्वाः कार्य्याः सञ्चयनात्परम्।
स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहानि तथोभयोः ४४॥

टी०। और अस्थिसञ्चय के पश्चात् समानोदक भी अपना सब कर्म करैं और सपिण्ड लोग स्पर्शही करैं और जिस दिन मृतक की मृत्यु हो उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनों कुछ नित्य कर्म्म न करैं ४४॥

सू० स्त्र्याहि गोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बन्धनवह्निषु।
विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि ४५॥

टी०। और वृक्षसे गिरा और साँप का काटा हुआ और गऊका मारा हुआ और अन्नादिक से मरा हुआ और जल में डूबकर या फँसरी लगाकर व आग में जलकर या विष खाकर या पहाड़से गिरकर मराहो और जो अपने पाप के छुड़ाने के वास्ते यज्ञ या व्रत करने में मरगयाहो इन लोगों के वास्ते सद्यः अर्थात् शीघ्रही शौच है ४५॥

मू० बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्राजिते मृते।
सद्यःशौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम् ४६॥

टी०। और बालक और परदेशी और परिव्राट् ये सब मर जाँय तो उनके वास्ते भी सद्यही शौच है और किसी की यह भी मति है कि त्रिरात्रि अशौच है ४६॥

मू० सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि।
पूर्व्वाशौचसमाख्यातैः कार्य्यास्त्वत्रदिनैः क्रियाः४७॥

टी०। और जो एक सपिण्ड मरजाय और उसके पाँच दिनके भीतर दूसरा सपिण्ड भी मरजाय तो पहिले जो मरा है उसी के अशौच में कहे हुए दिनों से कार्य करना चाहिये ४७॥

मू० एष एवविधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके।
सपिण्डानां सपिण्डेषु यथा वत्सोदकेषु च ४८॥

टी०। इसीतरह ऐ पुत्र! जन्मका सूतक भी समझना चाहिये जैसे सपिण्डका कहा है और जो समानोदक मरजाय और उसके त्रिरात्रि के भीतर दो हिस्से के पहिले हिस्से में दूसरा समानोदक भी मरजाय तो पहिलेही के त्रिरात्रि के साथ दूसरे का भी त्रिरात्रि होना चाहिये और जो दूसरे हिस्से में मरे तो दूसरेही के त्रिरात्रि के साथ पहिले का भी त्रिरात्रि करे ४८॥

मू० जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलन्तु विधीयते।
तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जाते जायेत चापरः ४९॥

टी०। और पुत्र के जन्म में पिता को सुनतेही सवस्त्र स्नान करना चाहिये और जो उस पुत्र के जन्म के बाद पाँचदिन के भीतर दूसराकोई पुत्र अपने परिवार में उत्पन्न हो तो पहिले के अशौच से दूसरे का भी

अशौच समझना चाहिये और जो पाँच दिनके बाद दूसरे का जन्महो ४९॥

मू० तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्व्वजन्मवतो दिनैः।
दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः ५० ॥

टी०। तो इस दूसरे के अशौच से पहिले का अशौच भी समझना चाहिये और यह अशौच दश दिन ब्राह्मण और बारह दिन क्षत्री और पन्द्रह दिन वैश्य और महीनाभर तक शूद्रके वास्ते होताहै ५० ॥

मू० स्वाः स्वाः कर्म्मक्रियाः कुर्य्युः सर्व्वे वर्णा यथाविधि।
प्रेतमुद्दिश्यकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् ५१ ॥

टी०। चारों वर्णों को अपनी अपनी विधि के अनुसार कर्म्म करना चाहिये ततपश्चात प्रेतका उद्देश करके एकोद्दिष्ट करे ५१ ॥

मू० दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः।
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ५२ ॥

टी०। और पण्डितों को ब्राह्मणों के लिये दान देना चाहिये जो जो वस्तु लोक में उत्तमहो और घर में भी जो जो वस्तु प्रियहो वह देवै५२॥

मू० तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता।
पूर्णैस्तुदिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ५३ ॥

टी०। इन सब चीजों को अक्षय फल की इच्छावाला मनुष्य गुणवान् ब्राह्मण को देवे जब क्रिया पूरी होजाय तब से जल और सवारी और हथियार आदि का ब्राह्मण, क्षत्री स्पर्श करे ५३ ॥

मू० प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णाः कृतक्रियाः।
स्ववर्णधर्म्मनिर्दिष्टमुपादानं तथा क्रियाः ५४ ॥

टी०। और वैश्य व शूद्र चाबुक और दण्ड को छुवैं और जिन जिन वर्णोंका जो जो धर्म कर्म्म कहा है वह अपना अपना कर्म्म करैं ५४ ॥

मू० कुर्य्युः समस्ताः शुचिनः परत्रेह च भूतिदाः।
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ५५ ॥

टी०। और यह सब क्रिया पवित्र होकर करैं क्योंकि इस लोक और

परलोक दोनों में फल देनेवाली है और तीनों वेद अर्थात् साम ऋग् यजुर्वेद नित्य पढ़े और पण्डितों से सङ्गति रक्खै ५५ ॥

मू० धर्म्मतो धनमाहार्य्यं जष्टव्यश्चापि यत्नतः ।
यच्चापि कुर्व्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक ५६ ॥

टी० । और ऐ पुत्र ! धर्म्म के साथ धन पैदा करके यत्न से यज्ञ करै और वह कर्म्म करै कि जिससे निन्दा न हो ५६ ॥

मू० तत् कर्त्तव्यमशङ्केन यन्नगोप्यं महाजने ।
एवमाचरतो वत्स पुरुषस्य गृहे सतः ॥
धर्म्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ५७ ॥

टी० । और ऐ पुत्र ! उन्हीं कर्म्मों को निश्शङ्कहोकर करना चाहिये कि जो महात्मा लोग करगये हैं और करते हैं सज्जनपुरुष के घरमें ऐसे कर्म्म करने से धर्म अर्थ कामकी प्राप्तिसे इस लोक और परलोक में उत्तम सुख होता है ५७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेलर्कानुशासनेवर्ज्यावर्ज्यनामपञ्चत्रिंशत्तमोध्यायः ३५ ॥

अथ छत्तीसवां अध्याय ॥

जड उवाच ॥

मू० स एवमनुशिष्टः सन् मात्रा संप्राप्य यौवनम् ।
ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् १ ॥

टी० । जडरूपी सुमति अपने पितासे कहते हैं कि अलर्क इस तरह का ज्ञान अपनी माता मदालसा से सीख कर जब तरुण अवस्था को पहुंचे तब उन्होंने अच्छी तरह से अपना विवाह किया १ ॥

मू० पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ।
पितुश्च सर्व्वकालेषु चकाराज्ञानुपालनम् २ ॥

टी० । और अलर्क के पुत्र भी उत्पन्न हुए और अलर्क तरह २ की यज्ञ किया करते और सदा अपने पिता की आज्ञाका पालन करते थे २ ॥

मू० ततः कालेन महता संप्राप्य चरमं वयः।
चक्रेभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः ३ ॥

टी०। उसके बाद बहुतदिनों के बाद जब राजा ऋतध्वज पिछली अवस्था को प्राप्त हुये तब राज्य गद्दीका अभिषेक अलर्क को किया ३॥

मू० भार्य्यया सह धर्म्मात्मा यियासुस्तपसे वनम्।
अवतीर्णो महारक्षो महाभागो महीपतिः ४॥

टी०। और आप मदालसा सहित तप करनेके वास्ते जंगलमें जानेकी इच्छाकी जो भूपति कि बड़े भाग्यवान् व भूमि की रक्षामें लगेहुए थे ४॥

मू० मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः।
कामोपभोगसंसर्गप्रहाणाय सुतस्य वै ५॥

टी०। उस समय मदालसा अपने बेटे अलर्क को काम और भोग के संसर्ग इत्यादि के छोड़ने के वास्ते उनसे यह वचन कहने लगी ५॥

मदालसोवाच॥

मू० यदा दुःखमसह्यन्ते प्रियबन्धुवियोगजम्।
शत्रुबाधोद्भवं वापि वित्तनाशात्मसम्भवम् ६॥

टी०। अर्थात् मदालसा कहने लगी कि हे पुत्र! जब तुमको अपने भाई बन्धु या किसी शत्रु से अथवा धन के नाश होजाने से दुःख पड़े और वह दुःख तुम से सहा न जाय ६॥

मू० भवेत्तत्कुर्व्वतो राज्यं गृहधर्म्मावलम्बिनः।
दुःखाय तनभृतोहि ममत्वालम्बनं गृही ७॥

टी०। जो तुम कि गृहस्थी के कर्मका अवलंबन किये हुए राज्य करते हो गृहस्थ को ममता का आलंबन क्लेश का गृह है ७॥

मू० तदास्मात् पुत्रनिष्कृष्य मद्दत्तादंगुलीयकात्।
वाच्यन्ते शासनं यद्दे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ८॥

टी०। तब तुम इस अंगूठी को जो मैं तुमको देती हूं और जिस में श्लोक तुम्हारे धीर्य्य होने के वास्ते थोड़े अक्षरों में लिखा है पढ़ कर इस घर को छोड़ देना ८॥

जड उवाच ॥

सू० इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै सौवर्णंसांगुलीयकम् ।
आशिषश्चापि या योग्याः पुरुषस्य गृहे सतः ९ ॥

टी०। जडरूपी सुमति कहते हैं कि हे पिता ! इतनी बात मदालसा ने कहकर और वह सोने की अंगूठी अलर्क को देकर उत्तम गृहस्थ के योग्य आशीर्वाद दिया ९ ॥

सू० ततः कुवलयाश्वोऽसौ सा च देवी मदालसा ।
पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतः १० ॥

टी०। इसके बाद कुवलयाश्व और मदालसा दोनों अलर्क को वह राज्य सौंप कर जंगल में तपस्या करने के वास्ते चले गये १० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानन्नामषट्त्रिंशत्तमोध्यायः ३६ ॥

अथ सैंतीसवां अध्याय ॥

जडउवाच ॥

सू० सोऽप्यलर्कोयथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः ।
पालयामास धर्म्मात्मा स्वे स्वे कर्म्मण्यवस्थिताः १ ॥

टी०। जडरूप सुमति कहते हैं कि वह अलर्कमहाराज महात्मा आनन्दयुक्त न्यायपूर्वक पुत्रसमान प्रजा का पालन करते और जिस जिस वर्ण का जो धर्म्म है उसको उसमें स्थित रखते थे १ ॥

सू० दुष्टेषु दण्डं शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम् ।
कुर्व्वन् परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः २ ॥

टी०। और परम हर्षको प्राप्तहो दुष्टों का दण्ड और अच्छीतरह से अच्छे लोगों का पालन किया करते थे और बड़े बड़े यज्ञ भी किया करते थे २ ॥

सू० अजायन्त सुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः ।
धर्म्मात्मानोमहात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः ३ ॥

टी०। और उनके लड़के भी बड़े बड़े पराक्रमी और बलवान् और धर्मात्मा और कुमार्गियों को दण्ड करनेवाले होते भये ३॥

मू० चकार सोऽर्थं धर्म्मेण धर्म्ममर्थेन वा पुनः।
तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि ४॥

टी०। और आप अलर्क ने धर्म्म के साथ धन प्राप्त करके उस धन से धर्म्म किया और धन और धर्म्म के साथ सब तरह के विषयों को भोग करने लगे ४॥

मू० एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतोमहीं।
धर्म्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा ५॥

टी०। इसी तरह धर्म्म और अर्थ और कामना संयुक्त पृथ्वी का पालन करते हुये उसको कितने वर्ष एक दिनके समान व्यतीत होगये ५॥

मू० वैराग्यं नास्यसञ्जज्ञे भुञ्जतो विषयान् प्रियान्।
नवाप्यलमभूतस्य धर्म्मार्थोपार्जनं प्रति ६॥

टी०। और तरह तरह का संसारी सुख भोग करते थे और धर्म्म और अर्थ को उपार्जन करने से मनको वैराग न हुआ ६॥

मू० तं तथा भोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम्।
सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः ७॥

टी०। इसी तरह संसार के भोग में प्रमत्त और अजितेन्द्रिय होकर फँसे रहे जब यह हाल अलर्क महाराज का उनके भाई वनवासी सुबाहु ने सुना ७॥

मू० तं बुबोधयिषुस्सोऽथ चिरं ध्यात्वा महामतिः।
तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपतेः ८॥

टी०। तो अपने भाई के ज्ञान में प्राप्त होनेकी इच्छा करके बहुत कालतक ध्यान करके अपने जी में शोचा कि अगर कोई शत्रु इनका राज्य छीनलेवै तो इनको ज्ञान होवै ८॥

मू० ततः सकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम्।
स्वराज्यं प्राप्तुमागच्छद्बहुशः शरणं कृती ९॥

टी०। यह शोचकर सुबाहु वह राज्य अपने को प्राप्त होने के वास्ते काशी के राजा के पास गया जो बहुतों को शरण देता था और उस राजा के धन और वाहन और बल और सेना बहुत थी ९॥

मू० सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रतिपार्थिवः।
दूतञ्च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम् १०॥

टी०। तब उस काशीनरेश ने भी अपनी सेना तैयार करके अपना एक दूत अलर्क के पास यह कहकर भेजा कि जो तुम अपनी भलाई चाहते हो तो सुबाहु को राज्य दे दो १०॥

मू० सोऽपि नैच्छत्तदा दातुमाज्ञापूर्वं स्वधर्मवित्।
प्रत्युवाच च तं दूतमलर्कः काशिभूभृतः ११॥

टी०। उस धर्म्मात्मा अलर्क राजाने भी राज्य देनेकी इच्छा न करी और काशिराज के उस दूत से आज्ञापूर्व्वक कहा ११॥

मू० मामेवाभ्येत्यहार्देन याचतां राज्यमग्रजः।
नाक्रान्त्या संप्रदास्यामि भयेनाल्पामपि क्षितिम् १२॥

टी०। कि काशी नरेश से कह देना कि मेरा भाई जो मेरे पास स्नेह से आकर राज्य मांगे तो मैं दूँगा नहीं तो किसी के डर से एक पैर भर भी जमीन मैं किसी को न दूँगा १२॥

मू० सुबाहुरपि नोयाच्ञाञ्चकारमतिमांस्तदा।
न धर्मःक्षत्रियस्येति याच्ञावीर्य्यधनोहि सः १३॥

टी०। जब दूत ने यह सँदेशा अलर्क का काशी नरेश से कहा तब काशी नरेश ने सुबाहु से कहा कि तुम जाकर अलर्क से राज्य मांगलेउ तब सुबाहु ने कहा कि मांगकर राज्य लेना क्षत्री का धर्म्म नहीं है क्षत्री युद्ध करके राज्य लेताहै १३॥

मू० ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः।
आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः १४॥

टी०। तब काशी नरेश सब सेना साथ लेकर महाराज अलर्क का राज्य छीन लेने के वास्ते उनके नगरमें पहुँचे १४॥

मू० अनन्तरैश्च संश्लेषमभ्येत्य तदनन्तरम्।
तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम् १५॥

टी०। और उसके बाद दोनों राजाओं की सेनासे बड़ी लड़ाई हुई निदान काशी नरेश ने उनके मन्त्री आदि को अपने वश करलिया १५॥

मू० आपीडयंश्च सामन्तांस्तस्य राष्ट्रोपरो धनैः।
तथा दुर्गानुपालांश्च चक्रे चाटविकान् वशे १६॥

टी०। और उनकी राज्य को घेरकर छोटे २ राजाओं को दुख देते हुये सब नोकरों व जङ्गली स्थानों को भी अपने वश करलिया १६॥

मू० कांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान्।
साम्नैवान्यान् वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् १७॥

टी०। औरजो जो राजा लोग उनके पाले हुए थे उन सबों को किसी को द्रव्य देकर किसी को भेद करके किसी को मीठे वचन कहकर अपने वश में काशीनरेश ने कर लिया १७॥

मू० ततः सोऽल्पबलोराजा परचक्रावपीडितः।
कोशक्षयमवापोच्चैः पुरञ्चारुध्यतारिणा १८॥

टी०। तब अलर्क महाराज की सेना काशी नरेश की सेना से बहुत पीड़ित होकर कम हुई और उनका खजाना नाश होगया व नगर भी काशीनरेश ने घेर लिया १८॥

मू० इत्थंसंपीड्यमानस्तु क्षीणकोशोदिने दिने।
विषादमागात्परमं व्याकुलत्वञ्च चेतसः १९॥

टी०। और दिनोंदिन खजाना भी कमहोगया व इस तरहसे पीडित हो राजा अलर्क और भी दुखी हुये और चित्त इनका घबड़ा गया १९॥

मू० आर्त्तिं स परमां प्राप्य तत्सस्मारांगुलीयकम्।
यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा २०॥

टी०। तब बहुत दुखपाकर अलर्क को वह अंगूठी याद आई जो उसकी माता मदालसा ने दिया था और पहले जिसको उद्देश कर कहा था २०॥

मू० ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
निष्कृष्य शासनं तस्माद्ददर्शो प्रस्फुटाक्षरम् २१ ॥

टी०। फिर तो स्नान कर पवित्र हो ब्राह्मणों से स्वस्त्ययनपढ़वाकर उस अंगूठी को निकालकर उसका मज़मून जो साफ़ साफ़ अक्षरों में अपने उपदेश के वास्ते लिखा था उसको देखा २१ ॥

मू० तत्रैव लिखितं मात्रा वाचयामास पार्थिवः।
प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः २२ ॥

टी०। उसमें लिखाहुआ हाल ब्राह्मणों से पढ़वाया और मज़मून उसका दरियाफ़्त करके बहुत खुश हुआ व रोमांच होआया २२ ॥

मू० सङ्गः सर्व्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गोहि भेषजम् २३ ॥

टी०। उसमें लिखाथा कि हरतरह से दुनियांदारों की संगति छोड़ देना चाहिये और जो न छूट सके तो साधु लोगों की संगति करे क्योंकि साधु लोगों की संगति संसार से छूटने की औषधि है २३ ॥

मू० कामः सर्व्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्य्यस्सैव तस्यापि भेषजम् २४ ॥

टी०। और सब तरह से काम को भी छोड़ना चाहिये अगर न छूट सके तो मुक्ति की इच्छा में उसका यत्न करे यह यत्न काम के रोग की औषधि है २४ ॥

मू० वाचयित्वा तु बहुशो नृणां श्रेयः कथन्त्विति।
मुमुक्षयेति निश्चित्य सा च तत्सङ्गतोयतः २५ ॥

टी०। तात्पर्य्य यह है कि हरतरह से अंगूठी के लिखे हुये अक्षरों को ब्राह्मणों से पढ़वा अपने जी में मनुष्यों की भलाई का विचार करके निश्चय किया कि मुक्ति की इच्छा में भलाई है परन्तु मुक्ति की इच्छा भी साधुओंकी संगति से पूर्ण होती है २५ ॥

मू० ततः स साधुं सम्पर्कं चिन्तयन् पृथिवीपतिः।
दत्तात्रेयं महाभागमगच्छत् परमार्त्तिमान् २६ ॥

टी०। यह सोचकर उसके बाद बड़े दुःखी अलर्क महाराज साधु संग की इच्छा से दत्तात्रेय महाभाग के पास गये २६ ॥

मू० तं समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम्।
प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत २७ ॥

टी०। और उन पापरहित व संग छोड़े हुए महात्मा अलर्क के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम और पूजन करके बहुत अधीनता के साथ कहने लगे २७ ॥

मू० ब्रह्मन् कुरु प्रसादं मे शरणं शरणार्थिनाम्।
दुःखापहारं कुरु मे दुःखार्त्तस्यातिकामिनः २८ ॥

टी०। कि हे भगवन्! मैं आपके शरणार्थी हूँ मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये मैं बड़ा कामी और दुःखी हूँ मेरे दुःख को छुड़ा दीजिये २८ ॥

दत्तात्रेयउवाच ॥

मू० दुःखापहारमद्यैव करोमि तव पार्थिव।
सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखं तत् पृथिवीपते २९ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी बोले कि हे राजन्! मैं तेरा दुःख आजही छुड़ादूँगा परन्तु मुझसे तू सच सच कहु कि हे राजन्! यह दुःख तुझको किस कारण से हुआ २६ ॥

जडउवाच ॥

मू० इत्युक्तश्चिन्तयामास स राजानेन धीमता।
त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ३० ॥

टी०। जडरूपी सुमति कहते हैं कि जब उन बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने प्रसन्न होकर अलर्क से इसतरह प्रश्न किया तो उन्हों ने तीनों तरहके दुःखके स्थान आत्मा को सोचा ३० ॥

मू० स विमृश्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधीः।
आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ३१ ॥

टी०। और बार बार उदार बुद्धिवाले अलर्क राजा देर तक विचार करके अपना से हँसकर कहने लगे ३१ ॥

मू० नाहमुर्व्वी न सलिलं न ज्योतिरनिलोन च।
नाकाशं किन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ३२॥

टी०। कि न मैं अग्निहूँ न जल न वायु न माटी न आकाशहूँ किन्तु सुख तो शरीर को होताहै ३२॥

मू० न्यूनातिरिक्ततां याति पञ्चकेऽस्मिन् सुखासुखम्।
यदि स्यान्मम किन्नस्यादन्यस्थेऽपिहितं मयि ३३॥

टी०। और यह शरीर भी पांच तत्त्व मिलकर विद्यमान् है और दुःख और सुख इस पञ्च कल्पित शरीरमें न्यून व अधिक होताहै जो यह दुःख सुख हमको हो तो दूसरे शरीरों में जो आत्मा है उनको क्यों नहीं होता है आत्मा तो एकही है ३३॥

मू० नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते।
तथा च ममतात्यक्ते विशेषेणोपलभ्यते ३४॥

टी०। और आत्मा नित्य तो निर्विकार है तब इनमें सुख दुःख के कारण से हर्ष विस्मय तो ममता करके होता है इस वास्ते ममता को जिसने छोड़ दिया है वही विशेषता से पायाजाता है याने वह निर्विकार और सुख दुःख से रहित है ३४॥

मू० तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः।
तथैव भूतसद्भावं शारीरं किं सुखासुखम् ३५॥

टी०। और पञ्चतन्मात्रा के मध्य में जो आत्मा तीसरे भागसे सूक्ष्म रूप साक्षी होकर विराजमान है उसको जो कोई जानता है उसको इस शरीर का सुख और दुःख कुछ भी नहीं प्राप्त होता है ३५॥

मू० मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसञ्च यत्।
यतस्ततोन मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ३६॥

टी०। और सुख दुःख मनको होता है तो जिसके मन में यह सुख दुःख होता है उसी के मन में हर्ष और विषाद भी होता है और मैं मन से अलग हूँ इसवास्ते मुझे न दुःख है न सुख है ३६॥

मू० नाहङ्कारो न च मनोबुद्धिर्नाहं यतस्ततः।
अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम् ३७॥

टी०। और जिसलिये मैं अहङ्कार और बुद्धि और मन नहीं हूँ यह दुःख तो अहङ्कार और मन और बुद्धि को होता है और अन्तःकरण में जो दुःख है वह दूसरे को है इसलिये मुझको किसतरह होसक्ता है ३७ ॥

मू० नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तत्सन्तु चेतस्यथवापिदेहेसुखानिदुःखानिचकिंममात्र ३८

टी०। और जिसलिये मैं न शरीर हूँ न मन हूँ किन्तु इनदोनों से अलग हूँ इसवास्ते सुख दुःख चाहै मन में रहै चाहै शरीर में रहै इस में मुझे क्या ३८ ॥

मू० राज्यस्य वाञ्छां कुरुतेऽग्रजोऽस्य
देहस्य चेत्पञ्चमयः स राशिः ।
गुणप्रवृत्त्या मम किन्तु तत्र
तत्स्थः स चाहञ्च शरीरतोऽन्यः ३९ ॥

टी०। और मेरे बड़े भाई सुबाहु जो राज्य की इच्छा रखते हैं वह राज्य शरीर का है और शरीर पांच महाभूतों से मिलकर बना हुआ है और इस में चौबीस गुण भी प्राप्त हैं मुझको इससे क्या क्योंकि मैं शरीर से अलग हूँ और वह उसमें स्थित है ३९ ॥

मू० न यस्य हस्तादिकमप्यशेषम्
मांसं न चास्थीनि शिराविभागः ।
कस्तस्य नागाश्वरथादिकोशैः
स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहास्ति पुंसः ४० ॥

टी०। और जिसके शरीर और हाथ और पांव आदि मांस और अस्थि और नाड़ियों के विभाग इत्यादि नहीं हैं तो हाथी घोड़ा और रथ और कोश अर्थात् खजाने से भी उस पुरुषका कुछ सम्बन्ध नहीं है ४० ॥

मू० तस्मान्न मेऽरिर्न च मेऽस्ति दुःखम्
न मे सुखं नापि पुरं न कोशः ।
न चाश्वनागादि बलं न तस्य
नान्यस्य वा कस्यचिद्वा ममास्ति ४१ ॥

टी०। इस वास्ते न मेरा कोई शत्रु है और न मुझे दुःख सुख है और गांव और खज़ाना और हाथी और घोड़ा और सेना भी मेरी नहीं है और न सुबाहु की है और न अन्य किसी की है ४१ ॥

मू० यथा घटीकुम्भकमण्डलुस्थ-
माकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम्।
तथा सुबाहुः सच काशिपोऽहं
मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ४२ ॥

टी०। जिस तरह घटी और घड़ा और कमण्डलु आदि में एकही आकाश विद्यमान है पर अनेक स्थानों में तरह तरह का देख पड़ता है उसी तरह से सुबाहु और काशीनरेश और मैं एकही हूँ परन्तु शरीर के भेद से भेद है ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेआत्मविवेकोनामसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३७

अथ अड़तीसवां अध्याय ॥

जडउवाच ॥

मू० दत्तात्रेयं ततो विप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः।
प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतो वचः १ ॥

टी०। जडरूपी सुमति कहते हैं कि हे पिता! उसके बाद दत्तात्रेय नाम ब्राह्मण को वे राजा अलर्क प्रणाम करके नम्रता के साथ वचन कहने लगे १ ॥

मू० सम्यक् प्रपश्यतो ब्रह्मन् मम दुःखं न किञ्चन।
असम्यग्दर्शिनो मग्नाः सर्व्वदैवासुखार्णवे २ ॥

टी०। कि हे ब्रह्मन्! सब तरहसे मैं आत्माको देखताहूँ इस सबब से मुझको कुछ दुःख नहीं है जो लोग अपनी आत्मा को अच्छी तरहसे नहीं देखते हैं वही लोग हमेशा दुःख के समुद्र में डूबे रहते हैं २ ॥

मू० यस्मिन् यस्मिन्समासक्ता बुद्धिः पुंसां प्रजायते।
ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ३ ॥

टी०। जिस जिस स्थान में मनुष्यों की बुद्धि आसक्त होती है उस उस स्थान से दुःखही को लाकर देती है ३॥

मू० मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे।
न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषके ४॥

टी०। जैसे घरके पाले हुये मुर्गा को बिलार के खाजाने से मनुष्यों को दुःख होताहै वैसा दुःख मूस व गरगौवा इत्यादि के खाजाने से नहीं होता क्योंकि ममता तो मुर्गा में रहती है ४॥

मू० सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः।
योभूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ५॥

टी०। इसलिये मैं न दुखी हूँ न सुखी क्योंकि मैं प्रकृति से अलग हूँ जो प्राणियों से तिरस्कृत होता है वही सुखी और दुखी है ५॥

दत्तात्रेयउवाच॥

मू० एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद्व्याहृतं त्वया।
ममेतिमूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतेः ६॥

टी०। इतनी बातें अलर्क की सुनकर दत्तात्रेयजी बोले कि हे महाराज अलर्क! जो तुम कहते हो वह सब सत्य है दुःखकी जड़ ममता है विना ममता छोड़े सुख नहीं होता है ६॥

मू० मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम्।
ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्ताशाल्मलितूलवत् ७॥

टी०। और हमारे पूछने से यह उत्तम ज्ञान तुमको उत्पन्न हुआ है कि जिस ज्ञान के प्रताप से ममता की प्रतीति छूटगई जैसे सेमर की रुई वायु के लगने से उड़जाती है ७॥

मू० अहमित्यंकुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान् महान्।
गृहक्षेत्रोच्चशाखाश्च पुत्रदारादिपल्लवः ८॥

टी०। और अहं यही अंकुर उत्पन्न है और ममता उसकी बड़ीभारी स्कन्ध है और खेत और घर उसकी ऊपरकी शाखा है और पुत्र और स्त्री इत्यादि उसका पल्लव अर्थात् कलँगा के पास की पत्ती है ८॥

मू० धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः ९ ॥

टी०। और धन और धान्य इत्यादि उसके बड़े बड़े पत्ते हैं और ये बहुत काल के बढ़े हुये हैं और पाप पुण्य इसका अमोघ फूल है और सुख दुःख इसके बड़े फल हैं ९ ॥

मू० तत्र मुक्तिपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचतः।
विधित्साभृङ्गमालाढ्यो कृत्यज्ञानमहातरुः १० ॥

टी०। और मूढ़ोंकी जो संगति है उसी पानी के सींचने से उसवृक्ष ने मुक्तिके मार्गको रोकलिया और कार्य्य करने की जो इच्छा है वहीइस वृक्षपर भँवरोंका समूहहै इससे संयुक्त कार्य व ज्ञानका यह महावृक्षहै १० ॥

मू० संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ११ ॥

टी०। इस संसार रूपी रास्ते में थककर जो इस वृक्षकी छाया में बैठ जाते हैं वे भ्रमात्मक ज्ञान और सुख दुःख के अधीन होजाते हैं उनको आत्यन्तिक अर्थात् मोक्ष नहीं होसक्ती है क्योंकि वे भ्रम में भूलेहुये हैं ११ ॥

मू० यैस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः।
छिन्नोविद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना १२ ॥

टी०। और जो मनुष्य सत्सङ्ग रूपी पत्थरपर ज्ञानरूपी कुल्हाड़ी को तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को काट डालते हैं वही मनुष्य मुक्ति की राहपर प्राप्त होजाते हैं १२ ॥

मू० प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्।
प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञानिर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः १३ ॥

टी०। और विना कांटे और धूलिके ब्रह्मज्ञान रूपी शीतल वन में प्राप्त होकर परम निवृत्ति को वह ज्ञानी प्राप्त होजाते हैं और संसार के आवागमन से रहित होजाते हैं १३ ॥

मू० भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्नचाप्यहम्।
न तमान्त्रं मया वा वां नैवान्तःकरणात्मकौ १४ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे राजन्! इन भूतेन्द्रियों के साथ जो स्थूल शरीर है सो न तुम हौ न हम हैं और हम और तुम पांचतन्मात्रा भी नहीं हैं न चित्तात्मक हैं किन्तु इसके भीतर साक्षीरूप आत्माहै १४॥

मू० कम्वा पश्यामि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः।
यतः परो हि क्षेत्रज्ञः सङ्घातो हि गुणात्मकः १५॥

टी०। और हम तुम में या अपने में किसको प्रधान समझें जब कि क्षेत्रज्ञ पुरुष सबसे प्रधानहै तो यह सब जो समूहहै सो गुणात्मकहै १५॥

मू० मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसां यथा।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप १६॥

टी०। हे राजन्! जिस तरह गूलर और उसके भीतरका भुनगा और मूँज और उसके भीतर की सिरकी और जल और उसमें की मछली ये सब यद्यपि आपुस में मिले हुये हैं पर विचार करने से अलग अलग हैं इसी तरह शरीर और आत्मा देखने में तो एकही है पर विचार करने से अलग अलग है १६॥

अलर्कउवाच॥

मू० भगवंस्त्वत्प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम्।
ज्ञानं प्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् १७॥

टी०। यह सुनकर अलर्क बोले कि हे भगवन्! आपके प्रसाद से मेरे ऐसा उत्तम ज्ञान चैतन्य शक्ति का समझनेवाला उत्पन्न हुआ १७॥

मू० किं त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्य्यवत्त्वं न चेतसि।
नचापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् १८॥

टी०। परन्तु विषयसे जो मेरा मन घेरा हुआ है इससे स्थिर नहीं होताहै और यह भी नहीं जानताहूँ कि इस माया के बन्धन से छूटकर किस तरह मुक्ति होगी १८॥

मू० कथं न भूयां भूयश्च कथं निर्गुणतामियाम्।
कथञ्च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै १९॥

टी०। और किस तरहसे इस संसार के आवागमन से रहित होजाऊँ

ऊँगा और किस प्रकारसे निर्गुण में प्राप्तहूँगा और अविनाशी ब्रह्म में मिलजाऊँगा १९ ॥

मू० तन्मे योगन्तथा ब्रह्मन् प्रणतायाभियाचते ।
सम्यग्ब्रूहि महाप्राज्ञ सत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम् २० ॥

टी० । इस वास्ते हे ब्रह्मन् ! बहुत प्रणय के साथ मैं आप से मांगता हूँ कि सम्यक् प्रकार से योग मुझे बतलाइये क्योंकि हे महाप्राज्ञ ! साधुओं का सङ्ग मनुष्यों का उपकार करनेवाला है २० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेप्रश्नोनामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथ उन्तालीसवां अध्याय ॥

दत्तात्रेयउवाच ॥

मू० ज्ञानपूर्वो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः ।
सामुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः १ ॥

टी० । यह इच्छा अलर्क महाराज की सुनकर दत्तात्रेयजी बोले कि अज्ञानी की सङ्गति का ज्ञान होकर अज्ञानता से अलग होजाना यही मुक्ति है और मायाकृत गुण सब को छोड़ देना वही ब्रह्म से ऐक्यता कहलाती है १ ॥

मू० मुक्तिर्योगात्तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
ज्ञानं दुःखोद्भवं दुःखं ममत्वासक्तचेतसाम् २ ॥

टी० । और हे महाराज ! मुक्ति योग से होती है और योग भी बहुत तरह के ज्ञान से होताहै और ममता को छोड़कर जो लोग दुःख सहते हैं उनको उसी दुःख से ज्ञान होताहै और ममता में आसक्त चित्तवाले को सदा दुःखही बना रहताहै २ ॥

मू० तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेन मुमुक्षुः सन्त्यजेन्नरः ।
सङ्गाभावे ममेत्यस्याः ख्यातेर्हानिः प्रजायते ३ ॥

टी० । इसी वास्ते मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले लोग पहिले अति यत्न

करके संसारी सङ्गति को छोड़ देते हैं जब सङ्ग छूट जाता है तो ममता भी छूटजाती है ३॥

मू० निर्म्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम्।
ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्व्वकम् ४॥

टी०। और ममता के छूट जाने से प्राणियों को सुख होता है और ममता का दोष वैरागसे देख पड़ताहै और ज्ञानही से वैराग्य होताहै और ज्ञान वैराग्यसे होताहै ४॥

मू० तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति।
यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ५॥

टी०। और घर वही है कि जिसमें रहै और भोजन वही है कि जिस से जीवनहो और ज्ञान वही है कि जिससे मुक्ति हो अन्यथा अज्ञान है और जहाँपर न रहै वह घर नहीं और जिस से अपना जीवन न हो वह भोजन नहीं और जिस से जीव को मुक्ति नहो वह ज्ञान नहीं है अर्थात् वृथा है ५॥

मू० उपभोगेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव।
कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानामकामकरणात्तथा॥ ६॥

टी०। और ऐराजन्! पुण्य और पाप भोग करने से क्षय होते हैं और नित्यकाम करने में अकाम रहने से दोनों क्षय होजाते हैं ६॥

मू० असञ्चयादपूर्व्वस्य क्षयात् पूर्व्वार्ज्जितस्य च।
कर्म्मणोबन्धमाप्नोति शरीरं न पुनः पुनः ७॥

टी०। पूर्व्व जन्म के पाप और पुण्य क्षय हो जाने से और इस जन्म में पुण्य और पाप के न जमा होने से मनुष्य बार बार कर्म्म के बन्धन वाले शरीर में नहीं पड़ता है ७॥

मू० एतत्ते कथितं राजन् योगं चेमं निबोध मे।
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ८॥

टी०। और हे राजन्! यह तो मैंने तुम से कहा पर अब वह योग मुझ से सुनो कि जिस योगको पाकर योगीलोग निरन्तर ब्रह्म में ऐक्यता को प्राप्त होजाते हैं अन्यभाव को नहीं प्राप्त होते हैं ८॥

मू० प्रागेवात्मात्मनाजेयो योगिनां स हि दुर्ज्जयः ।
कुर्व्वीत तज्जये यत्नं तस्योपायं शृणुष्व मे ६ ॥

टी०। योगी को पहिले अपने आत्मही से आत्मा अर्थात् मन को जीतना चाहिये क्योंकि मनको जीतना बहुत कठिन है इसवास्ते योगी को उसके जीतने का यत्न करना अवश्य चाहिये उसका भी उपाय कहता हूँ मुझ से सुनो ६ ॥

मू० प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् १०

टी०। पहिले प्राणायाम करके सब दोषों को भस्म करै और धारणा करके सब पापों को दग्ध करै और प्रत्याहार करके विषय को दग्ध करै और ध्यान करके माया के सब गुणों को दग्ध करै १० ॥

मू० यथा पर्व्वतधातूनां दोषा दह्यन्ति ध्मानतः ।
तथेन्द्रियकृतादोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ११ ॥

टी०। जिस तरह पर्वत की धातुओं का दोष अग्नि में जल जाता है उसी तरह इन्द्रियों का किया हुआ दोष प्राण निग्रह अर्थात् वायु रोककर प्राणायाम करके दग्ध करदेने से दग्ध होजाता है ११ ॥

मू० प्रथमं साधनं कुर्य्यात् प्राणायामस्य योगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः १२ ॥

टी०। और योग के जानने वाले लोगों को पहिले प्राणायाम का साधन करना चाहिये और प्राण और अपान वायु आदि के रोकने को प्राणायाम कहते हैं १२ ॥

मू० लघुमध्योत्तरीयाख्यः प्राणायामस्त्रिधोदितः ।
तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि तदलर्क्क शृणुष्व मे १३ ॥

टी०। और प्राणायाम तीन तरह का है लघु और मध्यम और उत्तरीय हे अलर्क ! इसका प्रमाण भी कहता हूँ उसको सुनो १३ ॥

मू० लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुणः स तु मध्यमः ।
त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः १४ ॥

टी०। लघु बारह मात्रा का कहाता है और इसको दूना करने से मध्यम और तिगुना करने से उत्तम प्राणायाम कहलाता है १४॥

मू० निमेषोन्मेषणेमात्रा कालोलघ्वक्षरस्तथा।
प्राणायामस्य संख्यार्थं स्मृतोद्वादशमात्रिकः १५॥

टी०। और पलक का उठना और गिरना व जितने काल में लघु अक्षर का उच्चारण होताहै वह मात्रा का समयहै और वही प्राणायामकी संख्या के लिये द्वादश मात्रिक कहा गया है १५॥

मू० प्रथमेन जयेत् स्वेदं मध्यमेन च वेपथुम्।
विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् १६॥

टी०। पहिले प्राणायाम से स्वेद (पसीना) को जीते और मध्यम प्राणायाम से कम्प को जीते और तीसरे प्राणायाम से विषाद को जीते तात्पर्य्य यह है कि इन्हीं तीनों प्राणायाम से तीनों दोषों को जीतकर क्रम से अपने वशकरै १६॥

मू० मृदुत्वं सेव्यमानास्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः।
यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति योगिनः १७॥

टी०। जिस तरह सेवाकिये हुये सिंह और व्याघ्र और हस्ती मनुष्य के वश होकर एक साथ रहते हैं उसी तरह योगी के वशमें प्राण और अपान सब होजाता है १७॥

मू० वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः।
तथैव योगी स्वच्छन्दः प्राणं नयति साधितम् १८॥

टी०। फिर जिस तरह मत्त हस्ती को महावत इच्छाके मुताबिक अपने वश करके उठाता बैठाताहै उसीतरह योगी स्वच्छन्द होकर साधना से प्राण को अपने वश करलेते हैं १८॥

मू० यथा हि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान्।
तद्वन्निषिद्धपवनः किल्बिषं न नृणान्तनुम् १९॥

टी०। जिस तरह सिखाया हुआ सिंह मृग इत्यादि को शिकार करता है और मनुष्यों को नहीं मारता उसी तरह प्राणायाम की वायु मनुष्यों के पापों को काटती है और शरीर को नहीं काटती १९॥

मू० तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत्।
श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् २० ॥

टी०। इसलिये योग्य योगियों को प्राणायाम में परायण होना चाहिये और योगियों को मुक्ति देनेवाली जो चार अवस्था हैं उनको भी मैं कहताहूँ सुनो २० ॥

मू० ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित् प्रसादश्च महीपते।
स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् २१ ॥

टी०। हे राजन्! पहिली ध्वस्ति दूसरी प्राप्ति तीसरी संवित् चौथी प्रसाद अवस्था है इनका रूप क्रम से कहताहूँ सुनो २१ ॥

मू० कर्म्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः।
चेतसोऽपकषायत्वं यत्र साध्वस्ति रुच्यते २२ ॥

टी०। कि अच्छे या बुरे कर्म्मों के फलकी इच्छा छोड़कर रागद्वेष से मनको शुद्ध करना यही ध्वस्ति अवस्था कहलाती है २२ ॥

मू० ऐहिकामुष्मिकान् कामाँल्लोभमोहात्मकान् स्वयम्।
निरुध्यास्ते सदायोगी प्राप्तिस्सा सार्व्वकालिकी २३ ॥

टी०। और लोक और परलोक के लोभ और मोहात्मक कामों को आपही छोड़कर सदैव योग करने को सब समय वाली प्राप्ति अवस्था कहते हैं २३ ॥

मू० अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्टतिरोहितान्।
विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा २४ ॥

टी०। और व्यतीत और अनागत अर्थों को ज्ञान से प्राप्तहो अतीत को उत्तम और अनागत को तिरोहित अर्थात् अनुचित समझै और चन्द्रमा और सूर्य्य और ग्रहों को ज्ञानकी सम्पदा से जानता है २४ ॥

मू० तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति सम्पदम्।
तदा संविदितिख्याता प्राणायामस्य संस्थितिः २५ ॥

टी०। और जब योगी तुल्यप्रभाव होवै याने समानभाव देखताहै तभी प्राणायामकी संस्थिति अर्थात् विश्राम स्थान संवित् अवस्थाहै २५ ॥

मू० दान्ति प्रसादं येनास्य मनः पञ्च च वायवः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः २६॥

टी०। जिसके करने से इस योगी का मन और पांचों वायु और सब इन्द्रिय और इन्द्रियों के अर्थ याने शब्द स्पर्शादि यह सब प्रसन्न रहैं यही प्राणायाम की प्रसाद अवस्था है २६॥

मू० शृणुष्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम्।
युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमासनम् २७॥

टी०। और हे राजन्! सदैव योग करनेवाले योगियोंके प्राणायामके लक्षण और जैसा कि विहित आसन है वह सब कहता हूँ सुनो २७॥

मू० पद्ममर्द्धासनञ्चापि तथा स्वस्तिकमासनम्।
आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि २८॥

टी०। अर्थात् योग करनेवाले को चाहिये कि पद्मासन व अर्द्धासन और स्वस्तिक आसन करके योगकरै और प्रणव को हृदयमें रक्खै २८॥

मू० समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ।
संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः २९॥

टी०। अर्थात् सम होकर इस तरहसे आसनको बनावै और दोनों पांव समेटकर मुख बन्द रक्खे और आगेसे दोनों जांघोंको खींचकर बांधै २९॥

मू० पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतः स्थितः।
किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ३०॥

टी०। पर पवित्रहो बैठे व ऐसा यत्न करै कि दोनों एँड़ियों से लिङ्ग और अण्डकोश को स्पर्श न हो और शिर को थोड़ा झुकालेवै और दांत को दांत से स्पर्श न होने दे ३०॥

मू० संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ३१॥

टी०। और अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर दिशाओं को न देखै और रजोगुण से तमोगुण की और सतोगुण से रजोगुण की वृत्तिको ३१॥

मू० सञ्छाद्य निर्म्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ३२ ॥

टी० । सञ्छादित अर्थात् त्याग करके साफ़ सत्त्व में प्राप्त होकर योगी को योग करना चाहिये और इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को और प्राण और अपान आदि और मन को ३२ ॥

मू० निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
यस्तु प्रत्याहरेत्कामान् सर्व्वाङ्गानीव कच्छपः ३३ ॥

टी० । निग्रह अर्थात् रोक करके अच्छीतरह ज्ञान से क्रम से इन सबों को अपने वश करके समेट लेवे जिसतरह कछुआ अपने अङ्गों को समेट लेताहै उसी तरह जो अपने मनको सब कामों की इच्छासे रोक रक्खे ३३॥

मू० सदात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
सबाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ३४ ॥

टी० । और सदा अपनी आत्मा में प्रेम रखकर एक आसन पै बैठ अपनेही आत्मा में आत्मा को देखता रहे और अन्तर और बाहर अपना पवित्र रक्खे और कण्ठ से नाभि तक ३४ ॥

मू० पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
प्राणायामो दश द्वौ च धारणा सा विधीयते ३५ ॥

टी० । शरीर को पवन से पूरण कर विद्वान् प्रत्याहार अर्थात् प्राणायाम करे यही दश और दो मिलकर बारह प्राणायाम हैं इसी को धारणा भी कहते हैं ३५ ॥

मू० द्वे धारणे स्मृते योगो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ३६ ॥

टी० । और तत्त्वदर्शी योगीलोग योग में दो धारणा कहते हैं इसी तरह नियतात्मा अर्थात् मन को रोके हुये योगीलोग जो योगमें युक्तहैं ३६।

मू० सर्व्वे दोषाः प्रणश्यन्ति स्वस्थश्चैवोपजायते ।
वीक्षते च परंब्रह्म प्राकृतांश्च गुणान् पृथक् ३७ ॥

टी० । उसका सम्पूर्ण दोष नाश होजाता है और वे योगीलोग

निश्चिन्त होकर परब्रह्म को देखते हैं और प्राकृत गुणों को पृथक् पृथक् जानते हैं ३७ ॥

मू० व्योमादिपरमाणूंश्च तथात्मानमकल्मषम्।
इत्थं योगी यताहारः प्राणायामपरायणः ३८ ॥

टी०। जिस तरह आकाश इत्यादि के परमाणुको देखते हैं उसीतरह निर्म्मल आत्मा को देखते हैं इस प्रकार योगी जो आहार को जीतकर प्राणायाम में परायण है ३८ ॥

मू० जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम्।
दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ३९ ॥

टी०। और धीरे २ जीती २ हुई भूमि (स्थान) में मनुष्य घरकी तरह चढ़े क्योंकि विना जीतीहुई जमीन पर जो कोई बैठता है तो वह ज़मीन उसको दोष और व्याधि और मोहआदि दोषोंको ३६ ॥

मू० विवर्द्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम्॥
प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायाम इति स्मृतिः ४० ॥

टी०। बढ़ाती है इसलिये बगैर शोधे और जीती जमीन पर योगीको न बैठना चाहिये और प्राणों के रोकने को प्राणायाम कहते हैं ४०॥

मू० धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनो यया।
शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षानि यतात्मभिः ४१ ॥

टी०। जिसके करने से योगी लोग निश्चिन्त होकर मनको वशकर लेतेहैं उसी को धारणा भी कहते हैं और शब्द इत्यादि विषय में सब इन्द्रिय जो प्रवृत्त हैं उनको जितात्मा योगी ४१ ॥

मू० प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततःस्मृतः।
उपायश्चात्र कथितो योगिभिः परमर्षिभिः ४२ ॥

टी०। उन विषयों से खींचलेने को प्रत्याहार कहते हैं इस विषय में यह उपाय उसका ब्रह्मर्षि योगी लोगोंका कहाहुआ है ४२ ॥

मू० येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः।
यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ४३ ॥

टी०। जिस उपाय से व्याधि इत्यादि का दोष योगी लोगों को नहीं होता जैसे जलके चाहनेवाले लोग यन्त्र व नल लगाकर थोड़ा थोड़ा जल खींचकर शुद्ध करके उसको पीतेहैं ४३ ॥

मू० आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगी जितश्रमः।
प्राङ्नाभ्यां हृदये चात्र तृतीये च तथोरसि ४४ ॥

टी०। उसीतरह योगीको श्रम जीतकर वायु को थोड़ा थोड़ा पीना चाहिये पहिले नाभि में फिर हृदय में और तीसरे वक्षस्थल में ४४ ॥

मू० कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु।
किञ्च तस्मात्परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ४५ ॥

टी०। फिर कण्ठ और मुख और नासिका के अग्रभाग में व नेत्रोंमें फिर दोनों भौंहोंके बीचमें और इसके ऊपर जो धारणा है वह उत्तम कही गई है ४५ ॥

मू० दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम्।
नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ४६ ॥

टी०। इन दशों स्थान में दशों धारणा प्राप्त करके योगीलोग परब्रह्म की समता को प्राप्त होजाते हैं और योगियों को चाहिये कि बहुत न बोलैं और न बहुत क्षुधा रक्खें और इतना श्रम न करें कि जिस से थक जावें व चित्त उनका विकल होजाय ४६ ॥

मू० युञ्जीत योगं राजेन्द्र योगी सिद्ध्यर्थमादृतः।
नातिशीते न चोष्णे वै न द्वन्द्वे नानिलात्मके ४७ ॥

टी०। हे महाराज! योगी अपने सिद्ध होने के वास्ते यत्न के साथ योगको सिद्ध करें और बहुत जाड़ा और बहुत धूप और बहुत आदमियों में और बहुत हवा में ४७ ॥

मू० कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः।
सशब्दाग्निजलाभ्याशे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ४८ ॥

टी०। योगी को ध्यान में तत्पर होकर इन समयोंमें योग न करना चाहिये और जहां शोर गुल बहुत होता हो और आग और पानी के पास और गौ के पुराने गोशालामें और चौराहे में ४८ ॥

सू० शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे।
सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसञ्चये ४९॥

टी०। और जहां सूखा पत्ता बहुत जमाहो और नदी और श्मशानमें और जहां पर सांप रहता हो और भयानक जगह पर और कुवेंके पास व यज्ञशालामें और दीमक के बनाये हुये टीले पर ४९॥

सू० देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्ज्जयेत्।
सत्त्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्ज्जयेत् ५०॥

टी०। इतने स्थानों में योगीको योग न करना चाहिये और जहां सात्विकी वस्तु सब न मिलैं वह देश काल भी छोड़ देना चाहिये ५०॥

सू० नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत्।
देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ५१॥

टी०। और योग में असत् बातों को देखना न चाहिये इसवास्ते ऐसे देश कालों को छोड़ देना चाहिये जो योगी मूढ़ होकर ऐसे स्थानों में योग करता है ५१॥

सू० विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्ते तन्निबोध मे।
बाधिर्य्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ५२॥

टी०। उसके योग में विघ्न करनेवाले सब दोष अवश्य उत्पन्न होते हैं उन विघ्नों को भी जो पैदा होते हैं मैं कहता हूँ सुनो बहिरपना और जड़ता और अज्ञानता और मूकत्व (गूंगापन) और अन्धता ५२॥

सू० ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः।
प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्येते स्युश्चिकित्सनम् ५३॥

टी०। और उस अज्ञान योगी को तुरन्तही ज्वर भी पैदा होता है प्रमाद से योगी को जब इतना दोष उत्पन्न हो तब औषध भी ५३॥

सू० तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिना तन्निबोध मे।
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ५४॥

टी०। उन दोषों को छुड़ाने के वास्ते योगी को करना चाहिये उसको सुनो और वह यहहै कि घी मिला गीला भात गर्मागर्म खाना चाहिये ५४॥

मू० वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे ।
यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थि प्रतिक्षिपेत् ५५ ॥

टी० । वातगुल्मरोग और उदावर्त्त और उदररोग के नाश होने के वास्ते अवश्य यवागू भोजन करै याने यवागू या पवन को वायुग्रन्थि रोग पै धारण करै ५५ ॥

मू० तद्वत्कम्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् ।
विघाते वचसो वाचं बाधिर्य्ये श्रवणेन्द्रियम् ५६ ॥

टी० । उसी तरह कम्प में जो महापर्व्वत है उसका ध्यान स्थिर मन होकर करै और जो गूँगा होजाय तो मन में सरस्वती को और जो बहिरा होजाय तो श्रवणेन्द्रिय को धारण करै ५६ ॥

मू० तथैवाम्रफलं ध्यायेत् तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रिये ।
यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ५७ ।

टी० । और जो पियाससे आर्त्त हो तो जिह्वा इन्द्रियपर आम्रफल का ध्यान करै इसी तरह जिस जिस अङ्ग में रोग हो उसके नाश करनेवा- ली वस्तुवों को उस अंग में धारण करै ५७ ॥

मू० धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् ।
कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ५८ ॥

टी० । अर्थात् जब शरीर में गरमी हो तब शीत का और जब शीत हो तब अग्नि का धारण करै और काठ की कील शिर पर रखकर दूसरे काठ से उस कील की ताड़ना करै ५८ ॥

मू० लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते ।
द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नी व्यापिनाविति धारयेत् ५९ ॥

टी० । इसके करने से भूली हुई स्मृति योगी को जल्द याद आजा- ती है और आकाश और पृथ्वी और वायु और अग्नि को सर्व्वव्यापी समझकर धारणा करै ५९ ॥

मू० अमानुषात्सत्त्वजाद्वा बाधास्त्वेताश्चिकित्सिताः ।
अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ६० ॥

टी०। ये बाधा मनुष्य को छोड़कर अन्य उद्यम से नाश होतीहैं और जबकि योगी के अन्तर में अमानुष सत्त्व प्रवेश करता है ६० ॥

मू० वाय्वग्निधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत् ।
एवं सर्व्वात्मना रक्षा कार्य्या योगविदा नृप ६१ ॥

टी०। तो वायु और अग्नि की धारणा करके देह में जो विद्यमान है उसको योगी लोग दग्ध कर देवें हे राजन्। इसी तरह योगियों को सब यत्न करके अपनी देहकी भी रक्षा करनी चाहिये ६१ ॥

मू० धर्म्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
प्रवृत्तिलक्षणख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा ।
विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ६२ ॥

टी०। क्योंकि धर्म्म और अर्थ और काम और मोक्ष इत्यादि का साधन शरीर ही से होता है और प्रवृत्ति का जो लक्षण है उसको प्रकट करने से और विस्मय से योगी का ज्ञान नष्ट होता है इसवास्ते प्रवृत्तिको गुप्तही रखना चाहिये ६२ ॥

मू० अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च
योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ६३ ॥

टी०। योगमें प्रवृत्ति का प्रथम लक्षण यही है कि अलोल्य अर्थात् चल फिर न करै अचञ्चल और आरोग्यरहे और मनमें दया रक्खै और सुन्दर गन्ध लेता रहै और विष्ठा मूत्र थोड़ा करै और तेजस्वी और प्रसन्न वदनहो मीठे शब्द बोलै उसको जानना चाहिये कि यह योगी होगा ६३ ॥

मू० अनुरागी जनो याति परोक्षे गुणकीर्त्तनम् ।
न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ६४ ॥

टी०। और पीठ पीछे गुण की प्रशंसा हो और लोग उसमें अनुराग रक्खैं और कोई जीव उसमेंसे डरै नहीं यही सिद्धिका उत्तम लक्षणहै ६४ ॥

मू० शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते ।
न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ६५ ॥

टी०। और अत्यन्तशीत और उष्णादिक से जिसको कुछ दुःख न मालूम होता हो और अन्य किसी से डरै नहीं तो जानना चाहिये कि इसको सिद्धि प्राप्ति होचुकी है ६५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेजडोपाख्यानेयोगाऽध्यायो
नामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ३९॥

अथ चालीसवां अध्याय॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० उपसर्गाःप्रवर्त्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनि योगिनः।
ये तांस्ते सम्प्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे १॥

टी०। फिर दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे राजन्! आत्माके जानने पर भी योगी को जो उपसर्ग (उत्पात) उत्पन्न होते हैं उनको पृथक् पृथक् मैं संक्षेपसे तुमसे कहता हूँ सुनो १॥

मू० काम्याःक्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति।
स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् २॥

टी०। और वह यह है कि अच्छी अच्छी कामना वाली संसारी क्रिया और मानुषीइच्छा करना और स्त्री और दान का फल और विद्या और माया और सोना चाँदी को छोड़कर और धन और स्वर्गादिकी इच्छा २॥

मू० देवत्वममरेशत्वं रसायनस्य याः क्रियाः।
मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनन्तथा ३॥

टी० और देवत्व और अमरेशत्व और रसायन की क्रिया और वायु की तरह उड़ना यज्ञ करना और जल और अग्नि में प्रवेश करना ३॥

मू० श्राद्धानां सर्व्वदानानां फलानि नियमास्तथा।
तथोपवासात् पूर्ताच्चदेवताभ्यर्च्चनादपि ४॥

टी०। और श्राद्ध और सम्पूर्ण दान और नियम के फल उसी तरह उपवास व कूपादि खुदाने और यज्ञ और देवताओं के पूजन से भी ४॥

मू० तेभ्यस्तेभ्यश्च कर्म्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति।
चित्तमित्थं वर्त्तमानं यत्नाद्योगी निवर्त्तयेत् ५॥

टी०। और इन कर्म्मों के करने से जो फल उत्पन्न होता है उसकी इच्छावाले योगी को चाहिये कि यत्नपूर्वक अपने मनको निवृत्त रक्खै ५॥

मू० ब्रह्मसङ्गी मनः कुर्व्वन्नुपसर्गात् प्रमुच्यते।
उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ६॥

टी०। और ब्रह्म में मन लगाने से योगी इन उपसर्गों से अलगहो-जाते हैं जब इतने उपसर्गों को योगी जीत भी लेतेहैं तो फिर उसके दूसरे सब उत्पात ६॥

मू० योगिनः सम्प्रवर्त्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः।
प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्त्तौ तथापरौ ७॥

टी०। सात्त्विक और राजस और तामस ये योगी के उत्पन्न होते हैं पहिला उपसर्ग प्रातिभ और श्रावण और दैव और भ्रम और आवर्त्तहै ७॥

मू० पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः।
वेदार्थाःकाव्यशास्त्रार्थाः विद्याशिल्पान्यशेषतः ८॥

टी०। ये पांचो भारी विघ्नडालनेवाले व कडुवेफल को देनेवाले योगियों के योग में प्राप्त होते हैं और वेद और काव्य और शास्त्रों का अर्थ और सब विद्याओं का ज्ञान व कारीगरी ८॥

मू० प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः सतु योगिनः।
शब्दार्थानखिलान्वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ९॥

टी०। यह सब अगर योगी में प्राप्त हों तो जानना चाहिये कि उस को वह प्रातिभनाम उपसर्ग उत्पन्न हुआ और जो सम्पूर्ण शब्दार्थोंको समझै और जिस शब्द को ग्रहण करै ९॥

मू० योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणःसोऽभिधीयते।
समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवतोपमः १०॥

टी०। वह हजारों योजन की बात हो तो जानना कि योगी को श्रावणनाम उपसर्ग प्राप्त हुआ और जब देवतों के तुल्य आठो अणिमादि सिद्धियों को देखै तो १०॥

मू० उपसर्गन्तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः।
भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनोदोषेण योगिनः ११ ॥

टी०। जानना चाहिये कि उस योगी को दैवउपसर्ग प्राप्तहुआ और जब दोष के कारण से सिड़ी दीवानों की तरह योगी का मन निरालम्ब होकर घूमने लगे ११॥

मू० समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमः स परिकीर्त्तितः।
आवर्त्त इव तोयस्य ज्ञानावर्त्तो यदा कुलः १२॥

टी०। और सब आचार उसका जाता रहै तो जानो कि उसको भ्रम नाम उपसर्ग प्राप्तहुआ और जब ज्ञान उसका जल के भँवर की तरहघूमने लगे और चित्त योगी का घबराने लगे १२॥

मू० नाशयेच्चित्तमावर्त्त उपसर्गः स उच्यते।
एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः १३॥

टी०। तो जानना चाहिये कि आवर्त्तनाम उपसर्ग उसको प्राप्तहुआ कि जो योगी का चित्त भ्रष्ट करता है तात्पर्य्य यह है कि इन्हीं उपसर्गों के कारण से योगी योग से भ्रष्ट होकर सम्पूर्ण देवयोनियों में १३॥

मू० उपसर्गैर्म्महाघोरैरावर्त्तन्ते पुनःपुनः।
प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगीतस्मान्मनोमयम् १४॥

टी०। उन्हीं महाघोर उपसर्गों के साथ वारंवार घूमता रहता है इस वास्ते योगी को चाहिये कि मन में श्वेत कम्बल अर्थात् ज्ञानरूपी कम्बल बिछाकर १४॥

मू० चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रणवं मनः।
योगयुक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः १५॥

टी०। उसपर परब्रह्मका ध्यान करे और उसी में सदा चित्तको लगाकर योग में युक्त रहै और थोड़ा भोजन करे और जितेन्द्रिय रहै १५॥

मू० सूक्ष्मास्तु धारणाः सप्त भूराद्या मूर्ध्निधारयेत्।
धरित्रीं धारयेद्योगी तत्सौख्यं प्रतिपद्यते १६॥

टी०। और धरती आदि सातों सूक्ष्म धारणा को शिरपर धारण करे

प्रथम पृथ्वी को धारणा करै तो पृथ्वी का सुख उसको प्राप्तहो १६॥

मू० आत्मानं मन्यते चोर्व्वीं तद्गन्धञ्च जहाति सः।
तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्वद्रूपं च तेजसि १७॥

टी०। इसतरहसे कि आत्माको पृथ्वी जाने और पृथ्वी के गन्धकोत्याग दे और वैसेही जल में जो सूक्ष्मरसहै और तेजमें जो सूक्ष्मरूप है १७॥

मू० स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम्।
व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिञ्च शब्दं तद्वज्जहाति सः १८॥

टी०। और वायुमें जो सूक्ष्म स्पर्श है और इसीतरह जो सूक्ष्म धारणा कियेहुये आकाश है उसकी प्रवृत्ति को जानै और आकाश की जो सूक्ष्म प्रवृत्ति है उसको भी जानै इसीतरह शब्दकोभी जानकर छोड़दे १८॥

मू० मनसा सर्व्वभूतानां मनस्याविशते यदा।
मानसीं धारणां बिभ्रन्मनः सूक्ष्मं च जायते १९॥

टी०। और सब प्राणियों के मन में अपने मनका जब योगी प्रवेश करते हैं तब मानसीधारणा को धारण करने से योगी का मन भी सूक्ष्म होजाता है १९॥

मू० तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित्।
परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्मममनुत्तमम् २०॥

टी०। इसीतरह सब प्राणियों की बुद्धि को प्राप्त होकर योगी उत्तम सूक्ष्मबुद्धि को प्राप्त करके स्थूलबुद्धि को छोड़ देते हैं २०॥

मू० परित्यजति सूक्ष्माणि सप्तत्वेतानि योगवित्।
सम्यग्विज्ञाय योऽलर्क तस्यावृत्तिर्न विद्यते २१॥

टी०। फिर दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे अलर्क! इन सातों सूक्ष्म को अच्छी तरहसे जानकर जोयोगी छोड़देतेहैं उनकी आवृत्ति नहींहोती २१॥

मू० एतासां धारणानान्तु सप्तानां सौक्ष्ममात्मवान्।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् २२॥

टी०। और इन्हीं सातों धारणाओं की सूक्ष्मताको देख २ कर योगी लोग इन सातों को छोड़ छोड़कर परमसिद्धिको प्राप्त होजाते हैं २२॥

मू० यस्मिन् यस्मिँश्च कुरुते भूते रागं महीपते।
तस्मिंस्तस्मिन् समासक्तिं संप्राप्य स विनश्यति २३ ॥

टी०। और हे राजन्! जिन जिन प्राणियोंमें योगी लोग राग(नेह)को करते हैं उन्हीं उन्हीं प्राणियों के संग आसक्त होकर योगीलोग विनाश को प्राप्त होते हैं २३ ॥

मू० तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम्।
परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात् पदम् २४ ॥

टी०। इसवास्ते सूक्ष्मोंको जानकर जोकि आपुस में मिले हैं उनको जो छोड़ देतेहैं वह योगी परमपद को प्राप्त होते हैं २४ ॥

मू० एतान्येव तु सन्धाय सप्तसूक्ष्माणि पार्थिव।
भूतादीनां विरागोऽत्र सद्भावज्ञस्य मुक्तये २५ ॥

टी०। हे राजन्! इन्हीं सातों सूक्ष्मको जानकर प्राणियों को इस में विराग होता है और वही विराग उस उत्तम ज्ञानी को मुक्ति देनेवाला होता है २५ ॥

मू० गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति।
पुनरावर्त्तते भूप स ब्रह्मापरमानुषम् २६ ॥

टी०। हे राजन्! गन्ध और स्पर्श आदिके सुखमें जो फँसजाताहै वही ब्रह्मसे अलगहोकर वारंवार मनुष्य के शरीर में जन्मलिया करताहै २६ ॥

मू० सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति।
तस्मिंस्तस्मिँल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर २७ ॥

टी०। और हे नरेश्वर! इन सातों धारणाओं को जीतकर योगीलोग जिस जिस भूतादि में जब प्रवेश करने को चाहते हैं तब उन उन सूक्ष्म भूतों में लय अर्थात् प्रवेश करजाते हैं २७ ॥

मू० देवानामसुराणां वा गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्।
देहेषु लयमायाति सङ्गं नाप्नोति च क्वचित् २८ ॥

टी०। अर्थात् देवता और राक्षस और गन्धर्व्व और नाग व दैत्य इत्यादि सबके शरीरमें लय होजातेहैं परन्तु किसी के सङ्ग फँसतेनहीं २८ ॥

मू० अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च।
प्राकाम्यञ्च तथेशित्वंवशित्वञ्चतथापरम् २९॥

टी०। और अणिमा और लघिमा और महिमा और प्राप्ति और प्राकाम्य और ईशित्व और वशित्व २६॥

मू० यत्र कामावसायित्वं गुणानेतांस्तथैश्वरान्।
प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परनिर्व्वाणसूचकान् ३०॥

टी० और ऐश्वर्य्य इत्यादि आठौं सिद्धियों के प्राप्त होनेपर यदि योगी कोई कामना करके इन्हों में न फँसे तो वह योगी परम निर्व्वाण पद को पहुँच जाता है ३०॥

मू० सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोणीयान् शीघ्रत्वं लघिमागुणः।
महिमा शेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ३१॥

टी०। सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म होजाने को अणिमा कहते हैं और जल्दी करना लघिमा की पहिचान है और सब से पूजित होना महिमा का लक्षण है और जिसके होने से कोई अभिलाषा बाक़ी न रहै उसको प्राप्ति कहते हैं ३१॥

मू० प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वञ्चेश्वरो यतः।
वशित्वादृशिमानाम योगिनः सप्तमोगुणः ३२॥

टी०। और जब योगी सर्व्वव्यापी होजावै तो जानना चाहिये कि प्राकाम्य सिद्धि उसको प्राप्त हुई और ईश्वरसमान होजाने को ईशित्व कहते हैं और सबको अपनेवश कर लेना वशित्व कहलाता है योगियों का यह सातवाँ गुण है ३२॥

मू० यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता।
ऐश्वर्य्यं कारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ३३॥

टी०। और जहां पर इच्छा का स्थान भी है और जहां कामावसान है वहां भी इच्छा न करना और ऐश्वर्य्यके करनेवाले जो सातों गुण हैं उनके साथ होने परभी कुछइच्छा न रखना यहीयोगीकीआठौंसिद्धिहैं३३॥

मू० मुक्तिसंसूचकं भूप परं निर्व्वाणमात्मनः।
ततो न जायते नैव वर्द्धते न विनश्यति ३४॥

टी०। हे राजन्! आत्मा को मुक्तिदेनेवाला जो निर्व्वाणपद है वह इन सबसे अलग है जब निर्व्वाणपद में योगीलोग पहुँचजाते हैं तो फिर न जन्म लेते हैं न बढ़ते हैं न मरते हैं ३४॥

मू० नापि चयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति।
छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ३५॥

टी०। और न उनकी क्षय होती है न परिणाम अर्थात् अन्त होताहै न काटे से कटते हैं न भीगते हैं न दाह को प्राप्त होते हैं न सूखते हैं याने पृथ्वी आदि पांचों वस्तुवों से उनको कुछ क्लेश नहीं होताहै ३५॥

मू० भूतवर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैर्ह्रियते न च।
न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्न युज्यते ३६॥

टी०। भूतवर्ग अर्थात् प्राणियों से दुःख को प्राप्त नहीं होते और शब्दादिकों से नहीं हरेजाते हैं और उनके शब्दआदि सङ्गी नहीं हैं यद्यपि शब्दादि के भोक्ता हैं परन्तु शब्दादि में लिप्त नहीं होते हैं ३६॥

मू० यथाहि कानकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना।
दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजन्नृप ३७॥

टी०। ऐ राजन्! जिस तरह सोनेके टुकड़े को अग्निमें जलादेने से सब हीनवस्तु उसकी जल जाती हैं केवल सोना प्रज्वलित होकर दूसरे खंड में मिल जाता है ३७॥

मू० न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निना यतिः।
निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह ३८॥

टी०। और वह सोना दूसरे रूप को नहीं प्राप्त होता सोना का सोना रहजाता है उसीतरह योगीलोग योग की अग्निमें जलकर निर्म्मल हो जाते हैं और दोष उनका सब जल जाता है और वे योगी ब्रह्मके साथ मिलकर एक होजाते हैं ३८॥

मू० यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत्।
तदाख्यस्तन्मयो भूतो न गृह्येत विशेषतः ३९॥

टी०। जैसे अग्नि में अग्नि पड़ने से एक होजाती है उसीतरह योगी तन्मयहोकर ब्रह्म में मिलजाते हैं कुछ विशेष नहीं रहता ३९॥

मू० परेण ब्रह्मणा तद्वत्प्राप्यैक्यं दग्धकिल्बिषः।
योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ४० ॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहतेहैं कि हे राजन्! इसीतरह योगीलोग अपने पापोंको दग्धकरके ब्रह्मके साथ एक होकर कभी जुदा नहीं होतेहैं ४० ॥

मू० यथाजलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति।
तथात्मा साम्यमभ्येति योगिनः परमात्मनि ४१ ॥

टी०। और जिसतरह जलमें जल पड़नेसे एक होजाताहै उसीतरह योगी परमात्मामें मिलकर एक होजाता है ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिसिद्धिवर्णनन्नामचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४० ॥

अथ इकतालीसवां अध्याय ॥

अलर्क उवाच ॥

मू० भगवन् योगिनश्चर्य्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति १ ॥

टी०। फिर अलर्कने कहा कि हे भगवन्! मैं योगीकी चर्य्या (आचरण) सुननेकी इच्छा रखताहूं उसको तत्त्वपूर्व्वक वर्णनकीजिये कि जिस तरह ब्रह्ममार्ग में प्राप्तहोकर योगी फिर कष्ट नहीं पाते १ ॥

दत्तात्रेय उवाच ॥

मू० मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौनृणाम्।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ २ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहतेहैं कि मानसे प्रीति और अपमान से उद्वेग जो मनुष्योंको होताहै उन्हींको उलटा मानलेनेसे योगीको सिद्धि प्राप्त होतीहै २ ॥

मू० मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषं ३ ॥

टी०। और यह मान और अपमान विष और अमृत के सदृशहै उन दोनों में अपमानको अमृत और मानको कठिनविष समझना चाहिये ३ ॥

मू० चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतञ्च चिन्तयेत् ४॥

टी०। और नेत्रसे पवित्रकरके राह चलनाचाहिये और पानी छानकर पिये और सच बोलै और अपनीजानमें जो बात अच्छीहो वही करै ४॥

मू० आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च।
महाजनञ्च सिद्ध्यर्थं न गच्छेद्योगवित् क्वचित् ५॥

टी०। और आतिथ्यकाल और श्राद्ध और यज्ञ और देवयात्रा और उत्सव इत्यादि कालों में योगी को अर्थसिद्धिकेवास्ते प्रतिष्ठितमनुष्यके पास न जानाचाहिये ५॥

मू० व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्व्वस्मिन् भुक्तवज्जने।
अटेत योगविद्भैक्ष्यं न तु त्रिष्वेव नित्यशः ६॥

टी०। और क्लेशके समय और विधूम अर्थात् जिससमय घरमें धुआं न निकलताहो और जिसमनुष्यके घरमें आग न हो और समस्तमनुष्य भोजनकरचुके हों इनवक्तों में भी भिक्षाकेवास्ते योगीको सवाल करनाचाहिये नित्य तीनोंही समयों में नहीं ६॥

मू० यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च।
तथायुक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयन् ७॥

टी०। जिससे मनुष्य अपमान और गिल्लाकरैं उसीतरह योगी आचरणकरै और महात्मालोगों के मार्गमें अर्थात् उनसबकी बताई हुई राह में दोष न लगानाचाहिये ७॥

मू० भैक्ष्यञ्चरेद् गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च।
श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते ८॥

टी०। और गृहस्थों के घरोंमें भिक्षाको करै और नित्य भिक्षाकर भोजनकरनेवालों के भी घरों में भोजन मांगै किन्तु योगियों के वास्ते प्रथम जीविकाउत्तम है ८॥

मू० अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ९॥

टी०। इसवास्ते जहां गृहस्थ और उत्तम और श्रद्धावान् और इन्द्रियजित् और पण्डित और महात्मा हों वहीं योगीको जानाचाहिये ६॥

मू० अत ऊर्द्धं पुनश्चापि अदुष्टा पतितेषु च।
भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते १०॥

टी०। और इसके सिवाय जो गृहस्थ दुष्ट और पतित न हों उनसे भी भिक्षा मांगै और जो पतित और हीन वर्ण हों उनसे भिक्षामांगना योगी के वास्ते नीचवृत्तिहै १०॥

मू० भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा।
फलं मूलं प्रियङ्गु वा कणपिण्याकसक्तवः ११॥

टी०। और यवागू (पतलाभात) और तक्र और दूध और कुर्थी और कांकुनि और फल और मूल और कणपिण्याक (कन और पीना) और सतुआ ११॥

मू० इत्येते च शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः।
तत्प्रयुञ्ज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना १२॥

टी०। यही अहार उत्तम और सिद्धिदेनेवाला योगियोंको है इस वास्ते एकचित्त होकर भक्तिपूर्वक उत्तमनियम के साथ यहीभोजन कियाकरे १२॥

मू० अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तूष्णींभूत्वा समाहितः।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिःस्मृता १३॥

टी०। और भोजन के समय पहिले एकबार आचमन करके सावधान व चुपचापहोकर हाथमें कवललेकर (प्राणाय नमः) यह कहकर उसको भोजनकरलेवै इसको प्रथमआहुति कहते हैं १३॥

मू० अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा।
उदानाय चतुर्थी स्याद् व्यानायेति च पञ्चमी १४॥

टी०। फिर हाथ में दूसराकवल लेकर (अपानाय स्वाहा) कहकर भोजनकरै इसको दूसरीआहुति कहते हैं और तीसरे में (समानाय) कहै और चौथीआहुति में (उदानाय नमः) और पाँचवीं में (व्यानाय स्वाहा) कहकर जल पीवै १४॥

मू० प्राणायामैःपृथक् कृत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः।
अपः पुनः सकृत्प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत् १५॥

टी०। इसी तरह से अलग अलग प्राणायामकरके शेषअन्न इच्छा से भोजन करे फिर एकबार जल पीवे फिर हृदय अपना स्पर्शकरै १५॥

मू० अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च त्यागो ऽलोभस्तथैव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमाणि वै १६॥

टी०। और ब्रह्मचर्य्य के साथ रहै चोरी इत्यादि न करै और किसी की वस्तु न लेवै उसीतरह अलोभ और अहिंसा और विरक्त होरहै यही पांचौंव्रत भिक्षुक के वास्ते हैं १६॥

मू० अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्।
नित्यस्वध्यायइत्येते नियमाःपञ्च कीर्त्तिताः १७॥

टी०। और क्रोध न करै गुरुकी सेवा किया करै और पवित्ररहिकर थोड़ा भोजनकरै और नित्य अध्ययन करतारहै यही पाँच उसके नियम कहेहैं १७॥

मू० सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत्कार्य्यसाधकम्।
ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरा हि सा १८॥

टी०। और जो ज्ञान कार्य्य का साधन करै और सबसे उत्तम हो परन्तु थोड़ा हो उसीज्ञानकी उपासना करना चाहिये क्योंकि जो बहुत ज्ञानहै वह योग में विघ्नकारक होताहै १८॥

मू० इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत्।
अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् १९॥

टी०। और जो योगी तृषितहोकर कहते हैं कि यहबात जाननेके लायक है इसको जानना चाहिये और उसी में फँसे रहतेहैं उनको हजारों कल्प में ज्ञान नहीं होता १९॥

मू० त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् २०॥

टी०। और संग का त्याग करके क्रोध को जीतकर थोड़ा आहार

करके जितेन्द्रिय होकर बुद्धिसे सब दरवाजों को विधान करके ध्यान में मन लगावै २० ॥

मू० शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च।
नित्ययुक्तः सदायोगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् २१ ॥

टी०। उनको चाहिये कि एकान्त में और शून्यअवकाशस्थान और पहाड़के खोह और जङ्गलों में नित्य योगकरनेवाला योगी हमेशा अच्छी तरह ध्यान कियाकरै २१ ॥

मू० वाग्दण्डः कर्म्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः २२ ॥

टी०। और वाक्दण्ड और कर्म्मदण्ड और मनोदण्ड यही तीनदण्ड जिस योगीके बँधेरहते हैं वही महायती और त्रिदण्डी कहलाता है २२ ॥

मू० सर्व्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्।
गुणागुणमयन्तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः २३ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे अलर्क! यह ऐसा संसार गुण और अगुण और सत् और असत् से संयुक्तहै इसको जो योगी एकही आत्मा करके जानताहै उस योगीका न कोई मित्रहै न शत्रुहै २३ ॥

मू० विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः
समस्तभूतेषु च तत्समाहितः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययञ्च
परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते २४ ॥

टी०। और निर्मल बुद्धि होकर मिट्टी का ढेला और सोने को तुल्य जाने और सब प्राणियों में समबुद्धि रक्खै तो वह ज्ञानी परमात्मा को जानकर हमेशा रहनेवाला व विकाररहित परमस्थान में प्राप्तहोताहै और फिर संसार में नहीं पैदा होता है २४ ॥

मू० वेदाः श्रेष्ठाः सर्व्वयज्ञक्रियाश्च
यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं
तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः २५ ॥

टी०। और सबमें श्रेष्ठ वेदहै और वेदसे सम्पूर्ण यज्ञ क्रिया श्रेष्ठहैं और यज्ञसे जप और जपसे ज्ञान और ज्ञानसे सङ्गरागवर्जित ध्यान श्रेष्ठहै क्योंकि ध्यान प्राप्तहोने से शाश्वत जो है परब्रह्म वह प्राप्त होताहै २५॥

मू० समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः २६॥

टी०। और एकचित्तहो और परब्रह्मपरायणहो प्रमादको छोड़ पवित्र होकर एकान्तमें प्रीति और जितेन्द्रिय होकर महात्मा योगी इसयोगको भलीभांति पाता है तब वह योगी योगके प्रभावसे मुक्तिपदवी को प्राप्त होताहै॥ २६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिचर्य्यानामैकचत्वारिंशत्तमोध्यायः॥ ४१॥

अथ बयालीसवां अध्याय॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० एवं यो वर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः।
न स व्यावर्त्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि १॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे अलर्क! इस तरहसे जो योगी सम्यक्प्रकार से योग में व्यवस्थित होकर रहता है वह सैकड़ोंजन्ममें भी इस संसार के आवागमनमें कभी नहीं आताहै १॥

मू० दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम्।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् २॥

टी०। इसवास्ते विश्वरूप जो परमात्मा विश्व के मालिक और उत्पन्न करनेवाले हैं व जिनका संसार चरण व मस्तक और ग्रीवाहै उनका प्रत्यक्षरूप देखकर २॥

मू० तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्।
तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ३॥

टी०। उनकी प्राप्ति के वास्ते अतिपवित्र ॐकार जो एकाक्षर परब्रह्म का स्वरूपहै उसको जपै उसका वहीपढ़नाहै इसके उपरान्त उस ॐकार का स्वरूप सुनो ३॥

मू० अकारश्च तथोङ्कारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्राः सात्त्वराजसतामसाः ४॥

टी०। और उसॐकार में तीन अक्षरहैं अकार और उकार और मकार यह तीनोंमात्रा सतोगुण रजोगुण तमोगुण संयुक्तहैं ४॥

मू० निर्गुणा योगिगम्यान्याचार्द्धमात्रोर्द्ध्वसंस्थिता।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ५॥

टी०। और इसके ऊपर जो अर्द्धमात्रा विराजमानहै व निर्गुणहै अर्थात् तीनों गुणों से रहित है और योगियों के जानेयोग्य है और वह गान्धार स्वरके आश्रितहै इसी सबबसे वह गांधारी कहलाती है ५॥

मू० पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्द्ध्नि लक्ष्यते।
यथा प्रयुक्त ॐकारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि ६॥

टी०। जिसतरह चींटी का चलना शिर पर मालूम होताहै उसीतरह ॐकारशब्द के उच्चारण में वह अर्द्धमात्रा शिरपर जाती है ६॥

मू० तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरेत्वक्षरो भवेत्।
प्राणो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् ७॥

टी०। उसीतरह ॐकारमय जो योगी है वह अक्षर में अक्षर (अविनाशी) होजाता है और प्राण धनुष है और आत्मा बाण है और ब्रह्म उत्तमवेध्य अर्थात् लक्ष्यहै ७॥

मू० अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ८॥

टी०। अप्रमत्त अर्थात् चैतन्य होकर आत्मारूपी बाणको प्राणरूपी धनुष पर चढ़ाकर ब्रह्म लक्ष्यका शिकार करै और जिस तरह बाण सावज को छेदकर उसके अङ्ग में मिलजाता है उसीतरह योगी ब्रह्ममें मिलजाता है और उस ॐकार में तीनोंवेद और तीनोंलोक और तीनों अग्नि हैं ८॥

मू० विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च।
मात्राःसार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः ९ ॥

टी०। अर्थात् विष्णु और ब्रह्मा और महादेव यह तीनों देवता और ऋक् और साम और यजु यह तीनों वेदहैं औरअर्द्धमात्रा समेत ॐकार साढ़ेतीनमात्रा भी परमार्थ से कहलाता है ९ ॥

मू० तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात्।
अकारस्त्वथ भूर्ल्लोक उकारश्चोच्यते भुवः १० ॥

टी०। उस ब्रह्ममें जो योगी सदायुक्त रहते हैं वहउसमें लीनहोजाते हैं और आकार भूलोक है और उकार भुवर्लोक है १० ॥

मू० स व्यञ्जनो मकारश्च स्वर्ल्लोकः परिकल्प्यते।
व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीया व्यक्तसंज्ञिता ११ ॥

टी०। और व्यञ्जनसंयुक्त जो मकार है उसको स्वर्गलोक कहते हैं और प्रथममात्रा जो है उसको व्यक्त कहते हैं और दूसरीमात्रा का नाम अव्यक्त है ११ ॥

मू० मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्।
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः १२ ॥

टी०। और तीसरी मात्रा को चिच्छक्ति अर्थात् चैतन्यशक्ति कहतेहैं और अर्द्धमात्रा परमपद है इसीक्रम से इन सबों को योगकी भूमियां जानना चाहिये १२ ॥

मू० ओमित्युच्चारणात् सर्व्वं गृहीतं सदसद्भवेत्।
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता १३ ॥

टी०। केवल एक ॐकारके उच्चारण करनेसे सत् और असत् इत्यादिका ग्रहण होजाता है और पहिली मात्रा ह्रस्व और दूसरी मात्रा दीर्घ है १३॥

मू० तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा।
इत्येतदक्षरं ब्रह्मपरमोङ्कारसंज्ञितम् १४ ॥

टी०। और तीसरीमात्रा प्लुतहै और जो अर्द्धमात्राहै वह वचनसे कहने योग्य नहीं है यही तीनोंअक्षर मिलकर ॐकारनाम परब्रह्म का हुआ १४॥

मू० यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः।
संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धनः १५॥

टी०। इसको जो कोई हरतरह से जानताहै और फिर ध्यान करताहै वह मनुष्य तीनोंप्रकार के बन्धन से छूटकर और संसारचक्र को छोड़कर १५॥

मू० प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि।
अक्षीणकर्म्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः १६॥

टी०। वह परमात्मा जो परब्रह्म है उसमें लीन होजाता है और वह अक्षीण याने अक्षय जो है कर्म्मबन्धन उसमें जो योगी प्राप्तहै वह अरिष्ट से अपनी मृत्यु को जानकर १६॥

मू० उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति।
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः॥
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति १७॥

टी०। अपने मरने के समय सम्यक् प्रकार से योग का स्मरण रखते हैं तो वह दूसरे जन्म में भी फिर योगी होते हैं इस वास्ते योगी सिद्धहो या नहो परन्तु अरिष्ट उसको अवश्य जानना चाहिये कि जिससे उसको मरने के समय दुःख न हो १७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगधर्म्मोपाख्यानेॐकारनिरूपणंनाम
द्विचत्वारिंशत्तमोध्यायः ४२॥

अथ तैंतालीसवां अध्याय॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० अरिष्टानि महाराज शृणु वक्ष्यामि तानि ते।
येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् १॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे अलर्क! अब मैं उन अरिष्टों को तुम से कहता हूं कि जिन को देखकर योगी लोग अपने मरने को जान लेते हैं १॥

मू० देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम्।
यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः संवत्सरात्परम् २॥

टी०। वह यह है कि देवमार्ग और ध्रुव और शुक्र और अरुन्धती का तारा और चन्द्रछाया, जब मनुष्यों को नहीं दिखलाई पड़ती है तो वह मनुष्य वर्षदिनसे ऊपर नहीं जी सक्ता है २॥

मू० अरश्मि बिम्बं सूर्य्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम्।
दृष्ट्वैकादशमासात्तु नरो नोर्द्ध्वं तु जीवति ३॥

टी०। और जब सूर्य्य का बिम्ब बिनाकिरणों के देखे और आगमें मनुष्यको किरणें मालूम होवें तो जानना चाहिये कि यह मनुष्य ग्यारह महीने से बढ़कर नहीं जी सक्ता है ३॥

मू० वान्ते मूत्रपुरीषे च यः स्वर्णरजतं तथा।
प्रत्यक्षं कुरुते स्वप्ने जीवेत् स दशमासिकम् ४॥

टी०। और जो वमन या मूत्र या विष्ठा में प्रत्यक्ष या स्वप्न में सोना या चाँदी देखे तो वह मनुष्य दश महीने तक जीता है ४॥

मू० दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन् गन्धर्व्वनगराणि च।
सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्च नव मासान् स जीवति ५॥

टी०। और जो स्वप्न में प्रेत और पिशाच इत्यादि और गन्धर्व्वों का नगर और सोने की रंगति का वृक्ष इत्यादि देखे तो नव (९) महीने तक जीता है ५॥

मू० स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योकस्मादेव जायते।
प्रकृतेश्च निवर्त्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ६॥

टी०। और जो मनुष्य इकाइक मोटे से दुबला या दुबले से मोटा होजाय और प्रकृति उसकी बिगड़जाय तो वहमनुष्य आठमहीने तक जीता है ६॥

मू० खण्डं यस्य पदं पार्ष्ण्योः पादस्याग्रे च वा भवेत्।
पांशुकर्दमयोर्मध्ये सप्त मासान् स जीवति ७॥

टी०। और जिसमनुष्य के पाँव के अग्रभाग का चिह्न या एड़ी का

चिह्न काँदो या धूल में खंडित हो तो जानना चाहिये कि वह सात महीने से ऊपर न जियेगा ७॥

मू० गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि।
क्रव्यादो वा खगो नीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः ८॥

टी०। और जिस किसी के शिरपर गिद्ध या कबूतर या कौवा या वन कौवा या क्रव्याद अर्थात् बाज या कालीचिड़िया इत्यादि बैठ जाय तो वह मनुष्य छः महीने से जियादा नहीं जी सक्ता ८॥

मू० हन्यते काकपङ्क्तिभिः पांशुवर्षेण वा नरः।
स्वां छायामन्यथा दृष्ट्वा चतुःपञ्च स जीवति ९॥

टी०। और जिसके शरीर में कौवे की पंक्ति धक्का मारदे और जिस की देहपर अनायास धूर की वर्षा हो और जिसको अपनी परछाहीं और तरह की देख पड़े तो वह मनुष्य चार या पाँच महीने जीताहै ९॥

मू० अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम्।
रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं द्वित्रिमासिकम् १०॥

टी०। और जो विना मेघ के दक्षिणदिशामें बिजली चमकती हुई देखै या रात को इन्द्रधनुष निकला देखै तो वह मनुष्य भी दो या तीन महीने तक जीता है १०॥

मू० घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम्।
यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्द्ध्वं न जीवति ११॥

टी०। अथवा घी या तेल या पानी या शीशामें अपने शरीर को न देखै या विना शिरके देखै तो वह मनुष्य एक महीनेसे बढ़कर नहीं जीसक्ताहै ११॥

मू० यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा।
तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृपजीवितम् १२॥

टी०। और ऐराजन्! जिस योगीके शरीर में छगड़ा या मुर्दे की ऐसी बदबू मालूम हो वह योगी पन्द्रह दिन तक जीता है १२॥

मू० यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते।
पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति १३॥

टी०। और स्नान करनेके पश्चात् तत्कालही पांव और हृदय जिसका सूखाही रहजाय या पानी पीने पर भी कण्ठ सूखाही रहै वह मनुष्य दश दिन जीता है १३॥

मू० संभिन्नो मारुतो यस्य मर्म्मस्थानानि कृन्तति।
दृष्यते नाम्बुसंस्पर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थितः १४॥

टी०। और जिस मनुष्य के मर्म्मस्थानों में वायु बिगड़ाहुवा दुःख देता हो और उस को ऐसा मालूम होताहो कि मानो कोई शरीर को काटता है और जलका स्पर्श अच्छा न मालूम हो तो वह तुरन्त मरजायगा १४॥

मू० ऋक्षवानरयानस्थो गायन् यो दक्षिणां दिशम्।
स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमृच्छति १५॥

टी०। और जो स्वप्न में ऋक्ष या बन्दर के ऊपर अपने को सवार और गाते हुये दक्षिण दिशा में जाते देखै तो उसकी भी मृत्यु तुरन्तही होती है १५॥

मू० रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम्।
दक्षिणाशान्नयेन्नारी स्वप्ने सोपि न जीवति १६॥

टी०। और जो स्वप्न में देखे कि लाल या काले वस्त्र पहिने और गाती और हँसती हुई स्त्री मुझे दक्षिणा दिशाको लिये जाती है तो वह भी जल्द मरजायगा १६॥

मू० नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम्।
एकं संवीक्ष्य वल्गन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् १७॥

टी०। और जो कोई स्वप्नमें जो महाबलवान् क्षपणक (वेदविरुद्ध मतवाला) नंगा हँसता और बकताहुआ पुरुष है उस को देखै तो वह भी तुरन्तही मरजायगा १७॥

मू० आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नः पङ्कसागरे।
स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः १८॥

टी०। और जो मनुष्य स्वप्नमें अपने को शिरसे पाँव तक कीचड़ के समुद्र में डूब गया देखै तो उसकी मृत्यु तुरन्तही जानना १८॥

मू० केशाङ्गारांस्तथा भस्म भुजङ्गान्निर्जलां नदीम्।
दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात्तु मृत्युरेकादशेदिने १९ ॥

टी०। और जो मनुष्य केश या अग्नि या खाख या साँप या सूखी हुई नदी इत्यादि को स्वप्न में देखै तो वह दश दिनके बाद ग्यारहवें दिन मरजायगा १९ ॥

मू० करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः।
पाषाणैस्ताडितःस्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः २० ॥

टी०। और जो स्वप्नमें देखै कि कोई विकटपुरुष कालेरूप भयावनी सूरत हाथमें हथियार या पत्थर लियेहुये मुझे मारते हैं तो वह भी मनुष्य जल्द मरजाता है २० ॥

मू० सूर्य्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति सम्मुखम्।
विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति २१ ॥

टी०। और सूर्य्योदयकाल में सियारी बोलतीहुई जिसके सामने सीधी चलीजायँ अथवा विपरीत यानी दहिने या बायें होकर चलीजायँ तो वह मनुष्य तुरन्तही मरजायगा २१ ॥

मू० यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाधते क्षुधा।
जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न्न संशयः २२ ॥

टी०। और जिसको भोजन करनेपर भी क्षुधा से हृदय में कष्ट मालूम हो और अनायास दाँत पर दाँत का घिस्सा लगता रहै तो जानना चाहिये कि उसकी आयुर्बल घटगई इसमें संदेह नहीं है २२ ॥

मू० दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्यह्नि तथा निशि।
नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति २३ ॥

टी०। और जिसको दीपककी गन्ध न मालूमहो और जो दिन और रातको डरतारहै और अपनी देहकी छाया दूसरों की आँखों में न देख पड़े तो वह भी जल्द मरताहै २३ ॥

मू० शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवाग्रहगणं तथा।
दृष्ट्वा मन्येत स क्षीणमात्मजीवितमात्मवित् २४ ॥

टी० । अथवा आधीरातको इन्द्रधनुष और दिनको तारागण देखै तो उस आत्मज्ञानीको जाननाचाहिये कि आयुर्बल मेरा घटगयाहै २४ ॥

मू० नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्न्नमनोन्नती ।
नेत्रञ्च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् २५ ॥

टी० । और जिसकी नाक टेढ़ी और कान ऊंचे नीचे होजायँ और बाँयीं आँखसे हमेशा आँसू बहता रहै तो उसका आयुर्बल घटगया समझनाचाहिये २५ ॥

मू० आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा ।
तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः २६ ॥

टी० । और जिसका जिससमय मुख लाल और जीभ काली होजाय उस बुद्धिमान् को उस समय जानना चाहिये कि मेरी मृत्यु का समय नज़दीक आपहुँचा २६ ॥

मू० उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् ।
प्रयाति तञ्च जानीयात् सद्यो मृत्युं न संशयः २७ ॥

टी० । अथवा जोमनुष्य स्वप्नमें देखै कि मैं गदहे या ऊँट पर चढ़कर दक्षिणदिशाको जाताहूँ उसके जल्द मरने में कुछ संशय नहीं २७ ॥

मू० पिधायकर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ।
नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोपि न जीवति २८ ॥

टी० । और जोमनुष्य अपने दोनोंकान मूँदकर अपनीआवाज न सुनै और जिसकी आँखोंकी रोशनी जातीरहै उसकी भी मृत्यु तुरन्तही जानना २८ ॥

मू० पततो यस्य वै गर्त्ते स्वप्ने द्वारं पिधीयते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् २९ ॥

टी० । और जो स्वप्नमें देखै कि मैं गढ़ा में गिराहूँ और उसकी राह भी बन्द होगई और यह देखै कि मैं गढ़े से नहीं निकलाहूँ तो उसको समझना चाहिये कि मेरी आयु समाप्त होचुकी २९ ॥

मू० ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनःसंपरिवर्त्तमाना ।

मुखस्य चोष्मा शिशिरञ्च नाभेः शंसन्ति पुंसामपरं शरीरम् ३० ॥

टी०। और जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व यानी उलटजाय पलक न गिरै और आँखैं लाल होकर घूमने लगें और मुखसे गर्मश्वास निकले और नाभि ठंड होजाय तो जानना चाहिये कि अब यह शरीरको त्याग करेगा ३०॥

मू० स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः।
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ३१ ॥

टी०। और जो मनुष्य स्वप्न में अग्निमें प्रवेश करै और न निकलै या जलमें डूबजाय और फिर न निकलै तो उसकी भी ज़िन्दगी खतम हो चुकी ३१ ॥

मू० यश्चापि हन्यते दुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा।
स मृत्युं सप्तरात्र्यन्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ३२ ॥

टी०। अथवा जिसमनुष्य को दुष्ट भूत रात दिन मारते रहैं उसकी मृत्यु सातवीं रात्रि के बाद निस्संदेह जानना ३२ ॥

मू० स्ववस्त्रमनलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथासितम्।
यः पुमान्मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ३३ ॥

टी०। और जो मनुष्य अपने श्वेत व साफ़ कपड़ों को भ्रम से लाल या काले देखै उसकी भी मृत्यु जल्द ही जानना ३३ ॥

मू० स्वभाववैपरीत्यन्तु प्रकृतेश्च विपर्य्ययः।
कथयन्ति मनुष्याणां समासन्नौ यमान्तकौ ३४ ॥

टी०। और जिसका स्वभाव विपरीत अर्थात् बदलजाय और प्रकृति भी बदलजाय तो जानना चाहिये कि इस मनुष्य के पास यम व अंतक (काल) आपहुँचे ३४॥

मू० येषां विनीतः सततं येऽस्य पूज्यतमा मताः।
तानेव चावजानाति तानेव च विनिन्दति ३५ ॥

टी०। और जो मनुष्य जिन लोगों से हमेशा नम्र रहताहो और सदा जिनको पूजताहो और फिर उन्हींकी निन्दा और अपमान करनेलगै ३५॥

मू० देवान्नार्चयते वृद्धान् गुरून् विप्रांश्च निन्दति।
मातापित्रोर्न सत्कारं जामातॄणां करोति च ३६॥

टी०। और देवता इत्यादिका भी पूजन न करै और वृद्ध और गुरु और ब्राह्मण की निन्दा करै और माता और पिता और दामादका आदर न करै ३६॥

मू० योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषाञ्च महात्मनाम्।
प्राप्ते तु काले पुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ३७॥

टी०। और योगी और ज्ञानी और पण्डित और अन्य महात्मा इत्यादि लोगों का भी सत्कार करना जो कोई छोड़दे तो उसका काल ज्ञानीलोग समीपही समझते हैं ३७॥

मू० योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते।
संवत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ३८॥

टी०। हे महाराज! इन अरिष्टोंको यत्नपूर्व्वक योगीलोगों को सदा देखते रहना चाहिये क्योंकि यही अरिष्ट वर्ष के भीतर दिन और रात सब दिन मनुष्यों को फल देते रहते हैं ३८॥

मू० विलोक्या विशदा चैषां फलपङ्क्तिः सुभीषणा।
विज्ञातकार्य्यो मनसि स च काले नरेश्वर ३९॥

टी०। और ऐ राजन्! इन अरिष्टों के फल बड़े भयानक व बुरे हैं इस वास्ते इनको अच्छी तरह जानकर उनके वक्तों को अपने मन में खयाल रक्खे ३९॥

मू० ज्ञात्वा कालञ्च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः।
युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ४०॥

टी०। और उसी कालको अच्छे प्रकार जानकर योगीलोग अभय स्थान अर्थात् एकान्त में जाकर योग करैं जिसमें वह काल योगी का व्यर्थ न होसके ४०॥

मू० दृष्ट्वारिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम्।
तत्स्वभावं तदालोक्य काले यावत्युपागतम् ४१॥

टी०। इसी तरह योगी अरिष्टों को देखकर अपने मरने का भय छोड़कर उस समय उसके स्वभाव को देखकर जितने वक्त वह काल पहुँचै ४१ ॥

मू० तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित्।
पूर्व्वाह्ने चापराह्ने च मध्याह्ने चापि तद्दिने ४२ ॥

टी०। उस दिनके भागमें उसी दिन योगका जाननेवाला योगी योग का यत्नकरके पूर्व्वाह्न या मध्याह्न या अपराह्न कालमें योगकरै ४२ ॥

मू० यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम्।
तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत्प्राप्तं हि तद्दिनम् ४३ ॥

टी०। या रातमें जबही उस अरिष्ट को देखै तो उसी दिन यानी अरिष्ट के दिन से पहिलेही योगकरै कि जबतक वह दिन प्राप्त होवै ४३ ॥

मू० ततस्त्यक्त्वाभयं सर्व्वं जित्वा तं कालमात्मवान्।
तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्य्यमात्मनः ४४ ॥

टी०। और उस काल के सम्पूर्ण भयको छोड़कर और कालको जीत कर आत्मज्ञानी उसी स्थानमें या दूसरेही स्थानमें जहां मनकी स्थिरताहो वहां बैठकर ४४ ॥

मू० युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन् गुणान् परमात्मनि।
तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि संत्यजेत् ४५ ॥

टी०। और तीनों गुणोंको जीतकर योगकरै और परमात्मामें मन लगाकर तन्मय होवै व चिद्वृत्ति यानी चैतन्यवृत्तिको भी छोड़दे ४५ ॥

मू० ततः परमनिर्व्वाणमतीन्द्रियमगोचरम्।
यद्बुद्धेर्यन्न चाख्यातुं शक्यते तत्समश्नुते ४६ ॥

टी०। बाद इसके बुद्धि से अगोचर और इन्द्रियोंसे अग्राह्य और अकथनीय जो परमनिर्व्वाणपद है उसमें वह योगी प्राप्तहोजाताहै ४६ ॥

मू० एतत्सर्व्वं समाख्यातं तवालर्क यथार्थवत्।
प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म संक्षेपात्तं निबोध मे ४७ ॥

टी०। दत्तात्रेयजी कहते हैं कि हे अलर्क! यह सब सिद्धान्तवार्त्ता

हमने तुमसे यथार्थ कही अब जिससे तुम को वह ब्रह्म प्राप्त होगा उसे संक्षेपसे कहते हैं सुनो ४७ ॥

मू० शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः ।
समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता ४८ ॥

टी० । जिस तरह चन्द्रकान्तनाम मणि चन्द्रमाकी किरण लगनेसे जल छोड़ता है और जब किरण नहीं लगती तो नहीं छोड़ता है यही उपमा योगीकी भी कही गई है ४८ ॥

मू० यच्चार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम् ।
आविष्करोति नैकः सन्नुपमा सापि योगिनः ४९ ॥

टी० । और जिसतरह सूर्य्यकान्तनाम मणिमें सूर्य्यकी किरण पड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है और जब किरण न पड़े तो एकही रहकर अग्नि नहीं पैदा होती यहीउपमा योगियों की है ४९ ॥

मू० पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिञ्जलाः ।
वसन्ति स्वामिवद्गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोन्यतः ५० ॥

टी० । और जिसतरह चींटी और मूष और नेउला और गृहगोधा कही छिपकली और तीतर इत्यादि घरके स्वामीहीके समान सब एक घरमें रहते हैं और उस घरके नाश होजानेपर वे सब दूसरे स्थानको चले जाते हैं ५० ॥

मू० दुःखन्तु स्वामिनो ध्वंसे तस्य तेषां न किञ्चन ।
वेश्मनो यत्र राजेन्द्र सोपमा योगसिद्धये ५१ ॥

टी० । परन्तु घरके न रहने पर उस घरका दुःख उसके स्वामीही को होताहै उनजानवरोंको कुछ दुःख नहीं होता इसीतरह हे राजन् ! योग सिद्धिकी भी वहीउपमा जानो ५१ ॥

मू० मृद्घाहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणाप्यणीयसा ।
करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ५२ ॥

टी० । और जिसतरह पिपीलिका छोटा जानवर छोटा मुख होने पर भी उसी मुखसे मिट्टी खींच खींचकर ढेर लगाताहै वह मानो योगी लोगों को उपदेश करताहै कि तुम भी थोड़ा २ करके तपको बटोरो ५२ ॥

मू० पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम्।
वृक्षं विलुप्यमानन्तु दृष्ट्वा सिद्ध्यन्ति योगिनः ५३॥

टी०। और पशु और पक्षी और मनुष्य इत्यादि कोई पत्ता कोई फूल फलयुक्त वृक्षको थोड़ा थोड़ा काटते काटते काट डालते हैं इस को देख कर योगी को योग सिद्ध करनाचाहिये ५३॥

मू० रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम्।
सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ५४॥

टी०। और जिसतरह हरिणके बच्चे के शिरमें शृङ्ग का अग्रभाग यानी नोक पहिले तिलसमान देखाई देती है वाद उसके ज्यों ज्यों वह मृग वढ़ता है त्यों त्यों शृङ्ग भी वढ़ता है इसकोभी देखकर योगी सिद्धि को प्राप्त करे ५४॥

मू० द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुवः।
तुङ्गमार्गं विलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं न योगिना ५५॥

टी०। और पात्रमें जलभरकर शिरपर रखकर पृथ्वीपर कोई ऊँचे रास्तेपर चलता है तो चलनेवाले की उँचाईसे पात्र की उँचाई देखकर योगी को भी योगमें अपना मन ऊँचा रखनाचाहिये ५५॥

मू० सर्व्वस्वं जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या।
चेष्टां तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यताम् ५६॥

टी०। और समस्तवस्तु जो जमीन खोदकर अपने जीवनके वास्ते मनुष्य रखते हैं और उसमें उसका मन लगारहता है इसको तत्त्वपूर्व्वक समझने से योगीलोग कृतकृत्य होजाते हैं ५६॥

मू० तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति।
येन सम्पद्यते चार्थस्तत्स्वकं ममतात्र का ५७॥

टी०। क्योंकि घर वही है जिसमें बसै और भोजन वही है जिससे जिन्दगी बनरहै और अपनीवस्तु वही है कि जिससे अर्थ सिद्धहो तो फिर ऐसे घर इत्यादि में ममता करना क्या ५७॥

मू० अभ्यर्दितोऽपि तैः कार्य्यं करोति करणैर्यथा।
तथा बुद्ध्यादिभिर्योगी पारक्यैः साधयेत्परम् ५८॥

टी०। जिसतरह उद्यमोंमें कोई यद्यपि बाधाभी करताहै तौ भी बुद्धिमान् लोग अपने कार्य्य को नहीं छोड़ते इसीतरह बुद्धि आदिक सब इन्द्रिय भी यद्यपि अपना २ विषय चाहती हैं तथापि योगीलोग उनका अनादर करके पारक्यइन्द्रियोंसे अपना योगसिद्ध करते हैं ५८॥

जड उवाच॥

मू० ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कः स महीपतिः।
प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ५९॥

टी०। जड अर्थात् सुमति कहते हैं कि हे पिता! यह वचन सुनकर उसके बाद वे राजा अलर्क दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके नम्रतासे झुककर अतिहर्षसे संयुक्तहो वचन बोले ५९॥

अलर्क उवाच॥

मू० दिष्ट्या दैवैरिदं ब्रह्मन् पराभिभवसम्भवम्।
उपपादितमत्युग्रं प्राणसन्देहदम्भयम् ६०॥

टी०। कि हे ब्रह्मन्! हमारे बड़ेभाग्यहैं कि दैवसे व शत्रुके तिरस्कार से उपजाहुआ जो प्राणको सन्देहदेनेवाला अति विकरालडर मुझे पैदा हुआ ६०॥

मू० दिष्ट्या काशिपतेर्भूरि बलसम्पत्पराक्रमः।
यदुच्छेदादिहायातः स युष्मत्सङ्गदो मम ६१॥

टी०। और बड़ाआनन्द है कि काशीनरेशकी बहुतसेना और विभव और पराक्रम हुआ कि जिससे पीड़ितहोकर मैं यहां आया और वही आपका सत्सङ्गदायक हुआ ६१॥

मू० दिष्ट्या मन्दबलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः।
दिष्ट्या कोशं क्षयं यातं दिष्ट्याहं भीतिमागतः ६२॥

टी०। और अहोभाग्यहै कि मेरी सेना थोड़ीथी और नौकर चाकर मारेगये और कोश यानी खज़ाना नाश होगया और यह आनन्द है कि मुझे खौफ़भी पैदाहुआ ६२॥

मू० दिष्ट्या त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपथं गतम्।

दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्व्वा मम चेतसि संस्थिताः ६३॥

टी०। और अहोभाग्य है कि आपके चरणोंकी मुझे यादहुई और आनन्दहै कि आपकी कहीहुई वार्त्ता सब मेरेमनमें बैठ गई ६३॥

मू० दिष्ट्या ज्ञानं ममोत्पन्नं भवतश्च समागमात्।
भवता चैव कारुण्यं दिष्ट्या ब्रह्मन् कृतं मम ६४॥

टी०। और भाग्यही के सबबसे आपके समागमसे मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ और ऐ ब्रह्मन्! अहोभाग्यहै कि आपने मुझपर कृपा कीहै ६४॥

मू० अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये।
यथेदमुपकाराय व्यसनं सङ्गमात्तव ६५॥

टी०। जब मनुष्यका कल्याण उदयहोता है तो अनर्थमें भी उसको अर्थ प्राप्तहोताहै जैसे आपके संगमसे यह मेरा दुःख मेरीभलाई के वास्ते उत्पन्न हुआथा ६५॥

मू० सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो।
ययोः कृतेऽहं संप्राप्तो योगीश भवतोऽन्तिकम् ६६॥

टी०। हे प्रभो! सुबाहु और काशीनरेश भी मेरे उपकारी हुये कि जिनके सबबसे ऐ योगीश! मैं आप के समीप में आया ६६॥

मू० सोऽहं तव प्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः।
तथा यतिष्ये येनेदृङ् भूयां दुःखभाजनम् ६७॥

टी०। और आप के प्रसादरूपी अग्निसे मेरा अज्ञानरूपी पाप सब जलगया अब मैं उसी तरह यत्न करूँगा कि जिससे फिर मैं ऐसा दुःख पात्र न होऊं ६७॥

मू० परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्त्तिपादपकाननम्।
त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्म्महात्मनः ६८॥

टी०। मैं आप ऐसे ज्ञानदाता महात्मासे आज्ञा लेकर पीडारूपी वृक्षों का वनसमान जो गृहस्थाश्रम है उसको त्याग करूंगा ६८॥

दत्तात्रेय उवाच॥

मू० गच्छ राजेन्द्र भद्रन्ते यथा ते कथितं मया।

निर्म्ममोनिरहंकारस्तथा चर विमुक्तये ६९ ॥

टी०। तब दत्तात्रेयजी ने कहा कि हे राजेन्द्र! तुम जाउ तुम्हारा कल्याण होगा और जिस तरह मैंने तुम से कहा है सो ममता और अहंकार को छोड़कर अपनी मुक्ति के वास्ते वैसाही करना ६९ ॥

जड़ उवाच ॥

मू० एवमुक्तः प्रणम्यैनं माजगाम त्वरान्वितः।
यत्र काशिपतिर्भ्राता सुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः ७० ॥

टी०। जड़रूपी सुमति कहते हैं कि राजा अलर्क यह सुनकर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके जहाँ काशीनरेश और इसके बड़े भाई सुबाहु थे वहाँ पहुँचे ७० ॥

मू० समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कः काशिभूपतिम्।
सुबाहोरग्रतो वीरमुवाच प्रहसन्निव ७१ ॥

टी०। और काशीनरेश के समीप जाकर सुबाहु के सामने हँसते हुये से अलर्कजी महाबाहु काशीनरेश वीर से कहने लगे ७१ ॥

मू० राज्यकामुक काशीश भुज्यतां राज्यमूर्जितम्।
तथा च रोचते तद्वत् सुबाहोः सं प्रयच्छ वा ७२॥

टी०। कि ऐ राज के कामुक, काशीनरेश! तुमने जो राज्यजीतलिया है उस बढ़ीहुई को तुम भोग करो या चाहो सुबाहु को देदो ७२ ॥

काशिराज उवाच ॥

मू० किमलर्कपरित्यक्तं राज्यन्ते संयुगं विना।
क्षत्रियस्य न धर्म्मोऽयं भवांश्च क्षत्रधर्म्मवित् ७३ ॥

टी०। तब काशीनरेश बोले कि हे अलर्क! तुम क्यों राज्य को बिना संग्राम के छोड़कर इससे अलग होते हो यह क्षत्रिय का धर्म्म नहीं है और तुम क्षात्र धर्म्म के जानने वाले हो ७३ ॥

मू० निर्जितामात्यवर्गस्तु त्यक्त्वा मरणजं भयम्।
सन्दधीत शरं राजा लक्ष्यमुद्दिश्य वैरिणम् ७४ ॥

टी०। जब राजाओंकी सेना मंत्री आदिको समेत मारी जाती है तब

वह राजा अपने मरने का डर छोड़कर धनुष बाण धारण करके वैरी को निशाना कल्पितकर अकेलेही सामना करताहै ७४ ॥

मू० तं जित्वा नृपतिर्भोगान् यथाभिलषितान् वरान् ।
भुञ्जीत परमं सिद्ध्यै यजेत च महामखैः ७५ ॥

टी०। और उस वैरी को जीतकर अपनी इच्छानुसार उत्तम भोग करते हैं और अपनी परम सिद्धि के वास्ते महा यज्ञ भी करते हैं ७५ ॥

अलर्क उवाच ॥

मू० एवमीदृशकं वीर ममाप्यासीन्मनः पुरा ।
साम्प्रतं विपरीतार्थं शृणुचाप्यत्र कारणम् ७६ ॥

टी०। तब अलर्क बोले कि हे वीर ! जैसा तुम कहते हो वैसाही मेरा भी मन पहिले था पर अब विपरीत होगया इसका कारण कहता हूँ सुनो ७६ ॥

मू० यथायं भौतिकः सङ्घस्तथान्तःकरणं नृणाम् ।
गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ७७ ॥

टी०। कि जैसा यह भौतिक सङ्घ है वैसाही मनुष्यों का अन्तःकरण भी है और जितने जीव और जन्तु हैं उन सबों में सबगुण हैं ७७ ॥

मू० चिच्छक्तिरेक एवायं यदानान्योऽस्ति कश्चन ।
तदा का नृपते ज्ञानान्मित्ररिपुप्रभुभृत्यता ७८ ॥

टी०। परन्तु चैतन्यशक्तिमान् जो पुरुष है वह सब में एकही है यथा (एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥ नेह नानास्ति किञ्चन) तो फिर जब कि दूसरा कोई नहीं है हे काशीनरेश ! तो अज्ञानता से मित्र, शत्रु, सेवक, स्वामी यह सब मानना झूँठ है ७८ ॥

मू० तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम् ।
दत्तात्रेय प्रसादेन ज्ञानमाप्तं नरेश्वर ७९ ॥

टी०। और हे नरेश्वर ! तुम्हारे डरसे उपजा हुआ दुःख पाकर दत्तात्रेयजी के शरण में गया और उन्हीं के प्रसाद से यह उत्तम ज्ञान मुझको प्राप्त हुआ है ७९ ॥

मू० निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा सङ्गमशेषतः।
मनो ब्रह्मणि सन्धाय तज्जये परमो जयः ८० ॥

टी०। मैंने सब सङ्ग छोड़कर इन्द्रियों और मन को जीतकर मनको ब्रह्म में लगादिया इस मन को जीतना यही उत्तम विजय है ८० ॥

मू० संसाध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यै यतः किञ्चिन्न विद्यते।
इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ८१ ॥

टी०। और उसीके सिद्ध होने के वास्ते सम्पूर्ण साधना है जिससे परे और कोई बात इस जगत् में कुछ नहीं है जब इन्द्रियों का संयम करे तभी वह सिद्धि प्राप्त होती है ८१ ॥

मू० सोऽहं न तेऽरिर्न ममासि शत्रुः सुबाहुरेवं न ममा पकारी। दृष्टं मया सर्व्वमिदं यथात्मा अन्विष्यतां भूपरिपुस्त्वयान्यः ८२ ॥

टी०। और हे काशीनरेश ! न हम तुम्हारे शत्रु और न तुम हमारे शत्रु हो और सुबाहु भी मेरा अपकारी नहीं है मैं सबको अपने ही आत्मा की तरह देखता हूं इसवास्ते हे काशीनरेश ! अब तुम दूसरा शत्रु खोजलेउ ८२ ॥

मू० इत्थं स तेनाभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः। दिष्ट्येति तं भ्रातरमाभिनन्द्य काशीश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ८३ ॥

टी०। जड़ अर्थात् सुमति कहते हैं कि जब इसतरह राजा अलर्क ने काशीनरेश से कहा तब सुबाहु हर्षित हो उठकर अपने भाई से कहने लगे कि अहो भाग्य है जो मुझे तुम्हारे दर्शन मिले यह कहकर भाई की बहुत प्रशंसा की फिर काशी नरेश से यह कहनेलगे कि ८३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽरिष्टाध्यायोनामत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४३ ॥

अथ चवालीसवां अध्याय ॥

सुबाहुरुवाच ॥

मू० यदर्थं नृपशार्दूल त्वामहं शरणं गतः ।
तन्मया सकलं प्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव १ ॥

टी० । सुबाहु कहते हैं कि हे नरों में श्रेष्ठ, काशीनरेश ! जिस काम के वास्ते मैं तुम्हारी शरण में आया था अब वह सब मुझे हासिल हुआ अब मैं जाता हूँ आप सुख से रहिये १ ॥

काशिराज उवाच ॥

मू० किन्निमित्तं भवान् प्राप्तो निष्पन्नोऽर्थश्च कस्तव ।
सुबाहो तन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे २ ॥

टी० । तब काशीनरेशने पूंछा कि हे सुबाहु ! तुम किस काम के वास्ते मेरे पास आये और तुम्हारा और मतलब हासिल हुआ वह मुझ से कहो क्योंकि मुझको बड़ा आश्चर्य है २ ॥

मू० समाक्रान्तमलर्केन पितृपैतामहं महत् ।
राज्यं देहीति निर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः ३ ॥

टी० । क्योंकि पहिले तो तुमने मुझसे यह कहा था कि अलर्क ने मेरे बाप दादे का पैदा किया हुआ बड़ा राज्य जबरदस्ती से ले लियाहै उस को जीतकर राज्य मुझे देदो ३ ॥

मू० ततो मया समाक्रम्य राज्यमस्यानुजस्य ते ।
एतत्ते बलमानीतं तद्भुङ्क्ष्व स्वकुलोचितम् ४ ॥

टी० । सो तुम्हारे कहने से मैंने तुम्हारे छोटे भाई का यह राज्य व सेना उससे जीतकर तुम्हारे वास्ते लेलियाहै यह राज्य तुम्हारे खानदान के योग्यहै इसको लेवो और भोग करो ४ ॥

सुबाहुरुवाच ॥

मू० काशिराज निबोधत्वं यदर्थमयमुद्यमः ।
कृतो मया भवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ५ ॥

टी०। सुबाहु ने जवाब दिया कि हे काशिराज! जिस अर्थ के वास्ते मैंने इस उद्यमको किया था व आपसे बहुत उद्यम कराया था उसका हाल कहताहूं सुनिये ५॥

मू० भ्राता ममायं ग्राम्येषु सक्तो भोगेषु तत्त्ववित्।
विमूढौ बोधवन्तौ च भ्रातरावग्रजौमम ६॥

टी०। कि यह मेरा भाई अलर्क तत्त्व का जाननेवाला संसारी भोगों में फँस गया था और मेरे दो बड़े भाई भी पहिले मूढ़ थे पीछे उनको ज्ञान हुआ ६॥

मू० तयोर्म्मम च यन्मात्रा बाल्ये स्तन्यं यथामुखे।
तथा वबोधोविन्यस्तः कर्णयोरवनीपते ७॥

टी०। हे राजन्! जिस लिये लड़कपन में माताने मेरे व उन दोनों के मुख में जैसे मुखमें दूध पिलाया वैसेही कानों में ज्ञान रखदिया ७॥

मू० तयोर्म्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः।
प्राकाश्यम्मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ८॥

टी०। इसीतरह मेरे भाइयोंको और मुझको वे पदार्थ माता से हासिल हुये जिनको सब कोई मनुष्य जानने योग्य मानते हैं और वे पदार्थ हृदय में प्रकाशकर दिये गये परन्तु हे राजन्! वह बात अलर्क में न थी ८॥

मू० यथैकमर्थयातानामेकस्मिन्नवसीदति।
दुःखं भवति साधूनां तथास्माकं महीपते ९॥

टी०। हे राजन्! जिसतरह एकही प्रयोजन के लिये जातेहुये सज्जनोंके बीच में से एकको दुःख होता है तो सब दुखी होजाते हैं वैसेही हमसब को क्लेशथा ९॥

मू० गार्हस्थमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर।
सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् १०॥

टी०। हे राजन्! इस शरीर का सम्बन्धी व जो मेरे भाई की कल्पना को धारण किये है वह अलर्क गृहस्थी के मोहमें फँसकर कष्ट पाताथा १०॥

मू० ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना।
भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ११॥

टी०। यह कष्ट उसका देखकर मैंने विचार किया कि दुःख पड़ने से इसको वैराग्यमें भावना होगी इसी बात को दिलमें ठहराकर उद्योगके लिये मैं आपके पास आया ११ ॥

मू० तदस्य दुःखाद्वैराग्यं संबोधादवनीपते।
समुद्भूतं कृतं कार्य्यं भद्रन्तेऽस्तु व्रजाम्यहम् १२ ॥

टी०। हे राजन्! आपकी इस लड़ाई के जीतलेने से अलर्क को दुःख होकर वैराग्य हुआ इसी मतलब के वास्ते मैं आपके पास आया था सो प्राप्त हुआ आपका कल्याण रहै मैं जाताहूं १२ ॥

मू० उष्ट्वामदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथास्तनम्।
नान्यनारीसुतैर्य्यातं वर्त्म यात्विति पार्थिव १३ ॥

टी०। हे राजन्! मैं मदालसा के गर्भ में बसकर और उनका दूध पीकर अब जिसमें फिर दूसरी स्त्री के लड़कों से गये हुये मार्ग में न जावै १३ ॥

मू० विचार्य्य तन्मया सर्व्वं युष्मत्संश्रयपूर्व्वकम्।
कृतं तच्चापि निष्पन्नं प्रयास्ये सिद्धये पुनः १४ ॥

टी०। आपही के आश्रय से होगा यह सब शोचकर मैं यहाँ आया और आपके सबब से यह सब बातें मुझे प्राप्त हुईं अब मैं फिर अपना योग सिद्ध करने के वास्ते जाता हूँ १४ ॥

मू० उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो बान्धवः सुहृत्।
यैर्न्नरेन्द्र नतान् मन्ये सेन्द्रिया विकला हिते १५ ॥

टी०। हे नरेन्द्र! जे लोग अपने भाई बन्धु और दोस्त आशना वग़ैरा को दुःख में छोड़देते हैं उन लोगों को मैं सुखी नहीं समझता हूँ और उन लोगोंकी सब इन्द्रियाँ और वे सदा विकल रहते हैं १५ ॥

मू० सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थेयोऽवसीदति।
धर्म्मार्थकाममोक्षेभ्यो वाच्यास्तेतत्र नत्वसौ १६ ॥

टी०। और जिसके दोस्त आशना भाई बन्धु सब सुख में हों और आप कष्ट पाताहो तो वे मित्रादिक अर्थ और धर्म्म और काम और मोक्ष इत्यादिकों से निन्दनीय हैं किन्तु वह नहीं निन्दनीय है १६ ॥

मू० एतत् त्वत्सङ्गमाद् भूप मया कार्य्यं महत्कृतम्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग्भव सत्तम १७॥

टी०। और हे महाराज ! तुम्हारे सङ्गम से यह बड़ा कार्य्य मैंने किया तुम्हारा कल्याणहो मैं जाताहूं और तुमभी उत्तम ज्ञानी होजावो १७॥

काशिराज उवाच॥

मू० उपकारस्त्वया साधोरलर्कस्य कृतो महान्।
ममोपकाराय कथं न करोषि स्वमानसम् १८॥

टी०। तब काशीनरेश बोले कि हे सुबाहु ! तुमने सज्जन अलर्क का बड़ा उपकार किया अब मेरा उपकार करने में क्यों अपना मन नहीं लगातेहो १८॥

मू० फलदायी सतां सद्भिः सङ्गमो नाफलो यतः।
तस्मात्वत्संश्रयाद्युक्ता मया प्राप्ता समुन्नतिः १९॥

टी०। क्योंकि साधुवों की सङ्गति मनुष्यों को फल देनेवाली होतीहै दुखी कभी नहीं रहने देती इस वास्ते आपकी सङ्गति से मैं बड़ी उच्च पदवीको प्राप्त हुआ १९॥

सुबाहुरुवाच॥

मू० धर्म्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम्।
तत्र धर्म्मार्थकामास्ते सकला हीयतेऽपरः २०॥

टी०। सुबाहु बोले कि अर्थ और धर्म्म और काम और मोक्ष यही चार पुरुषार्थ हैं आपको अर्थ धर्म्म काम तो सब प्राप्तहैं पर एक मोक्ष नहीं है २०॥

मू० तत्ते सङ्क्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु।
श्रुत्वा च सम्यगालोच्य यतेथाः श्रेयसे नृप २१॥

टी०। हे राजन् ! उसको भी मैं संक्षेप से कहता हूं इस विषय में जी लगाकर सुनिये और सुनकर अपनी भलाई के वास्ते यत्न कीजिये २१॥

मू० ममेति प्रत्ययो भूप न कार्य्योऽहमिति त्वया।
सम्यगालोच्य धर्म्मोहि धर्म्माभावे निराश्रयः २२॥

टी०। अर्थात् हे राजन ! ममत्व व अहङ्कार का घमण्ड कभी न करो

हरतरह से ज्ञान में रहिकर धर्म्म की इच्छा रक्खो क्योंकि एक धर्म्मके छोड़ देने से मनुष्य विन आश्रय होजाता है २२॥

मू० कस्याहमिति सञ्ज्ञेयमित्यालोच्य त्वयात्मना।
बाह्यान्तर्गतमालोच्य मालोच्यापररात्रिषु २३॥

टी०। और तुम अपने मनमें समझो कि हम नाम किसका है और सबके भीतर और बाहर जो आत्मा प्राप्त है उसको जिसतरह रात्रि में जागकर योगी लोग देखते हैं उसीतरह तुमभी देखो २३॥

मू० अव्यक्तादि विशेषान्तमविकारमचेतनम्।
व्यक्ताव्यक्तं त्वया ज्ञेयं ज्ञाता कश्चाहमित्युत २४॥

टी०। और अव्यक्त याने मूलप्रकृति से लगाकर विशेषान्त तक जानो और वह विकार रहित है और अचेतन है यानी बुद्धिसे बाहर है व्यक्ता व्यक्त है इसको जानो और हम कौन हैं इसको भी जानो २४॥

मू० एतस्मिन्नेव विज्ञाते विज्ञातमखिलं त्वया।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वे स्वमिति मूढ़ता २५॥

टी०। इन सब बातों के जानलेने से तुम सब जान जाओगे और जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा जानना और धन जो किसीका नहीं है उसको अपना कहना यह सब मूढ़ता है २५॥

मू० सोऽहं सर्व्वगतो भूप लोकसंव्यवहारतः।
मयेदमुच्यते सर्व्वं त्वया पृष्टो व्रजाम्यहम् २६॥

टी०। और हे राजन्! वही मैं सर्व्वगत यानी सब में प्राप्त हूँ पर तुम्हारे पूंछनेसे लौकिक व्यवहारके सबबसे मैंने यहकहा अब जाताहूं २६॥

मू० एवमुक्त्वा ययौ धीमान् सुबाहुः काशिभूमिपम्।
काशिराजोऽपि सम्पूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ २७॥

टी०। बुद्धिमान् सुबाहु यह बातें काशीनरेशसे कहकर विदाहुये और काशीनरेश भी हरतरह से अलर्क का पूजन करके अपनी राजधानी को गये २७॥

मू० अलर्कोऽपि सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य नराधिपम्।

वनंजगाम सन्त्यक्तसर्व्वसङ्गः स्वसिद्धये २८ ॥

टी०। और अलर्क भी अपने बड़े बेटे को राज्य पै बिठाकर और आप बेलकुल दुनियां का संग छोड़ अपनी सिद्धिके लिये जङ्गल को चले गये २८ ॥

मू० ततः कालेन महता निर्द्वन्दो निष्परिग्रहः ।
प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परं निर्वाणमाप्तवान् २९ ॥

टी०। फिर बहुत दिनों तक सुख दुख से रहित और स्त्री आदि को छोड़ेहुये योग सिद्ध करके परम निर्व्वाण पदको पहुँचगये २९ ॥

मू० पश्यन्नजगदिदं सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ।
पाशैर्गुणमयैर्बद्धं बध्यमानञ्च नित्यशः ३० ॥

टी०। और सम्पूर्ण देवता और असुर और मनुष्य आदि से संयुक्त जो यह संसार है और गुण की फाँस में बँधा हुआ है और दिन दिन बँधता जाताहै इसको देखकर ३० ॥

मू० पुत्रादिभ्रातृमित्रारि स्वपारक्यादिभावितैः ।
आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ३१ ॥

टी०। जो कि पुत्र, भाई, मित्र, शत्रु, अपना, पराया इत्यादि भावना के कारण इन्द्रियों से खींचा जाता हुआ दुःखसे विकल होरहाहै व भिन्न देखता है याने जो सब में एक है उसको नहीं देखता ३१ ॥

मू० अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः ।
आत्मानञ्च समुत्तीर्णगाथामेतामगायत ३२ ॥

टी०। और जो अज्ञानरूपी कीचड़में फँसे हुये हैं कि जिससे निकलना मुशकिल है अपने को उससे निकला हुआ समझकर महाबुद्धिवाले अलर्कजी यह गीत गानेलगे ३२ ॥

मू० अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्व्वं राज्यमनुष्ठितम् ।
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ३३ ॥

टी०। कि मैंने पहिले जो किया यह आश्चर्य व कष्टकी बात है यह बात अब मुझे मालूम हुई कि सिवाय योगके दूसरी बात में सुख नहीं है ३३ ॥

जड उवाच॥

मू० तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम्।
प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ३४॥

टी०। जड़ अर्थात् सुमति कहते हैं कि हे तात! इसी उत्तम योग में आप मुक्तिके लिये अपने मन को लगाइये कि जिसके सबबसे उस ब्रह्मपद में पहुँच जाइयेगा कि जहां पहुँचकर फिर किसीतरह का शोच आपको न होगा ३४॥

मू० ततोहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे।
कृतकृत्यस्य करणं ब्रह्मभावाय कल्पते ३५॥

टी०। तदनन्तर मैं भी उसीमें प्राप्तहूंगा मुझे योग और तप वग़ैरा करना क्या ज़रूर है क्योंकि मुझ कृतकृत्य का उपाय ब्रह्महोने के लिये समर्थ है ३५॥

मू० त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्दो निष्परिग्रहः।
प्रयतिष्ये तथामुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिं ३६॥

टी०। और मैं आपकी आज्ञापाकर दुःख सुख से रहित व स्त्री आदिकों से विहीन होकर मुक्तिके वास्ते उसीतरह यत्न करूंगा जिस से निर्वृत्ति पद में प्राप्त होजाऊँ ३६॥

पक्षिण ऊचुः॥

मू० एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः।
ब्रह्मन् जगाम मेधावी परित्यक्त परिग्रहः ३७॥

टी०। पक्षी कहतेहैं कि हे जैमिनिजी! इसतरहसे कहकर वह बुद्धिमान् ब्राह्मण अर्थात् सुमति अपने पिता को प्रणामकर और उनसे आज्ञा लेकर संसारी व्यवहार छोड़कर जंगल को चला गया ३७॥

मू० सोऽपि तस्य पिता तद्वत् क्रमेण सुमहामतिः।
वाणप्रस्थं समास्थाय चतुर्थाश्रममभ्यगात् ३८॥

टी०। और उनके पिता महा बुद्धिमान्भी उसीतरहक्रमसे वाणप्रस्थाश्रम में प्राप्त होकर फिर बाद उसके यती आश्रम में प्राप्त हुये ३८॥

मू० तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम्।
प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसंमतिः ३९॥

टी०। हे जैमिनिजी! वह ब्राह्मण वहां अपने पुत्र के पास प्राप्तहोकर और गुणादिक बन्धनों को छोड़कर उसी समय उत्तम बुद्धिपाकर परम सिद्धि को पहुँच गया ३९॥

मू० एतत्ते कथितं ब्रह्मन् यत्पृष्टं भवता वयम्।
सुविस्तरं यथावच्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ४०॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! जो बात आपने हमलोगों से पूछा उसको हम ने विस्तार पूर्व्वक व यथा योग्य कहा अब आप और किसबात के सुनने की इच्छा रखते हैं सो कहिये ४०॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेजडोपाख्यान
न्नामचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४४॥

अथ पैंतालीसवां अध्याय॥

जैमिनिरुवाच॥

मू० सम्यगेतन्ममाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म्म वैदिकम् १॥

टी०। जैमिनिजी कहते हैं कि हे पक्षीलोगो! प्रवृत्ति और निवृत्ति दो तरह के वैदिक कर्म्म को हरतरह से आपलोगोंने मुझ से कहा १॥

मू० अहो पितृप्रसादेन भवतां ज्ञानमीदृशम्।
येनतिर्य्यक्त्वमप्येतत्प्राप्यमोहस्तिरस्कृतः २॥

टी०। पर बड़े आश्चर्य्य की बात है कि पिता के प्रसाद से ऐसा ज्ञान आप सबों ने पाया जिसके सबब से इस पक्षियोनि में भी प्राप्त होकर सब तरह के मोह को छोड़ दिया है २॥

मू० धन्या भवन्तः संसिद्धौ प्रागवस्थास्थितं यतः।
भवतां विषयोद्भूतैर्न्नमोहैश्चाल्यतेमनः ३॥

टी०। आपलोग धन्य हैं क्योंकि अपने सिद्ध होने के वास्ते आगे जैसा मन आपलोगों का था अब भी वैसाही है और मोह जो विषयों से उत्पन्न है वह आपलोगों के मनको नहीं चलाय सक्ता है ३॥

मू० दिष्ट्या भगवता तेन मार्कण्डेयेन धीमता।
भवन्तो वै समाख्याताः सर्व्वसन्देहहृत्तमाः ४॥

टी०। हमको भाग्य से मार्कण्डेयजी ऐसे ज्ञानी मिले थे कि जिन्होंने आप ऐसे महात्माओं का पता बतलाया क्योंकि आपलोग समस्त सन्देहों के हरनेवालों में श्रेष्ठ हैं ४॥

मू० संसारेस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतां मतिसङ्कटे।
भवद्विधैः समं सङ्गो जायते नातपस्विनाम् ५॥

टी०। जो मनुष्यलोग इस अति संकट भरेहुये संसार में घूमते हैं उनको आप ऐसे महात्माओं का सा सङ्ग बिन तपस्या के नहीं होता है बल्कि बड़े २ तपस्वियों को भी आपलोगोंका दर्शन दुर्लभ है ५॥

मू० यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः।
न स्यां कृतार्थस्तन्न्यूनं न मेऽन्यत्र कृतार्थता ६॥

टी०। जबकि हम ज्ञानदृष्टिवाले आपलोगोंके संग से कृतार्थ न होंगे तो फिर मेरी कृतार्थता अन्यत्र न होगी क्योंकि आप ऐसे महात्माओं के सिवाय दूसरा कौन है जो हमको कृतार्थ करैगा ६॥

मू० प्रवृत्ते च निवृत्ते च भवतां ज्ञानकर्म्मणि।
मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित् ७॥

टी०। क्योंकि प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञान कर्म्म में जैसी आपलोगों की मति निर्म्मल है वैसी और किसी की नहीं है ७॥

मू० यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः।
भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ८॥

टी०। हे द्विजोत्तमो! मुझपर जो आपलोगों की कृपावतीबुद्धि हो तो जो मैं पूंछताहूँ उसको सम्पूर्णतासे कहिये ८॥

मू० कथमेतत्समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
कथञ्च प्रलयं काले पुनर्य्यास्यति सत्तमाः ९॥

टी०। हे द्विजोत्तमो ! स्थावर और जंगममय यह जो संसार है सो किसतरह उत्पन्नहुआ है और काल प्राप्तहोनेपर फिर किसतरह प्रलय होजावैगा ९॥

मू० कथञ्च वंशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः।
मन्वन्तराणि च कथं वंशानुचरितञ्च यत् १०॥

टी०। और देवता और पितर और ऋषि और भूत इत्यादिकों से उत्पन्नवंश किसतरह होते हैं और मन्वन्तर किसतरह होते हैं और उनके वंशकी कथा किसतरह पर है वह कहिये १०॥

मू० यावन्त्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा।
यथाकल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थितिः ११॥

टी०। और सृष्टि और प्रलय का प्रमाण और कल्पों का विभाग और मन्वन्तरों का प्रमाण जितनाहो ११॥

मू० यथा च क्षितिसंस्थानं यत्प्रमाणञ्च वै भुवः।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाः काननानि च १२॥

टी०। और जिसतरह पृथ्वी के स्थिति रहने का हालहो और जितना उसका प्रमाण है और समुद्र और पर्व्वत और नदी और जङ्गल वगैरह जिस तरह स्थित हैं १२॥

मू० भूर्ल्लोकादिस्वर्ल्लोकानां गणः पातालसंश्रयः।
गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि १३॥

टी०। और भूर्ल्लोक और स्वर्ल्लोक और पाताल आदि का संस्थान और सूर्य्य और चन्द्रमा और ग्रह और ऋक्ष और ज्योतिष् वगैरह का जो हाल है १३॥

मू० श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्व्वमेतदाहूतसंप्लवम्।
उपसंहृत्ययच्छेषं जगत्यस्मिन् भविष्यति १४॥

टी०। प्रलयपर्य्यन्त यह सम्पूर्ण मैं सुननेकी इच्छा करताहूं और एकार्णव होनेपर सबको समेटकर परमेश्वर जब अपने उदर में लेलेते हैं तो क्या बाकी रहजाता है उसको भी कहिये १४॥

पक्षिण ऊचुः ॥

मू० प्रश्नभारोऽयमतुल्लो यस्त्वया मुनिसत्तम।
प्रष्टस्तत्ते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेह जैमिने १५॥

टी०। पक्षीलोग कहते हैं कि हे जैमिनिजी ! तुमने हम सबों पर प्रश्न का बड़ाबोझ डाला परन्तु जो बात तुमने पूंछी वह हमलोग कहते हैं उसको सुनौ १५॥

मू० मार्कण्डेयेन कथितं पुराक्रौष्टुकये यथा।
द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते १६॥

टी०। कि पहिले जिसतरह मार्कण्डेयमुनिने ब्राह्मणके पुत्र ज्ञानी और शान्त और व्रतनैष्ठिक और क्रौष्टुकीनाम से वर्णन कियाहै वही सब बातें मैं तुमसे कहताहूं १६॥

मू० मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः।
क्रौष्टुकिःपरिपप्रच्छ यदेतत्पृष्टवान् प्रभो १७॥

टी०। हे प्रभो ! एक समय सब ब्राह्मणों ने मार्कण्डेय महात्माकी बहुत सेवा किया और जो बात आपने हमलोगों से पूंछी है वही बात वहांपर क्रौष्टुकी नाम ब्राह्मण ने मार्कण्डेयजी से पूंछी थी १७॥

मू० तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः।
तत्ते प्रकथयिष्यामःशृणु त्वं द्विजसत्तम १८॥

टी०। हे द्विजसत्तम ! तब उनसे जो भृगुनन्दन यानी मार्कण्डेयजी ने प्रीति से कहा है वही हमलोग आपसे कहते हैं सुनिये १८॥

मू० प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम्।
जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम्॥
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् १९॥

टी०। जगत् के स्थिति याने पालनकरने में प्रवृत्त जो हैं जगदीश विष्णु और उत्पत्तिकरनेमें प्रवृत्त जो हैं कमल से पैदाहुये ब्रह्मा और नाश करने में हैं प्रवृत्त जो रौद्रस्वरूपी महादेवजी इन तीनों स्वरूपी परमेश्वर को प्रणाम करके १९॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिस्सृताः २० ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्व्वकाल में जब अप्रकटजन्मवाले ब्रह्मा उत्पन्नहुये तब यह उत्तमपुराण और चारोंवेद उनके मुखों से पैदा हुये २० ॥

मू० पुराणसंहिताश्चक्रुर्ब्बहुलाः परमर्षयः।
वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः २१ ॥

टी०। उस पुराणकी संहिता ब्रह्मर्षिलोगों ने बहुतसी बनाई हैं और उन्हीं लोगों ने वेदों के विभाग भी हजारों किये २१ ॥

मू० धर्म्मज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्च महात्मनः।
तस्योपदेशेन विना न हि सिद्धञ्चतुष्टयम् २२ ॥

टी०। कि जिस महात्मा के उपदेश के विना धर्म्म और ज्ञान और वैराग्य और ऐश्वर्य्य यह चारों सिद्ध नहीं होते हैं २२ ॥

मू० वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः।
पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्यमानसाः २३ ॥

टी०। ब्रह्माके मानसी पुत्र जो सप्तर्षिलोग हुये उन्हों ने ब्रह्मासे वेद को ग्रहण किया और उनके मानस से जो प्रथम मुनिलोग पैदा हुये भृगु आदि उन्हों ने पुराणको ग्रहण किया २३ ॥

मू० भृगोःसकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तञ्च द्विजन्मनाम्।
ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः २४ ॥

टी०। भृगुमुनि से इस पुराण को च्यवनमुनि ने ग्रहण किया और च्यवनमुनि ने ऋषिलोगों से वर्णन किया और महात्मा ऋषिलोगों ने दक्ष से कहा २४ ॥

मू० दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम।
तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् २५ ॥

टी०। और दक्षने भी तब हम से कहा वही यह पुराणहै जो कलियुग

के पापों को नाश करती है सो मैं इस समय आप से कहताहूं २५॥

मू० सर्व्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना।
यथा श्रुतं मया पूर्व्वं दक्षस्य गदतो मम २६॥

टी०। हे महाभाग! जिस तरह ये बातें हमने कहतेहुये दक्षसे पहले सुनी थीं उसी तरह आप से सब कहते हैं जी लगाकर सुनिये २६॥

मू० प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम्।
चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् २७॥

टी०। जगत् चराचर का उत्पत्तिस्थान जो पैदा नहीं हुआ और जिसका नाश नहीं होता ऐसा जो चराचरका धारणकरनेवाला आश्रयरूप परमपद तिसको नमस्कार करके २७॥

मू० ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे।
यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् २८॥

टी०। और आदिपुरुष ब्रह्म जो कि उत्पत्ति और स्थिति और नाश करनेमें कारण है और उपमारहितहै और जिनमें सब कोई स्थित है २८॥

मू० तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते।
प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम् २९॥

टी०। उस हिरण्यगर्भ बुद्धिमान् व संसार को बनानेवाले को प्रणाम करके भूतवर्ग अनुत्तम को अच्छीतरह से बयानकरताहूं २९॥

मू० महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम्।
प्रमाणैः पञ्चभिर्गम्यं स्रोतोभिः षड्भिरन्वितम् ३०॥

टी०। महदादि यानी महत्तत्त्व से लगाकर पृथ्वीपर्यन्त जो है और जो विशेषरूप और लक्षणों से युक्त और पंचप्रमाण याने शब्दादिकों से जाननेयोग्य है और छःस्रोत याने मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण, पायु व उपस्थ से युक्त है ३०॥

मू० पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम्।
तच्छ्रूयतां महाभाग परमेण समाधिना ३१॥

टी०। और नित्य व पुरुष याने परमेश्वर से अधिष्ठित है और अनित्य

की तरह जगत् में स्थित है उसको हे महाभाग! खूब मनलगाकर सुनिये ३१ ॥

मू० प्रधानकारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः।
यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम् ३२ ॥

टी०। जिनको महाऋषिलोग अव्यक्त व प्रधान कारण कहते हैं और सत् असत्मय नित्या सूक्ष्मा प्रकृति वही है ३२ ॥

मू० ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम्।
गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ३३ ॥

टी०। और ध्रुव और अक्षय और अजर है और वह प्रमाण के योग्य नहीं है और न किसी के आश्रित है और गन्ध और रूप और रस से रहित है और शब्द और स्पर्श से भी रहित है ३३ ॥

मू० अनाद्यन्तं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभवोप्ययम्।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ३४ ॥

टी०। और उसका आदि और अन्त नहीं है और जगत् का कारण है और तीनों गुणोंकी उत्पत्ति और नाशकरनेवाला और सदा रहनेवाला और अविज्ञेय है यानी कोई उसको जान नहीं सक्ता ऐसा जो ब्रह्म है वही पहिले सम्यक्प्रकार से वर्त्तमान हुआ है ३४ ॥

मू० प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः।
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ३५ ॥

टी०। और हे मुने! प्रलय के होने पर वही ब्रह्म सब में व्याप्त रहता है और उसके बाद वही ब्रह्म क्षेत्रज्ञाधिष्ठित माया से ३५ ॥

मू० गुणभावात्सृज्यमानात् सर्गकाले ततः पुनः।
प्रधानं तत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् ३६ ॥

टी०। रचेजातेहुये गुणों के भाव से उत्पन्न होकर सृष्टिकाल में प्रधान महत्तत्त्व को फिर उत्पन्न करता है जिस महत्तत्त्व को गुण और भाग घेर लेता है ३६ ॥

मू० यथा बीजं त्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चत्रिधोदितः ३७ ॥

टी०। जिस तरह बीजको बकला घेरेहुये रहता है उसी तरह अव्यक्त से महान् घेराहुआ रहता है और उस अव्यक्त का गुण भाव करके सत् रज तम तीन तरह का कहागया है ३७ ॥

मू० ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधो वै व्यजायत।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः ३८ ॥

टी०। फिर उसी महान् से तीन तरह का अहङ्कार उत्पन्न होता है वैकारिक और तैजस और तामस इन्हीं तीनों से भूतादि हैं ३८ ॥

मू० महता चावृतः सोऽपि यथा व्यक्तेन वै महान्।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दस्तन्मात्रकन्ततः ३९ ॥

टी०। और उस अहङ्कार को भी महान् घेरे हुये है जिस तरह अव्यक्त से महान् घेरा हुआ है और भूतादि जब विकार को प्राप्त होते हैं तब शब्दतन्मात्रा पैदा होती है ३९ ॥

मू० ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम्।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत्ततः ४० ॥

टी०। फिर उसी शब्दतन्मात्रा से आकाश शब्दलक्षण होता है तब उस आकाश शब्दमात्रा को भूतादि घेरलेते हैं ४० ॥

मू० स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः।
बलवाञ्जायते वायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः ४१ ॥

टी०। उसी आकाश शब्दमात्रा में स्पर्शतन्मात्रा पैदा होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं और उसी स्पर्श से बलवान् वायु पैदा होती है उस का भी स्पर्शगुण कहाजाता है ४१ ॥

मू० वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ४२ ॥

टी० फिर वायु जब विकार को प्राप्त होती है तो रूपमात्रा को पैदा करती है और उसी वायु से ज्योति उत्पन्न होती है जिसका गुण रूप है ४२ ॥

मू० स्पर्शमात्रस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत्।
ज्योतिश्चापि विकुर्व्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ४३ ॥

टी०। और स्पर्शमात्र जो है वायु सो रूपमात्राको घेरेहुये रहती है और जब ज्योति विकार को प्राप्त होती है तो रसमात्रा को उत्पन्न करती है ४३ ॥

मू० सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन् वै ता रसात्मिकाः।
रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्रं समावृणोत् ४४ ॥

टी०। उसी से रसात्मिका जो है जल वह पैदा होता है और उसी रसात्मिका जलको रूपमात्रा आकर घेरलेती है ४४॥

मू० आपश्चापि विकुर्व्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्ज्जिरे।
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणोमतः ४५ ॥

टी०। और जब वह जल विकार को प्राप्त होताहै तब गन्धमात्र को पैदा करता है फिर सब मिलकर एकत्र होजाते हैं तब गुण उसका गन्ध कहलाता है ४५ ॥

मू० तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता।
अविशेषं वाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ४६ ॥

टी०। और तन्मात्रा उसको कहते हैं जो जिसका विषयहै इसी सबब से तन्मात्रा कहलाती है और वह विशेष अर्थको नहीं कहती इसलिये वह अविशेष कहलाती है जिसको रस कहते हैं उसी को रसमात्रा भी कहते हैं ४६ ॥

मू० न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषतः।
भूततन्मात्रसर्गोयमहङ्कारात्तु तामसात् ४७ ॥

टी०। और ये सब न शान्त हैं न घोर न मूढ हैं क्योंकि अविशेष हैं इस को भूततन्मात्रासर्ग कहते हैं यह तामसअहङ्कार से पैदा होताहै ४७ ॥

मू० वैकारिकादहङ्कारात् सत्त्वोद्रिक्ता तु सात्त्विकः।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत् सम्प्रवर्त्तते ४८ ॥

टी०। फिर जब बढ़ाहुआ सात्त्विकअहङ्कार विकार को प्राप्त हो-

है तो उससे सात्त्विकवैकारिकसर्ग एकही समय में पैदा होताहै ४८ ॥

मू० बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्म्मेन्द्रियाणि च।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ४९ ॥

टी०। और पांच ज्ञानइन्द्रिय और पांच कर्म्मइन्द्रिय जो हैं इन्हीं को तैजसइन्द्रिय कहते हैं व इन्हीं दशइन्द्रियों को वैकारिक दशदेवता भी कहते हैं ४६ ॥

मू० एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः।
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ५० ॥

टी०। और उसमें ग्यारहवां मन है इन सबों के देवता वैकारिक कहाते हैं पहिला कर्ण दूसरा त्वक् तीसरा नेत्र चौथी जिह्वा पांचवीं नासिका ५० ॥

मू० शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते।
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक् पञ्चमी भवेत् ५१ ॥

टी०। ये पांचों बुद्धियुक्त होकर शब्द वगैरह का ज्ञान प्राप्त कराते हैं इन को ज्ञानइन्द्रिय कहते हैं और एक चरण दूसरे गुदा तीसरा लिङ्ग चौथा हस्त पांचवीं वाक् इनको कर्म्मइन्द्रिय कहते हैं ५१ ॥

मू० गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यञ्च कर्म्म तत्।
आकाशशब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ५२ ॥

टी०। चरणका कर्म्म गति है और गुदा का कर्म्म मलत्याग और लिङ्ग का आनन्द और हस्त का कारीगरी और वाक् का बोलना तो आकाश शब्दतन्मात्रा जो है उसमें जब स्पर्शतन्मात्रा प्रवेश करती है ५२ ॥

मू० द्विगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः।
रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ५३ ॥

टी०। तब उसमें से द्विगुण होकर वायु उत्पन्न होताहै उस वायु का भी गुण स्पर्श माना गया है उसीतरह शब्द और स्पर्श जब दोनों गुण रूप में प्रवेश करते हैं ५३ ॥

मू० त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान्।
शब्दस्पर्शश्चरूपंच रसमात्रं समाविशत् ५४ ॥

टी०। तो तीनोंगुणोंवाली अग्नि उत्पन्न होती है और वह अग्नि शब्द और स्पर्श और रूपवाला कहलाता है और शब्द और स्पर्श और रूप और अग्नि जब रस में प्रवेश करते हैं ५४ ॥

मू० तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापोविज्ञेयास्ता रसात्मिकाः।
शब्दस्स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धं समाविशत् ५५ ॥

टी०। तब उससे चारों गुणसे संयुक्त रसात्मिका जल पैदा होता है फिर शब्द और स्पर्श और रूप और रस जब गन्ध में प्रवेश करते हैं ५५॥

मू० संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम्।
तस्मात् पञ्चगुणाभूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते ५६ ॥

टी०। तब गन्धसमेत पांचों इकट्ठा होकर इस पृथ्वी को घेर लेते हैं इसी वास्ते यह पृथ्वी पंचगुणा भूमि कहलाती है व इसी सबब से सब भूतों में भी स्थूल दिखाई देती है ५६ ॥

मू० शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ५७ ॥

टी०। ये पांचों शान्त और घोर और मूढ हैं उतीसे वे विशेष कहलाते हैं और ये सब परस्पर एकमें एक प्रवेश करते हैं और परस्पर एक को एक धारण करते हैं ५७ ॥

मू० भूमेरन्तरित्विमं सर्व्वं लोकालोकं घनावृतम्।
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ५८ ॥

टी० और पृथ्वी के बीचमें यह सम्पूर्ण जो घनावृत यानी मेघ से आच्छादित लोकालोक है इसको प्राप्त करते हैं और निश्चय है इसलिये इन्द्रियों से ग्राह्य कहलाते हैं ५८ ॥

मू० गुणं पूर्व्वस्य पूर्व्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम्।
नाना वीर्य्याः पृथग्भूताः सप्तैते संहतिं विना ५९ ॥

टी०। और आपस में पहिले का गुण पीछेवाले प्राप्त करते हैं और इन लोगों का पराक्रम बहुत है और सब अलग अलग हैं मगर ये सब सातों बिना एक होने के ५९ ॥

मू० नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।

समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिनश्च ते ६० ॥

टी०। सब विन मिले अकेले प्रजा उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं और ये सब परस्पर एकके आश्रित एक हैं ६०॥

मू० एकसङ्घातचिह्नाश्च संप्राप्यैक्यमशेषतः।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ६१ ॥

टी०। और ये सब अव्यक्त के अनुग्रह से पुरुषाधिष्ठ यानी पुरुष के प्रवेश होनेके सबब से एकताको प्राप्त होकर एक समुदाय के चिह्न को प्राप्त होजाते हैं ६१ ॥

मू० महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते।
जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ६२ ॥

टी०। और अव्यक्त के अनुग्रह से महदादि पृथ्वीपर्यन्त वे अण्डे को उत्पन्न करते हैं जैसे जल में बुलबुला पैदा होता है उसीतरह वह अण्डा भी उसमें पैदा होकर क्रम से बढ़ता है ६२ ॥

मू० भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम्।
प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ६३ ॥

टी०। हे महाबुद्धे! वह अण्डा भूतों से उत्पन्न होकर और बढ़कर जल में रहता है और उसी प्राकृतअण्डे में ब्रह्मनाम क्षेत्रज्ञपुरुष बढ़ते हैं ६३ ॥

मू० स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ६४ ॥

टी०। और वही ब्रह्मा शरीरी और प्रथमपुरुषहै और वही आदिकर्त्ता कहाजाता है और सम्पूर्णभूतों से पहिले केवल वही ब्रह्मा विराजमान हुआ है ६४ ॥

मू० तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
मेरुरुत्तस्यानुसंभूतोजरायुश्चापि सर्वतः ६५ ॥

टी०। और उन्हीं से यह सम्पूर्ण चराचरसमेत त्रैलोक्य व्याप्त रहता है और सुमेरुपर्वत वगैरह सब उन्हीं से उत्पन्न होते हैं ६५ ॥

मू० समुद्रा गर्भसलिलं तस्याण्डस्य महात्मनः।
तस्मिन्नण्डे जगत्सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ६६ ॥

टी०। और उसी महान्‌अण्डे के भीतरका जल सबसमुद्र हैं और उसी अण्डेमें सम्पूर्णजगत् और देवता और दानव और मनुष्यादि प्राप्त रहते हैं ६६ ॥

मू० द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः।
जलानिलानलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ६७ ॥

टी०। और सम्पूर्णद्वीप और समुद्र और पर्वत व ज्योति और लोक संग्रह व जल और वायु और अग्नि और आकाश जब इन सबोंका साथ हुआ तब भूतादिने बाहर से ६७ ॥

मू० वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः।
महता तत्प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः ६८ ॥

टी०। उस अण्डे को घेर लिया फिर दश दश गुण एक एक होकर इस महत्तत्त्वके साथ जो उसीके प्रमाणभर होताहै पुरुषको घेर लेतेहैं ६८॥

मू० महांस्तैः सहितः सर्व्वैरव्यक्तेन समावृतः।
एभिरावर्णैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ६९ ॥

टी०। और उन सबके साथ महान्‌को अव्यक्त आवरण करतेहैं और इन सातों प्राकृतआवरण से वह अण्डा आवृत होताहै ६९ ॥

मू० अन्योन्यमावृत्य च ता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः ७० ॥

टी०। और वह सब से सब आवृत है इसके साथ आठौप्रकृति भी आवृत होकर स्थित रहती हैं यानी पंचतन्मात्रा और महत्तत्त्व व अहंतत्त्व यही नित्याप्रकृति हैं व इसी के अन्दर वह पुरुष विराजमान रहताहै ७० ॥

मू० ब्रह्माख्यः कथितोयस्ते समासाच्छ्रूयतां पुनः।
यथामग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जन् जलसंभवम् ७१ ॥

टी०। जिसका नाम ब्रह्मा तुमसे कहाहै उसको संक्षेप से मैं कहताहूं फिर सुनिये कि जैसे कोई जल में डूबकर फिर न निकले ७१ ॥

मू० जलञ्च क्षिपति ब्रह्मा स तथा प्रकृतिं विभुः।
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ७२॥

टी०। और जल को फेंके उसीतरह इस प्रकृति में ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं उस माया को बाहर फेंकदेते हैं और अव्यक्त जो है वह क्षेत्र कहलाता है और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं ७२॥

मू० एतत्समस्तं जानीयात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम्।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः॥
अबुद्धिपूर्व्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ७३॥

टी०। यही सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का लक्षण है सो जानो और इसी को क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृतसर्ग कहते हैं और यह अबुद्धि पूर्व्व है यानी जड है और प्रथम है व बिजुली के समान उत्पन्न होजाताहै ७३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेब्रह्मोत्पत्तिर्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४५॥

अथ छियालीसवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवंस्त्वण्डसम्भूतिर्यथावत् कथिता मम।
ब्रह्माण्डे ब्रह्मणोजन्म तथाचोक्तं महात्मनः १॥

टी०। क्रौष्टुकि कहते हैं कि हे भगवन्! आपने अण्डेकी उत्पत्ति और ब्रह्माण्ड में महात्मा ब्रह्माकी उत्पत्ति भी जिस तरह हुई उसको तो वर्णन किया १॥

मू० एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तोभृगुकुलोद्भव।
यदा न सृष्टिर्भूतानामस्ति किन्नु न चास्ति वा॥
काले वै प्रलयस्यान्ते सर्व्वस्मिन्नुपसंहृते २॥

टी०। ऐ मार्कण्डेयजी! अब तुम से मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि प्रलयकाल के अन्त होने पर जब सबसृष्टि का नाश होजाताहै तो भूतों की स्थिति रहती है या नहीं २॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत्।
तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः ३॥

टी०। तब मार्कण्डेयजी बोले कि जब यह संसारभरकी सृष्टि प्रकृति में लय होजाती है तो उसको पण्डित लोग प्राकृतप्रलय कहते हैं ३॥

मू० स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रति संहृते।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः ४॥

टी०। और अव्यक्त पुरुष विकारको छोड़कर जब अपने रूपमें स्थित होते हैं तब प्रकृति और पुरुष एकही धर्म में स्थित होजाते हैं ४॥

मू० तदा तमश्च सत्वञ्च समत्वेन व्यवस्थितौ।
अनुद्रिक्तावनूनौ च तत्प्रोतौ च परस्परम् ५॥

टी०। तब तमोगुण और सतोगुण मिलकर एक होजाते हैं और एक से एक न कम रहतेहैं न अलग रहतेहैं अर्थात् आपुसमें एकसे एक मिले रहते हैं और उसी पुरुष में मिलजाते हैं ५॥

मू० तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्।
तथा तमसि सत्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ६॥

टी०। जिस तरह तिलमें तेलऔर दूधमें घी रहता है उसीतरह तमोगुण और सतोगुण में रजोगुण मिला रहता है ६॥

मू० उत्पत्तिर्ब्रह्मणो यावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम्।
तावद्दिनं परेशस्य तत्समा संयमे निशा ७॥

टी०। और ब्रह्माकी उत्पत्तिसे लगाकर उनकी आयुर्बलके अन्ततक को द्विपरार्द्ध कहते हैं और वह परब्रह्म का एक दिन कहाजाता है और उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी है जिसमें सम्पूर्ण जगत्को अपने उदर में लेकर शयन करते हैं ७॥

मू० अहर्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान्।
सर्व्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोप्यपरक्रियः ८॥

टी०। और वह जगत् के आदि और अनादिमान् सब के कारण हैं

और अचिन्त्यात्मा व श्रेष्ठ और अपरक्रिय हैं अर्थात् जिनके परे कोई दूसरी क्रिया नहीं है वह ब्रह्म अहर्मुख यानी प्रातःकालमें जागकर ८॥

मू० प्रकृतिं पुरुषञ्चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ६॥

टी०। वे जगत् के पति परमेश्वर जल्द प्रकृति और पुरुष में प्रवेशकर जाते हैं और परमयोग से उस प्रकृति और पुरुष को क्षोभित करतेहैं ६॥

मू० यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्त्तिमान् १०॥

टी०। जैसे वसन्तऋतु का पवन व नवीन स्त्रियों का काम शरीर में प्रवेश करके उसके मन को क्षोभित करता है उसीतरह वह योगवान् पुरुष प्रकृति और पुरुष में प्रवेश करके उनको क्षोभित करता है १०॥

मू० प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्मसञ्ज्ञितः।
समुत्पन्नोऽण्डकोशस्थो यथा ते कथितं मया ११॥

टी०। वह प्रधान पुरुष जब क्षोभित होजाते हैं तब वही देव जिनकी ब्रह्म संज्ञा है उस अण्ड में प्रवेश करके उत्पन्न होजाते हैं जैसा कि मैंने पहिले तुमसे बयान किया है ११॥

मू० स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेःपतिः।
ससंकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः १२॥

टी०। और वही पुरुष जो पहिले क्षोभित करतेहैं पीछे क्षोभको प्राप्त होकर फिर प्रकृति के मालिक होतेहैं और संकोच विकास के साथ प्रधानत्व में भी स्थित रहते हैं १२॥

मू० उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम्।
भुञ्जन् प्रवर्त्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः १३॥

टी०। और वही जगद्योनि होकर तीनों लोकों को पैदा करते हैं जो अगुण और अजहैं परन्तु रजोगुण को भोगतेहुये पैदा करने में प्रवृत्त होनेसे ब्रह्मा कहलाते हैं १३॥

मू० ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान्।

विष्णुत्वमेत्य धर्म्मेण कुरुते परिपालनम् १४॥

टी०। वे ब्रह्मा होकर सृष्टि उत्पन्न करते हैं और उसके बाद सतोगुण युक्त विष्णुनाम होकर धर्म्मपूर्व्वक सब्बोंको पालन करते हैं १४॥

मू० ततस्तमोगुणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत्।
उपसंहृत्य वै शेते त्रैलोक्यं त्रिगुणोऽगुणः १५॥

टी०। फिर तमोगुणसे युक्त रुद्र नामहोकर सम्पूर्ण संसार व त्रिलोक का नाशकरके सो रहते हैं इसतरह से वह निर्गुण तीन गुणोंको धारण करता है १५॥

मू० यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा।
तथा स संज्ञामायाति ब्रह्मविष्ण्वीशकारिणीम् १६॥

टी०। जिसतरह गृहस्थलोग पहिले खेत में बीज बोते हैं फिर जमने पर निराते रक्षा करते हैं फिर तैयार होने पर काटभी लेतेहैं उसी तरह वह प्रधान पुरुष ब्रह्मा और विष्णु और महादेव कहाकर जगत्को करते और हरते हैं १६॥

मू० ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि।
विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः १७॥

टी०। ब्रह्मा होकर लोक को पैदा करते हैं और विष्णुहोकर पालन करते हैं और रुद्र होकर सबको नाश करते हैं वही प्रधान पुरुष स्वयम्भू जो सब से परे हैं उन्हीं की यह तीनों अवस्था हैं १७॥

मू० रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः।
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः १८॥

टी०। यानी उनका रज नाम जो गुण है वह ब्रह्मा और तम गुण रुद्र और सत्त्वगुण संसारके स्वामी विष्णु कहाते हैं यही तीनों देवता व यही तीनों गुण हैं १८॥

मू० अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् १९॥

टी०। और ये तीनों देवता आपस में मिले रहते हैं और एकके एक आश्रित हैं परस्पर एक क्षण दूसरे से जुदे नहीं होते हैं १६॥

मू० एवं ब्रह्मा जगत्पूर्व्वो देवदेवश्चतुर्मुखः।
रजोगुणं समाश्रित्य सृष्ट्वे स व्यवस्थितः २०॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इसतरह वे ब्रह्मा देवों के देव चतुर्मुख जो जगत् के आदि हैं रजोगुण में प्राप्त होकर सृष्टि के उत्पन्न करने में प्राप्त होते हैं २०॥

मू० हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरुपचारतः।
भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत २१॥

टी०। और वही हिरण्यगर्भ देव सब देवों के आदि और अनादि उपचार से कहाते हैं और उन्हीं की नाभिकमलकोश में पहिले ब्रह्मा उत्पन्न होकर विराजमान हुये हैं २१॥

मू० तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः।
ब्राह्मयेणैव हि मानेन तस्य संख्यां निबोध मे २२॥

टी०। उन महात्मा का आयुर्बल ब्रह्माहीके वर्ष प्रमाण से सौ वर्ष तक है उस वर्ष का प्रमाण कहता हूँ सुनिये २२॥

मू० निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथा पञ्चभिरुच्यते।
कलास्त्रिंशच्च वै काष्ठा मुहूर्त्तं त्रिंशताः कलाः २३॥

टी०। कि दश वा पाँच याने पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा होतीहै और तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कलाका एक मुहूर्त्त होता है २३॥

मू० अहोरात्रं मुहूर्त्तानां नृणां त्रिंशत्तु वै स्मृतम्।
अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मासउच्यते २४॥

टी०। और तीस मुहूर्त्त का एक दिन रात मनुष्यों का होताहै और पन्द्रह दिनरातका एक पक्ष और दो पक्ष का एक महीना होताहै २४॥

मू० तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् २५॥

टी०। और छः महीने का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष मानवी कहलाता है और अयन दो तरहका है एक दक्षिणायन दूसरा उत्तरायण और इस वर्ष का एक दिनरात देवतों का होता है उत्तरायण दिन है और दक्षिणायन रात है २५॥

मू० दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे २६॥

टी०। और देवतों के बारह हजार वर्ष की एक चौयुगी मनुष्योंकी गुजरती है यानी सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग अब युगों का विभाग कहता हूँ उसको मुझसे सुनिये २६॥

मू० चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते।
शतानि सन्ध्याचत्वारि सन्ध्यांशश्च तथा विधः २७॥

टी०। देवतों के वर्षसे चारहजार वर्ष सतयुग का प्रमाण कहाजाता है और इसमें चारसौ वर्ष सन्ध्या और इतनाही सन्ध्यांश गुजरताहै २७॥

मू० त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम्।
तत्सन्ध्या तत्समा चैव सन्ध्यांशश्च तथा विधः २८॥

टी०। और तीनहजार वर्ष देवतों के वर्ष से त्रेता का प्रमाण है इसमें तीनसौवर्ष सन्ध्या और उसी के बराबर याने तीनसौ वर्ष सन्ध्यांश गुजरता है २८॥

मू० द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां द्वे शते तथा।
तस्य सन्ध्या समाख्याता द्वे शताब्दे तदंशकः २९॥

टी०। और उसी वर्ष से दोहजार वर्ष द्वापर का प्रमाण है और दो सौ वर्ष सन्ध्या और इतनाही सन्ध्यांश भी है २९॥

मू० कलिः सहस्रं दिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम।
सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ३०॥

टी०। और हे द्विजसत्तम! देव वर्षसे हजारवर्ष कलियुगका प्रमाणहै इस में एकसौ वर्ष सन्ध्या और इतनाही सन्ध्यांशभी कहागयाहै ३०॥

मू० एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता।

एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्मयमुदाहृतम् २१ ॥

टी०। इन्हीं चारों युगोंका नाम कविलोगों ने द्वादशसाहस्री रक्खा है और इसी बारहहजार वर्षवाली चौयुगीका हजारगुना एकदिन ब्रह्मा का होता है २१ ॥

मू० ब्रह्मणोदिवसे ब्रह्मन् मनवः स्युश्चतुर्दश।
भवन्ति भागशस्तेषां सहस्रं तद्विभज्यते २२ ॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु गुजरते हैं उन लोगों का भी विभाग उस हजार में कियाजाता है २२ ॥

मू० देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रा मनुस्तत्सूनवोनृपाः।
मनुना सह सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् २३ ॥

टी०। इन्द्रसहित सम्पूर्णदेवता और सप्तर्षि और मनु और मनुके बेटे राजालोग मनु के साथ ही पैदा होते हैं और उसी तरह नाशकोभी प्राप्तहोते हैं २३ ॥

मू० चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येक सप्ततिः।
मन्वन्तरं तस्य संख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे २४ ॥

टी०। और इकहत्तर चौयुगी का एक मन्वन्तर होता है अब मनुष्यों के वर्ष से उसका प्रमाण कहता हूँ मुझ से सुनिये २४ ॥

मू० त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया २५ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! गिनती से सब तीसकरोड़ कहे व संख्याले सरसठ लाख अन्य कहे हैं २५ ॥

मू० विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना।
एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे २६ ॥

टी०। और बीसहज़ार वर्ष मनुष्यों के वर्ष के प्रमाणसे एक मन्वन्तर होता है अब देववर्ष से प्रमाण कहताहूं सुनिये २६ ॥

मू० अष्टौशतसहस्राणि दिव्यया संख्यया युतम्।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु २७ ॥

टी०। कि देवतोंकी गिनती से आठलाखबावनहजार वर्ष अधिकका एकमन्वन्तर होता है ३७॥

मू० चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्ममहस्स्मृतम्।
तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्तोब्रह्मन् नैमित्तिकोबुधैः ३८॥

टी०। इसी को चौदहगुणा करने से जो काल व्यतीत होता है वह ब्रह्मा का एकदिन होता है यानी जब चौदहमन्वन्तर गुजरते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है यही जो ब्रह्मा के दिन का अन्त है उस को पण्डित लोग नैमित्तिकप्रलय कहते हैं ३८॥

मू० भूर्लोकोऽथभुवर्लोकःस्वर्लोकस्तन्निवासिनः।
तथा विनाशमायान्तिमहर्लोकश्च तिष्ठति ३९॥

टी०। और इस प्रलय में भूर्लोक और भुवर्लोक और स्वर्लोक व इन के निवासी भी नाश होजाते हैं और महर्लोक स्थित रहता है ३९॥

मू० तद्वासिनोऽपि तापेन जनलोकं प्रयान्ति वै।
एकार्णवे च त्रैलोक्ये ब्रह्मास्वपिति वै निशि ४०॥

टी०। और उसमें रहनेवाले लोग भी तापसे विकल होकर जनलोक में भाग जाते हैं और इस त्रिलोक के एकार्णव होने पर ब्रह्मा रात को सो रहते हैं ४०॥

मू० तत्प्रमाणैव सारात्रिस्तदन्ते सृज्यते पुनः।
एवन्तु ब्रह्मणोवर्षमेकं वर्षशतन्तु तत् ४१॥

टी०। और जितना प्रमाण ब्रह्माके दिन का है उतनाही प्रमाण उन की रात का भी है रात बीत जाने पर जब ब्रह्मा जागते हैं तो फिर सृष्टि की रचना करते हैं इसी प्रमाण से तीनसौसाठ दिन का एक वर्ष होता है और इसी वर्ष से एकसौ वर्ष ब्रह्माजीते हैं ४१॥

मू० शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते।
पञ्चाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्द्धमिति कीर्त्यते ४२॥

टी०। उनकी सौ वर्षोंको पर ऐसा कहतेहैं व पचासवर्ष एकका परार्द्ध ऐसा ब्रह्मा का कहाजाता है ४२॥

मू० एकमस्य परार्द्धन्तु व्यतीतं द्विजसत्तम।
यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्मइत्यभिविश्रुतः ४३॥

टी०। और हे द्विजसत्तम! इन ब्रह्मा का एकपरार्द्ध बीतगया है इस पहिले परार्द्ध को पद्मनाम महाकल्प कहते हैं जो परार्द्ध के अन्त में होचुका है ४३॥

मू० द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज।
वराहइतिकल्पोऽयं प्रथमःपरिकल्पितः ४४॥

टी०। और हे द्विज! वर्त्तमान जो दूसरा परार्द्ध है उसका पहला यह वाराहकल्प है ४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मायुःप्रमाणन्नामषट्चत्वारिंशत्तमोध्यायः॥ ४६॥

सैंतालीसवां अध्याय॥

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० यथा ससर्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रजाः।
प्रजापतिःपतिर्देवस्तन्मे विस्तरतोवद १॥

टी०। क्रौष्टुकि कहते हैं कि हे मुनि! जिसतरह भगवान् ब्रह्मा आदिकर्त्ता प्रजापतियों के स्वामी ने प्रजालोगोंको फिर उत्पन्नकिया उसको विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये १॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० कथयाम्येष ते ब्रह्मन् ससर्ज भगवान् यथा।
लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् २॥

टी०। तब मार्कण्डेयजी कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! भगवान् लोककर्त्ता ब्रह्माजी शाश्वतपुरुष ने जिसतरह स्थावर और जङ्गमसय इस संसारको पैदा किया है वह मैं तुमसे कहता हूं सुनौ २॥

मू० पद्मावसाने प्रलये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः।
सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ३॥

टी०। कि पद्मकल्प के प्रलय के अन्त में जब सत्त्वगुण से बढ़े हुए प्रभु ब्रह्माजी सोकर उठे तो सम्पूर्णलोकों को सूना देखा ३॥

मू० इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम् ४॥

टी०। तब ब्रह्मस्वरूपी श्रीनारायण जो जगत् के उत्पत्ति और नाश-करनेवाले हैं उनकी तरफ ध्यान करके यह श्लोक स्तुति के साथ कहने लगे ४॥

मू० आपोनारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ५॥

टी०। कि हे भगवन्! नारा और तनु और आप जलका नाम हमने सुना है आप उस जल में जिसलिये शयन करते हैं इसवास्ते नारायण कहलाते हैं ५॥

मू० विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गताम्महीम्।
अनुमानात्समुद्धारं कर्त्तुकामस्तदा क्षितेः ६॥

टी०। यह स्तुति ब्रह्माजी की सुनकर वह नारायण उठे और पृथ्वी जो जल के भीतर डूब गई थी उसको जानकर व अपने अनुमान से ब्रह्माजी की इच्छा को समझकर पृथ्वी के उद्धार के वास्ते मनकिया ६॥

मू० अकरोत् स तनूरन्याः कल्पादिषु यथा पुरा।
मत्स्यकूर्म्मादिकास्तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ७॥

टी०। वह भगवान् वाराहशरीर धारण करते भये जिस तरह कल्पों के आदि में पहिले मत्स्यकूर्म्मआदिकरूप धारण किये हैं उसी तरह फिर धारण करते भये अर्थात् वाराहरूप होकर ७॥

मू० वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयोविभुः।
रूपं कृत्वा विवेशाप्सु सर्व्वगः सर्व्वसम्भवः ८॥

टी०। यज्ञादि से संयुक्त जे वेद हैं तन्मय दिव्यरूपको उस यज्ञपुरुष जगत्पति ने किया और फिर वाराहरूप होकर जल में प्रवेश किया जो कि सर्वगामी व सबको पैदा करनेवाले हैं ८॥

मू० समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिले भुवम्।
जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पतिः ९॥

टी०। और पाताल से पृथ्वी को लाकर जल के ऊपर स्थित किया उस समय जनलोककेरहनेवाले सिद्धलोगों ने भगवान् जगदीश की बहुत स्तुति किया ९॥

मू० तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वात्तु देहस्य न मही याति संप्लवम् १०॥

टी०। और उस पानी के ऊपर पृथ्वी को बड़ी नौका के समान स्थित किया और कच्छपरूप होकर अपने ऊपर पृथ्वी को रखलिया कि जिससे वह पृथ्वी फिर डूब न सकी १०॥

मू० ततः क्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजद्गिरीन्।
प्राक् सर्गे दह्यमाने तु तदा सम्वर्त्तकाग्निना ११॥

टी०। तब उस प्रजापति ने पृथ्वी को बराबर करके पहिले पृथ्वी में पर्व्वतों को पैदा किया जब पहिलेसर्ग में सम्वर्त्तकअग्नि से संसार जलता था ११॥

मू० तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्व्वता भुवि सर्व्वशः।
शैला एकार्णवे मग्ना वायुनापस्तु संहताः १२॥

टी०। तब उस अग्नि से फट फट कर वे पर्वत पृथ्वी पर सबओर पड़े थे फिर एकार्णव होने पर डूब गये व वायु के झोंके से अलग २ होकर वह गये थे १२॥

मू० निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाभवन्।
भूविभागन्ततः कृत्वा सप्तद्वीपोपशोभितम् १३॥

टी०। उन सबों को जिस २ जगह पहिले थे फिर उसी २ जगह दुरुस्त करके रक्खा बाद उसके पृथ्वीमें सातोंद्वीपका भाग लगाकर १३॥

मू० भूराद्यांश्चतुरोलोकान् पूर्व्ववत् समकल्पयत्।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा १४॥

टी०। भूलोक आदि चारलोकों को पहिले की तरह बनाया और

जिस तरह पहिले कल्पके आदि में सृष्टि थी उसका ध्यान किया १४ ॥

मू० अबुद्धिपूर्व्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसंज्ञितः १५ ॥

टी०। उस ध्यान के करतेही तमोमय जड हुये तम और मोह व महामोह और तामिस्र और अन्धतामिस्र उत्पन्न हुआ १५ ॥

मू० अविद्यापञ्चपर्व्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।
पञ्चधावस्थितः सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् १६ ॥

टी०। इस तरह पांचग्रन्थियोंवाली अविद्या उत्पन्न हुई और उन्हीं महात्माके ध्यान करनेसे पांचतरह का प्राकृतजडसर्ग उत्पन्न हुआ १६ ॥

मू० बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मा नगात्मकः ।
मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् १७ ॥

टी०। प्रथम मुख्यसर्ग है कि जिसके बाहर और भीतर कुछ भी प्रकाश नहीं है ऐसा छिपाहुआ यह पर्वत वृक्षादि का सर्ग है जिस लिये पर्वत मुख्य कहे गये हैं इस लिये इनको मुख्यसर्ग कहते हैं १७ ॥

मू० तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्य्यक्स्रोतोह्यवर्त्तत १८ ॥

टी०। वह असाधकसर्ग देखकर ब्रह्माने दूसरे सर्ग का फिर ध्यान किया तो उनके ध्यान करतेहुए तिर्य्यक्स्रोतसर्ग उत्पन्न हुआ १८ ॥

मू० यस्मात्तिर्य्यक्प्रवृत्तः स तिर्य्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमःप्राया ह्यवेदिनः १९ ॥

टी०। बसबब तिर्य्यक्प्रवृत्ति होने के इसको तिर्य्यक्स्रोतसर्ग कहते हैं उस सृष्टि से सब तमोगुणी और अज्ञानी पशुइत्यादि उत्पन्न हुये १९ ॥

मू० उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ।
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः २० ॥

टी०। और ये सब टेढ़ीराह के चलनेवाले अट्ठाईसप्रकार के हैं और अज्ञान हैं पर अपने को ज्ञानी समझते हैं और वे सब अहंकारी और अभिमानी हैं २० ॥

मू० अन्तःप्रकाशास्ते सर्व्वेआवृतास्तु परस्परम् ।
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् २१ ॥

टी० । परन्तु उनके भीतर केवल खाने पीने का प्रकाश है और परस्पर आवृतहैं अर्थात् एक पर एक जबरदस्त हैं उस सर्ग को भी असाधक समभकर ब्रह्माने जब ध्यान किया तो तीसरा ऊर्द्ध्व स्रोतसर्ग पैदाहुआ२१॥

मू० ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तुसात्त्विकःसमवर्त्तत ।
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः २२ ॥

टी० । और इस तीसरे सर्ग में सब कोई सतोगुणयुक्त पैदा हुये और इन लोगों को आपुस में सुख और प्रीति बहुत है और बाहर और भीतर अनावृत यानी अज्ञान से रहित हैं २२ ॥

मू० प्रकाशोबाहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः ।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गोहि संस्मृतः २३ ॥

टी० । इन लोगों को बाहर और भीतर प्रकाश रहता है और ऊर्द्ध्व स्रोत से ये लोग उत्पन्न हैं और तुष्टात्मा हैं इसवास्ते वह तीसरासर्ग देवसर्ग भी कहलाता है २३ ॥

मू० तस्मिन् सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ।
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् २४ ॥

टी० । जब यह सर्ग भी सिद्ध होचुका तो ब्रह्माको इससे बहुत प्रीति हुई बाद इसके सिद्धकरनेवाले चौथे उत्तमसर्ग का ध्यान किया २४ ॥

मू० तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्ब्बभौ तदा व्यक्तादर्व्वाक्स्रोतस्तु साधकः २५ ॥

टी० । तब उस ब्रह्मा सत्यवादी अव्यक्त के ध्यान करने से उसके बाद अर्व्वाक्स्रोतसाधकसर्ग उत्पन्न हुआ २५ ॥

मू० यस्मादर्व्वाग्व्यवर्त्तन्त ततोऽर्व्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः २६ ॥

टी० । जोकि और सर्गों से यह सर्ग उत्तम पीछे पैदा हुआ इस सबब से यह अर्व्वाक्स्रोतसर्ग कहलाता है उन सबों में प्रकाश अधिक है और तमोगुणयुक्त हैं परन्तु रजोगुण अधिक है २६ ॥

मू० तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः।
प्रकाशाबहिरन्तश्च मनुष्याःसाधकाश्च ते २७॥

टी०। इसवास्ते उन लोगों को दुःख अधिक है क्योंकि बारबार ब-सबब कर्म्म के जन्म वगैरहमें प्रवृत्त कराये जाते हैं और इन सबों के भीतर और बाहर प्रकाश भी रहता है इसीको चौथामनुष्य साधकसर्ग कहते हैं २७॥

मू० पञ्चमोऽनुग्रहस्सर्गः स चतुर्द्धा व्यवस्थितः।
विपर्य्ययेण सिद्ध्या च शान्त्या तुष्ट्या तथैव च २८॥

टी०। और पांचवां जो अनुग्रह सर्ग है वह चार तरह का है एक विपर्य्यय दूसरा सिद्धि तीसरा शान्ति चौथा तुष्टि २८॥

मू० निवृत्तं वर्त्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः।
भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते २९॥

टी०। और वे लोग निवृत्ति और फिर प्रवृत्तिके अर्थको जानते हैं और जिसमें भूतादि व प्राणियों की उत्पत्ति है वह छठवाँ सर्ग कहाताहै २६॥

मू० ते परिग्राहिणः सर्व्वे संविभागरतास्तथा।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ३०॥

टी०। और वे लोगसब परिग्रह करतेहैं और प्रेरक और अशील होते हैं और हर तरह से विभाग में रत रहते हैं यह भूतादिक सर्ग कहलाताहै३०॥

मू० प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ३१॥

टी०। और महान् जो हैं ब्रह्मा उनकी उत्पत्ति प्रथम सर्ग जानना चाहिये है और तन्मात्राओं की उत्पत्ति दूसरा सर्ग है और उसी को भूत सर्ग भी कहते हैं ३१॥

मू० वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः।
इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्व्वकः ३२॥

टी०। और वैकारिक जो सर्ग है जिससे इन्द्रियों की उत्पत्ति है वह तीसरा सर्ग कहलाता है यह तीनों प्राकृत सर्ग जड़ उत्पन्न हुये हैं ३२॥

मू० मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावरास्स्मृताः ।
तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तैर्य्यग्योन्यः स पञ्चमः ३३ ॥

टी० । और मुख्य सर्ग चौथा है जिससे स्थावर सब पैदा हुये और वे मुख्य कहाते हैं और जिसको तिर्य्यक् स्रोत सर्ग कह आये हैं जिससे तिर्य्यक्योनिवाले पैदा हुये हैं वह पांचवां सर्ग कहलाता है ३३ ॥

मू० तत्रोऽद्ध्र्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु संस्मृतः ।
ततोऽर्व्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ३४ ॥

टी० । फिर ऊद्ध्र्वस्रोत सर्ग है जिसमें देवता लोग उत्पन्न हैं उसको छठवां सर्ग कहते हैं फिर अर्व्वाक् स्रोत सर्ग है जिसमें मनुष्य लोग पैदा हैं यह सातवां सर्ग कहलाता है और इसको मनुष्य सर्ग भी कहते हैं ३४ ॥

मू० अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ३५ ॥

टी० । और आठवां अनुग्रह सर्ग है जिसमें तामस और सात्त्विक दोनों हैं यही सब पांच वैकृत और तीन प्राकृत सर्ग कहलाते हैं ३५ ॥

मू० प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ३६ ॥

टी० । व प्राकृत और वैकृत नवां कौमार सर्ग है जिसमें मानस पुत्र सनकादि उत्पन्न हुये हैं यही नव सर्ग प्रजापति के कहलाते हैं ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेप्राकृतवैकृतसर्गोनामसप्तचत्वारिंशत्तमोध्यायः ४७॥

अड़तालीसवां अध्याय ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० समासात् कथिता सृष्टिः सम्यग्भगवता मम ।
देवादीनां भवं ब्रह्मन् विस्तरात्तु ब्रवीहि मे १ ॥

टी० । क्रौष्टुकि बोले कि हे भगवन् ! सृष्टि को तो आपने हर तरह

से संक्षेपपूर्वक मुझसे कहा अब हे ब्रह्मन्! देवतादिकों की उत्पत्ति विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये १ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन् भाविताः पूर्व्वकर्म्मभिः ।
ख्याताः तथा ह्यनिर्मुक्ताः प्रलये ह्युपसंहृताः २ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि हे ब्रह्मन्! जिसकी करनी पहिले की अच्छी या बुरी है उसका फिरभी अच्छा बुरा जन्म होता है जैसे पुण्यवान् लोग प्रलय में नाश होजाते हैं फिर पुण्यवान् ही होकर उत्पन्न होते हैं २ ॥

मू० देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजा ब्रह्मा चतुर्व्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्व्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ३ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा जब सृष्टि उत्पन्न करने लगे तो उस वक्त देवता से स्थावर पर्य्यन्त चार तरहकी प्रजा अपने मानस करके उत्पन्न किया ३ ॥

मू० ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ४ ॥

टी०। बाद इसके देवता और असुर और पितर और मनुष्य को पैदा करने की इच्छा की तो जल और अपनी आत्मा को एकत्र किया ४ ॥

मू० युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्व्वमसुरा जज्ञिरे ततः ५ ॥

टी०। जो कि सृष्टि की इच्छावाले ब्रह्मा ने पहिले तमोमात्रासंयुक्त शरीर धारण किया इस सबब से पहिले उनकी जांघ से असुर लोग पैदा हुये ५ ॥

मू० उत्ससर्ज ततस्तान्तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ६ ॥

टी०। फिर जब उस तमोमात्र शरीर को छोड़ दिया तो उनसे छोड़ा हुआ वही शरीर उसी क्षण रात्रि होगया ६ ॥

मू० अन्यां तनुमुपादाय सिसृक्षुः प्रीतिमाप सः।
सत्त्वोद्रेकास्ततो देवा मुखतस्तस्य जज्ञिरे ७॥

टी०। फिर जब दूसरा शरीर धारण करके प्रीतिसंयुक्त सृष्टि रचने की इच्छा की तो उनके मुख से सतोगुण से बढ़हुये देवता लोग उत्पन्न हुये ७॥

मू० उत्ससर्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः।
सा चापविद्धा दिवसं सत्त्वप्रायमजायत ८॥

टी०। जब उस शरीर को भी इन ब्रह्मा ने छोड़ दिया तो वही छोड़ा हुआ देह सतोगुणसंयुक्त दिन होगया ८॥

मू० सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ९॥

टी०। तब फिर सतोगुणही युक्त दूसरा शरीर धारण किया और उस में पिता भाव किया इस वास्ते उस शरीर से पितृलोग उत्पन्न हुये ९॥

मू० सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज तनुं तामपि स प्रभुः।
साचोत्सृष्टाभवत् सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता १०॥

टी०। पितरों के पैदा होनेपर फिर ब्रह्मा ने उस शरीर को भी छोड़ दिया तो वही छोड़ा हुआ शरीर रात दिन के बीच में सन्ध्याकाल होगया १०॥

मू० रजोमात्रात्मिकामन्यां तनुं भेजेऽथ स प्रभुः।
ततो मनुष्याः सम्भूता रजोमात्रासमुद्भवाः ११॥

टी०। फिर उन प्रभु ने रजोगुण संयुक्त दूसरा शरीर धारण किया तो उस रजोगुणमात्रासे पैदा हुये मनुष्य लोग उत्पन्न हुये ११॥

मू० सृष्ट्वा मनुष्यान् स विभुरुत्ससर्ज तनुं ततः।
ज्योत्स्नासमभवत् सा च नक्तान्तेऽहर्मुखे च या १२॥

टी०। जब ब्रह्मा ने मनुष्यों को रचकर उस शरीर को भी छोड़ दिया तो वह शरीर दिन के आदिमें और रात्रि के अन्तमें ज्योत्स्ना (प्रातःकाल) पैदा हुआ १२॥

मू० इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः।
ख्याता रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च वै द्विज १३॥

टी०। इस वास्ते हे ब्रह्मन्! सब देवों के देव जो ब्रह्मा हैं उनका यह दिन और रात और सन्ध्या और ज्योत्स्ना ये सब शरीर कहलाते हैं १३॥

मू० ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात् त्रियामिका १४॥

टी०। और ज्योत्स्ना और सन्ध्या और दिन यह तीनों सतोगुण कहलाते हैं और रात तमोगुणात्मिका है इसी सबब से वह त्रियामा कहलाती है १४॥

मू० तस्माद्देवा दिवारात्रावसुरास्तु बलान्विताः।
ज्योत्स्नागमे च मनुजाः सन्ध्यायां पितरस्तथा १५॥

टी०। इस वास्ते देवता दिन में बलवान् रहते हैं और असुर रात में और मनुष्य ज्योत्स्ना याने प्रकाश के आने पर और पितर सन्ध्याकाल में १५॥

मू० भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणां न संशयः।
तद्विपर्य्ययमासाद्य प्रयान्ति च विपर्य्ययम् १६॥

टी०। बली होते हैं अपने अपने समय में कोई शत्रु से पराजय नहीं होसक्ते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है जब इसमें विपरीत होता है तब विपरीत फल होताहै १६॥

मू० ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्य्येतानि वै प्रभोः।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रितानि तु १७॥

टी०। ज्योत्स्ना और रात और दिन और सन्ध्या ये चारों तीनों गुण से संयुक्त प्रभु ब्रह्मा जीके शरीर हैं १७॥

मू० चत्वार्य्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः।
रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः १८॥

टी०। इन चारों को पैदा करके फिर भूंख, प्यास संयुत ब्रह्मा ने रात में रजोगुण और तमोगुण संयुक्त दूसरा शरीर धारण किया १८॥

मू० तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः।
विरूपाञ्छ्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते च तां तनुम् १९॥

टी०। और उस शरीर से उस अँधेरी रात में भगवान् ब्रह्मा ने ऐसी प्रजाको उत्पन्न किया जो कुरूप और भूखसे व्याकुल और बड़ी बड़ी दाढ़ी मोछ भयावनी सूरत थी तब वह तमोगुणी प्रजा ब्रह्मा को खाने पर मुस्तैद हुई १६॥

मू० रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः।
खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणाद् द्विज २०॥

टी०। और उन्हीं प्रजाओं में से जो लोग मना करते थे कि हमलोग रक्षा करेंगे ब्रह्मा को मत खाव वे राक्षस गण कहलाये और जो उनमें से कहते थे कि इन को खाही जावेंगे वे यक्ष गण भक्षण के सबब कहलाये २०॥

मू० तान् दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्य्यन्त वेधसः।
समारोहणहीनाश्च शिरसो ब्रह्मणस्तु ते २१॥

टी०। जब ब्रह्मा ने उन लोगों को शत्रुभाव करके देखा तो देखतेही ब्रह्मा के शिर के बाल गिर पड़े और फिर ब्रह्मा के शिर पर बाल नहीं जमे २१॥

मू० सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः।
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्म्ममे २२॥

टी०। और वही गिरे हुये बाल जमीन पर सिकुड़ कर चलने लगे इस सबब से वह सांप कहलाये और वह नीच योनि हैं इसलिये अहि भी कहलाते हैं उनको देखकर ब्रह्मा को क्रोध हुआ तब उसी क्रोध से कितने क्रोधी पैदा होगये २२॥

मू० वर्णेन कपिलेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः।
ध्यायतो गां ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे सुताः २३॥

टी०। उन क्रोधी लोगों का वर्ण कपिल हुआ और वे सब उग्रभूत कहलाते हैं और वे लोग विशेष मांसाहारी हैं बाद उसके ब्रह्मा ने वाणी का ध्यान किया उस समय उनके पुत्र गन्धर्व्वलोग पैदा हुये २३॥

मू० जज्ञिरे पिबतो वाचं गन्धर्व्वास्तेनते स्मृताः ।
अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः २४ ॥

टी० । जो कि ब्रह्मा उस समय वचन पान करते थे उस सबब से वे गन्धर्व्व लोग कहलाते हैं इन आठ देवयोनियों को पैदा करने के बाद ब्रह्माजी ने २४ ॥

मू० ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत् ।
मुखतोजाःससर्ज्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत् २५ ॥

टी० । फिर और पक्षी और पशु इत्यादि को अपने शरीर से पैदा किया अर्थात् मुख से बकरा बकरी और छाती से भेड़ा भेड़ी को पैदा किया २५ ॥

मू० गावश्चैवोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्म्ममे ।
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् २६

टी० । और ब्रह्माने पेट और पांजर से गाय और दोनों पांव से घोड़ा हाथी और गदहा और खरहा और हरिण को पैदा किया २६ ॥

मू० उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपांश्च जातयः ।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे २७ ॥

टी० । ऊँट और अश्वतर वग़ैरह को पैदा किया जिनके बहुत तरहके रूप व जातिहैं व फल और मूलवाली ओषधियों को ब्रह्मा ने अपने रोमों से पैदा किया २७ ॥

मू० एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा ह्ययजच्चाध्वरे विभुः ।
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा २८ ॥

टी० । इस तरह पशु और ओषधियों को पैदा करने के बाद उस समय ब्रह्मा ने यज्ञ में पूजन किया इसी सबब से कल्प के आदि त्रेतायुग में यज्ञको प्रधान किया है २८ ॥

मू० गौरजः पुरुषो मेषो अश्वाश्वतरगर्द्दभाः ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे २९ ॥

टी० । और गाय और बकरा और पुरुष और भेड़ा और अश्व और

अश्वतर और गदहा इत्यादि यह सब ग्रामपशु कहलाते हैं अब जङ्गली जानवरों का बयान मुझसे सुनो २६ ॥

मू० श्वापदा द्विखुरा हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः।
औदकाः पशवः षष्ठाःसप्तमास्तु सरीसृपाः ३० ॥

टी०। श्वापद यानी व्याघ्र और सिंह और द्विखुर यानी घोड़ा हाथी इत्यादि और बन्दर पांचवां पक्षी छठवें जलचर पशु सातवें सर्प इत्यादि हैं ३० ॥

मू० गायत्रीञ्च ऋचञ्चैव त्रिवृत् सामरथन्तरम्।
अग्निष्टोमञ्च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ३१ ॥

टी०। और गायत्री और ऋग्वेद और त्रिवृत् और सामरथन्तर और यज्ञों में अग्निष्टोम यह सब ब्रह्मा के प्रथम मुख से पैदा हैं ३१ ॥

मू० यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशन्तथा।
बृहत्साम तथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात् ३२ ॥

टी०। यजुर्वेद और त्रिष्टुभ्छन्द और पञ्चदश स्तोम बृहत् साम व उक्थ ये सब ब्रह्मा के दक्षिण मुख से पैदा हैं ३२॥

मू० सामानि जगतीछन्दःस्तोमं पञ्चदशन्तथा।
वैरूपमतिरात्रञ्च निर्ममे पश्चिमान्मुखात् ३३ ॥

टी०। और सामवेद और जगतीछन्द उसीतरह पन्द्रह स्तोम और वैरूप और अतिरात्र इन सब को पश्चिम मुख से पैदा किया है ३३ ॥

मू० एकविंशमथर्व्वाणमाप्तोर्य्यामाणमेवच।
अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ३४ ॥

टी०। और इक्कीस अथर्वण और आप्त अर्य्यामा और अनुष्टुप्छन्द और वैराज ये सब उत्तर मुख से पैदा हैं ३४ ॥

मू० विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् विभुः ३५ ॥

टी०। और विद्युत् और वज्र और मेघ और रोहित मृग व इन्द्रधनुष और पक्षी इन्हों को व्यापक भगवान् ब्रह्माने कल्प के आदि में पैदा किया ३५ ॥

मू० उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्व्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ३६ ॥

टी० । और उच्चावच जो भूत हैं वे सब ब्रह्मा के अंगों से उत्पन्न हैं और देवता और असुर और पितर और मनुष्य इन चारों प्रजाओं को पहिले उत्पन्न किया ३६ ॥

मू० ततोऽसृजत् स भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्व्वांस्तथैवाप्सरसाङ्गणान् ३७ ॥

टी० । तब स्थावर और जङ्गम प्राणियों को पैदा किया उसी तरह यक्ष और पिशाच और गन्धर्व्व और अप्सरा गणों को उत्पन्न किया ३७ ॥

मू० नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययञ्च व्ययञ्चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ३८ ॥

टी० । और नर और किन्नर और रक्षोगण और पशु और पक्षी और मृग और उरग और जो स्थावर और जङ्गम हैं और अव्यय और व्यय वगैरह को पैदा किया ३८ ॥

मू० तेषां ये यानि कर्म्माणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ३९ ॥

टी० । और उन लोगों में जो कर्म्म जिसका पहिले था वही कर्म्म फिर वार २ सृष्टि होने पर रचेहुये प्रजाओं को प्राप्त हुआ ३९ ॥

मू० हिंसाहिंसे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ४० ॥

टी० । और हिंसा और अहिंसा और कोमल और क्रूर और धर्म्म और अधर्म्म और सत्य और असत्य उन्हीं से उत्पन्न होकर प्राप्त होते हैं याने इन सबों की प्रीति जैसी पहिले थी वैसीही फिर हुई ४० ॥

मू० इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः ।
नानात्वं विनियोगञ्च धातैव व्यदधात् स्वयम् ४१ ॥

टी० । और इन्द्रियोंके अर्थों में और भूतों में और शरीरों में उस विधाता प्रभुने बहुत बहुत तरह का संयोग आपही क़ायम किया ४१ ॥

मू० नामरूपञ्च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनाञ्चकार सः ४२ ॥

टी०। और सब भूतों का नाम और रूप और कर्म्म का प्रपञ्च देवता वग़ैरह जितने हैं उन सबों की ये बातें वेद शब्द से वैसाही ब्रह्मा ने क़ायम किया ४२ ॥

मू० ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः।
शर्व्वर्यन्ते प्रसूतानामन्येषाञ्च ददाति सः ४३ ॥

टी०। और ऋषियों का जो नाम था और देवतों में व और सब भूतों में जिस तरह पहिले सृष्टिथी उसी तरह फिर प्रलय के अन्तमें ब्रह्मा ने क़ायम किया ४३ ॥

मू० यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ४४ ॥

टी०। जिसतरह ऋतुकाल में अनेक तरहके रूपवाले ऋतुओं के चिह्न देख पड़ते हैं उसीतरह युगादि में जिसका जो भाव था वैसाही फिर होजाताहै ४४ ॥

मू० एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
शर्व्वर्य्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे कल्पे भवन्ति वै ४५ ॥

टी०। इस तरहकी सृष्टियां रातके गुज़रने पर जब अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजी जागते हैं तब उन से हरएक कल्पमें होती हैं ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणेऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४८ ॥

उनचासवां अध्याय ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० अर्व्वाक्स्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः।
ब्रह्मन् विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा समसृजद्यथा १ ॥

टी०। क्रौष्टुकि ने कहा कि हे ब्रह्मन्! आपने अर्व्वाक्स्रोत को वर्णन

किया जिसमें मनुष्य की उत्पत्ति ब्रह्मा ने कियाहै अब उसको विस्तार पूर्व्वक वर्णन कीजिये जिसतरह ब्रह्माने पैदा किया १॥

मू० यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते।
यच्च येषां स्मृतं कर्म्म विप्रादीनां वदस्व तत् २॥

टी०। और हे महामते ! ब्राह्मण इत्यादि चारों वर्णोंका जो कर्म्म और जिन गुणोंवाले वर्णों को रचा है उसको भी वर्णन कीजिये २॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० ब्रह्मणः सृजतः पूर्व्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा।
मिथुनानां सहस्रन्तु मुखात्सोऽथासृजन्मुने ३॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुने ! ब्रह्मा सत्यरूपने सृष्टि रचने के समय पहिले अपने मुख से हजार स्त्री और पुरुषों को पैदा किया ३॥

मू० जातास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः स्वतेजसः।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह ४॥

टी०। और वे सब सतोगुणसंयुक्त पैदा हुये और अपने तेज से दिन दिन बढ़नेलगे बाद इसके और हजार स्त्री और पुरुषको फिर अपनी छाती से पैदा किया ४॥

मू० ते सर्व्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः।
ससर्जान्यत् सहस्रन्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः ५॥

टी०। और वे सब रजोगुण संयुक्त बड़े भोगी और क्रोधी हुये बाद इसके हजारों मरुत्गण के जोड़े को अपने जंघस्थलसे पैदा किया ५॥

मू० रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः।
पद्भ्यां सहस्रमन्यच्च मिथुनानां ससर्ज ह ६॥

टी०। वे सब रजोगुण और तमोगुण संयुक्त व कर्म स्वभाववाले हुये बाद इसके और हजार मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुषोंको अपने दोनों पांवों से पैदा किया ६॥

मू० उद्रिक्तास्तमसा सर्व्वे निःश्रीका ह्यल्पचेतसः।
ततः संहर्षमानास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ७॥

टी०। सब महातमोगुणी और लक्ष्मी आदि से रहित और अल्पबुद्धि और प्रसन्नचित्त हुये जो स्त्री पुरुष दोनों एकही साथ पैदा हुये थे ७॥

मू० अन्योन्यहृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः।
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ८॥

टी०। और कामदेव से संयुत होकर उन सबों ने आपस में मैथुन क्रिया और उसी दिन से इस कल्प में स्त्री पुरुषों की उत्पत्ति हुई ८॥

मू० मासि मास्यार्त्तवं यत्तु न तदासीत्तु योषिताम्।
तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ९॥

टी०। और उन दिनों में जिसलिये स्त्रियों को मास मास में ऋतु नहीं होता था इस सबब से पुरुषके प्रसङ्ग से भी उस वक्त स्त्रियों के लड़का पैदा न होताथा ९॥

मू० आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत्।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः १०॥

टी०। जब उन लोगों की उमर अखीर होती थी तब एकही बेर कन्या व पुत्र पैदा करते थे तब से बराबर इस कल्प में कन्या पुत्रकी पैदायश हुई १०॥

मू० ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत्।
शब्दादिविषयाः शुद्धाः प्रत्येकं पञ्चलक्षणम् ११॥

टी०। केवल मन के ध्यान से उन प्रजाओं के एकही बार प्रजा उत्पन्न होती थी व पांच लक्षणोंवाले शब्द इत्यादि पांचों विषय उन सबों के अलग अलग रहते थे ११॥

मू० इत्येषा मानुषी सृष्टिर्या पूर्व्वं वै प्रजापतेः।
तस्यान्ववायसम्भूता यैरिदं पूजितं जगत् १२॥

टी०। पहिले उन प्रजापति यानी ब्रह्मा की पैदा कीहुई यही मानुषी सृष्टि हुई है जिससे यह सब संसार भरा हुआ है १२॥

मू० सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्व्वतानपि।
तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिंश्चरन्ति वै १३

टी०। और उन दिनों में वे प्रजालोग नदी और तालाब और समुद्र और पर्व्वत आदि के पास रहते थे और उस युग में उनको जाड़ा गर्मी कम मालूम होताथा १३॥

मू० तृप्तिं स्वाभाविकीं प्राप्ता विषयेषु महामते।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वेषो नापि मत्सरः १४॥

टी०। हे महामते! उनलोगों की विषयों में तृप्ति स्वभावही से थी और किसी तरहका विघ्न न था और न द्वेष व ईर्षाथी १४॥

मू० पर्व्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्व्वशः।
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः १५॥

टी०। और वे लोग सब हरतरहसे नदी और पर्व्वतों की सेवा करने वाले थे क्योंकि बग़ैर घरके थे और वे अपनी इच्छाके मुताबिक़ चलते फिरते थे व सदा हर्षयुक्त रहते थे १५॥

मू० पिशाचोरगरक्षांसि तथा मत्सरिणो जनाः।
पशवः पक्षिणश्चैव नक्रा मत्स्याः सरीसृपाः १६॥

टी०। बाद इसके ब्रह्मा ने पिशाच और सर्प और राक्षस और ईर्षा-वान् लोग व पशु और पक्षी व मगर और मत्स्य और बिच्छू वग़ैरह को पैदा किया १६॥

मू० अवारका ह्यण्डजा वा ते ह्यधर्म्मप्रसूतयः।
नमूलफलपुष्पाणि नार्त्तवा वत्सराणि च १७॥

टी०। इसके बाद अवारक याने शीतादि को रोकने में असमर्थ और अण्डज इत्यादि विशेष जानवरों को पैदा किया ये सब अधर्मी हैं और फल और मूल और फूल और ऋतु और वर्ष इत्यादि के विचार से रहित हैं १७॥

मू० सर्व्वकालसुखः कालो नात्यर्थं घर्म्मशीतता।
कालेन गच्छता तेषां चित्रा सिद्धिरजायत १८॥

टी०। उन लोगों को सर्व्वकाल में सुख रहता है और बहुत गर्मी और शीत से रहित हैं कुछ दिनों बाद इन लोगों को विचित्र सिद्धि प्राप्त होगई १८॥

सू० ततश्च तेषां पूर्व्वाह्णे मध्याह्ने च वितृप्तता।
पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साभवत् १९॥

टी०। और फिर उन लोगों की मध्याह्न और पूर्व्वाह्ण काल में तृप्ति नहीं होती थी फिर जब इच्छा करते थे तब एकाएक तृप्त होजाते थे१६॥

सू० इच्छताञ्च तथायासो मनसः समजायत।
अपांसौक्ष्म्यं ततस्तासां सिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा २०॥

टी०। और जब इच्छा करते थे तब मनको परिश्रम पैदाहुआ उसके बाद जल की निर्मलता रसोल्लसा नामक सिद्धि उनके पैदाहुई २०॥

सू० समजायत चैवान्या सर्व्वकामप्रदायिनी।
असंस्कार्य्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः २१॥

टी०। बाद इसके सम्पूर्ण कामना देनेवाली और सिद्धि उन लोगों को प्राप्त हुई और वे लोग संस्काररहित शरीरों से स्थिर युवा अवस्था वाले बनेरहते थे २१॥

सू० तासां विना तु सङ्कल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः।
समं जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ताः समम् २२॥

टी०। और उनके मानसी कर्म विना सब प्रजा स्त्री पुरुष दोनों एक ही साथ पैदा होते थे और जन्म व रूप उन्हीं के समान होताथा व जिस तरह एक साथ पैदा होते थे उसी तरह एक साथ आयुर्बल घटनेपर मर भी जाते थे २२॥

सू० अनिच्छाद्वेषसंयुक्ता वर्त्तन्ते तु परस्परम्।
तुल्यरूपायुषः सर्व्वा अधमोत्तमतां विना २३॥

टी०। और अनिच्छा और द्वेष रहित आपुसमें रहते थे और सबकी सूरत और उमर बराबर ही होती थी और रूपभी समानही होताथा और उनमें कोई उत्तम अधम न था २३॥

सू० चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
आयुःप्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः २४॥

टी०। मनुष्यों के वर्ष से चारहजार वर्षतक उमरका प्रमाण सबकोई

जीतेथे और उन लोगों को किसीतरहका क्लेश और विपत्ति न होतीथी २४॥

मू० क्वचित् क्वचित्पुनः साभूत् क्षितिर्भाग्येन सर्व्वशः।
कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः २५॥

टी०। कहीं कहीं उन सबों को भाग्य से पृथ्वी प्राप्त होती थी फिर कालपाकर जिसतरह प्रजालोग नाश होते थे २५॥

मू० तथा ताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्व्वत्र सिद्धयः।
तासु सर्व्वासु नष्टासु नभसः प्रच्युता रसाः २६॥

टी०। उसी तरह क्रम से मनुष्यों की वे सिद्धियां सबकहीं नाश होजाती थीं व उन सबों के नाश होजाने पर उसीसमय आकाश से ज़मीन पर रस गिरपड़ते थे २६॥

मू० प्रायशः कल्पवृक्षास्ते सम्भूता गृहसंस्थिताः।
सर्व्वेप्रत्युपभोगाश्च तासां तेभ्यः प्रजायते २७॥

टी०। वही रस प्रायशः कल्पवृक्ष गृहमें स्थित होकर ज़मीनपर पैदा होते थे और प्रजाओंको उन्हीं वृक्षोंसे हरतरह का भोगभी पैदाहोताथा २७॥

मू० वर्त्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा।
ततः कालेन वैरागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् २८॥

टी०। त्रेता युग के आदि में वे सब उन वृक्षों से वर्त्तमान थे बाद उसके उन प्रजाओं के मनमें अचानक प्रीति उत्पन्न हुई २८॥

मू० मासिमास्यार्त्तवोत्पत्त्यागर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः।
रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः २६॥

टी०। बाद उसके मास मास में ऋतु की उत्पत्ति से बार २ गर्भ भी होनेलगा और उसकेबाद उनकेस्नेहकी उत्पत्तिसे घरमें लगेहुये वृक्ष२६॥

मू० प्रणेशुरपरे चासंश्चतुःशाखा महीरुहाम्।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ३०॥

टी०। नाशहोगये व उन वृक्षों से जो वृक्ष पैदा होते थे उनमें कपड़े पैदा होते थे व जो फल पैदा होते थे उन फलों में भूषणादि उत्पन्न होते थे ३०॥

मू० तेष्वेव जायते तेषां गन्धवर्णरसान्वितम्।
अमाक्षिकं महावीर्य्यं पुटके पुटके मधु ३१॥

टी०। और उन वृक्षों के फलों में अच्छा वर्ण और गन्ध और रस इत्यादि पैदा होता था और उसका पत्ता दोने की तरह होता था और उस दोने में विना मक्खी के बड़ा बलदायक मधु भरा रहताथा ३१॥

मू० तेन ता वर्त्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै।
ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभान्वितास्तु ताः ३२॥

टी०। त्रेतायुग के आदि में प्रजालोग उसी से वर्त्तमान रहते थे बाद उसके कालान्तर पाकर वे प्रजालोग फिर लोभान्वित होगये ३२॥

मू० वृक्षास्ताः पर्य्यगृह्णन्त ममत्वाविष्टचेतसः।
नेशुस्तेनापचारेण तेऽपि तासां महीरुहाः ३३॥

टी०। जब प्रजालोग लोभी होकर ममतासंयुक्त उन वृक्षों को ग्रहण करनेलगे तब वे वृक्ष भी इन लोगों के उस अपचार (दोष) से नाश होगये ३३॥

मू० ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै।
तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्व्वं पुराणि तु ३४॥

टी०। बाद नाश होजाने वृक्षों के उन स्त्री पुरुषों को जाड़ा और गर्मी और भूँख आदि प्रबल हुई तो सब कोई अपने जाड़ा गर्मी के नाश होने के सबब से पहिलेही नगर बनाने लगे ३४॥

मू० मरुधन्वेषु दुर्गेषु पर्व्वतेषु दरीषु च।
संश्रयन्ति च दुर्ग्गाणि वार्क्षं पार्व्वतमौदकम् ३५॥

टी०। मरु और धनु देश में और अन्य दुर्गस्थानों और पर्व्वतों और कन्दरा इत्यादि में सब कोई रहने लगे व वृक्ष, पर्वत या जल में अपने स्थान बनाने लगे ३५॥

मू० कृत्रिमञ्च तथा दुर्गं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः।
नानार्थानि प्रमाणानि तास्तु पूर्व्वं प्रचक्रिरे ३६॥

टी०। और सब कोई अपनी अंगुली की नाप से कृत्रिम गढ़ इत्यादि

बनानेलगे और उन्होंने प्रमाणके वास्ते एक क़ायदाभी मुक़र्ररकिया ३६॥

मू० परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः।
बालाग्रञ्चैव लिक्षाञ्च यूकां चाथ यवोदरम् ३७॥

टी०। जाली के छिद्र में सूर्य्य की किरण पड़ने से जो सूक्ष्म धूलि देखपड़ती है उसके तीसवें हिस्से को परमाणु कहते हैं और तीस परमाणु का एक त्रसरेणु और तीस त्रसरेणु का एक बालाग्र होता है और तीस बालाग्रका एक लिक्षा और तीस लिक्षा का एक यूका और तीस यूका का एक यवोदर होता है ३७॥

मू० एकादशगुणं तेषां यवमध्यं तथाङ्गुलम्।
षडङ्गुलं पदन्तच्च वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ३८॥

टी०। और ग्यारह यवोदर का एक यवमध्य हुआ और ग्यारह यवमध्यका एक अंगुल और छह अंगुल का एकपद और दो पद का एक वितस्ति होता है ३८॥

मू० द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्मयतीर्थादिवेष्टनम्।
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नाडिकायुगमेव च ३९॥

टी०। और दो वितस्ति का एक हाथ होता है जो ब्राह्मय तीर्थादिक का वेष्टन है और चार हाथ का एक धनुष उसी को नाडिकायुग और दण्ड भी कहते हैं ३६॥

मू० धनुषां द्वे सहस्रेतु गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम्।
प्रोक्तञ्च योजनं प्राज्ञैः संख्यानार्थमिदं परम् ४०॥

टी०। और दोहज़ार धनुषको एक गव्यूति यानी दो कोस कहते हैं और चारहज़ार धनुषको बुद्धिमान्लोग एक योजन कहते हैं संख्या के लिये यह उत्तम है ४०॥

मू० चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्चक्रुर्यत्नतस्तु वै ४१॥

टी०। बाद इसके चार क़िला के मध्य में तीन तो उन लोगों ने अपना २ बनाया और चौथा कृत्रिम दुर्ग उस को सब किसी ने यत्न से बनाया ४१॥

मू० पुरञ्च खेटकञ्चैव तद्वद्द्रोणीमुखं द्विज।
शाखानगरकञ्चापि तथा कर्व्वटकं द्रमी ४२॥

टी०। हे ब्राह्मण! पुर और खेटक और द्रोणीमुख और शाखानगर और कर्व्वटक व द्रमी नियत किये ४२॥

मू० ग्रामं सघोषविन्यासं तेषु चावसथान् पृथक्।
सोत्सेधवप्रकारञ्च सर्व्वतः परिखावृतम् ४३॥

टी०। और इन्हीं सबों में ग्रामों और घोष याने गौ आदि के रहने का स्थान अलग अलग बनाते गये और खाईं के बाहर की भित्तियां व छहरदिवाली व चारों तरफ़ खाईं सहित तरह तरह के बनाते गये ४३॥

मू० योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम्।
प्रागुदक्प्रवणं शस्तं शुद्धवंशबहिर्गमम् ४४॥

टी०। जो वस्ती एक कोस चौड़ी और आठ कोस लम्बी हो उस को पुर कहते हैं और इस में पूर्व और उत्तर तरफ़ उतार होताहै और शुद्ध बांस वग़ैरह चारों तरफ़ लगाये जाते हैं ४४॥

मू० तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च खर्व्वटम्।
न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ४५॥

टी०। और जो वस्ती आध कोस चौड़ी और चार कोस लम्बी हो उस को खेटक कहते हैं और इस का जो आधा हो उस को खर्व्वटक कहते हैं और उसके आठवें भागको द्रोणीमुख कहते हैं ४५॥

मू० प्राकारपरिखाहीनं पुरं खर्वटमुच्यते।
शाखानगरकञ्चान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ४६॥

टी०। और जो पुर विना छहरदिवाली खाईं का हो उसको खर्वट कहते हैं और जिसमें मन्त्री और छोटे राजा लोग बसते हों वह शाखा-नगर कहलाता है ४६॥

मू० तथा शूद्रजनप्रायाः स्वसमृद्धकृषीवलाः।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता ४७॥

टी०। इसी तरह जिसमें शूद्र लोग अधिक बसते हों, व अन्न और

धन समेत खेती करनेवाले लोग बहुतहों और खेतोंवाली ज़मीनमें बस्ती हो उसको ग्राम कहते हैं ४७॥

मू० अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्य्यमुद्दिश्य मानवैः।
क्रियते वसतिः सा वै विज्ञेया वसतिर्नरैः ४८॥

टी०। और दूसरे नगरादिक से बाहर किसी काम करने के वास्ते जो मनुष्य घर बनाते हैं उसको आदमी बस्ती कहते हैं ४८॥

मू० दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो बली।
ग्राम एव द्रमी संज्ञो राजवल्लभसंश्रयः ४९॥

टी०। और बग़ैर खेती के दूसरे की जमीन पर बसनेवाले चाहे वह राजा के हितकारी या सम्बन्धी या दुष्ट या अधिक बलीहों जिसमें बसते हों वह द्रमी गांव कहलाता है ४९॥

मू० शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना।
गोसमूहस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ५०॥

टी०। और जहां गोपाल लोग अपना बर्तन भांड़ा गाड़ी पर लादकर रखते हों और गोधन वग़ैरह बहुत हों और वहां बाजार न हो और अपनी इच्छा के मुवाफ़िक़ रहने को जमीन मिले उस को घोष कहते हैं ५०॥

मू० त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः।
निकेतनानि द्वन्द्वानां चक्रुरावसथाय वै ५१॥

टी०। इसीतरह वे लोग अपने रहने के वास्ते नगर वग़ैरह आबाद करके घर बनाकर स्त्री पुरुष रहनेलगे ५१॥

मू० गृहाकारा यथा पूर्व्वं तेषामासन्महीरुहाः।
तथा संस्मृत्य तत्सर्व्वं चक्रुर्व्वेश्मानि ताः प्रजाः ५२॥

टी०। उन लोगों का पहिले घर के बदले में वृक्षों की शाखाही मानो घर था उसी तरह उस सब को ख़याल करके सबों ने घर बनाया ५२॥

मू० वृक्षस्यैवङ्गताः शाखास्तथैवञ्चापरागताः।
नताश्चैवोन्नताश्चैव तद्वच्छाखाः प्रचक्रिरे ५३॥

टी०। पहिले कल्पवृक्षकी शाखा घरके सदृश होती थी और कल्पवृक्ष से जो जो वृक्ष बढ़ते गये वह भी उसी समान होते गये कोई छोटे कोई बड़े उसीतरह प्रजालोग भी कोई छोटा कोई बड़ा घर बनाते गये ५३॥

मू० याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्वमासन् द्विजोत्तम।
ता एव शाखा गेहानां शालात्वन्तेन तासु तत् ५४॥

टी०। हे मुनिसत्तम! जिस तरहकी शाखा कल्पवृक्षोंकी पहिले थीं उसी तरहके अब घर होते हैं जिसमें प्रजालोग रहते हैं ५४॥

मू० कृत्वा द्वन्द्वोपघातन्ते वार्त्तोपायमचिन्तयत्।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः ५५॥

टी०। और वे लोग स्त्री पुरुष घर में रहकर व्यवहारादि की चिन्ता करने लगे जब मधुसंयुक्त सब कल्पवृक्षों का नाश होगया ५५॥

मू० विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः।
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ५६॥

टी०। और प्रजालोग विषाद से व्याकुल और क्षुधा तृषासे पीड़ित हुये तब फिर उन लोगों को उसी त्रेतायुग के प्रथमही चरण में सिद्धि उत्पन्न हुई ५६॥

मू० वार्त्तास्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नगतानि वै ५७॥

टी०। यानी वर्षारूपी उनकी सिद्धि अपना से कीहुई जीविका हुई जो पानी वर्षा का ज़मीनमें भरगया ५७॥

मू० वृष्ट्यावरुद्धैरभवत् स्रोतःखातानि निम्नगाः।
ये पुरस्तादपांस्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ५८॥

टी०। वर्षा न होनेपर उसी जलस्तोक से यानी उस पानी से जो ज़मीन के गड़हों में भररहाथा नदी और सोता वग़ैरह जारी होगये ५८॥

मू० ततो भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्।
अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ५९॥

टी०। और तब उस जल के योगसे तमाम ज़मीनपर ओषधि इत्यादि

उत्पन्न हुई ग्राम और जङ्गलमें बगैर जोते बोये आप से आप चौदह वस्तु पैदा हुई ५९ ॥

मू० ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे।
प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्य तु ६० ॥

टी०। और सब ऋतुओं के फल फूल वृक्ष गुल्म वगैरह पैदा हुये त्रेता के आदि में औषधों की यही उत्पत्ति है ६० ॥

मू० तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे मुने।
रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा ६१ ॥

टी०। और हे मुनि! उन्हीं औषधों से उस त्रेता के आदि में प्रजा लोग अपनी जीविका करने लगे कुछ दिनों के बाद प्रजालोगों को अनायास राग और लोभ फिर चित्त में पैदाहुआ ६१ ॥

मू० ततस्ताः पर्य्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्व्वतान्।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्मन्यायाद्यथाबलम् ६२ ॥

टी०। तब प्रजालोगों ने राग और लोभ में फँसकर अपने अपने बल के अनुसार नदी और खेत और पर्व्वत और वृक्ष गुल्म इत्यादि औषधों को अपने अपने क़ब्जे में करलिया ६२ ॥

मू० तेन दोषेण ता नेशुरौषध्यो मिषतां द्विज।
अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्यो महामते ६३ ॥

टी०। हे द्विज! उसी दोष से प्रजाओं के देखतेही देखते वह सब ओषधियां नाश होगईं हे महामति! उन ओषधियों को एकही बार पृथ्वी अपने में लयकर गई ६३ ॥

मू० पुनस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम् ६४ ॥

टी०। जब सब ओषधियां नाश होगईं तब प्रजालोग विभ्रान्त होकर क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ६४ ॥

मू० स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदाग्रस्तां वसुन्धराम्।
वत्सं कृत्वा सुमेरुन्तु दुदोह भगवान् विभुः ६५ ॥

टी०। तब उन व्यापक भगवान् ब्रह्माने तत्त्वपूर्व्वक पृथ्वी को ओषधियों को ग्रास कर गई थी जानकर सुमेरु पर्व्वत को बछड़ा बनाया और उस पृथ्वीरूपी गऊ को दुहा ६५ ॥

सू० दुग्धेयं गौस्तदा तेन सस्यानि पृथिवीतले।
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ६६ ॥

टी०। जब ब्रह्माने गऊरूपी पृथ्वी को दुहा तब दूध की जगह पृथ्वी से बीज पैदा हुये और वही बीज फिर तमाम गांव और जङ्गलों में होते भये ६६ ॥

सू० ओषध्यः फलपाकान्ता गणाः सप्तदश स्मृताः।
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ६७ ॥

टी०। और फलके पकने पर जो नाश होजाती हैं उन सत्रह ओषधियों का बीज ठहरायागया उसको कहता हूं प्रथम व्रीहि (धान) यव गोधूम अणु (सावां) तिल ६७ ॥

सू० प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः।
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ६८ ॥

टी०। और काकुनि उदार कोदो चीना माष मूंग मसूर निष्पाव और कुलथी ६८ ॥

सू० आढकाश्चणकाश्चैव गणाः सप्तदश स्मृताः।
इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयः पुरा ६९ ॥

टी०। और अरहर चना इत्यादि यही सप्तदश गण कहलाते हैं और इन जातिवाली सब ओषधियां सब गांवों में पहले पैदा हुई हैं इन को ग्रामौषधि कहते हैं ६९ ॥

सू० ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्द्दश।
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ७० ॥

टी०। और यज्ञवाली ओषधियां जो गांव और जंगलों में होती हैं चौदह तरहकी हैं उनके नाम ये हैं प्रथम व्रीहि यव गोधूम सावां तिल ७०॥

सू० प्रियङ्गुसप्तमा ह्येते अष्टमास्तु कुलत्थकाः।

श्यामाकास्त्वथ नीवारपतिलाःसगवेधुकाः ७१ ॥

टी०। और काकुनि कुलथी श्यामाक पसही पतिल और गवेधुक ७१॥

मू० कुरुविन्दा मर्कटकास्तथा वेणुयवाश्च ये।
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश ७२ ॥

टी०। और कुरुविन्द मर्कटक वेणुयव ये सब गांव और जंगलों में होती हैं जोकि चौदह ओषधियां कहलाती हैं ७२ ॥

मू० यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः।
ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्त्तोपायञ्चकार ह ७३ ॥

टी०। जब उनलोगों के बोते पर भी इन ओषधियों का बीज पृथ्वी पर न जमा तो फिर ब्रह्माने उन सबों की बढ़ती के वास्ते जीविका का दूसरा यत्न किया ७३ ॥

मू० ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् हस्तसिद्धिञ्च कर्म्मजाम्।
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ७४ ॥

टी०। यानी उस स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने अपनी कर्म्मजा हाथ की सिद्धिको पैदा किया तबसे लगाकर कृष्टपच्या याने खोदने जोतने से वे ओषधियां जो पहिले की पड़ी हुईथीं सब जमने लगीं ७४ ॥

मू० संसिद्धायान्तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः।
मर्य्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम् ७५ ॥

टी०। जब यह जीविका सिद्ध होगई तब ब्रह्माने आपही यथायोग्य जैसा जिसका गुण था वैसी उसकी मर्य्यादा क़ायम किया ७५ ॥

मू० वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्म्मान् धर्म्मभृतांवर।
लोकानां सर्व्ववर्णानां सम्यग् धर्म्मार्थपालिनाम् ७६ ॥

टी०। और हे धर्म्मात्माओं में श्रेष्ठ! वर्णों और आश्रमों का जो धर्म है उसको भी मुक़र्रर किया और अच्छीतरह धर्म्मार्थ के पालन करने वाले सब वर्णोंवाले मनुष्यों का स्थान भी मुक़र्रर किया ७६ ॥

मू० प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ७७ ॥

टी०। सम्पूर्ण क्रिया करनेवाले ब्राह्मणों का प्राजापत्य स्थान है और जो क्षत्रिय समर में नहीं भागते हैं उनके वास्ते इन्द्र का स्थानहै ७७॥

मू० वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्य्यानुवर्त्तताम् ७८॥

टी०। और जो वैश्य अपने धर्म्म में बने रहते हैं उनको वायुलोक मिलता है, और जो शूद्र सेवावृत्ती हैं वे गन्धर्व्वलोक में जाते हैं ७८॥

मू० अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्।
स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ७९॥

टी०। और जो लोग गुरुके घर रहकर गुरुकी सदा सेवा करते हैं वे लोग ऊर्ध्वरेता याने जिन्हों ने वीर्यको ऊपर चढ़ाया है उन अट्ठासी हजार ऋषीश्वरों के स्थान में जाते हैं ७९॥

मू० सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम्॥
योगिनाममृतंस्थानमिति वै स्थानकल्पना ८०॥

टी०। और वनवासी लोगों को सप्तर्षियों का स्थान मिलता है और गृहस्थों को प्राजापत्य स्थान मिलता है जो अपने धर्म्म में स्थिर रहतेहैं और संन्यासियों को ब्रह्मस्थान मिलता है और योगियों को अमृत यानी मोक्ष स्थान मिलता है इसीतरह सबके वास्ते ब्रह्माने स्थान मुक़र्रर किये हैं ८०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणएकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९॥

पचासवां अध्याय॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः।
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः कारणैः सह १॥

टी०। मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि! फिर ब्रह्माजी ने ध्यान

करके मानसी प्रजाओं को अपने शरीर से कार्य्य और कारण संयुक्त उत्पन्न किया ॥ १ ॥

मू० क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः।
ते सर्व्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः २ ॥

टी०। और उन बुद्धिमान् ब्रह्माजी के अंगों से क्षेत्रज्ञपुरुष यानी ब्रह्मज्ञानी लोग उत्पन्न हुये और वह सब लोग शरीर ही से पैदा हुये जिनको मैं पहिले कह चुकाहूँ २ ॥

मू० देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयाः स्मृताः।
एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ३ ॥

टी०। देवताओंसे लगाकर स्थावर तक सब प्रजा त्रैगुण्यविषयक कहलाते हैं इसी प्रकार से स्थावर जंगम प्राणियों को ब्रह्माजी ने पैदा किया ३ ॥

मू० यदास्य ताः प्रजाः सर्व्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः।
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ४ ॥

टी०। जब इन प्रजाओं से उन बुद्धिमान् ब्रह्माकी सृष्टि न बढ़ी तब अपने समान अन्य मानसी पुत्रों को ब्रह्माजी ने पैदा किया ४ ॥

मू० भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा।
मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वशिष्ठं चैव मानसम् ५ ॥

टी०। यानी भृगु और पुलस्त्य और पुलह और क्रतु और अङ्गिरा और मरीचि और दक्ष और अत्रि और मानस वशिष्ठ ५ ॥

मू० नव ब्रह्मण इत्येते पुराणे निश्चयङ्गताः।
ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम् ६ ॥

टी०। ये सब नव ब्राह्मण पुराणों में कहलाते हैं बाद इसके फिर ब्रह्माने अपने कोप से एकादश रुद्र को पैदा किया ६ ॥

मू० संकल्पञ्चैव धर्म्मञ्च पूर्वेषामपि पूर्व्वजम्।
सनन्दनादयो ये च पूर्व्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ७ ॥

टी०। और संकल्प और धर्म्म को पैदा किया जो पहिलों से पहिले

पैदा हैं और जो सनन्दनादिक हैं उनको पहिलेही काल में ब्रह्माने पैदा किया ७ ॥

मू० न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः ।
सर्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागविमत्सराः ८ ॥

टी०। ये लोग लोकों में आसक्त न हुये व सावधान, निरपेक्ष और अनागत यानी भविष्यके ज्ञानी व राग और मत्सर वगैरह से रहित हुये ८॥

मू० तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ९ ॥

टी०। ये लोग जब इस तरहसे सृष्टि रचने से अलग होगये तब महात्मा ब्रह्माने महाकोप किया और उस समय सूर्य्यके समान महातेजस्वी ९ ॥

मू० अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः १० ॥

टी०। आधा अङ्ग स्त्री आधा बड़ाभारी अङ्ग पुरुष का प्रकट हुआ और कहा कि शरीर का विभाग करो इतना कहकर उसके बाद वह अन्तर्द्धान होगया १० ॥

मू० स चोक्तो वै पृथक् स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ।
बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा तु सः ११ ॥

टी०। यह आज्ञा उसकी पाकर उन ब्रह्माने स्त्री और पुरुषको पृथक् पृथक् पैदा किया और पुरुषों में ग्यारह भेद किये ११ ॥

मू० सौम्यासौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देवः पुरुषैरसितैः सितैः १२ ॥

टी०। और कितने सुजन और दुर्जन और शान्त और कितने श्वेत और श्याम स्त्री पुरुष इत्यादि को उन समर्थवान् ब्रह्मा देवने पैदा किया १२ ॥

मू० ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
आत्मनः सदृशं कृत्वा प्रजापालं मनुं द्विज १३ ॥

टी०। हे मुनि ! फिर ब्रह्माने अपने शरीरसे अपने तुल्य स्वायम्भुव मनु को जिन्हें पहिले पैदा किया था प्रजापालन में प्रवृत्त किया १३ ॥

मू० शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥ १४ ॥

टी०। और जो बहुत तपस्या से निष्पापिनी शतरूपा नाम स्त्री को पैदा किया था वही स्वायम्भुव मनु देवकी स्त्री हुई १४॥

मू० तस्माच्च पुरुषात्पुत्रो शतरूपाव्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रख्यातावात्मकर्म्मभिः ॥ १५ ॥

टी०। और उन स्वायम्भुव मनु से शतरूपा के गर्भ रहकर दो लड़के पैदा हुये बड़े का नाम प्रियव्रत और छोटे का नाम उत्तानपाद हुआ दोनों अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथ्वी में विख्यात हुये १५॥

मू० कन्ये द्वे च तथा ऋद्धिं प्रसूतिश्च ततः पिता।
ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथा ऋद्धिं रुचेः पुरा १६॥

टी०। बाद इसके उनके दो कन्या पैदा हुईं पहिली का नाम ऋद्धि दूसरी का नाम प्रसूति ऋद्धिको रुचि मुनिसे और प्रसूतिको दक्षसे पहले समय पिताने विवाह दिया १६॥

मू० प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः।
पुत्रो यज्ञे महाभाग दम्पतीमिथुनं ततः १७॥

टी०। हे महाभाग! तब दक्ष प्रजापति और प्रसूति से यज्ञपुरुष और दक्षिणा उनकी स्त्री दोनों जोड़िहा पैदा हुये १७॥

मू० यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे १८॥

टी०। फिर यज्ञके दक्षिणा स्त्री से बारह पुत्र उत्पन्न हुये वही लोग स्वायम्भुवमन्वन्तर में याम ऐसे प्रसिद्ध हुये १८॥

मू० तस्य पुत्रास्तु यज्ञस्य दक्षिणायां सुभास्वराः।
प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा १९॥

टी०। और उन यज्ञसे दक्षिणा स्त्री में वे सब बड़े तेजस्वी हुये और प्रसूति के दक्षसे और चौबीस कन्या उत्पन्न हुईं हे ब्रह्मन्! उन सबके नाम सुनो १९॥

मू० ससर्ज्ज कन्यास्तासाञ्च सम्यङ्नामानि मे शृणु ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा २० ॥

टी० । श्रद्धा १ लक्ष्मी २ धृति ३ तुष्टि ४ पुष्टि ५ मेधा ६ क्रिया ७ । २० ॥

मू० बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिःकीर्त्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः प्रभुः २१ ॥

टी० । और बुद्धि ८ लज्जा ९ वपु १० शान्ति ११ सिद्धि १२ कीर्ति १३ इन सब दत्तकी कन्याओं का विवाह धर्म्मराज से हुआ २१ ॥

मू० ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा २२ ॥

टी० । और बाकी उन सबोंसे छोटी जो उत्तम नेत्रोंवाली ग्यारह कन्या थीं उनके नाम सुनो ख्याति १ सती २ सम्भूति ३ स्मृति ४ प्रीति ५ क्षमा ६ । २२ ॥

मू० सन्ततिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
भृगुर्भवोमरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः २३ ॥

टी० । और सन्तति ७ अनसूया ८ ऊर्ज्जा ९ स्वाहा १० स्वधा ११ इन सबों का विवाह भृगु १ महादेव २ मरीचि ३ अङ्गिरामुनि ४ । २३ ॥

मू० पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च ऋषयस्तथा ।
वशिष्ठोऽत्रिस्तथा वह्निः पितरश्च यथाक्रमम् २४ ॥

टी० । पुलस्त्य ५ पुलह ६ क्रतु ७ वशिष्ठ ८ अत्रि ९ अग्नि १० पितर ११ इसी क्रम से इनलोगों के साथ हुआ २४ ॥

मू० ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयोमुनिसत्तमाः ।
श्रद्धा कामं श्रीश्च दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् २५ ॥

टी० । इन मुनियों ने ख्याति आदिक कन्याओं को ग्रहण किया अब इनलोगों की सन्तान सुनिये श्रद्धा का पुत्र काम और श्री का दर्प और धृति का पुत्र नियम २५ ॥

मू० सन्तोषञ्च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत ।
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेवच २६ ॥

टी०। और तुष्टिका सन्तोष और पुष्टि का लोभ और मेधा का श्रुत और क्रिया के दण्ड व नय और विनय पुत्र पैदा हुये २६ ॥

मू०। बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम्।
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत २७॥

टी०। और बुद्धिका बोध और लज्जाका विनय और वपुका व्यवसाय और शान्ति का क्षेम पुत्रहुआ २७॥

मू० सुखं सिद्धिर्यशः कीर्त्तिरित्येते धर्म्मयोनयः।
कामादतिमुदं हर्षं धर्म्मपौत्रमसूयत २८॥

टी०। और सिद्धि सुख और कीर्त्ति व यश ये सब धर्म्मयोनि धर्म्मकी सन्तान कहलाते हैं व काम के अतिमोदवाला हर्ष धर्मका पौत्रहुआ २८॥

मू० हिंसा भार्य्या त्वधर्म्मस्य तस्यां जज्ञे तथानृतम्।
कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम् २९॥

टी०। और अधर्म्म की हिंसा नाम स्त्री से अनृत पुत्र और निर्ऋति नाम कन्या पैदा हुई और उस निर्ऋति के दो पुत्र पैदा हुये नरक और भय २६॥

मू० माया च वेदना चैव मिथुनं त्वयमेतयोः।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ३०॥

टी०। बाद इसके और दो कन्या पैदा हुईं एकका नाम माया दूसरीका वेदना नाम हुआ उन दोनोंमें से माया का पुत्र मृत्यु हुआ जो सब जीवों को नाश करता है ३०॥

मू० वेदनात्मसुतञ्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ३१॥

टी०। और रौरव से वेदना के दुःख नाम पुत्र हुआ और मृत्युके पुत्र व्याधि और जरा और शोक और तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुये ३१॥

मू० दुःखोद्भवाः स्मृता ह्येते सर्व्वे वा धर्म्मलक्षणाः।
नैषां भार्य्यास्ति पुत्रो वा सर्व्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ३२॥

टी०। ये सब अधर्मी हैं इनसबों के न स्त्री है न पुत्र है और दुःखही

से इनलोगोंकी उत्पत्ति कहीगई है व ये सब ऊर्ध्वरेतस् कहलाते हैं ३२॥

मू० निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्य्याभवन्मुने।
अलक्ष्मीर्नाम तस्याश्च मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ३३॥

टी०। और हे मुनि! मृत्युकी प्रथम भार्य्या निर्ऋति और दूसरी अलक्ष्मी स्त्रीहुई है जिससे मृत्युके चौदह पुत्र हुये ३३॥

मू० अलक्ष्मीपुत्रका ह्येते मृत्योरादेशकारिणः।
विनाशकालेषु नरान् भजन्त्येते शृणुष्व तान् ३४॥

टी०। और अलक्ष्मी के पुत्र ये सब मृत्यु के आज्ञाकारी हैं मनुष्यों के विनाश काल में जिस जिस अङ्गमें ये रहते हैं वह सुनो ३४॥

मू० इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा च मनसि स्थिताः।
स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि ३५॥

टी०। दशों इन्द्रियों में और मनमें ये लोग रहकर अपने अपने विषय में स्त्री और पुरुषों को मिलाते हैं ३५॥

मू० अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रागक्रोधादिभिर्नरान्।
योजयन्ति यथा हानिं यान्त्यधर्म्मादिभिर्द्विज ३६॥

टी०। हे मुने! इन्द्रियों को आकर्षण करके मनुष्यों को क्रोधादिक में योजित करते हैं जिस से हे ब्रह्मन्! मनुष्य अधर्म्म इत्यादि करके हानिको प्राप्तहोता है ३६॥

मू० अहङ्कारगताश्चान्ये तथान्ये बुद्धिसंस्थिताः।
विनाशाय नरस्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः ३७॥

टी०। कोई अहङ्कार में कोई बुद्धि में रहकर मोह में टिके हुये स्त्रियों और पुरुषों के विनाश के वास्ते यत्न करते रहते हैं ३७॥

मू० तथैवान्ये गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वनः ३८॥

टी०। इसीतरह एक दूसरा भी दुःसह नाम मनुष्यों के घर में विघ्न डालनेवाला रहताहै जो भूँख से पीड़ित और अधोमुख और नङ्गा है और झींगुर व कौवे की ऐसी आवाज है ३८॥

मू० स सर्व्वान् खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तमसोनिधिः।
दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम् ३९ ॥

टी०। इसको ब्रह्मा ने जब पैदा किया तो अज्ञान की राशि वड़ा मुख और विकराल दांत और भयावनी सूरत से सब को खाने को मुस्तैद हुआ ३९ ॥

मू० तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्व्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः ४० ॥

टी०। तव वे लोकपितामह शुद्ध सब ब्रह्मस्वरूपी जगत् के कारण अव्यय ब्रह्माजी उससे कहने लगे जो कि खाने को तैयारथा ४० ॥

ब्रह्मोवाच ॥

मू० नात्तव्यन्ते जगादिदं जहि कोपं शमं व्रज।
त्यजैतान्तामसीं वृत्तिमपास्य रजसःकलाम् ४१ ॥

टी०। कि तुम इस जगत् को मत खावो अपना क्रोध निवृत्त करो और अपने मनको शान्त करो इस तामसी वृत्ति और राजसी कला को छोड़दो ४१ ॥

दुस्सहउवाच ॥

मू० क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ पिपासुश्चापि दुर्बलः।
कथं तृप्तिमियान्नाथ भवेयं बलवान्कथम् ॥
कश्चाश्रयो ममाख्याहि वर्त्तेयं यत्र निर्वृतः ४२ ॥

टी०। तब दुःसह कहने लगा कि हे जगन्नाथ! मैं दुर्बल और क्षुधा तृषासे पीड़ित हूँ मुझे किस तरह तृप्ति होगी और शरीर में कैसे बल होगा और कहां मेरा आश्रय है वह स्थान मुझे बतलाइये कि जहां मैं निवृत्त होकर रहूँ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

मू० तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्म्मिको बलम्।
पुष्टिं नित्यक्रियाहान्या भवान् वत्स गमिष्यति ४३ ॥

टी०। तब ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स! जहां अधर्म्मी पुरुष रहते हों

वहीं तुम्हारे रहने की जगह है व अधर्म्मी जन बल हैं और जहाँ नित्य क्रियाकी हानि होतीहै उसीसे तुमको बल प्राप्त होगा वहीं तुम जावो ४३॥

मू० वृथास्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारञ्च ददामि ते।
क्षुतं कीटावपन्नञ्च तथाश्वभिरवेक्षितम् ४४॥

टी०। और जो लोग वृथा हँसते या बोलते हैं वही तुम्हारा वस्त्र है और जिसके ऊपर छींक हुईहो व कीड़ा पड़ाहो अथवा कुत्ते का देखा हुआहो ४४॥

मू० भग्नभाण्डगतं तद्वन्मुखवातोपशामितम्।
उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ४५॥

टी०। और वैसेही जो फूटे बर्तन में रक्खाहो या मुख से फूँककर ठण्ढा कियागया हो या जूँठा या अपकहो या अधपका व चाटा हुआ या जो अन्न संस्कारहीनहो ४५॥

मू० भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च।
विदिङ्मुखं सन्ध्ययोश्च नृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ४६॥

टी०। और फटेहुये आसनपर बैठकर भोजन कियाहुआ या नासिका के सामने आया हुआ या अविहित दिशा की ओर बैठकर या सन्ध्या के समय या नाचने या गाने या किसी बाजा के बजने के वक्त जो कोई खाताहो ४६॥

मू० उदक्योपहतं भुक्तमुदक्या दृष्टमेव च।
यच्चोपघातवत्किञ्चित् भक्ष्यं पेयमथापि वा ४७॥

टी०। या रजस्वला स्त्री का देखा हुआ या छुवा हुआ या किसी का जुठाला हुआ या किसी तरह का दूषित खानेवाला अन्न या पीनेवाली वस्तु होवै ४७॥

मू० एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामि ते।
अश्रद्धया हुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ४८॥

टी०। यह सब तुमको दिया और और भी तुम्हारी पुष्टि के वास्ते देताहूं सुनो कि श्रद्धा और स्नान विना व अनादर युक्त जो होम दान करता है वह तुम्हैं मिलैगा ४८॥

मू० यच्चाम्बुपूर्व्वकं क्षिप्तमनात्मीकृतमेव च।
त्यक्तुमाविष्कृतं यत्तु दत्तं चैवातिविस्मयात् ४९ ॥

टी०। और विना जल की छिड़की हुई वस्तु और जो वस्तु परमेश्वर अर्पण न हुई हो और जो अपनी त्यागी हुई हो और जो अन्न किसी ने विस्मयसे दिया हो ४९ ॥

मू० दुष्टं क्रुद्धार्त्तदत्तञ्च यक्ष तद्भागितत्फलम्।
यच्च पौनर्भवः किञ्चित् करोत्यामुष्मिकं नरः ५० ॥

टी०। और ऐ यक्ष! जो अन्न दुष्ट या क्रोधी या दुःखी का दिया हुआ हो उसके खाने का फल तुम्हें होगा और उढ़रीका लड़का जो कुछ कर्म्म पारलौकिक करै ५० ॥

मू० यच्च पौनर्भवा योषित् तद्यक्ष तव तृप्तये।
कन्याशुल्कोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः ५१ ॥

टी०। और पुनर्भवा (उढ़री) स्त्री भी जो कर्म्म करती हो वह सब तुम्हारी तृप्ति के लिये हे यक्ष! मैं देता हूं और कन्या बेचकर जो धन पैदा करता है और उस धन से जो कुछ कर्म्म करता है ५१ ॥

मू० तथैव यक्ष पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च याः।
यच्चार्थं निवृत्तो किञ्चिदधीतं यन्न सत्यतः ५२ ॥

टी०। और ऐ यक्ष! इसी तरह जो कर्म्म असत् शास्त्र से किया जाताहै वह सब तुम्हारी तुष्टि के वास्ते देता हूं और जो धनके सुख के लिये अध्ययन है सत्यसे नहीं ५२ ॥

मू० तत्सर्व्वं तव कालांश्च ददामि तव सिद्धये।
गुर्व्विण्यभिगमे सन्ध्या नित्यकार्य्यव्यतिक्रमे ५३ ॥

टी०। इन सब का वह फल तुमको मिलेगा और तुम्हारी सिद्धिका समय नियत करता हूं सुनो कि गर्भिणी से गमन करते वक्त और सन्ध्या और नित्य कर्म्म के व्यतिक्रम यानी छूटजाने व उलट पलट होजाने के वक्त ५३ ॥

मू० असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषु च दुःसह।
तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु ५४ ॥

टी०। और असत् शास्त्र की क्रिया या आलाप करने में जो वक्त गुज़रे इन वक्तों में हे दुःसह! तुम्हारा सदा पराक्रम मनुष्यों पर होगा ५४॥

मू० पङ्क्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा क्रिया।
नित्यञ्च गेहकलहे भविता वसतिस्तव ५५॥

टी०। अब तुम्हारे रहने की जगह बतलाताहूँ सुनो कि जहांपर पंक्तिभेद होताहो और जहां व्यर्थपाक होताहो यानी अपनेही वास्ते रसोई बनाताहो अथवा पाकभेदहो या जिस घरमें सदा अक्रिया या क़लह होता हो वहां तुम रहाकरो ५५॥

मू० अपोष्यमाणे च तथा बद्धे गोवाहनादिके।
असन्ध्याभ्युक्षितागारे काले त्वत्तोभयं नृणाम् ५६॥

टी०। और जहां पर विना घास भूसा दिये हुये गौ घोड़ा इत्यादि पशु को बांध देतेहों और जिस घरमें सूर्य्यास्त होनेके प्रथम सन्ध्याकाल में भी झाड़ू न दीजाय ऐसे स्थानों में मनुष्यों को तुम से भयहोगा ५६॥

मू० नक्षत्रग्रहपीडासु त्रिविधोत्पातदर्शने।
अशान्तिकपरान् यक्ष नरानभिभविष्यसि ५७॥

टी०। और हे यक्ष! नक्षत्र या ग्रहकृत पीड़ा होनेपर या तीनों तरहके उत्पात दिखलाई देनेपर जो मनुष्य उसकी शान्ति नहीं करते हैं उन सबों को तुम अपना भय दिखावोगे ५७॥

मू० वृथोपवासिनो मर्त्या द्यूतस्त्रीषु सदा रताः।
त्वद्भाषणोपकर्त्तारो वैडालव्रतिकाश्च ये ५८॥

टी०। और जो मनुष्य वृथा उपवास करता है और जो जुवां और स्त्री में सर्वदा रत रहताहै और जो दुर्व्वचन बोलता है और जो बिडालव्रती यानी बिल्ली की तरह छल से अपना कार्य्य सिद्ध करता है ५८॥

मू० अब्रह्मचारिणाधीतमिज्या चाविदुषा कृता।
तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्जितात्मनाम् ५९॥

टी०। और जो विना ब्रह्मचर्य्य के वेदपाठ करता है और मूर्खों का किया हुआ यज्ञ और तपोवन में गृहवासियों की तरह कर्म्म और चञ्चल मनवाले ५९॥

मू० ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च स्वकर्म्मतः।
परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ६० ॥

टी०। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो अपने कर्म्मको छोड़कर परलोकके वास्ते जो क्रिया करते हैं ६० ॥

मू० तस्याश्च यत्फलं सर्व्वं तत्ते यक्ष भविष्यति।
अन्यच्च ते प्रयच्छामि पुष्ट्यर्थं सन्निबोध तत् ६१ ॥

टी०। उस क्रिया का जो फल है हे यक्ष! वह सब तुमको मिलैगा और भी तुम्हारी पुष्टि के वास्ते देताहूँ उसको सुनो ६१ ॥

मू० भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्व्वकम्।
एतत्तवेति दास्यन्ति भवतोबलिमूर्ज्जितम् ६२ ॥

टी०। कि वैश्वदेव कर्म्म के अन्त में ब्राह्मण लोग तुम्हारा नाम लेकर तुम्हें भी बलिदेंगे कि यह तुम्हाराहै उसीसे तुमको पुष्टिहोगी६२॥

मू० यः संस्कृताशीविधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः।
अलोलुपोऽजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्ज्जय ६३ ॥

टी०। और जो लोग संस्कार किया हुआ अन्न विधिपूर्व्वक भोजन करते हों और अन्तर बाहर से पवित्र रहते हों और लोभ और स्त्री के वश न हों और कलह न करते हों हे यक्ष! उन लोगों के घर को तुम मत जाना ६३ ॥

मू० पूज्यन्ते हव्यकव्याभ्यां देवताः पितरस्तथा।
यामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहं यक्ष वर्ज्जय ६४ ॥

टी०। और हे यक्ष! जहां पर देवता पितर का पूजन हव्य और कव्य से होताहो और जहां वह नवकुलस्त्रियों और अभ्यागतों को भोजन मिलताहो वहां भी न जाना ६४ ॥

मू० यत्र मैत्री गृहे बालवृद्धयोषिन्नरेषु च।
तथा स्वजनवर्गेषु गृहं तच्चापि वर्ज्जय ६५ ॥

टी०। और जिस घरमें लड़का और बूढ़ा और स्त्री और अन्य मनुष्यों की आपुस में प्रीति हो उस घरको भी न जाना ६५ ॥

मू० योषितोऽभिरता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः।
लज्जान्विताःसदा गेहं यत्त तत्परिवर्ज्जय ६६॥

टी०। और ऐ यक्ष! जिस घर में स्त्रियां लाज और शर्म के साथ रहती हों बाहर न जातीहों वहां तुम हरगिज़ न जाना ६६॥

मू० वयःसम्बन्धयोग्यानि शयनान्यशनानि च।
यत्र गेहे त्वया यक्ष तद्वर्ज्यं वचनान्मम ६७॥

टी०। और जिस घर में अपनी उमर और औक़ात के मुवाफ़िक़ शयन और भोजन करते हों हे यक्ष! उस घर को भी हमारे कहने से छोड़देना ६७॥

मू० यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्म्मण्यवस्थिताः।
सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष तद्गृहम् ६८॥

टी०। और ऐ यक्ष! जिस घर में नित्य दयावाले लोग रहते हों और अच्छे कामों में तत्पर हों और साधारण सामग्री रखते हों उस घरको भी न जाना ६८॥

मू० यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरुवृद्धद्विजातिषु।
न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्ष त्वया सदा ६९॥

टी०। और ऐ यक्ष! जिस घर में गुरु या वृद्ध या ब्राह्मण अगर बैठे होवें और उनके सामने या बराबर घरवाला न बैठताहो (मारे अदब के) वहां भी तुम कभी न जाना ६९॥

मू० तरुगुल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः।
मर्म्मभेदो न वा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते ७०॥

टी०। और जिस घरका दरवाज़ा वृक्ष या लता से घिरा न हो और जो किसी को मर्म्मभेदी बात न कहता हो उस घर में जाने से तुम्हारा कल्याण न होगा ७०॥

मू० देवतापितृमर्त्यानामतिथीनाञ्च वर्त्तनम्।
यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज ७१॥

टी०। और जो कोई देवता या पितर या मनुष्य या अतिथि को खि-

और जो अन्न बचता है उसीको आप खाता है उस घर में भी तुम न जाना ७१॥

मू० सत्यवाक्यान् क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः।
पुरुषानीदृशान् यक्ष त्यजेथाश्चानसूयकान् ७२॥

टी०। और जो लोग सत्य बोलतेहों और जो क्षमा का स्वभाव रखते हों और जो न हिंसा करते और न किसी को पीड़ा देते हों और न किसी से ईर्षा करते हों हे यक्ष! ऐसे लोगों के पास भी तुम न जाना ७२॥

मू० भर्तृशुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्ज्जिताम्।
कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टाञ्च त्यज योषितम् ७३॥

टी०। और जो स्त्री अपने पति की सेवा करतीहो और बदकार और लड़ाका स्त्री का साथ न करती हो और सब कुटुम्ब और पति को खिलाकर पीछे बचाहुआ अन्न आप खातीहो उस स्त्री के पासभी न जाना ७३॥

मू० यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिं सदा।
याजनाध्ययनादानकृतवृत्तिं द्विजं त्यज ७४॥

टी०। और यजन और अध्ययनऔर वेदाभ्यास वग़ैरहमें जिसका मन सदा लगा रहे और यज्ञ और अध्ययन और दान लेना जिस ब्राह्मण की वृत्तिहो उसको भी छोड़ देना ७४॥

मू० दानाध्ययनयज्ञेषु सदोद्युक्तञ्च दुःसह।
क्षत्रियं त्यज सच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ७५॥

टी०। और जो क्षत्रिय दान देने और वेद पढ़ने और यज्ञ करने में प्रवृत्त रहते हों और अपने क्षात्र धर्म्म के साथ शस्त्रादिक बांधकर व उत्तम महसूल लेकर जीविका करतेहों उन क्षत्रियों के पास भी न जाना ७५॥

मू० त्रिभिः पूर्व्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययोः।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिश्च त्यज वैश्यमकल्मषम् ७६॥

टी०। और जो वैश्य दान और अध्ययन और यज्ञ करताहो और पशुपालन और वाणिज्य और खेती करके अपनी जीविका करता हो ऐसे पापहीन वैश्य कोभी छोड़ देना ७६॥

मू० दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष सन्त्यज।
शूद्रञ्च ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम् ७७॥

टी०। और ऐ यक्ष ! जो शूद्र दान और यज्ञ और ब्राह्मण इत्यादि वर्णोंकी सेवा सदा करता हो और उसी ब्राह्मणादिकों की सेवासे अपनी जीविका करता हो उसको भी छोड़ देना ७७॥

मू० श्रुतिस्मृत्यविरोधेन कृतवृत्तिर्गृहे गृही।
यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका ७८॥

टी०। और जिस घरमें जो गृहस्थ श्रुति और स्मृति के अनुसार अपनी वृत्ति रखताहो और उसी घर में उसकी स्त्री अपनेही पति में मन रखतीहो ७८॥

मू० यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानाञ्च तथा पितुः।
पत्नी च भर्त्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः ७९॥

टी०। और जिस घरमें पुत्र गुरु और देवता और पिताकी सेवा और स्त्री अपने पतिकी सेवा पूजा करती हो उस घर में अलक्ष्मी का भय किस तरह होगा ७९॥

मू० यदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम्।
कृतपुष्पबलिं यक्ष न त्वं शक्नोषि वीक्षितुम् ८०॥

टी०। जो घर सन्ध्याके समय लीपाजाय या जल छिडक दियाजाय और पुष्पादि से देवतोंका पूजन हो हे यक्ष! उस घर की तरफ़ तुम मत देखना ८०॥

मू० भास्कराहष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च।
सूर्य्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम् ८१॥

टी०। और जिस घरकी सेजको सूर्य्य न देखतेहों और अग्नि और जल कभी न घटता हो और रात भर दीपक जलताहो उस घर में लक्ष्मी रहती है ८१॥

मू० यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषाज्यताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः ८२॥

टी०। और जिस घर में बेल या चन्दन या वीणा या शीशा या मधु या घी या जल व घी के लिये तांबे के बर्तन हों उस घर में भी तुम मत जाना ८२॥

मू० यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी।
भार्य्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष तव मन्दिरम् ८३॥

टी०। और जिस घर में कांटेदार वृक्ष या आंगन में धान वग़ैरह बोया हो या पुनर्भू स्त्री हो या जिस घर में दीमक का घर हो हे यक्ष! वह घर तुम्हाराही है ८३॥

मू० यस्मिन् गृहे नराः पञ्च स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः।
अन्धकारेन्धनाग्निश्च तद्गृहं वसतिस्तव ८४॥

टी०। और जिस घर में पांच पुरुष और तीन स्त्री और तीन गऊ रहैं और लकड़ी जलाकर रोशनी करते हों वह घर तुम्हारे ही रहनेको है ८४

मू० एकच्छागं द्विबालेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम्।
षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यत्त्वाशु शोषय ८५॥

टी०। और जिस घरमें एकबकरी दो गधे तीन गऊ पांच भैंस छहघोड़ा सात हाथी रहतेहों हे यक्ष! उस घरको तुम जल्द नाश करदेना ८५॥

मू० कुद्दालदात्रपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम्।
यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ८६॥

टी०। और जिस घर में कुदाल और हँसिया और पिटारी और थाली वग़ैरह वर्तन जहां तहां बे ठिकाने पड़े रहते हैं वह लोग उस घरमें मानो तुमको बुलाते हैं ८६॥

मू० मुशलोलूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे।
अवस्करे मन्त्रणाञ्च यक्षैतदुपकृत् तव ८७॥

टी०। और जिस घर में स्त्रियां मूशल या ओखली के ऊपर या देहली पै बैठती हों और दिशा फिरते वक्त आपुसमें बात चीत करती हों हे यक्ष! ये सब तुम्हारे उपकारी हैं ८७॥

मू० लङ्घ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि।

तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ८८ ॥

टी०। और जिस घर में कच्चे या पक्के अन्न और शास्त्रका अनादर उस घर में हे दुस्सह ! तुम अपनी इच्छाके अनुसार रहो ८८ ॥

मू० स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्व्वीफलेन वा।
गृहे तत्राप्यरिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ८९ ॥

टी०। और जिस घर में बटुई के सरपोश या करछुलसे किसी आग दीजाती हो उस घर में सब अरिष्टों का स्थान है ८९ ॥

मू० मानुषास्थि गृहे यत्र दिवारात्रं मृतस्थितिः।
तत्र यक्ष तवावासस्तथान्येषाञ्च रक्षसाम् ९० ॥

टी०। और जिस घर में मनुष्यकी हड्डी हो या एक दिन रात तक मृतक पड़ा रहे उस घर में तुम्हारा और और राक्षसों का स्थानहै९०

मू० अदत्त्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम्।
सपिण्डान् सोदकांश्चैव तत्काले तान् नरान् भज ९१

टी०। और जो कोई अपने भाई बन्धु को भोजन पान दिये बिन आप खाता पीता है और जो सपिण्डों व सोदकों को पिण्ड व जल नहीं देते हैं उन मनुष्यों के पास तुम रहो ९१ ॥

मू० यत्र पद्ममहापद्मौ सुरभिर्मोदकाशिनी।
वृषभैरावतौ यत्र कल्प्यते तद्गृहं त्यज ९२ ॥

टी०। और जिस घर में पद्म या महापद्म रहताहो और सुरभी मोदक खाती हो और नंदी बैल और ऐरावत हाथीहो वहां तुम न जाना ९२॥

मू० अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना।
कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्यास्तत्परित्यज मन्दिरम् ९३ ॥

टी०। और जहां पर बिन युद्ध के अशस्त्र देवता और शस्त्र समेत देवता मनुष्य लोग पूजतेहों वहां भी तुम न जाना ९३ ॥

मू० पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः।
क्रियन्ते पूर्व्ववद्गेहे न त्वं तत्र गृहे चर ९४ ॥

टी०। और जिस घरमें पुरवासी लोग पहिले के प्रसिद्ध महोत्सवों को पहिले की तरह करते हैं उस घरमें भी न जाना ६४ ॥

मू० शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुषैः।
नखाग्रसलिलैश्चैव तान् याहि हतलक्षणान् ९५ ॥

टी०। और सूप की हवा जिसके लगे ऐसे घड़ा के जल से या भीगे कपड़े के जल से या उस जल से जिसमें नाखून का पानी गिराहो ऐसे जल से जो अलक्षणी लोग स्नान करते हैं वहां तुम जाकर रहो ६५ ॥

मू० देशाचारान् समयाञ्ज्ञातिधर्म्मं
जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम्।
सम्यक्शौचंविधिवल्लोकवादा-न्
पुंसस्त्वया कुर्वतो मास्तु सङ्गः ६६ ॥

टी०। और जो लोग देश और काल के अनुसार आचार व्यवहार और जाति धर्म्म और जप और होम और मङ्गल और देवताओं का पूजन और सम्यक् पवित्रता और विधिपूर्व्वक बात चीत करतेहों उन लोगोंका तुम से सङ्ग न होगा ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० इत्युक्त्वा दुःसहं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत।
चकार शासनं सोऽपि तथा पङ्कजजन्मनः ९७ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! इतनी बातें दुःसह से कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और दुःसहभी उनकी आज्ञानुसार जगत् में रहने लगा ६७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयक्ष्मानुशासनंनामपञ्चाशोऽध्यायः ५० ॥

इक्यावनवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० दुःसहस्याभवद्भार्य्या निर्म्मार्ष्टिर्नाम नामतः।
जाता कलेस्तु भार्य्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् १ ॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे क्रौष्टुकि! दुःसह की स्त्री

निर्मार्ष्टि नाम हुई जो कलिकी स्त्री में ऋतुकाल में चाण्डाल के दर्शन से उत्पन्न हुईथी १ ॥

मू० तयोरपत्यान्यभवन् जगद्व्यापीनि षोडश ।
अष्टौ कुमाराः कन्याश्च तथाष्टावतिभीषणाः २ ॥

टी०। उसी स्त्री से दुःसह के आठ पुत्र और आठ अत्यन्त भयावनी पुत्री उत्पन्न हुई जो सकल संसार में प्रसिद्ध और व्याप्त हैं २ ॥

मू० दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्च परिवर्त्तस्तथापरः ।
अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैव गण्डप्रान्तरतिस्तथा ३ ॥

टी०। उन पुत्रों के नाम ये हैं दन्ताकृष्टि १ तथोक्ति २ परिवर्त्त ३ अङ्गध्रुक् ४ शकुनि ५ गण्डप्रान्तराति ६ । ३ ॥

मू० गर्भहा सस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौ तासां नामानि मे शृणु ४ ॥

टी०। गर्भहा ७ सस्यहा ये उनके पुत्र हैं अब उन आठों कन्याओं के नाम कहताहूं सुनो ४ ॥

मू० नियोजिका वै प्रथमा तथैवान्या विरोधिनी ।
स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ५ ॥

टी०। पहली नियोजिका १ वैसेही दूसरी विरोधिनी २ स्वयंहारकरी ३ भ्रामणी ४ ऋतुहारिका ५ ॥

मू० स्मृतिबीजहरे चान्ये तयोः कन्येऽतिदारुणे ।
विद्वेषिण्यष्टमी नाम्नी कन्या लोकभयावहाः ६ ॥

टी०। स्मृतिहरा ६ बीजहरा ७ ये दोनों उनकी कन्यायें अत्यन्त भयङ्करी हुईं और आठवीं विद्वेषिणी नामवाली कन्या ८ जो संसार को बहुत डर देतीहैं ६ ॥

मू० एतासां कर्म्म वक्ष्यामि दोषप्रशमनञ्च यत् ।
अष्टानां च कुमाराणां श्रूयतां द्विजसत्तम ७ ॥

टी०। हे द्विजसत्तम! इन सबका कर्म्म जो सबके दोष छुड़ानेवाला है कहता हूँ सुनो पहिले आठौ पुत्रोंका वृत्तान्त कहताहूं ७ ॥

मू० दन्ताकृष्टिः प्रसूतानां बालानां दशनस्थितः।
करोति दन्तसंघर्षं चिकीर्षुर्दुःसहागमम् ८॥

टी०। कि दन्ताकृष्टि तो पैदाहुये लड़कों के दांत पर आकर दांत किटकिटाता है कि जिसके सबबसे वहांपर दुःसह भी आताहै ८॥

मू० तस्योपशमनं कार्य्यं सुप्तस्य तिलसर्षपैः।
शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ९॥

टी०। उसके नाश होने की यह यत्नकरे कि जब लड़का सोजावै तो मनुष्य उसके दांत पर और शय्यापर तिल और सरसों छिड़क दे ९॥

मू० सुवर्च्चसौषधीस्नानात्तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात्।
उष्ट्रकण्टकखड्गास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् १०॥

टी०। या सुन्दर तेजस्वी ओषधियों के जल से स्नान करावै या शत-चण्डी इत्यादि का पाठ करावै या ऊँट या गैंड़ा की हड्डी लड़के के गले में बांधदे और क्षौम अर्थात् रेशमी वस्त्र धारण करावै १०॥

मू० तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन्।
शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ११॥

टी०। और जो लड़का हर घड़ी बार २ तथास्तु यह बोलता रहै व मनुष्यों को शुभ अशुभ कर्मोंमें संयुक्त करै तो समझना चाहिये कि वह तथोक्ति के दोष से बोलता है ११॥

मू० तस्माददुष्टं माङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा।
दुष्टे श्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयो जनार्द्दनः १२॥

टी०। उसके छुड़ाने के वास्ते बुद्धिमानों को चाहिये कि हर समय मङ्गल और उत्तमवस्तु कहैं व दुष्टवस्तु कहने व सुननेपर जनार्द्दन भगवान् का नाम उच्चारण करना चाहिये १२॥

मू० चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता।
अन्यगर्भे परान् गर्भान् सदैव परिवर्त्तयन् १३॥

टी०। और चराचर के गुरु जो ब्रह्माजी हैं उनका पूजन करै और

जिसके जो कुलदेवता हों उनका भी पूजन करै तो तथोक्ति का दोष छूट जावै और जो दूसरे का गर्भ दूसरे के गर्भ में बदलता है १३ ॥

मू० रतिमाप्नोति वाक्यञ्च विवक्षोरन्यदेव यत्।
परिवर्त्तकसंज्ञोऽयं तस्यापि सितसर्षपैः १४ ॥

टी०। और उसीसे प्रसन्न होताहै व आनका आन बकवाताहै उसका नाम परिवर्त्तक है उसके दूर होनेके वास्ते श्वेत सरसों उस स्त्री पर छिड़कदे १४ ॥

मू० रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षां कुर्वीत तत्त्ववित्।
अन्यश्चानिलवन्नॄणामङ्गेषु स्फुरणोदितम् १५ ॥

टी०। और तत्त्वका जाननेवाला रक्षोघ्न मन्त्रका जप कराकर रक्षा करै और चौथा अङ्गधृक् जो वह मनुष्यों के अङ्गमें वायु के समान पैठ जाताहै जिससे मनुष्य के अङ्ग फड़कते हैं १५ ॥

मू० शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताडनम्।
काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यःश्वादेरङ्गगतोऽपिवा १६ ॥

टी०। और शुभाशुभ बातैं बकता है उसके दूर होनेके वास्ते मनुष्य के अङ्गपर कुशमारै और पांचवां जो शकुनि नामक है वह काग इत्यादि पक्षियों में प्रवेश करता है व कुत्ताआदिके अङ्गोंमें प्राप्तहोताहै १६ ॥

मू० शुभाशुभञ्च शकुनिः कुमारोऽन्यो ब्रवीति वै।
तत्रापि दुष्टे व्याक्षेपः प्रारम्भत्याग एव च १७ ॥

टी०। और वह शकुनि से दूषित अन्य कुमार शुभाशुभ कहताहै उस के बोलने के वक्त (यानी कुवाक्य बोलनेके वक्त) जो काम करते हों उस को छोड़दें और किसी कामका आरम्भ भी उस समय न करैं १७ ॥

मू० शुभे द्रुततरं कार्य्यमिति प्राह प्रजापतिः।
गण्डान्तेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्त्तार्द्धं द्विजोत्तम १८ ॥

टी०। और जब शुभ बोलै तो काम जल्द सिद्ध होता है यह बात प्रजापति की कहीहुई है और हे द्विजोत्तम! छठवां गण्डप्रान्तरति जो दुःसह का पुत्र है वह मनुष्यों के गण्डान्तयोगमें मुहूर्त्त के अर्द्धमात्र तक रहता है १८ ॥

मू० सर्व्वारम्भान् कुमारोति शमं तस्य निशामय।
विप्रोक्त्या देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज १९॥

टी०। वह सर्भारम्भको त्यागकरता है उसकी शान्ति सुनिये देवतों के स्तोत्र पाठ कराने से और अनिन्दित ब्राह्मणों के आशीर्वाद से और मूलनक्षत्र के शान्त करने से १६॥

मू० गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तदृक्षग्रहपूजनैः।
पुनश्च धर्म्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः २०॥

टी०। और गऊ के मूत्र और सरसों से स्नान कराने से और उसके नक्षत्र का जो ग्रहहै उसके पूजन करने से और धर्मोपनिषद् के पाठकरने से और शास्त्रों को देखने से २०॥

मू० अवज्ञया जन्मनश्च प्रशमं याति गण्डवान्।
गर्भं स्त्रीणां तथाऽन्यस्तु कललाशी सुदारुणः २१॥

टी०। और उस (बालक) के जन्म का उत्सव न करने से उसकी शान्ति होजाती है और उस गण्डान्तमें जन्म होनेका दोषभी छूटजाता है और दुःसह का सातवां पुत्र जो गर्भहा नाम है वह स्त्रियों के गर्भको नाश करदेता है उसका रूप भयानक है २१॥

मू० तस्य रक्षा सदा कार्य्या नित्यं शौचनिषेवणात्।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् २२॥

टी०। उसका दोष छुड़ाने के वास्ते सदा पवित्र रहना चाहिये और प्रसिद्ध मन्त्र लिखवाकर धारण करना चाहिये और श्रेष्ठ माला उस गर्भवती के गले में रखना चाहिये २२॥

मू० विशुद्धगेहावसथादनायासाच्च वै द्विज।
तथैव सस्यहा चान्यः सस्यर्द्धिमुपहन्ति यः २३॥

टी०। और ऐ द्विज! पवित्र घरमें उसको रहना चाहिये और परिश्रम इत्यादि उससे न कराना चाहिये और दुःसह का आठवां लड़का जिसका नाम सस्यहा है वह अन्न की वृद्धिमें विघ्न डालता है २३॥

मू० तस्यापि रक्षां कुर्व्वीत जीर्णोपानद्विधारणात्।
तथापसव्यगमनाच्चाण्डालस्य प्रवेशनात् २४॥

टी०। उसकी भी रक्षाके वास्ते पुराना जूता खेतमें रक्खै और दाहिनी तरफ़ से खेतको चौकेट दे और उसमें चाण्डाल का स्पर्श करादेवै २४॥

मू० बहिर्बलिप्रदानाच्च सोमाम्बुपरिकीर्त्तनात्।
परदारपरद्रव्यहरणादिषु मानवान् २५॥

टी०। या खेतके बाहर बलिप्रदान करै या चन्द्रमा या जलका स्तोत्र पाठ करदेवै और जो दूसरे की स्त्री या दूसरे का धन इत्यादि हरणकरने में मनुष्यों को २५॥

मू० नियोजयति चैवान्यान्कन्या सा च नियोजिका।
तस्याः पवित्रपठनात् क्रोधलोभादिवर्ज्जनात् २६॥

टी०। प्रवृत्त करती है वह दुःसह की प्रथम कन्या है जिसका नाम नियोजिका है उसकी शान्तिके वास्ते पवित्र स्तोत्र पाठ करावै और क्रोध और लोभादिक को छोंड़दे २६॥

मू० नियोजयति मामेषु विरोधाच्च विवर्ज्जनम्।
आक्रुष्टोऽन्येन मन्येत ताडितो वा नियोजिका २७॥

टी०। और समझै कि नियोजिका मुझको इन बातों में प्रवृत्त करती है इस वास्ते विरोध बातों को छोड़ दे यदि कोई गाली भी दे या मारे तौ भी यही समझै कि यह सब नियोजिका का दोष है २७॥

मू० नियोजयत्येनमिति न गच्छेत्तद्वशं बुधः।
परदारादिसंसर्गे चित्तमात्मानमेवच २८॥

टी०। और वही दूसरे को नियोजित अर्थात् प्रेरित करके गाली अथवा मार दिलाती है इसवास्ते ज्ञानी को चाहिये कि इसके वश में न होवै और परस्त्री के सम्भोग में अपने चित्त व मन को न फँसावै २८॥

मू० नियोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञोविचिन्तयेत्।
विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योःप्रीयमाणयोः २९॥

टी०। और ज्ञानियों को समझना चाहिये कि नियोजिका इस में मुझको मिलाती है और दुःसह की दूसरी लड़की जिसका नाम विरोधिनी है वह स्त्री पुरुषों की अत्यन्त प्रीति में भी विरोध करादेती है २९॥

मू० बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या।
विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्व्वीत बलिकर्म्मणा ३० ॥

टी०। और भाई बन्धु माता पिता व समानवर्णवाली स्त्री में पैदाहुये पुत्र इत्यादि में भी विरोध करा देती है उसकी शान्ति के वास्ते बलि कर्म्मादिक से रक्षा करना चाहिये ३० ॥

मू० तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात्।
धान्यं खलाद् गृहाद्गोभ्यः पयः सर्पिस्तथापरा ३१ ॥

टी०। इसीतरह झगड़ों से अलग रहकर शास्त्रोक्त पवित्र क्रियाओं को करना चाहिये और तीसरी कन्या जो खरिहान और घरसे भी अन्न और गऊ से दूध व घी ३१ ॥

मू० समृद्धिसिद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका।
सा स्वयंहारिकेत्युक्त्वा सदान्तर्धानतत्परा ३२ ॥

टी०। और द्रव्यादिक का हरण करके ऋद्धि और सिद्धि का हरण करती है उसका नाम स्वयंहारिकाहै वह सदा अन्तर्द्धान रहतीहै ३२ ॥

मू० महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितं तथा।
परिविष्यमाणञ्च सदा सार्द्धं भुङ्क्ते च भुञ्जता ३३ ॥

टी०। और रसोई या घर में अधपके अन्न को खानेवाले के साथ सदा आप खाती है ३३ ॥

मू० उच्छेषणं मनुष्याणां हरत्यन्नं च दुर्हरा।
कर्म्माराङ्गारशालाभ्यः सिद्ध्यृद्धी हरति द्विज ३४ ॥

टी०। और हे द्विज ! मनुष्यों के जूंठे अन्न को दुर्हरा हरती है और जिस घर में वास व अग्निहो उस घर की कोठरियोंसे ऋद्धि और सिद्धि को हरण करलेती है ३४ ॥

मू० गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयः क्षीरहारी सदैव सा।
दध्नो घृतं तिलात्तैलं सुरागारात्तथा सुराम् ३५ ॥

टी०। और गऊ और स्त्री के स्तन में से दूध और दही में से घी और तिलमें से तेल और मदिरा की भट्ठी में से हमेशा मदिरा हरलेती है ३५ ॥

मू० रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात्सूत्रमेवच ।
सा स्वयंहारिकानाम हरत्यविरतं द्विज ३६ ॥

टी०। और कुसुम में से रंग और कपासमें से सूत हेद्विज! वह स्वयंहारिका सदा हरण करलेती है ३६ ॥

मू० कुर्य्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमांस्त्रियम् ।
रक्षाश्चैव गृहे लेख्या वर्ज्या चोच्छिष्टता तथा ३७ ॥

टी०। इसकी रक्षाके वास्ते घरमें एक स्त्री की प्रतिमा और दोमोर नाम पक्षी व घर में रक्षावाले मन्त्र यन्त्र लिखना चाहिये और कभी जूंठा न रहै ३७ ॥

मू० होमाग्निदेवताधूपभस्मनां च परिष्क्रिया ।
कार्य्याक्षीरादिभाण्डानामेवंतद्रक्षणं स्मृतम् ३८ ॥

टी०। और होम करै और देवतों को अग्नि में धूप दे और उसी अग्नि की भस्म दूध इत्यादि के बर्तन में रख दे और स्त्री अपने स्तन पर मले ऐसा करने से वह दोष मिटजाता है ३८ ॥

मू० उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः ।
पुरुषस्य तु या प्रोक्ता भ्रामणी सा तु कन्यका ३९ ॥

टी०। और दुस्सह की चौथी कन्या जिसका नाम भ्रामणी है वह एकस्थान निवासी पुरुषों में प्रवेश करके उद्वेग पैदा करती है ३९ ॥

मू० तस्याथ रक्षां कुर्वीत विकिरैः सितसर्षपैः ।
आसने शयने चोर्व्यां यत्रास्ते स तु मानवः ४० ॥

टी०। इसकी रक्षा के वास्ते जहांपर वह मनुष्य रहता हो उसके आसन और बिछौने व पृथ्वीपर श्वेत सरसों छिटकाकर उसकी रक्षाकरै ४० ॥

मू० चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्टचेतना ।
भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तं समाधिना ४१ ॥

टी०। और उस मनुष्यको अपने चित्त में विचार करनाचाहिये कि मुझे भ्रामणी पापात्मा हैरान करती है और वारंवार समाधि से पृथ्वी का सूक्त जपै ४१ ॥

मू० स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तं सा तु कन्यका।
तथा प्रवृत्तं सा ज्ञेया दौःसहा ऋतुहारिका ४२॥

टी०। और दुःसह की पाँचवीं लड़की जिसका नाम ऋतुहारिका है वह स्त्रियों का ऋतु (मासिक धर्म्म) को हरण करती है चाहै वर्तमान हो या न हो ४२॥

मू० कुर्व्वीत तीर्थदेवौकश्चैत्यपर्व्वतसानुषु।
नदीसंगमखातेषु स्नपनं तत्प्रशान्तये ४३॥

टी०। उसकी रक्षा के वास्ते उस स्त्री को तीर्थ या देवालय या यज्ञ की शाला में या पर्व्वतों की चोटियों में या नदी के संगम या किसी खुदाये हुये कुण्ड में स्नान करावै ४३॥

मू० मन्त्रवित् कृततत्त्वज्ञः पर्व्वसूषसि च द्विज।
चिकित्साज्ञश्च वै वैद्यः संप्रयुक्तैर्वरौषधैः ४४॥

टी०। और हे द्विज! मन्त्र और तत्त्व के जानने वाले लोगों को चाहिये कि उसे पर्व्वों में व प्रातःकाल स्नान करावैं और चिकित्सा जानने वाले अच्छे वैद्यसे शास्त्रोक्त अच्छी औषधि दिलाकर उसकादोष छुड़ादेवैं ४४॥

मू० स्मृतिञ्चापहरत्यन्या स्त्रीणां सा स्मृतिहारिका।
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमो भवेत् ४५॥

टी०। और दुःसह की छठी कन्या जिसका नाम स्मृतिहरा है वह स्त्रियों की सुधि को हरा करती है उसकी शान्ति के वास्ते पवित्र स्थानों में उस स्त्री को रहना चाहिये ४५॥

मू० बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीषणा।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ४६॥

टी०। और सातवीं कन्या जिसका नाम बीजहरा है वह स्वप्न में स्त्री पुरुषों का बीज हरण करती है उसकी शान्ति के वास्ते पवित्र अन्न भोजन और स्नान करना चाहिये इस से वह मिटजाती है ४६॥

मू० अष्टमा द्वेषिणी नाम कन्या लोकभयावहा।
या करोति जनद्विष्टन्नरं नारीमथापि वा ४७॥

टी०। और आठवीं मनुष्यों को भयदायिनी कन्या जिसका नाम द्वेषिणी है वह मनुष्यों व स्त्रियों को द्वेष में प्रवृत्त करती है ४७॥

मू० मधुक्षीरघृताक्तांस्तु शान्त्यर्थं होमयेत्तिलान्।
कुर्व्वीत मित्रविन्दाञ्च तथेष्टिन्तत्प्रशान्तये ४८॥

टी०। उसकी शान्ति के वास्ते मधु (सहत) और दूध और घी से मिले हुये तिलों से होम करै और मित्रविन्दा की यज्ञ करै ४८॥

मू० एतेषान्तु कुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम।
अष्टत्रिंशदपत्यानि तेषां नामानि मे शृणु ४९॥

हे द्विज सत्तम! यह तो दुःसह के लड़के और लड़कियों का वृत्तान्त तुमसे कहा अब उन लड़के और लड़कियों के जो अड़तीस सन्तान हैं उनके नाम कहता हूं मुझ से सुनो ४९॥

मू० दन्ताकृष्टेरभूत् कन्या विजल्पा कलहा तथा।
अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पा तत्प्रशान्तये ५०॥

टी०। कि दन्ताकृष्टि के दो कन्या हैं एक विजल्पा दूसरी कलहा जो मनुष्यों को झूंठ और अपमान और दुष्ट बातों में प्रवृत्त कराती है वह विजल्पा है उस के दोष के शान्ति के वास्ते ५०॥

मू० तामेव चिन्तयेत्प्राज्ञः प्रयतश्च गृही भवेत्।
कलहा कलहं गेहे करोत्यविरतं नृणाम् ५१॥

टी०। बुद्धिमान् गृहस्थों को चाहिये कि पवित्र होकर विजल्पा का ध्यान करैं और वह कलहा जो मनुष्योंके घरमें सदैव लड़ाई करातीहै ५१॥

मू० कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय।
दूर्व्वाङ्कुरान्मधुघृतक्षीराक्तान् बलिकर्म्मणि ५२॥

टी०। और कुटुम्ब के नाश का कारण वही है उसकी शान्ति को सुनिये कि दूब के अंकुर मधु सहत और घी और दूध में भिगोकर वलिकर्म में धरै ५२॥

मू० क्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलं मित्रञ्च कीर्त्तयेत्।
भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानान्तु शान्तये ५३॥

टी०। व अग्नि में होम करे और घर में छिड़के और मित्र देवता का कीर्त्तन यानी नामोच्चारण करे और भूतों का पूजन कीर्त्तन मातृ गण के साथ करे जिसमें लड़कों की रक्षाहो ५३ ॥

मू० विद्यानां तपसांचैव संयमस्य यमस्य च।
कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्तिं कुर्व्वन्तु मे सदा ५४ ॥

टी०। और कहे कि मेरी बिद्या और तप और संयम और यम और खेती और वणिज के लाभ में आप लोग हमारी रक्षा सदा करें ५४ ॥

मू० पूजिताश्च यथान्यायं तुष्टिं गच्छन्तु सर्व्वशः।
कूष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसंज्ञिताः ५५ ॥

टी०। और यथायोग्यपूजित होकर कूष्माण्ड और यातुधान (राक्षस) इत्यादि जो और और गणहैं वे सब मेरी पूजा को ग्रहण करके मेरे ऊपर प्रसन्न रहें ५५ ॥

मू० महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च।
सर्व्व एते नृणां नित्यन्तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ५६ ॥

टी०। और श्रीमहादेवजी के प्रसादसे व महेश्वर के सम्मत से ये सब कोई इन लड़कों के ऊपर शीघ्र सन्तुष्टताको प्राप्तहोवैं ५६ ॥

मू० तुष्टाः सर्व्वे निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्ठितम्।
महापातकजं सर्व्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ५७ ॥

टी०। औरवे तुष्ट होकर सम्पूर्ण पाप औरदुष्कर्म इत्यादि महापातकों से उत्पन्न जो है कष्ट और और भी जो विघ्न के कारण हैं उन सब को नाश करें ५७ ॥

मू० तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तु सर्व्वशः।
उद्वाहेषु च सर्व्वेषु वृद्धिकर्म्मसु चैवहि ५८ ॥

टी०। और उन्हींके प्रसादसे विवाहादिक व शुभ कर्म्मों की वृद्धि में जो कुछ विघ्न हों वह सब नाश को प्राप्त होवैं ५८ ॥

मू० पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्चनेषु च।
जपयज्ञविधानेषु यात्रासु च चतुर्द्दश ५९ ॥

टी०। और पुण्य के अनुष्ठानवाले योगों में और गुरु और देवता के पूजन और यज्ञ और जप और यात्रा इत्यादि में जो चौदहभूतगणहैं ५६॥

मू० शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च।
वृद्धबालातुरेष्वेव शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ६० ॥

टी०। वे सब मेरे शरीरके आरोग्य में और भोगके योग्यपदार्थ और सुख और दान और धन और बाल और वृद्ध और रोगियों में मेरी सदा रक्षा करैं ६० ॥

मू० सोमाम्बुपौ तथाम्भोधिः सविता चानिलानलौ।
तथोक्तेःकालिजिह्वोऽभूत् पुत्रस्तालुनिकेतनः ६१ ॥

टी०। और चन्द्रमा, वरुण, समुद्र, सूर्य्य, वायु, अग्नि ये सब लोग भी मेरी रक्षा करैं और हे द्विज! तथोक्ति का पुत्र कलिजिह्वा नाम हुआ वहतालुपै रहा करता है ६१ ॥

मू० स येषां रसनासंस्थस्तांश्च साधून् विवादयेत्।
परिवर्त्तसुतौ द्वौ तु विरूपविकृतौ द्विज ६२ ॥

टी०। हे ब्रह्मन्! वह कलिजिह्वा जिनकी जीभ में प्रवेश करता है उनसे झगड़ा कराता है और परिवर्त्तकके दो पुत्र हुये एक का नाम विरूप दूसरे का नाम विकृत है ६२ ॥

मू० तौ तु वृक्षाग्रपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ।
गुर्व्विण्याः परिवर्त्तन्तौ कुरुतः पादपादिषु ६३ ॥

टी०। ये दोनों वृक्षके ऊपर और परिखा यानी खाई और छहर दिवाली और नदी इत्यादि जलाशय में रहते हैं और वृक्षादिकों में भी घूमते रहते हैं और गार्भिणी स्त्री के दुखदायी होते हैं ६३ ॥

मू० क्रौष्टुके परिवर्त्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः।
न वृक्षं चैव नैवाद्रिं न प्राकारं महोदधिम् ६४ ॥

टी०। हे क्रौष्टुकि! जो गर्भवती इन स्थानोंमें घूमती फिरती है उसका गर्भ दूसरे के पेट से बदल जाता है इसवास्ते गार्भिणी स्त्रीको वृक्षों में और पर्वत पर और छहरदिवाली व जलाशयों के किनारे पर ६४ ॥

मू० परिखां वा समाक्रामेदबलागर्भधारिणी।
अङ्गधृक् तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः ६५॥

टी०। और खाई में जाना न चाहिये और अंगधृक् ने पिशुन नाम पुत्रको पाया है ६५॥

मू० सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम्।
श्येनकाककपोतांश्च गृध्रोलूकौ च वै सुतान् ६६॥

टी०। वह अजितात्मा पुरुषों की चर्बी और हड्डी में प्राप्त होकर उन के बलको खाता है और बाज और कौआ और कबूतर और गिद्ध और उल्लू ये पुत्र ६६॥

मू० अवाप शकुनिःपञ्च जगृहुस्तान् सुरासुराः।
श्येनं जग्राह मृत्युश्च काकं कालो गृहीतवान् ६७॥

टी०। पांच शकुनी के पैदा हुये उनको देवता और दैत्योंने ग्रहण किया यानी रक्खा बाज़ को मृत्यु ने और कागको काल ने लिया ६७॥

मू० उलूकं निर्ऋतिश्चैव जग्राहातिभयावहम्।
गृध्रं व्याधिस्तदीशोऽथ कपोतं च स्वयं यमः ६८॥

टी०। और उल्लू जो अत्यन्त भयावनहै उसको निर्ऋतिने रक्खा और गिद्ध को व्याधिने कबूतर को उसकेस्वामी यमराजनेआपहीरक्खा ६८॥

मू० एतेषामेव चैवोक्ता भूताः पापोपपादने।
तस्माच्छ्येनादयो यस्य निलीयेयुः शिरस्यथ ६९॥

टी०। इन्हीं लोगोंके बोलने या स्पर्श करने से प्राणी पाप करने में प्रवृत्त होते हैं इसवास्ते बाज वगैरा पांचौ पक्षीजिसके शिरपरबैठैंतो६९॥

मू० तेनात्मरक्षणायालं शान्तिं कुर्य्याद् द्विजोत्तम।
गेहे प्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीडनिवेशनम् ७०॥

टी०। वह पुरुष अपनी रक्षाके वास्ते हे द्विजोत्तम! बहुत शान्तिकरै और ये पक्षी जिस घर में बच्चा दें या घोसला लगावैं तो ७०॥

मू० नरस्तं वर्जयेद्गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम्।
श्येनः कपोतो गृध्रश्च काकोलूकौ गृहे द्विज ७१॥

टी०। तो उस मनुष्य को चाहिये कि उस घरको छोड़दे व जिस घर के माथेपर कबूतर भी बैठे तो उस घरको छोड़देवै और हे द्विज! बाज या कबूतर या कौआ या गिद्ध या उल्लू जो घरमें ७१ ॥

मू० प्रविष्टाः कथयेदन्तं वसतां तत्र वेश्मनि।
ईदृक्परित्यजेद्गेहं शान्तिं कुर्य्याच्चपण्डितः ७२ ॥

टी०। पैठजाय तो जानना कि उस घरमें बसनेवालों का नाश बतलाता है इसवास्ते विद्वान् ऐसे घरको छोड़दे या उसकी शान्ति करै ७२ ॥

मू० स्वप्नेपि हि कपोतस्य दर्शनं न प्रशस्यते।
षडपत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा ७३ ॥

टी०। और स्वप्नमें भी कबूतरको देखना बुराहै और गण्डप्रान्त रति के छः पुत्र कहेजाते हैं ७३ ॥

मू० स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालांश्च मे शृणु।
चत्वार्य्यहानि पूर्व्वाणि तथैवान्यत् त्रयोदशम् ७४ ॥

टी०। वे सब स्त्रियों के रज में रहते हैं उनके वक्त मुझसे सुनो कि ऋतु शुरू होने के दिनसे चौथे दिनतक पहिला लड़का उसमें रहता है और दूसरा लड़का तेरहवें दिन उसमें रहता है ७४ ॥

मू० एकादशं तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने।
अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ७५ ॥

टी०। और तीसरा गेरहवें दिन और उसका चौथा लड़का दिनमें रति करने के समय वहां रहताहै और पांचवां श्राद्ध और दानके दिन उस रज-स्थानमें रहता है ७५ ॥

मू० पर्व्वस्वथान्यत् तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानि पण्डितैः।
गर्भहन्तुः सुतो विघ्नो मोहनी चापि कन्यका ७६ ॥

टी०। और छठवां पर्व्वों के दिन रजमें रहता है इसवास्ते पण्डित लोगों को इन पूर्वोक्त दिनों में स्त्रीगमन करना न चाहिये और गर्भहा का बेटा विघ्न नाम हुआ और कन्याभी मोहनी नाम हुई ७६ ॥

मू० प्रविश्य गर्भमत्येको भुक्त्वा मोहयतेऽपरा।

जायन्ते मोहनात्तस्याः सर्प्पमण्डूककच्छपाः ७७ ॥

टी०। वह विघ्न स्त्रीके गर्भ में पैठकर उस गर्भको खाजाता है और मोहनी भी गर्भको खाकर मोह यानी माया करदेती है कि जिस मोहन के सबब से सांप और मेंढक और कछुवा उस गर्भ से पैदा होतेहैं ७७ ॥

मू० सरीसृपाणि चान्यानि पुरीषमथवा पुनः।
षण्मासान् गुर्व्विणीं मांसमश्नुवानामसंयताम् ७८ ॥

टी०। अथवा सरीसृप यानी वृश्चिक या बहुतेरे नाग पैदा होतेहैं या उस गर्भको पुरीष यानी विष्ठा करदेतीहै हेविप्र! गर्भिणी स्त्रीको छःमहीने तक मांस न खाना चाहिये और असंयम रहना भी न चाहिये क्योंकि जो गर्भिणी मांस खाती है या असंयम से रहती है ७८ ॥

मू० वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे।
श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ७९ ॥

टी०। या रातको वृक्षकी छाया में या चौराहे या तिराहे या श्मशान में जातीहै या चटाई या जमीनपर सोतीहै या विना दुपट्टेके रहतीहै ७९ ॥

मू० रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेतामिमौ स्त्रियम्।
सस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ८० ॥

टी०। या आधीरात को रोतीहै उन स्त्रियों के गर्भ में वह विघ्न व मोहनी प्रवेश करजाती है इसवास्ते गर्भिणी स्त्रीको इन बातों और इन जगहों से दूर रहना चाहिये हे मुनि! सस्यहा के एक पुत्र क्षुद्रक नाम हुआ ८० ॥

मू० सस्यर्द्धिं स सदा हन्ति लब्ध्वा रन्ध्रं शृणुष्व तत्।
अमाङ्गल्यदिनारम्भे सुतृप्तो वपते च यः ८१ ॥

टी०। वह छिद्र पाकर सब काल में सस्य यानी अन्न को नाशकरता है उस छिद्र को सुनो अर्थात् बुरे दिनों या बुरे नक्षत्रों में तृप्तियुक्त जो खेत को बोताहै ८१ ॥

मू० क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसङ्गिषु।
तस्मात्कल्पः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्य निशाकरम् ८२ ॥

टी०। उसके सबब से वह क्षुद्रक पूर्णअन्न प्राप्ति होनेयोग्य खेतों में प्रवेश करता है इस वास्ते अच्छे दिन और अच्छी साइत में चन्द्रमा का पूजन करके समर्थ पुरुष ८२ ॥

मू० कुर्य्याद्दारम्भमुप्तिं च हृष्टस्तुष्टः सहायवान्।
नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ८३ ॥

टी०। प्रसन्न और सन्तुष्ट और सहायवान् होकर खेत बोना शुरूकरे और नियोजिका नाम कन्या दुःसह की जिसको मैं वर्णन करचुकाहूँ ८३॥

मू० जातं प्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम्।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तास्तु नवानार्य्यस्तु ताः सदा ८४ ॥

टी०। उसके चार कन्याहुईं पहिली का नाम मत्ता दूसरी का उन्मत्ता तीसरी का प्रमत्ता चौथीका नवा नाम हुआ इन चारौंका एकहीमें प्रचोदिका नाम है ८४ ॥

मू० समाविशन्ति नाशाय चोदयन्ति ह दारुणम्।
अधर्म्मं धर्म्मरूपेण कामञ्चाकामरूपिणम् ८५ ॥

टी०। क्योंकि वे मनुष्योंके शरीर में प्रवेश करके उनके नाशके वास्ते धर्मकी तरह अधर्म में फँसातीहैं और इच्छा रहित पुरुष के मनमें इच्छा पैदा करती हैं ८५ ॥

मू० अनर्थं चार्थरूपेण मोक्षञ्चामोक्षरूपिणम्।
दुर्विनीतान् विना शौचं दर्शयन्ति पृथङ्नरान् ८६ ॥

टी०। और अर्थ रूप से अनर्थमें और मोक्षको अमोक्ष में यानी मुक्ति वाले को अमुक्तिमें फँसाती हैं ये सब लड़कियाँ बुरे कामकी करनेवाली हैं जो अपवित्र रहताहै व जो नम्र नहीं हैं उनको अलग दिखा देतीहैं ८६॥

मू० भ्रंश्यन्त्याभिःप्रविष्टाभिः पुरुषार्थात् पृथङ्नरान्।
तासां प्रवेशश्च गृहे सन्ध्याख्ढे ह्युदुम्बरे ८७ ॥

टी०। और दुःसह की ये कन्याभी मनुष्यों को परमार्थ से छुड़ाकर अलग करदेती हैं इन लोगों का प्रवेश घरमें सन्ध्या के समय देहरी पै बैठने से होताहै ८७ ॥

मू० धाताविधात्रोश्च बलिर्यत्र कालेन दीयते।
भुञ्जतां पिबतां वापि सङ्गिभिर्जलविप्रुषैः ८८ ॥

टी०। जिस घरमें धाता और विधाता को बलि दिये विना मनुष्य भोजन करता है या पानी पीताहै उस भोजन या जल के साथ मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती हैं ८८ ॥

मू० नरनारीषु संक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते।
विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदको ग्राहकस्तथा ८९ ॥

टी०। और मनुष्यों व स्त्रियों के शरीर में इनसबों का प्रवेश शीघ्र होताहै और विरोधिनी के तीन पुत्र पैदाहुये पहिलेका नाम चोदक दूसरे का नाम ग्राहक ८९ ॥

मू० तमःप्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपं शृणुष्व मे।
प्रदीपतैलसंसर्गदूषिते लङ्घिते तथा ९० ॥

टी०। और तीसरे का नाम तमःप्रच्छादकहै इन लोगों का रूप याने वासस्थान जो है वह सुनो कि दीपक के तेलसे जो जगह भीगीहुई दूषित होतीहै और नांघी हुई चीजों में ९० ॥

मू० मूशलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः।
सूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्य तथासनम् ९१ ॥

टी०। और जहां स्त्रियाँ ऊखल या मूशल या खड़ाऊं या सूप या हँसियापर या पांव से खींचेहुये आसन वगैरह पर बैठती हैं ९१ ॥

मू० यत्रोपलिप्तस्नानर्च्ये विहारः क्रियते गृहे।
दर्व्वीमुखेन यत्राग्निराहृतोऽन्यत्रनीयते ९२ ॥

टी०। और जहां घर लीपने उपरान्त बिना देवतार्चन किये स्त्रियां चल फिर करती हैं या विहारकरती हैं और जहांपर करछुल से आग निकाल कर दूसरे को देती हैं ९२ ॥

मू० विरोधिनीसुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः।
एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणाञ्चालीकसत्यवान् ९३ ॥

टी०। इन्हीं जगहों पर पठायेहुये वे विरोधिनी के लड़के रहतेहैं एक तो स्त्री और पुरुषों के जीभ पर बैठकर झूंठ सच बकवाता है ९३ ॥

मू० चोदको नाम स प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुते गृहे।
अवधानगतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्म्मतिः ९४॥

टी०। उसका नाम चोदक है और वही घरमें चुगुलपना करताहै अब दूसरे का हाल सुनो जो दुर्बुद्धि छिपकर स्त्री और पुरुष के कान में रहता है ९४॥

मू० करोति ग्रहणन्तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः।
आकृष्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्म्मतिः ९५॥

टी०। और उन लोगों के वचनों को वह ग्रहण करता है उसीका नाम ग्राहक है और तीसरा दुर्बुद्धि मनुष्योंके मनको खींचकर तमोगुणसे आच्छादित करता है ९५॥

मू० क्रोधं जनयते यस्तु तमःप्रच्छादकस्तु सः।
स्वयंहार्य्यास्तु चौर्य्येण जनितन्तनयत्रयम् ९६॥

टी०। और जो क्रोध उत्पन्न करता है उसका नाम तमःप्रच्छादक है और स्वयंहारी के चौर्य्य से तीन पुत्र उत्पन्न हुये ९६॥

मू० सर्व्वहार्य्यर्द्धहारी च वीर्य्यहारी तथैव च।
अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ९७॥

टी०। प्रथम सर्व्वहारी दूसरा अर्द्धहारी तीसरा वीर्य्यहारी ये सब जिस घरमें लीपा पोता नहीं जाता और नेम निष्ठा भी नहीं होतीहै ९७॥

मू० अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महानसम्।
खलेषु गोष्ठेषु च वै द्रोहो येषु गृहेषु च ९८॥

टी०। और जहां बिना पांव धोयेहुये रसोई में जातेहैं और खरिहान और गोंड़ा और उस घरमें जहां परद्रोह होताहै ९८॥

मू० तेषु सर्व्वे यथान्यायं विहरन्ति रमन्ति च।
श्रामण्यास्तनयस्त्वेकः काकजङ्घ इति स्मृतः ९९॥

टी०। उन्हीं स्थानों में वह तीनों अपनी इच्छापूर्वक विहार व रमण करते हैं और श्रामणी के एकही पुत्र हुआ जिसका नाम काकजङ्घ ऐसा कहागया है ९९॥

मू० तेनाविष्टो रतिं सर्व्वो नैव प्राप्नोति वै पुरे।
भुञ्जन् यो गायते मैत्रे गायते हसते च यः १०० ॥

टी०। वह काकजङ्घ जिस मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है उसको नगर में किसी जगह आनन्द नहीं मिलता और जो मनुष्य खातेवक्त गाते या जो सूर्यदेवतावाले सन्ध्योपासनादि कर्ममें गाते या हँसतेहैं १००

मू० सन्ध्यामैथुनिनश्चैव न रमा विशति द्विज।
कन्यात्रयं प्रसूता सा या कन्या ऋतुहारिणी १०१ ॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! जो सन्ध्याकाल में मैथुन करतेहैं उनके शरीर में वह प्रवेश करता है और जो ऋतुहारिणी कन्याथी उसके तीन कन्या पैदाहुईं १०१ ॥

मू० एका कुचहरा कन्या अन्या व्यञ्जनहारिका।
तृतीया तु समाख्याता कन्यका जातहारिणी १०२ ॥

टी०। प्रथम कुचहरा दूसरी व्यञ्जनहारिका तीसरी कन्या का नाम जातहारिणी है १०२ ॥

मू० यस्या न क्रियते सर्व्वः सम्यग् वैवाहिको विधिः।
कालोतीतोऽथवा तस्या हरत्येका कुचद्वयम् १०३ ॥

टी०। और जिस स्त्रीका विवाह सम्यक् प्रकार की विधिसे सब नहीं होताहै या विवाह की साइत बीतने पर विवाह होताहै तो उस स्त्री के दोनों स्तनों को वह कुचहरा हरण करलेती है १०३ ॥

मू० सम्यक् श्राद्धमदत्त्वा च तथानर्च्य च मातृकाः।
विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जनन्तथा १०४ ॥

टी०। और सम्यक् प्रकार श्राद्ध या मातृगणों का पूजन किये बिना जिस कन्या का विवाह होता हैं उस कन्या की कान्ति को वह व्यञ्जन-हारिका हरण करलेती हैं १०४ ॥

मू० अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे।
अदीपशस्त्रमुशले भूतिसर्षपवर्ज्जिते १०५ ॥

टी०। और जिस प्रसूती (यानी जच्चा) के घर में अग्नि या जल या

धूप या दीप या कोई हथियार या मूशल इत्यादि न रहे और सरसों और विभूति भी न छिटकाई जाय १०५ ॥

मू० अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम्।
क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजते द्विज १०६ ॥

टी०। उस घर में वह जातहारिका प्रवेश करके उस लड़केको हरण करलेती है और हे ब्रह्मन्! वह लड़का एक क्षण में मरजाताहै तब उस को वहीं छोड़देती है १०६ ॥

मू० सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना।
तस्मात् संरक्षणं कार्य्यं यत्नतः सूतिकागृहे १०७ ॥

टी०। और वह जातहारिणी जिसकी सूरत भयावनी है और सदा मांसही खातीहै इसलिये उसकी रक्षा के वास्ते प्रसूती के घर में सम्यक् प्रकार से यत्न करके रक्षा करना चाहिये १०७ ॥

मू० स्मृतिञ्चाप्रयतानाञ्च शून्यागारनिषेवणात्।
अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः १०८ ॥

टी०। और जब प्रसूती का घर सूना रहता है तब प्रचण्ड नाम स्मृतिहरा का पुत्र उस घर में जाकर अपवित्र प्रसूती स्त्रियों की बुद्धिको हरण करलेता ह १०८ ॥

मू० पौत्रेभ्यस्तस्य सम्भूता लीकाः शतसहस्रशः।
चाण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः १०९ ॥

टी०। और उस प्रचण्ड के बेटों और पोतों से सैकड़ों, हजारों लीक पैदा हुये और आठ चाण्डालयोनिवाले पैदा हुये जो दण्ड और फांसी हाथ में लिये रहते हैं और बहुत भयावनी सूरत के हैं १०९ ॥

मू० क्षुधाविष्टास्ततोलीकास्ताश्चचाण्डालयोनयः।
अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम् ११० ॥

टी०। उसके बाद वे चाण्डालयोनिवाले लीक सब क्षुधा से व्याकुल होकर आपुसही में एक को एक खाने के वास्ते जब दौड़े ११० ॥

मू० प्रचण्डो वारयित्वा तु तास्ताश्चाण्डालयोनयः।

समये स्थापयामास यादृशे तादृशं शृणु १११॥

टी०। तब प्रचण्ड ने उन सबों को रोका और उन सबों का समय जिस तरह का स्थापन किया वैसा सुनो १११॥

मू० अद्यप्रभृति लीकानामावासं यो हि दास्यति।
दण्डन्तस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयम् ११२॥

टी०। प्रचण्ड ने कहा कि आजसे लीकोंको जो कोई रहने की जगह देगा उसको मैं बहुत दण्ड करूंगा कि यह बात निस्सन्देह जानो ११२॥

मू० चाण्डालयोन्यावसथे लीका या प्रसविष्यति॥
तस्याश्च सन्ततिः पूर्व्वा सा च सद्यो नशिष्यति ११३॥

टी०। चाण्डाल योनि के घर में जो लीका पैदा करैगी तो उन्हीं लीकों के दोष से उस स्त्री का वह लड़का और पहिले के पैदा हुये लड़के भी सब नाश होजावैंगे ११३॥

मू० प्रसूते कन्यके द्वेतु स्त्रीपुंसोर्व्वीर्य्यहारिणी।
वातरूपामरूपाच तस्याः प्रहरणन्तु ते ११४॥

टी०। और स्त्री और पुरुषके वीर्य्य को हरण करनेवाली जो बीजहारिका है उसके दो कन्या पैदा हुईं एक का नाम वातरूपा दूसरी अरूपा है इसके प्रवेश और छुड़ाने का यत्न कहताहूं सुनो ११४॥

मू० वातरूपानिषेकान्ते सान्यस्मै क्षिपते सुतम्।
स पुमान् वातशुक्रत्वं प्रयाति वनितापिवा ११५॥

टी०। जो पुरुष ऋतुवाली स्त्री में गर्भाधान करता है उस पुरुष के शरीर में वातरूपा प्रवेश करके उसको प्रमेहादिक का रोग पैदा करदेती है और पुत्र को अन्य के लिये निकाल डालती है और इसी तरह उस स्त्री के भी रोग होता है ११५॥

मू० तथैव गच्छतः सद्यो निर्व्वीर्य्यत्वमरूपया।
अस्नाताशी नरो योऽसौ तथा चापि वियोगिनः ११६॥

टी०। और उसीतरह जो पुरुष ऋतुमती स्त्री के निकट जाता है तो उस पुरुषके शरीर में वह अरूपा प्रवेश करके उसका वीर्य्य हरण करती

है और बिना नहाये जो मनुष्य खाता है व जो वियोगी है उस के वीर्य को वह अरूपा हर लेती है ११६॥

मू० विद्वेषिणी तु या कन्या भ्रुकुटी कुटिलानना।
तस्या द्वौ तनयौ पुंसामपकारप्रकाशकौ ११७॥

टी०। और विद्वेषिणी जो सर्व्वदा भौंह चढ़ाये रहती है उसके दो लड़के हुये एक का नाम मनुष्यों का अपकारक दूसरे का नाम प्रकाशक है ११७॥

मू० निर्बीजत्वं नरो याति नारी वा शौचवर्ज्जिता।
पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जननिषेवणम् ११८॥

टी०। जो स्त्री या पुरुष सर्वदाही अपवित्र रहते हैं और जो पुरुष नपुंसक हो रहे हैं और जो किसी की चुगुली करते हैं और जो दुष्टजनोंको सेवते हैं अथवा चञ्चल रहते हैं ११८॥

मू० पुरुषद्वेषिणश्चैतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः।
मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः ११९॥

टी०। और जो मनुष्य परद्रोह करते हैं इन्हीं पुरुषों के शरीर में वह दोनों प्रवेश करके टिकते हैं व माता और भ्राता और मित्र और प्रिय व गुरु इत्यादि स्वजन लोगों से भी ११९॥

मू० विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्म्मतोऽर्थतः।
एकस्तु स्वगुणाँल्लोके प्रकाशयति पापकृत् १२०॥

टी०। विरोध कराता है और मनुष्योंके अर्थ और धर्म्म को भी नाश करता है एक तो वह पापकारी है जो अपना गुण लोक में प्रकट करता है जिसका नाम प्रकाशक है १२०॥

मू० द्वितीयस्तु गुणान् मैत्रीं लोकस्थामपकर्षति।
इत्येते दौःसहाः सर्वे यक्ष्मणः सन्ततावथ॥
पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तमखिलं जगत् १२१॥

टी०। और दूसरा जो है अपकारक वह मनुष्य के गुण और संसार में प्राप्त मित्रता को खींचलेता है हे क्रौष्टुकि! यक्ष्मा के वंशमें यह सब

दुःसह की सन्तान जो महापातकी और दुष्टात्मा और सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं उनको मैंने वर्णन किया १२१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदौःसहोत्पत्तिसमापनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः५१ ॥

अथ बावनवां अध्याय ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥

मू० इत्येष तामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु १ ॥

टी० । मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि हे क्रौष्टुकि! अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माजीके तामस सर्गको तो मैं वर्णन करचुका अब रुद्रसर्ग का वर्णन करते हुये मुझसे सुनो १ ॥

मू० तनयाश्च तथैवाष्टौ पत्न्यः पुत्राश्च ते तथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः २ ॥

टी० । कि कल्प के आदि में ब्रह्माजीने अपने तुल्य पुत्रहोनेके वास्ते ध्यान किया तो आठ कन्या और आठ पुत्रोंको पैदा किया और वही आठों कन्या इन आठों कुमारों की स्त्री हुईं २ ॥

मू० प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ।
रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ३ ॥

टी० । हे द्विजोत्तम! उन आठों में से एक पुत्र नीललोहित अङ्गवाला जो ब्रह्माजी के हृदय से प्रकट हुआ वह दौड़ दौड़कर बड़े ऊँचेस्वर से रोनेलगा ३ ॥

मू० किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ४ ॥

टी० । तब ब्रह्माजीने रोतेहुये उस लड़के से कहा कि तुम क्यों रोते हो तब उसने संसार के स्वामी उन ब्रह्माजीसे कहा कि मेरा नाम रख दीजिये ४ ॥

मू० रुद्रस्त्वं देवनाम्नासि मारोदीर्धैर्य्यमावह ।

एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह ५ ॥

टी०। फिर ब्रह्माजी बोले कि हे देव! तुम मत रोवो धैर्य्यधरो तुम्हारा नाम रुद्र है इनके इतना कहने पर उसने सातबार रोया ५॥

मू० ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीःपुत्रांश्च वै द्विज ६॥

टी०। तब ब्रह्माजी ने उनको और सात नाम दिये और हे ब्राह्मण! उन आठों के जो जो स्थान हैं और उन आठों के जो स्त्री और पुत्र हुये उन सब के भी नाम सुनो ६॥

मू० भवं शर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ७॥

टी०। भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव इन नामोंको उन ब्रह्माने कहा ७॥

मू० चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषाञ्चकार ह।
सूर्य्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ८॥

टी०। इसतरह ये नाम करके फिर इन सबके स्थान नियतकिये भव का स्थान सूर्य्य, शर्वका जल, ईशान का पृथ्वी, पशुपति का अग्नि, भीम का वायु, उग्रका आकाश ८॥

मू० दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात्।
सुवर्च्चना तथैवोमा विकेशी चापरा स्वधा ९॥

टी०। और महादेव का चन्द्रमा, रुद्रजीका दीक्षित ब्राह्मण इसी क्रम से ये सब उन लोगों के स्थान हैं और उन सबकी स्त्रियों के नाम सुनो सुवर्च्चना, उमा, विकेशी, स्वधा ९॥

मू० स्वाहा दिशा तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम्।
सूर्य्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह १०॥

टी०। स्वाहा, दिशा, दीक्षा, रोहिणी, ये सब उन सबों की स्त्रियां हैं हे द्विजोत्तम! अब रुद्रादि नाम सहित सूर्य्यादिके पुत्रोंकेनाम सुनो १०॥

मू० शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः।

स्कन्दः सर्गोथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात् सुतः ११ ॥

टी०। शनैश्चर, शुक्र, मङ्गल, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान, बुध इसी क्रम से ये सब उनलोगों के बेटे हैं ११ ॥

मू० एवं प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्य्यामविन्दत।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् १२ ॥

टी०। इसीतरह इन रुद्रकी स्त्री सती थी जिसने दक्षके कोपसे अपने शरीर को त्याग दिया १२ ॥

मू० हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तम।
तस्या भ्राता तु मैनाकः सखाम्भोधेरनुत्तमः १३ ॥

टी०। हे द्विजोत्तम ! वही सती हिमवान् की लड़की हुई मेनाके गर्भ से उत्पन्न होकर पार्व्वती नाम कहलाई और पार्वती के भाई का नाम मैनाक है जो समुद्र का उत्तम सखा है १३ ॥

मू० उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः।
देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत १४ ॥

टी०। फिर पार्वतीजी का विवाह भगवान् महादेवजीही से हुआ और भृगु की स्त्री जो ख्याति नाम थी उसके दो देवता पुत्र हुये जिनका नाम धाता और विधाता हुआ १४ ॥

मू० श्रियश्च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या।
आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः १५ ॥

टी०। और सब देवों के देव जो नारायणजी हैं उनकी स्त्री लक्ष्मीजी पैदा हुई और आयति और नियति ये दोनों कन्या जो मेरु महात्माकी हैं १५

मू० धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्ज्जातौ सुतावुभौ।
प्राणश्चैव मृकण्डश्च पिता मम महायशाः १६ ॥

टी०। वही दोनों कन्या धाता और विधाता की स्त्री हुई उन दोनोंके एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ आयति के पुत्रका नाम प्राण और नियति के पुत्रका नाम मृकण्ड हुआ जो मेरा (अर्थात् मार्कण्डेयजी का) पिताहै और वे बड़े यशस्वी थे १६ ॥

मू० मनस्विन्यामहन्तस्मात् पुत्रो वेदशिरा मम।
धूम्रवत्यां समभवत् प्राणस्यापि निबोध मे १७॥

टी०। मृकण्ड का विवाह मनस्विनी से हुआ जिससे मैं पैदाहूं और मेरे पुत्रका नाम वेदशिरा है और प्राणकी स्त्री धूम्रवती नाम हुई उसके लड़कों के नाम मुझ से सुनो १७॥

मू० प्राणस्य द्युतिमान् पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः।
अजराश्च तयोः पुत्राः पौत्राश्च बहवोऽभवन् १८॥

टी०। उन प्राणके एक पुत्र का नाम द्युतिमान् दूसरे का नाम अजराहै उन दोनोंके भी बहुत से बेटे और पोते हुये १८॥

मू० पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत।
विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः १९॥

टी०। और मरीचिकी स्त्री सम्भूति नाम हुई जिसका बेटा पूर्णमास हुआ और उस महात्मा के बेटे विरजा और पर्वत नाम हुये १९॥

मू० तयोः पुत्रांस्तु वक्ष्येहं वंशसंकीर्त्तने द्विज।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा २०॥

टी०। हे द्विज! उन दोनों के पुत्रोंको वंशावलीवर्णन में कहूँगा और अङ्गिरा की स्त्री स्मृति नामहुई उसकी लड़कियों के नाम सुनो २०॥

मू० सिनीवाली कुहूश्चैव राका भानुमती तथा।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् २१॥

टी०। सिनीवाली, कुहू, राका, भानुमती, अनसूया जो अत्रिमुनिकी स्त्री थी जिसके सब लड़के पापरहित पैदाहुये २१॥

मू० सोमं दुर्व्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम्।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोन्यस्तत्सुतोऽभवत् २२॥

टी०। उसने चन्द्रमा और दुर्वासा और दत्तात्रेय योगीको पैदा किया और पुलस्त्य की स्त्री प्रीति नाम हुई जिसका पुत्र दत्त नाम हुआ २२॥

मू० पूर्व्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
कर्द्दमश्चार्व्ववीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् २३॥

टी०। वही पहिले जन्म में स्वायम्भुव मन्वन्तर में अगस्त्य कहलाते थे और कर्दम और अर्ववीर और सहिष्णु ये तीनोंपुत्र २३॥

मू० क्षमा तु सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः।
क्रतोस्तु सन्नतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत २४॥

टी०। पुलह प्रजापति के क्षमा नाम स्त्री से पैदा हुये और क्रतुकी स्त्री सन्नति नाम हुई जिससे बालखिल्य लोग पैदा हैं २४॥

मू० षष्टिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
उर्ज्जायान्तु वशिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः २५॥

टी०। यही लोग साठ हजार ऋषि ऊर्ध्वरेतस् याने वीर्य को ऊपर चढ़ानेवाले ब्रह्मचारी कहलाते हैं और वशिष्ठ के ऊर्ज्जानाम स्त्री से सात पुत्र पैदा हुये २५॥

मू० रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्व्वे सप्तर्षयः स्मृताः २६॥

टी०। रज १ गात्र २ ऊर्ध्वबाहु ३ सबल ४ अनघ ५ सुतपा ६ शुक्र ७ यही सब लोग सप्तर्षि कहलाते हैं २६॥

मू० योऽसावग्निरभिमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः।
तस्मात् स्वाहा सुताल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज २७॥

टी०। और ब्रह्मा के प्रथम पुत्र जो अग्नि अभिमानी देव हैं उनका विवाह स्वाहा से हुआ हे ब्रह्मन्! उनके भी तीन पुत्र बड़े प्रतापी हुये २७॥

मू० पावकं पवमानञ्च शुचिञ्चापि जलाशिनम्।
तेषान्तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च २८॥

टी०। पावक और पवमान और शुचि जो जल को भोजन करते हैं अर्थात् सोखलेते हैं उनके वंशमें और पैंतालीस सन्तान पैदा हुये २८॥

मू० कथ्यन्ते बहुशश्चैते पिता पुत्रत्रयञ्च यत्॥
एवमेकोनपञ्चाशद् दुर्ज्जयाः परिकीर्त्तिताः २९॥

टी०। ये बहुत कहेजाते हैं जो कि तीन पुत्र व पितासहित सबमिल कर इसतरह उनचास कहाये और महादुर्जय हुये २९॥

मू० पितरो ब्रह्मणः सृष्टा ये व्याख्याता मया तव।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ३० ॥

टी०। हे क्रौष्टुकि ! ब्रह्मा के पैदा किये हुये पित्तर लोगोंका वर्णन जो मैं तुम से करचुका हूं जो कि अग्निष्वात्त और बर्हिषद् और अनग्नि और साग्नि इत्यादि हैं ३० ॥

मू० तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ३१ ॥

टी०। उन पितरों से स्वधा के दो कन्या पैदाहुईं प्रथम मेना दूसरी धारिणी है हे द्विज ! वे दोनों कन्या परमयोगिनी और ब्रह्मकी जानने वाली हुईं ३१ ॥

मू० इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः।
श्रद्धावान् संस्मरन्नित्यं प्रजावानभिजायते ३२ ॥

टी०। यह दक्ष कन्याओं की सन्तान इस तरह से कहीगई श्रद्धावान् मनुष्य इसको नित्य याद करके पुत्रवान् होता है ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरुद्रसर्गविधानोनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२ ॥

अथ तिरपनवां अध्याय ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० स्वायम्भुवन्त्वयाख्यातमेतन्मन्वन्तरञ्चयत्।
तदहं भगवन् सम्यक्श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् १ ॥

टी०। क्रौष्टुकि ने कहा कि हे मुने ! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तर का वृत्तान्त कहा उसको मैं अच्छीतरह सुननेकी इच्छा रखता हूं कहिये १ ॥

मू० मन्वन्तरप्रमाणञ्च देवादेवर्षयस्तथा।
ये च क्षितीशा भगवन् देवेन्द्रश्चैव यस्तथा २ ॥

टी०। अर्थात् हे भगवन् ! मन्वन्तर का प्रमाण और उस समयमें जो देवता और देवर्षि और जो देवेन्द्र और राजा हुये उनका वृत्तान्त अलग अलग वर्णन कीजिये २ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० मन्वन्तराणांसंख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः।
मानुषेण प्रमाणेन शृणु मन्वन्तरञ्च मे ३॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि इकहत्तर चौयुगी का एक मन्वन्तर होताहै उसका प्रमाण मनुष्योंके वर्षके प्रमाणसे कहताहूँ मुझसे सुनो ३॥

मू० त्रिंशत्कोटयस्तुसंख्याताः सहस्राणि च विंशतिः।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ४॥

टी०। कि तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्ष मनुष्यों के एक मन्वन्तर में बीतते हैं ४॥

मू० मन्वन्तरप्रमाणञ्च इत्येतत् साधिकं विना।
अष्टौशतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ५॥

टी०। जियादह नहीं किन्तु यही मन्वन्तर का प्रमाण है और देववर्ष की संख्या से आठ लाख ५॥

मू० द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च।
स्वायम्भुवोमनुः पूर्वं मनुःस्वारोचिषस्तथा ६॥

टी०। बावन हजार वर्ष अधिक स्वायम्भुव मन्वन्तर का प्रमाण कहागया है पहला स्वायम्भुव मनु इसके बाद इसीतरह का स्वारोचिष मन्वन्तर का भी प्रमाण है ६॥

मू० औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।
षडेते मनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतोऽधुना ७॥

टी०। और औत्तम और तामस और रैवत और चाक्षुष इन छह मनु के बीतजाने पर वैवस्वतमन्वन्तर होताहै जो अब बीत रहा है ७॥

मू० सावर्णिःपञ्चरौच्यश्च भौत्याश्चागामिनस्त्वमी।
एतेषां विस्तरं भूयो मन्वन्तरपरिग्रहे ८॥

टी०। और सावर्णि और पञ्चरौच्य और भौत्य ये मन्वन्तर अब आवैंगे इन सबकी कथा मन्वन्तरोंके वर्णनमें विस्तारपूर्वक फिर कहूंगा ८॥

मू० वक्ष्ये देवानृषींश्चैव ये चेन्द्राः पितरश्च ये।

उत्पत्तिं संग्रहं ब्रह्मञ्छ्रूयतामस्य सन्ततिः ६ ॥

टी०। देवता और ऋषि और इन्द्र और पितर जो मन्वन्तरों में होते हैं उन सबकी उत्पत्तिका संग्रह और सन्तानभी कहताहूं हे ब्रह्मन्! सुनो ६ ॥

मू० यच्च तेषामभूत् क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम्।
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दशपुत्रास्तु तत्समाः १० ॥

टी०। और उन महात्माओं व उनके पुत्रोंकी जो स्त्रियां और जो पुत्र हुये उनको भी कहूँगा और स्वायम्भुव मनुके दश पुत्र अपने समानहुये १० ॥

मू० यैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपर्व्वता।
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ११ ॥

टी०। जिन लोगों ने इस पृथ्वी को सातों द्वीप और समुद्र और पर्व्वत और खानियों समेत अपने वशमें लाकर प्रत्येक खण्डमें राज्य किया ११ ॥

मू० स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्व्वमाद्ये त्रेतायुगे तथा।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च १२ ॥

टी०। पूर्व्वही त्रेतायुग के आदि स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रियव्रत के पुत्र स्वायम्भुव के पोतों ने सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य किया १२ ॥

मू० प्रियव्रतात् प्रजावत्यां वीरात् कन्या व्यजायत।
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः १३ ॥

टी०। और प्रियव्रतवीरसे प्रजावती स्त्रीमें कन्या पैदा हुई वह महाभाग्यवती कन्या कर्दम प्रजापति को दीगई १३ ॥

मू० कन्ये द्वे दशपुत्राश्च सम्राट् कुक्षी च ते उभे।
तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश १४ ॥

टी०। और प्रियव्रतके दो कुक्षि नामक कन्या और दश पुत्रहुये वे दशौ लड़के महाशूर और प्रजापति के समान हुये १४ ॥

मू० आग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यः सवनः सप्त एव ते १५ ॥

टी०। उनके नाम ये हैं आग्नीध्र १ और मेधातिथि २ और वपुष्मान् ३

ज्योतिष्मान् ४ द्युतिमान् ५ भव्य ६ सवन ७ वेही सात हैं १५ ॥

मू० मेधाग्निबाहुमित्राश्च तपोयोगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः १६ ॥

टी० । इन सब में छोटे जो मेधा और अग्निबाहु और मित्र नामक तप व योगमें परायण व जातिस्मर हुये इन तीनों महाभाग्यवानोंने राज्य में मन न लगाया योगी हुये १६ ॥

मू० प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ।
द्वीपेषु तेन धर्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे १७ ॥

टी० । तब राजा प्रियव्रतने उस धर्मसे उन सातों पुत्रोंको सातों द्वीप का राजा किया वे लोग सातों द्वीपका राज्य करनेलगे उन द्वीपोंके नाम मुझसे सुनो १७ ॥

मू० जम्बूद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान् पिता ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः १८ ॥

टी० । कि पिताने जम्बूद्वीप का राजा आग्नीध्र को किया और प्लक्ष द्वीपका भी राजा मेधातिथि को उनने किया १८ ॥

मू० शाल्मलेस्तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये ।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम् १९ ॥

टी० । शाल्मलिद्वीप का राजा वपुष्मान् को और कुशद्वीप का राजा ज्योतिष्मान्को और क्रौंच द्वीपका राजा द्युतिमान् को और शाकद्वीप का राजा भव्यको बनाया १९ ॥

मू० पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् सुतम् ।
मेधावी धातकिश्चैव पुष्कराधिपतेः सुतौ २० ॥

टी० । और पुष्करद्वीपका राजा सवन पुत्रको बनाया और पुष्करद्वीप के स्वामी सवन के दो पुत्र हुये मेधावी और धातकि २० ॥

मू० द्विधा कृत्वा तयोर्वर्षं पुष्करे सन्न्यवेशयत् ।
भव्यस्य पुत्राः सप्तासन्नामतस्तान्निबोध मे २१ ॥

टी० । सवन ने उस पुष्करद्वीपके दो भाग करके दोनों को उसमें बि-

ठलादिया और भव्य जो शाकद्वीप का राजा था उसके सात पुत्र हुये उन सब के नाम कहता हूँ मुझसे सुनो २१ ॥

मू० जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मनीवकः।
कुशोत्तरोऽथमोदाकी सप्तमस्तु महाद्रुमः २२ ॥

टी०। जलद १ कुमार २ सुकुमार ३ मनीवक ४ कुशोत्तर ५ मोदाकी ६ व सातवें महाद्रुम ७। २२ ॥

मू० तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकार सः।
तथा द्युतिमतः सप्त पुत्रास्तांश्च निबोध मे २३ ॥

टी०। उस राजा ने उस शाकद्वीप के सात भाग करके सातों पुत्रों को देदिया वह सातों भाग सात वर्ष इन्हीं लोगों के नाम से कहाने लगे और इसी तरह द्युतिमान् के भी सात पुत्रहुये उन सबके नाम सुनो जो द्युतिमान् क्रौंचद्वीप का राजाथा २३ ॥

मू० कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तमः परिकीर्त्तितः २४ ॥

टी०। कुशल १ मनुग २ उष्ण ३ प्राकार ४ अर्थकारक ५ मुनि ६ और सातवें दुन्दुभि ७ कहेगये हैं २४ ॥

मू० तेषां स्वनामधेयानि क्रौञ्चद्वीपे तथाभवन्।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे पुत्रनामाङ्कितानि वै २५ ॥

टी०। उन लोगों के नामानुसार वर्षोंका नाम क्रौञ्चद्वीप में मशहूर हुआ और ज्योतिष्मान् के कुशद्वीप में पुत्रों के नाम से २५ ॥

मू० तत्रापि सप्तवर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु।
उद्भिदं वैणवञ्चैव सुरथं लम्बनन्तथा २६ ॥

टी०। सात वर्ष उसमें भी हुये उन खण्डोंके नाम मुझसे सुनो उद्भिद १ वैणव २ सुरथ ३ और लम्बन ४। २६ ॥

मू० धृतिमत्प्राकारञ्चैव कापिलं चापि सप्तमम्।
वपुष्मतस्सुताः सप्त शाल्मलीशस्य चाभवन् २७ ॥

टी०। धृतिमत् ५ प्राकार ६ व सातवें कापिल ७ और वह वपुष्मान्

जो शाल्मलिद्वीप का राजा था उसके भी सात पुत्र हुये उन सब के भी नाम सुनो २७॥

मू० श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान् सप्तमस्तथा २८॥

टी०। श्वेत१ हरित २ जीमूत ३ रोहित ४ वैद्युत ५ मानस ६ और सातवें केतुमान् ७। २८॥

मू० तथैव शाल्मलेस्तेषां समनामानि सप्त वै।
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै २९॥

टी०। वह शाल्मलिद्वीप भी सात भाग होकर उन लोगोंके नाम से वर्ष मशहूर हुआ और प्लक्षद्वीप का राजा जो मेधातिथि था उसके भी सात पुत्रहुये २९॥

मू० एषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा।
पूर्व्वं शाकभवं वर्षं शिशिरन्तु सुखोदयम् ३०॥

टी०। उस प्लक्षद्वीपके भी सात भाग करके सातों पुत्रोंको देदिया और उन सबोंके नाम से वर्ष मशहूर हुआ उन लोगों के भी नाम सुनो पहला वर्ष शाकभव १ शिशिर २ सुखोदय ३। ३०॥

मू० आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवं तथा।
प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै ३१॥

टी०। आनन्द ४ शिव ५ क्षेमक ६ ध्रुव ७ हे मुनि! प्लक्ष और शाल्मलि और कुश और क्रौञ्च और शाक इन पांचों द्वीपों में ३१॥

मू० ज्ञेयः पञ्चसु धर्म्मश्च वर्णाश्रमविभागजः।
नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसाविधिवर्ज्जितः ३२॥

टी०। वर्णाश्रमोंका नित्य व स्वाभाविक धर्म्म पांचों द्वीपोंमें सदा बना रहता है हिंसा नहीं होती है ३२॥

मू० पञ्चस्वेतेषु वर्षेषु सर्व्वसाधारणः स्मृतः।
आग्नीध्राय पिता पूर्व्वं जम्बूद्वीपं ददौ द्विज ३३॥

टी०। और इन पांचों द्वीप में सब धर्म्म साधारण हैं हे ब्राह्मण!

जम्बूद्वीप को पहिले महाराज प्रियव्रत ने आग्नीध्रको देदिया २३ ॥

मू० तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव ।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोनुजः २४ ॥

टी० । उस महाराज आग्नीध्र के प्रजापति के समान नव पुत्र हुये उन में बड़े का नाम नाभि ऐसा हुआ और उनसे छोटे का नाम किंपुरुष हुआ २४ ॥

मू० हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
रम्यश्च पञ्चमः पुत्रो हिरण्यः षष्ठ उच्यते २५ ॥

टी० । तीसरे का हरिवर्ष चौथे का इलावृत पांचवें का रम्य छठें पुत्र का हिरण्य नाम हुआ २५ ॥

मू० कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः ।
नवमः केतुमालश्च तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः २६ ॥

टी० । उनमें सातवें का कुरु आठवें का भद्राश्व कहागया है नवेंका केतुमाल नाम हुआ और इन्हीं सबके नामानुसार जम्बूद्वीप में नववर्ष क़ायम हुये २६ ॥

मू० यानि किंपुरुषाख्यानि वर्ज्जयित्वा हिमाह्वयम् ।
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः २७ ॥

टी० । और किंपुरुषादि जो वर्ष हैं उनमें हिमनाम वर्ष छोड़कर और सब वर्षोंमें स्वाभाविक सिद्धि बनी रहती है विना यत्नही के सब जीव सुखी रहते हैं २७ ॥

मू० विपर्य्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।
धर्म्माधर्म्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः २८ ॥

टी० । उन लोगों को किसी प्रकार की विपत्ति और जरा और मृत्यु का डर नहीं होताहै और उनमें धर्म्म अधर्म नहीं है और न कोई उत्तम है न मध्यम न अधम है २८ ॥

मू० न वै चतुर्युगावस्था नार्त्तवा ऋतवो न च ।
आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत्सुतो द्विज २९ ॥

टी०। और इन सबमें युगकी भी अवस्था और ऋतु व ऋतुओं का धर्म्म भी नहीं होताहै और हे ब्रह्मन्! आग्नीध्र के बेटा महाराज नाभि नाम हुये और उनके बेटा ऋषभदेव हुये ३६॥

मू० ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ४०॥

टी०। और राजा ऋषभदेवके सौपुत्रहुये उन सबमें ज्येष्ठ व श्रेष्ठ भरत नामहुये उनको राजा ऋषभदेव ने राजगद्दी पर बैठालकर महासंन्यास में स्थितहुये ४०॥

मू० तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ४१॥

टी०। और हिमनाम दक्षिणवर्ष जो हिम से दक्षिणभाग में है उसको महाभाग भरत के पिताने भरत को देकर आप पुलहजी के आश्रम पर तप करने के वास्ते चलेगये ४१॥

मू० तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः।
भरतस्याप्यभूत्पुत्रः सुमतिर्नाम धार्म्मिकः ४२॥

टी०। तबसे उन महात्मा के नामसे यह भारतवर्ष कहलानेलगा और इसीको भारतखण्ड भी कहते हैं और उस राजा भरत के भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमति था वह बड़ा धर्म्मात्मा हुआ ४२॥

मू० तस्मिन् राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ।
एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ४३॥

टी०। राजा भरत भी सुमति को राज्य पै बिठाकर आप तप करने के वास्ते वनमें चलेगये राजा प्रियव्रत के इन्हीं बेटों और पोतोंने सातों द्वीप पृथ्वी का ४३॥

मू० प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे।
एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ४४॥

टी०। स्वायम्भुव मन्वन्तर में राज्य किया व प्रियव्रतके पुत्रोंने पृथ्वी का पालन किया और हे ब्रह्मन्! यही स्वायम्भुव सर्ग कहलाता है जो हमने तुमसे कहा ४४॥

मू० पूर्वमन्वन्तरे सम्यक् किमन्यत् कथयामि ते ४५॥

टी०। और सब मन्वन्तरों में प्रथम यही मन्वन्तर है सो जानो अब कहो और क्या सुनोगे सो मैं तुमसे कहूं ४५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमन्वन्तरकथनंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३॥

अथ चौवनवां अध्याय।

क्रौष्टुकिरुवाच॥

मू० कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्व्वता वा कति द्विज।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने १॥

टी०। क्रौष्टुकि ने कहा कि हे मुनि! कितने द्वीप और कितने समुद्र और कितने पर्व्वत और कितने वर्ष हैं और उनमें नदियां कौन कौन वहती हैं १॥

मू० महाभूतप्रमाणञ्च लोकालोकन्तथैवच।
पर्य्यासं परिमाणञ्च गतिञ्चन्द्रार्कयोरपि २॥

टी०। और महाभूत यानी पृथ्वीका प्रमाण और लोकालोक और उन सबके चारोंतरफ़ का प्रमाण और चन्द्रमा और सूर्य्य की गतिभी २॥

मू० एतत्प्रब्रूहि मे सर्व्वं विस्तरेण महामुने ३॥

टी०। हे महामुनि! मुझसे विस्तारपूर्व्वक यह सब वर्णन कीजिये३॥

मार्कण्डेयउवाच॥

मू० शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशो द्विज।
तस्य हि स्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ४॥

टी०। तब मार्कण्डेयजी कहने लगे कि हे द्विज! सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है उसके सम्पूर्ण स्थानों का वृत्तान्त मैं कहता हूं उसको सुनो ४॥

मू० एते द्वीपा मया प्रोक्ता जम्बूद्वीपादयो द्विज।
पुष्करान्ता महाभाग शृण्वेषां विस्तरं पुनः ५॥

टी०। हे द्विज! जो मैंने जम्बूद्वीप इत्यादिक पुष्कर पर्य्यंत इन द्वीपों को वर्णनकियाहै हे महाभाग! अब उसको विस्तारपूर्व्वक पृथक् पृथक् वर्णन करता हूँ सुनो ५॥

मू० द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपो जम्बूः प्लक्षोऽथशाल्मलिः।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ६॥

टी०। हे ब्राह्मण! पहिले द्वीप से दुगना दूसरा द्वीप और दूसरे से दुगुना तीसरा अर्थात् जम्बूद्वीप से दुगुना प्लक्ष और प्लक्ष से दुगुना शाल्मलि और शाल्मलि से दुगुना कुश और कुश से दुगुना क्रौंच और क्रौंच से दुगुना शाक और शाक से दुगुना पुष्कर द्वीप है ६॥

मू० लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धिभिः।
द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्या सर्व्वतः परिवेष्टिताः ७॥

टी०। इन द्वीपों को लवण और ऊख रस और मदिरा व दधि और दुग्ध और घृत और जलके समुद्र एक से एक दुगुने होकर चारों तरफ़ घेरेहुये हैं ७॥

मू० जम्बूद्वीपस्य संस्थानं प्रवक्ष्येहं निबोध मे।
लक्षमेकं योजनानां वृत्तौ विस्तरदैर्घ्यतः ८॥

टी०। अब मैं पहिले जम्बूद्वीप का प्रमाण कहता हूँ मुझ से सुनो कि गोलाकार एक लाख योजन लम्बा और चौड़ा है ८॥

मू० हिमवान् हेमकूटश्च ऋषभो मेरुरेव च।
नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी सप्तास्मिन् वर्षपर्व्वताः ९॥

टी०। इस द्वीप में सात वर्ष हैं और सातोंवर्षों में सात पर्व्वत हैं उन पर्व्वतों के ये नाम हैं—हिमवान् १ हेमकूट २ ऋषभ ३ मेरु ४ नील ५ श्वेत ६ शृङ्गी ७ यही सातों इसमें वर्षपर्व्वत हैं ९॥

मू० द्वौ लक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ।
तयोर्दक्षिणतोयौतु यौ तथोत्तरतो गिरी १०॥

टी०। इसके बीचमें और दो पर्व्वत हैं जिनका विस्तार लाख लाख योजन का है इन दोनों पर्व्वतों के उत्तर और दक्षिण जो दो दो पर्व्वत और हैं १०॥

मू० दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्तैः परस्परम्।
द्विसहस्रोच्छ्रयाः सर्व्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ११॥

टी०। वे सब आपस में दशदश हज़ार योजन लम्बाई में कम होते गये हैं और दोदो हज़ार योजन ऊँचे और उतनेही सब चौड़े हैं ११॥

मू० समुद्रान्तःप्रविष्टाश्च षडस्मिन् वर्षपर्व्वताः।
दक्षिणोत्तरतो निम्ना मध्ये तुङ्गा यथा क्षितिः १२॥

टी०। और इस द्वीप में छह वर्ष पर्व्वत हैं ये पूर्व्व और पश्चिम समुद्र के भीतर मिलेहुये हैं और ये सब पर्व्वत दक्षिण उत्तर नीचे और बीच में ज़मीन की तरह ऊँचे हैं १२॥

मू० वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे।
इलावृतस्तयोर्मध्ये चन्द्रार्द्धाकारवत् स्थितः १३॥

टी०। और भूमिरूपी वेदीके आधे भाग में तीन वर्ष उत्तर तीन वर्ष दक्षिण हैं और इनके बीच में इलावृत नाम वर्ष उन दोनों पर्व्वतों के बीच में विराजमान है व आधे चन्द्रमा के समान स्थित १३॥

मू० ततः पूर्व्वेण भद्राश्वः केतुमालश्च पश्चिमे।
इलावृतस्तु मध्ये तु मेरुः कनकपर्व्वतः १४॥

टी०। उसके पूर्व्व भद्राश्व और पश्चिम केतुमाल वर्ष है और इसी इलावृत के बीच में सोने का पर्व्वत है जिसको मेरु कहते हैं १४॥

मू० चतुरशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायो महागिरेः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तीर्णः षोडशैव तु १५॥

टी०। वह महापर्वत चौरासी हज़ार योजन ऊँचाहै औरसोलहहज़ार योजन पृथिवी में धँसा हुआहै और सोलह हज़ार योजन चौड़ा है १५॥

मू० शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः।
शुक्लः पीतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम् १६॥

टी०। और शराव (प्याले) के सदृश स्थित होनेसे चोटी इसकी बत्तीस हज़ार योजन चौड़ी है उस पर्व्वत का रंग पूर्व्व की तरफ़ श्वेत और दक्षिण की तरफ़ पीत और पश्चिम की तरफ़ नीला और उत्तर की तरफ़ लाल है १६॥

मू० विप्रो वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च स्ववर्णतः।
तस्योपरि तथैवाष्टौ पूर्व्वादिषु यथाक्रमम् १७॥

टी०। वह पर्व्वत अपनी रंगत से ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, क्षत्रिय चारों वर्णवाला क्रमसे है और उस पर्व्वत के ऊपर पूर्व्व इत्यादि आठों दिशा में क्रमसे आठों १७॥

मू० इन्द्रादिलोकपालानां तन्मध्ये ब्रह्मणः सभा।
योजनानां सहस्राणि चतुर्दशसमुच्छ्रिता १८॥

टी०। इन्द्रादि दिक्पालों का स्थान है इसके बीच में ब्रह्मसभा अर्थात् ब्रह्मलोक है और वह चौदह हजार योजन ऊँचा है १८॥

मू० अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्व्वताः।
प्राच्यादिषु क्रमेणैव मन्दरो गन्धमादनः १९॥

टी०। उसके नीचे दश हजार योजन ऊँचे क्रमसे पूर्व्व इत्यादि चारों दिशापर चार रोंकनेवाले पर्व्वतहैं उनकेनामसुनो—मन्दर,गन्धमादन१९॥

मू० विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादकशोभिताः।
कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बूर्वै गन्धमादने २०॥

टी०। विपुल और सुपार्श्व इन चारों पर्व्वतों के ऊपर ध्वजा समान चार वृक्ष हैं मन्दर पर कदम्बका वृक्षकेतु है और गन्धमादनपर जामुन का २०॥

मू० विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान्।
एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः २१॥

टी०। और विपुल के ऊपर पीपल का और सुपार्श्व के ऊपर बड़े बरगद का वृक्ष है इन पर्व्वतों का विस्तार ग्यारह सौ योजन है २१॥

मू० जठरो देवकूटश्च पूर्व्वस्यां दिशि पर्व्वतौ।
आनीलनिषधौ प्राप्तौ परस्परनिरन्तरौ २२॥

टी०। और जठर और देवकूट नाम पर्व्वत इसकी पूर्व्व दिशा में हैं और उन्हींके पास आनील और निषध नाम पर्व्वत हैं आनील जठर के पास और निषध देवकूट के पास अन्तररहित हैं २२॥

मू० निषधः पारियात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे।
यथापूर्व्वौ तथा चैतावानीलनिषधायतौ २३॥

टी०। निषध और पारियात्र ये दोनों पर्व्वत मेरु के पश्चिम तरफ़ में हैं जितना विस्तार जठर और देवकूट का है उतनाही आनील और निषध का भी है २३॥

मू० कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ २४॥

टी०। और कैलास और हिमवान् यह दोनों पर्व्वत मेरुके दक्षिण ओर हैं और पूर्व्व और पश्चिमकी तरफ़ लम्बेहैं और पूर्व्व और पश्चिम समुद्रके बीच तकहैं २४॥

मू० शृङ्गवाञ्जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्वतौ।
यथैव दक्षिणे तद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ २५॥

टी०। और शृङ्गवान् और जारुधि ये दोनों पर्व्वत मेरुपर्वत के उत्तर तरफ़ हैं जिसतरह इनके दक्षिण के पर्वत समुद्र में मिलेहुये हैं उसीतरह ये भी समुद्र के भीतर तक मिले हैं २५॥

मू० मर्य्यादपर्व्वता ह्येते कथ्यन्तेऽष्टौ द्विजोत्तम।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानां परस्परम् २६॥

टी०। हे द्विजोत्तम! यही आठों मर्य्यादपर्वत कहलाते हैं हिमवान् और हेमकूट इत्यादि पर्व्वतों का आपुस में २६॥

मू० नवयोजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम्।
मेरोरिलावृते तद्वदन्तरं वै चतुर्दिशम् २७॥

टी०। नव हजार योजन विस्तार व लम्बान है और मेरुके पूर्व्व दक्षिण इत्यादि चारों तरफ़ इलावृत के मध्यमें इतनाही अन्तर है २७॥

मू० फलानि यानि वै जम्ब्वा गन्धमादनपर्व्वते।
गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि २८॥

टी०। और गन्धमादन पर्वत पर जो जामुन का वृक्षहै उसके फल महाहाथी के बराबरहैं वे फल वृक्षसे टपक टपककर उस पर्वत्त की चोटी पर गिरते हैं २८॥

मू० तेषां स्रावात् प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै ।
यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते २९ ॥

टी० । उस फल से जो रस बहता है वही जम्बूनदी कहलाती है कि जिसमें जाम्बूनद नाम करके सोना पैदाहोता है २९ ॥

मू० सा परिक्रम्य वै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी ।
विशति द्विजशार्दूल पीयमाना जनैश्च तैः ३० ॥

टी० । और हे द्विजोत्तम! वह जम्बूनदी मेरुपर्वतके चारों तरफ़ घूम-कर फिर उसी जामुन के वृक्ष के नीचे जड़में पैठती है और वहांके रहने वाले लोग उसीका जल पीते हैं ३० ॥

मू० भद्राश्वेऽश्वशिरा विष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः ।
वाराहः केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ३१ ॥

टी० । और भद्राश्व वर्ष में हयग्रीव नाम विष्णु रहते हैं और भारत वर्ष में कूर्मरूप और केतुमालवर्ष में वाराहजी और उत्तर कुरुमें मत्स्य भगवान् रहते हैं ३१ ॥

मू० तेषु नक्षत्रविन्यासाद्विषयाः समवस्थिताः ।
चतुर्ष्वपि द्विजश्रेष्ठ ग्रहाभिभवपाठकाः ३२ ॥

टी० । हे द्विजोत्तम ! इन चारों खण्डों में भी नक्षत्रों के क्रमसे जो योजन है उसी आश्रय से देश अच्छीतरह से व्यवहारयुक्त बसते हैं और ग्रहशांति इत्यादिक वहांके लोग पढ़ा करतेहैं ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशेजम्बूद्वीपवर्णनंनामचतुः पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४ ॥

अथ पचपनवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० शैलेषु मन्दराद्येषु चतुर्ष्वेव द्विजोत्तम ।
वनानि यानि चत्वारि सरांसि च निबोध मे १ ॥

टी०। फिर मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम! मन्दरादि चारों पर्व्वतों पर चार वन और चार सरोवर जो हैं उनके नाम कहता हूँ मुझ से सुनो १॥

मू० पूर्व्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम्।
वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले २॥

टी०। कि पूर्व्व के पर्व्वत पर चैत्ररथ वन और दक्षिण के पर्व्वत पर नन्दन वन और पश्चिम पर वैभ्राज वन और उत्तरके पर्व्वत पर सावित्र वन है २॥

मू० अरुणोदं सरः पूर्व्वे मानसं दक्षिणे तथा।
शीतोदं पश्चिमे मेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ३॥

टी०। और पूर्व्व पर अरुणोद सरोवर और दक्षिण पर मानस नाम सरोवर और मेरुके पश्चिम शीतोद सरोवर और उत्तर तरफ़ महाभद्र नाम सरोवर हैं ३॥

मू० शीतार्त्तश्चक्रमुञ्जश्च कुलीरोथ सुकङ्कवान्।
मणिशैलोऽथवृषवान् महानीलो भवाचलः ४॥

टी०। और शीतार्त्त और चक्रमुञ्ज और कुलीर और सुकंकवान् और मणिशैल और वृषवान् और महानील और भवाचल ४॥

मू० सुबिन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा।
देवशैलश्च पूर्व्वेण मन्दरस्य महाचलाः ५॥

टी०। और सुबिन्दु और मन्दर व वेणु और तामस और निषध और देवशैल इत्यादि बड़ेभारी पर्व्वत मन्दर के पूर्व्व दिशामें हैं ५॥

मू० त्रिकूटःशिखराद्रिश्च कलिङ्गोथ पतङ्गकः।
रुचकः सानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान् ६॥

टी०। और त्रिकूट और शिखराद्रि और कलिङ्ग और पतङ्गक और रुचक और सानुमान् और ताम्रक और विशाखवान् ६॥

मू० श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान्।
एकशृङ्गो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ७॥

टी०। और श्वेतोदर और समूल और वसुधार और रत्नवान् और एकशृङ्ग और महाशैल और राजशैल और पिपाठक ७॥

मू० पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः।
इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ८॥

टी०। और पञ्चशैल और कैलास और अचलोत्तम हिमवान् ये सब महाचल मेरुके दक्षिण भाग में हैं ८॥

मू० सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्य्यः कपिलस्तथा।
पिञ्जरोऽथ महाभद्रः सुरसः कपिलो मधुः ९॥

टी०। और सुरक्ष और शिशिराक्ष और वैदूर्य्य और कपिल और पिञ्जर और महाभद्र और सुरस और कपिल और मधु ९॥

मू० अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डरश्चाचलोत्तमः।
सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः स शृङ्गवान् १०॥

टी०। और अञ्जन और कुक्कुट और कृष्ण और पर्वतोत्तम पाण्डर और सहस्रशिखर और पारियात्र और शृङ्गवान् १०॥

मू० पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः।
एतेऽचलाः समाख्याताः शृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ११॥

टी०। ये सब मेरु के पश्चिम पार्श्व में विष्कम्भ पर्व्वत के बाहर तरफ़ हैं ये पर्वत तो कहेगये अब मेरु के उत्तर तरफ़ के और पर्व्वत कहताहूं सुनो ११॥

मू० शङ्खकूटोथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः।
कपिलेन्द्रस्तथा शैलः सानुमान् नील एव च १२॥

टी०। शङ्खकूट और वृषभ और हंसनाभ पर्वत और कपिलेन्द्र और सानुमान् और नीलाचल १२॥

मू० स्वर्णशृङ्गी शातशृङ्गी पुष्पको मेघपर्व्वतः।
विरजाक्षो वराहाद्रिर्मयूरो जारुधिस्तथा १३॥

टी०। और स्वर्णशृङ्गी और शातशृङ्गी और पुष्पक और मेघ पर्वत और विरजाक्ष और वराहाद्रि और मयूर और जारुधि १३॥

मू० इत्येते कथिता ब्रह्मन् मेरोरुत्तरतो नगाः।
एतेषां पर्व्वतानान्तु द्रोण्योऽतीवमनोहराः १४॥

टी०। हे ब्रह्मन्! ये कहेहुये सब पर्व्वत मेरुके उत्तर भाग में हैं इन पर्व्वतोंकी खोह अत्यन्त मनोहर हैं १४॥

मू० वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः।
तासु पुण्यकृतां जन्म मनुष्याणां द्विजोत्तम १५॥

टी०। ये सब पर्व्वत वन और निर्म्मल जलयुक्त सरोवरों से परम शोभित हैं हे द्विजोत्तम! उन पुण्यभूमियों में पुण्यात्मा लोग जन्म पाते हैं १५॥

मू० एते भौमा द्विजश्रेष्ठ स्वर्ग्गाःस्वर्ग्गगुणाधिकाः।
न तासु पुण्यपापानामपूर्व्वाणामुपार्ज्जनम् १६॥

टी०। यह सब भूमिवाले स्वर्ग हैं किन्तु इनमें स्वर्ग से भी अधिक गुण हैं इन स्थानों में जो लोग रहते हैं उनको पूर्व्वजन्म के सिवाय और पाप और पुण्य नहीं व्यापता है १६॥

मू० पुण्योपभोगायैवोक्ता देवानामपि तास्वपि।
शीतान्ताद्येषु चैतेषु शैलेषु द्विजसत्तम १७॥

टी०। देवता लोग भी अपने पुण्य को इसी भूमि में आकर भोग करते हैं हे द्विजोत्तम! शीतान्त इत्यादि जो पर्व्वत हैं इन सबों में भी पुण्य भोगते हैं १७॥

मू० विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम्।
देवानाञ्च महावासा गन्धर्व्वाणां च शोभनाः १८॥

टी०। विद्याधर और यक्ष और किन्नर और उरग और रक्षोगण और देवता और गन्धर्व्वोंके बड़े सुन्दर वासस्थान हैं १८॥

मू० महापुण्या मनोज्ञैश्च सदैवोपवनैर्युताः।
सरांसि च मनोज्ञानि सर्व्वर्तुसुखदोऽनिलः १९॥

टी०। यह भूमि महापुण्या और मनोरम्य है और हमेशा उपवन और सुन्दर सुन्दर मनोहर सरोवरों से शोभित है और यहां की हवा सब ऋतुओं में सुखदायक है १९॥

मू० न चैतेषु मनुष्याणां वैमनस्यानि कुत्रचित् ।
तदेवं पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् २० ॥

टी० । और इन सब स्थानों में मनुष्यों को किसी समय उदासी नहीं होती है द्विजोत्तम ! यह पृथ्वी रूपी पद्म जिसके मैं चार पत्र कह चुका हूँ २० ॥

मू० भद्राश्वभारताद्यानि पत्रान्यस्य चतुर्दिशम् ।
भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम् २१ ॥

टी० । भद्राश्व और भारत इत्यादि जो वर्ष हैं वह इसके चारों ओर पत्र समान हैं और भारत नाम वर्ष मेरु पर्व्वत से दक्षिण है जो मैंने वर्णन किया है २१ ॥

मू० तत्कर्म्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः ।
एतत् प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम् २२ ॥

टी० । वही कर्म्मभूमि है अर्थात् पाप या पुण्य भारत ही में का किया हुआ भोगकरना होता है इसीवास्ते इसका नाम कर्म्मभूमि है दूसरे वर्षों में पुण्य या पाप नहीं प्राप्त होता है इसलिये सब वर्षों में भारत वर्ष को प्रधान जानना चाहिये जिसमें सब कर्म्म प्रतिष्ठित हैं २२ ॥

मू० तस्मात्स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि ।
तिर्य्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोति वै द्विज २३ ॥

टी० । इसवास्ते हे द्विज ! स्वर्ग अपवर्ग और मनुष्यता तिर्य्यक्त्वादि व नाना नारकिक योनियों में इसी भारत वर्ष ही में कर्म्म करने से मनुष्य जन्म पाते हैं २३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशोनाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५ ॥

अथ छप्पनवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० धराधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य च ।
ततः प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी १ ॥

टी०। फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि! जगत् के पैदा करने वाले जो श्रीनारायणजी हैं पृथ्वी के आधार रूप उनके चरण से जो त्रिपथगामिनी श्रीगङ्गादेवी उत्पन्न हुई हैं १॥

मू० सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम्।
ततः सम्बध्यमानार्करश्मिसङ्गतिपावनी २॥

टी०। वह गङ्गा सुधायोनि और जल के आधार जो चन्द्रमा हैं उनमें यानी चन्द्रमण्डल में प्रवेश करके बँधीहुई सूर्य्यकी किरण की सङ्गति से लोक की पवित्र करनेवाली हुई २॥

मू० पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ।
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्तीविवर्तिता ३॥

टी०। और वहां से बढ़ कर मेरु पर्वत पर आकर वहां चारधारा होकर बहनेलगीं और मेरुकूट के तटान्तों से गिरकर बहने लगीं ३॥

मू० विकीर्य्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा।
मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदकासमम् ४॥

टी०। और वहां पर गङ्गाजी का जल बहुत फैल गया फिर वहां से बगैर सहारे होकर मन्दर इत्यादि चारों पर्वतों पर होकर पृथक् पृथक् बराबर विभाग होकर जल बह चला ४॥

मू० चतुर्ष्वपि पपाताम्बु विभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया।
पूर्व्वासीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ५॥

टी०। और उन चारों पर्वतों पर जो गङ्गाजी का जल बड़े ज़ोर शोर से गिरा तो उन पहाड़ों के टुकड़े टुकड़े होकर बह गये और पूर्व तरफ़ जो धारा बहकर गई है उसका नाम सीता है वह चैत्ररथ वन में चलीगई ५॥

मू० तत्प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम्।
सीतान्तञ्च गिरिं तस्मात्ततश्चान्यान् गिरीन् क्रमात् ६॥

टी०। उस वनको जलमयी करके वरुणोद सरोवर में गिरी और वहां से सीतान्त पर्वत पर होकर क्रमसे और पर्वतों पर बहती हुई ६॥

मू० गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वाज्जलधिं गता।
तथैवालकनन्दाख्यं दक्षिणे गन्धमादने ७॥

टी०। पृथ्वी में आकर भद्राश्व खण्ड से होकर समुद्र में मिल गई उसी तरह दूसरी धारा अलकनन्दा नाम दक्षिण ओर गन्धमादन पर्व्वत पर आकर फिर वहां से ७॥

मू० मेरुपादवनं गत्वा नन्दनं देवनन्दनम्।
मानसं च महावेगात् प्लावयित्वा सरोवरम् ८॥

टी०। मेरुपाद पर्व्वत पर जाकर देवों को प्रसन्नकारक नन्दनवन में जलहीजल करती हुई बड़े वेग से मानससरोवर में पहुँची ८॥

मू० आसाद्य शैलराजानं रम्यं त्रिशिखरन्तथा।
तस्माच्च पर्व्वतान् सर्व्वान् दक्षिणोपक्रमोदितान् ९॥

टी०। फिर वहां से शैलराज पर्व्वत पर आकर सुन्दर त्रिशिखर पर्व्वत पर गई फिर वहां से चलकर क्रमसे दक्षिण के कहेहुये सब पर्व्वतों को ९॥

मू० तान्प्लावयित्वा संप्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम्।
दधार तत्र तां शम्भुर्न मुमोच वृषध्वजः १०॥

टी०। डुबोतीहुई हिमवान् महापर्व्वत पर आई वहां महादेवजीने उनको अपनी जटा में धारण करलिया और फिर न छोड़ा १०॥

मू० भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितो विभुः।
तत्र मुक्ता च शर्व्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम् ११॥

टी०। फिर जब राजा भगीरथ स्वामी ने शिवजी का व्रत और उपचार से पूजन स्तुति किया तब महादेवजीने प्रसन्न होकर उनको अपनी जटा से छोड़दिया तब फिर वहां से सातधारा होकर गङ्गाजी चली व दक्षिण समुद्र में मिलगई ११॥

मू० प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी।
भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेन दक्षिणाम् १२॥

टी०। और तीनधारा महानदी गंगाजी की उन देशोंको डुबातीहुई पूर्व्वदिशा को गई और एक धारा राजा भगीरथ के पीछे पीछे दक्षिण ओर को चली है १२॥

मू० तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी ।
स्वरक्षुरिति विख्याता वैभ्राजं साचलं ययौ १३ ॥

टी० । उसीतरह पश्चिम ओर श्रीगङ्गाजी महानदी बड़ेभारी पश्चिम पाद पर्वत पै होकर वैभ्राज नाम पर्वत को गईं जिनका नाम स्वरक्षु विख्यात हुआ १३ ॥

मू० शीतोदञ्च सरस्तस्मात् प्लावयन्ती महानदी ।
सुचक्षुः पर्व्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता १४ ॥

टी० । वहां से सब पानी पानी करती हुई शीतोदनाम सरोवरमें आईं फिर सुचक्षु पर्वत पर प्राप्तहोकर त्रिशिखपर्वत पर पहुँचीं १४ ॥

मू० तस्मात्क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ।
केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा लवणोदधिम् १५ ॥

टी० । वहां से वे गङ्गाजी क्रम से सब पर्व्वतों के शिखर पर होकर केतुमाल वर्षमें आकर क्षारसमुद्र में मिलगईं १५ ॥

मू० सुपार्श्वन्तु तथैवाद्रिं मेरुपादं हि सा गता ।
तत्र सोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम् १६ ॥

टी० । और अन्य धारा गङ्गाजी की सुपार्श्वपर्वत और मेरुपर्व्वत पर होकर सवितावन में गईं वहां उनका नाम सोमा हुआ १६ ॥

मू० तत् प्लावयन्ती संप्राप्ता महाभद्रसरोवरम् ।
ततश्च शङ्खकूटं सा प्रयाता वै महानदी १७ ॥

टी० । उस वनको जलमयी करती हुई महाभद्र नाम सरोवर में वहां से चलकर फिर शङ्खकूट पर्वत पर महानदी पहुँचीं १७ ॥

मू० तस्माच्च वृषभादीन् सा क्रमात्प्राप्य शिलोच्चयान् ।
महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान् कुरून् १८ ॥

टी० । वहां से वे गङ्गाजी वृषभादि पर्व्वतों को जाकर उत्तरकुरुक क्रम से जलहीजल करती हुई महासमुद्र में मिलगईं १८ ॥

मू० एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ ।
जम्बूद्वीपनिवेशश्च वर्षाणि च यथातथम् १९

टी०। हे द्विजोत्तम ! यह जो श्रीगङ्गाजी का निर्णयहै सो तो मैंने तुम से वर्णन किया और जम्बूद्वीप और वर्षों की कथाभी जिसतरह पर थी वह सब भी मैंने कही १९ ॥

मू० वसन्ति तेषु सर्वेषु प्रजाः किम्पुरुषादिषु।
सुखप्राया निरातङ्का न्यूनतोत्कर्षवर्ज्जिताः २० ॥

टी०। और हे क्रौष्टुकि ! किम्पुरुषादि वर्षोंमें न्यूनाधिक्य से रहित प्रजालोग निर्भय और सबकोई एकही तरह सुखीहो निवास करतेहैं २०॥

मू० नवस्वपिच वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।
एकैकस्मिंस्तथा देशे नद्यश्चाद्रिविनिस्सृताः २१ ॥

टी०। और नवों वर्षोंमें एक एक में सात सात कुलाचल पर्व्वतहैं और उन पर्व्वतों से निकली हुई बहुत सी नदियां हरएक देशमें बहती हैं २१ ॥

मू० यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम।
तेषूद्भिदानि तोयानि मेघवार्य्यत्र भारते २२ ॥

टी०। हे द्विजोत्तम ! किम्पुरुष इत्यादि आठ वर्षोंमें मनुष्योंको केवल पृथ्वीही से निकलेहुये जल विना किसी यत्न के प्राप्त होते हैं और इस भारतवर्ष में मेघके जल वर्षने से सब कुछ होताहै २२ ॥

मू० वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा।
कर्म्मजा च नृणां सिद्धिर्व्वर्षेष्वेतेषु चाष्टसु २३ ॥

टी०। और इन आठों वर्षों में वार्क्षी (वृक्षोंवाली) और स्वाभाविकी और देश्या और तोयोत्था और मानसी और कर्म्मजा नाम सिद्धियां मनुष्यों को प्राप्त होती हैं २३ ॥

मू० कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा।
स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी २४ ॥

टी०। जहां पर सब कामना वृक्षसे प्राप्त होती हैं वह वार्क्षी सिद्धि कहलाती है और जहां सब कामना स्वभावहीसे सिद्ध होती हैं वह स्वाभाविकी सिद्धि कहलाती है और जहां पर केवल देशही से सब कामना पूरी होती हैं वह देश्या सिद्धि कहाती है २४ ॥

मू० अपां सौक्ष्म्याच्च तोयोत्था ध्यानोपेता च मानसी ।
उपासनादिकार्य्या तु कर्म्मजा साप्युदाहृता २५ ॥

टी० । और जहां पर जलाभिमानी देवता से सब कामना पूर्ण होतीहै वह तोयोत्था सिद्धि कहलाती है और जहां ध्यान करके सब कामना सिद्ध होती है वह मानसी सिद्धि कहलाती है और जहां उपासना इत्यादि करने से कामना पूर्ण होती है वह भी कर्म्मजा सिद्धि कहलाती है २५ ॥

मू० न चैतेषु युगावस्था नाधयो व्याधयो न च ।
पुण्यापुण्यसमारम्भो नैव तेषु द्विजोत्तम २६ ॥

टी० । और हे द्विजोत्तम ! इन वर्षों में युगोंकी अवस्था और आधि अर्थात् मानसी पीड़ा और व्याधि अर्थात् रोग इत्यादि देहपीड़ा और पाप और पुण्य का प्रारम्भ कुछ नहीं होताहै २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेगङ्गावतारोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सत्तावनवां अध्याय ॥

क्रौष्टुकिरुवाच ॥

मू० भगवन् कथितन्त्वेतज्जम्बूद्वीपं समासतः ।
यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म नान्यत्र पुण्यदम् १ ॥

टी० । क्रोष्टुकि ने कहा कि हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का वृत्तान्त तो आप ने संक्षेपसे वर्णन किया पर यह बात जो कही कि पुण्य देनेवाला कर्म्म अन्यत्र नहीं है १ ॥

मू० पापाय वा महाभाग वर्ज्जयित्वा तु भारतम् ।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते २ ॥

टी० । या हे महाभाग ! पाप देनेवाला कर्म्म सिवाय भारतवर्ष के और दूसरे वर्षों में नहीं है केवल भारतखण्डही में कर्म्म करने से स्वर्ग और मोक्ष और जन्म और मरण मनुष्यों को होताहै २ ॥

मू० न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते ।
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन् ममैतद्भारतं वद ३ ॥

टी०। जिस कारणसे और भूमि में मनुष्यों के लिये कुछ कर्म्म नहीं कहागयाहै हे ब्रह्मन्! इसलिये इस भारतखण्ड को जो कर्म्मभूमि कहलाताहै विस्तारपूर्वक मुझ से वर्णन कीजिये ३॥

मू० ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत् स्थितिरेव च।
वर्षोयं द्विजशार्दूल ये चास्मिन् देशपर्व्वताः ४॥

टी०। और हे द्विजश्रेष्ठ! इसके जो जो भेद जितने हैं और जिसप्रकार यह वर्ष स्थित है और इसमें जितने देश और जितने पर्व्वत हैं वह भी वर्णन कीजिये ४॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोध मे।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ५॥

टी०। तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे क्रौष्टुकि! इस भारतवर्ष के नव भेदहैं उनको मुझ से सुनो कि यह नवों भेद समुद्रों के बीचमें हैं और सब वर्ष आपुस में एक से एक अगम्य हैं ५॥

मू० इन्द्रद्वीपः केशरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्व्वो वारुणस्तथा ६॥

टी०। इन्द्रद्वीप १ केशरूमान् २ ताम्रवर्ण ३ गभस्तिमान् ४ नागद्वीप ५ सौम्य ६ गान्धर्व्व ७ और वारुण ८। ६॥

मू० अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपःसागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ७॥

टी०। उन सब में यह भारत नवम द्वीप अत्यन्त उत्तम है जो सागर से आच्छादित है और उत्तर से दक्षिण तक यह द्वीप हज़ार योजन चौड़ा है ७॥

मू० पूर्व्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तःस्थिता द्विज ८॥

टी०। और इसके पूर्व्व तरफ़ के अख़ीर में किरातलोग बसते हैं और पश्चिम दिशा के अन्त में यवन लोग बसते हैं और हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इस वर्ष के बीच में बसते हैं ८॥

मू० इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्म्मभिः कृतपावनाः।
तेषां संव्यवहारश्च एभिःकर्म्मभिरिष्यते ९॥

टी०। और यज्ञ और वेदपाठ और वाणिज्य इत्यादि कर्म्मोंसे ब्राह्मणादि चारों वर्ण पवित्रकारक कियेगये हैं और इन्हीं कर्म्मों से उन लोगों का व्यवहार भी चलता है ९॥

मू० स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापञ्च वै तदा।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः १०॥

टी०। और उस वक्त स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति और पुण्य और पाप भी इन्हीं कर्म्मों से इन लोगों को होता है अब इस वर्ष में जो जो पर्व्वत हैं उनके नाम सुनो—महेन्द्र १ मलय २ सह्य ३ शुक्तिमान् ४ ऋक्ष ५।१०॥

मू० विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः।
तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ११॥

टी०। विन्ध्य ६ और पारियात्र ७ ये सात इस में कुलाचल हैं और इन सब के पास और और भी हजारों पहाड़ हैं ११॥

मू० विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः।
कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः १२॥

टी०। उन में भी बड़े बड़े लम्बे चौड़े बहुतेरे रमणीय पर्व्वत हैं जिनकी विचित्र चोटियां हैं उनके नाम कहता हूँ सुनो—कोलाहल और वैभ्राज और मन्दर और दर्दुराचल १२॥

मू० वातस्वनो वैद्युतश्च मैनाकः स्वरसस्तथा।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरी रोचनः पाण्डुराचलः १३॥

टी०। और वातस्वन और वैद्युत और मैनाक और स्वरस और तुङ्गप्रस्थ और नागगिरि और रोचन और पाण्डुराचल १३॥

मू० पुष्पो गिरिर्दुर्ज्जयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च।
ऋष्यमूकश्चगोमन्तः कूटशैलः कृतस्मरः १४॥

टी०। और पुष्पगिरि और दुर्ज्जयन्त और रैवत और अर्व्बुद और ऋष्यमूक और गोमन्त और कूटशैल और कृतस्मर १४॥

मू० श्रीपर्व्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्व्वताः।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्य्याश्च भागशः १५॥

टी०। और श्रीपर्व्वत और चकोर इत्यादि पर्व्वत हैं और सिवाय इनके और भी सैकड़ों पर्व्वत इस भारतवर्ष में हैं उन पर्व्वतों से मिले हुये देशके म्लेच्छ और विभाग से आर्य्य याने श्रेष्ठजनों सहित यह वर्ष है १५॥

मू० तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ् निबोध मे।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा १६॥

टी०। और इस वर्ष में जो जो श्रेष्ठ नदियां बहती हैं उनको अच्छी तरह मुझ से सुनो कि जिनका जल वे लोग पीते हैं गङ्गा और सरस्वती और सिन्धु और अन्य चन्द्रभागा १६॥

मू० यमुना च शतद्रुश्च वितस्तैरावती कुहुः।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती १७॥

टी०। और यमुना और शतद्रु और वितस्ता और ऐरावती और कुहु और गोमती और धूतपापा और बाहुदा और दृषद्वती १७॥

मू० विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा।
कौशिकी चापगा विप्र हिमवत्पादनिःसृता १८॥

टी०। और हे विप्रजी! विपाशा देविका रंक्षु निश्चीरा गण्डकी कौशिकी इत्यादि नदियां सब हिमवान्के समीपवाले पर्व्वतसे निकलीहैं १८

मू० वेदस्मृतिर्व्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च।
वेण्वासा नन्दनी चैव सदानीरा मही तथा १९॥

टी०। और वेदस्मृति और वेदवती और वृत्रघ्नी और सिन्धु और वेण्वासा और नन्दनी और सदानीरा और मही १९॥

मू० पारा चर्म्मण्वती नूपी विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिप्रा ह्यवर्णी च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः २०॥

टी०। और पारा और चर्म्मण्वती और नूपी और विदिशा और वेत्रवती और शिप्रा और अवर्णी ये सब नदियां पारियात्र पर्व्वत से निकली हुई कहीजाती हैं २०॥

मू० शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुरथाद्रिजा।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा २१ ॥

टी०। और शोण और महानद और नर्म्मदा और सुरथा और अद्रिजा और मन्दाकिनी और दशार्णा और अन्य चित्रकूटा २१ ॥

मू० चित्रोत्पला च तमसा करमोदा पिशाचिका।
तथान्या पिप्पलिश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी २२ ॥

टी०। और चित्रोत्पला और तमसा और करमोदा और पिशाचिका और पिप्पलिश्रोणी और विपाशा और वञ्जुला नदी २२ ॥

मू० सुमेरुजा शुक्तिमती सकुली त्रिदिवा क्रमुः।
स्कन्धपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी २३ ॥

टी०। और सुमेरुजा और शुक्तिमती और सकुली और त्रिदिवा और क्रमु और स्कन्धपादप्रसूता और वेगवाहिनी २३ ॥

मू० शिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी च निषधावती।
वेण्या वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती २४ ॥

टी०। और शिप्रा और पयोष्णी और निर्विन्ध्या और तापी और निषधावती और वेण्या और वैतरणी और सिनीवाली और कुमुद्वती २४ ॥

मू० करतोया महागौरी दुर्गा चान्तःशिरा तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः २५ ॥

टी०। और करतोया और महागौरी और दुर्गा और अन्तःशिरा ये सब नदियां विन्ध्य पर्व्वत से निकली हैं इन सबका जल अत्यन्त पवित्र व उत्तम है २५ ॥

मू० गोदावरी भीमरथा कृष्णा वेण्वा तथापरा।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्या कावेर्य्यथापगा २६ ॥

टी०। और गोदावरी और भीमरथा और कृष्णा और वेण्वा और तुङ्गभद्रा और सुप्रयोगा और वाह्या और कावेरी नदी २६ ॥

मू० सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताःसरिदुत्तमाः।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा चोत्पलावती २७ ॥

टी०। सब नदियों में ये उत्तम नदियां सह्यनाम पर्व्वतसे निकली हैं और कृतमाला और ताम्रपर्णी और पुष्पजा और उत्पलावती २७॥

मू० मलयाद्रिसमुद्भूता नद्यः शीतजलास्त्विमाः।
पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या २८॥

टी०। ये सब नदियां मलयाचल पर्व्वत से निकली हैं इन सबका जल अत्यन्त शीतल है और पितृसोमा और ऋषिकुल्या और इक्षुका और जो त्रिदिवा है २८॥

मू० लाङ्गूलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।
ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी २९॥

टी०। और लांगूलिनी और वंशकरा ये सब महेन्द्र पर्व्वत से निकली हुई कही गई हैं और ऋषिकुल्या और कुमारी और मन्दगा और मन्दवाहिनी २९॥

मू० कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्याः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ३०॥

टी०। और कृपा और पलाशिनी इन सब नदियों की उत्पत्ति शुक्तिमान् नाम पर्व्वत से कही गई है ये सब नदियां अतिपुण्या व प्रवाहवती हैं और सब गङ्गा में मिलकर समुद्र में मिली हैं ३०॥

मू० विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वपापहराः स्मृताः।
अन्याःसहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम ३१॥

टी०। और ये सब संसार की माता हैं और सम्पूर्ण पापों को हरण करनेवाली हैं और हे द्विजोत्तम! इस भारतवर्ष में और भी हजारों छोटी छोटी नदियां कही गई हैं ३१॥

मू० प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः।
मत्स्याश्च कूटाः कुल्याश्च कुन्तलाःकाशिकोशलाः ३२॥

टी०। और इन नदियों में कितनी तो केवल वर्षा ऋतु में बहती हैं और कितनी सदा कालसे बहती हैं और मत्स्य देश और कूटा और कुल्या और कुन्तल और काशी और कोशला ३२॥

मू० अथर्व्वाश्चार्कलिङ्गाश्च मलकाश्च वृकैः सह।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ३३॥

टी०। और अथर्व्व और अर्कलिंग और मलक और वृक ये सब देश प्रायः मध्यदेश कहलाते हैं ३३॥

मू० सह्यस्य चोत्तरे यातु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ३४॥

टी०। और सह्य पर्व्वत के उत्तर तरफ़ जहां गोदावरी नदी बहती है वह देश सब पृथ्वीभर में भी अत्यन्त मनोरम है ३४॥

मू० गोवर्द्धनं पुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः।
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ३५॥

टी०। और शुक्राचार्य्य महात्मा का जो गोवर्द्धन नाम पुर है वह भी अतिशय रमणीय है और वाह्लीक और वाटधान और आभीर और काल-तोयक ३५॥

मू० अपरान्ताश्च शूद्राश्च पल्लवाश्चर्म्मखण्डिकाः।
गान्धारा गवलाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ३६॥

टी०। और अपरान्त और शूद्र और पल्लव और चर्म्मखण्डिक और गान्धार और गवल और सिन्धु और सौवीर और भद्रक ३६॥

मू० शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः।
माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः ३७॥

टी०। और शतद्रुज और कलिङ्ग और पारद और हारभूषिक और माठर और बहुभद्र और कैकेय और दशमालिक ३७॥

मू० क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च।
काम्बोजा दरदाश्चैव वर्व्वरा हर्षवर्द्धनाः ३८॥

टी०। इन सब देशों में क्षत्रिय और वैश्य और शूद्र जातिवाले लोग बसते हैं और काम्बोज और दरद और वर्व्वर और हर्षवर्द्धन ३८॥

मू० चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुला बाह्यतोनराः।
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च कशेरुकाः ३९॥

टी०। और चीन और तुषार और बहुल और बाह्यतोनर और आत्रेय और भरद्वाज और पुष्कल और कशेरुक ३९॥

मू० लम्पाकाः शूलकाराश्च चुलिका जागुडैः सह।
औषधाश्चानिभद्राश्च किरातानाञ्च जातयः ४०॥

टी०। और लम्पाक और शूलकार और चुलिक और जागुड और औषध और अनिभद्र इन देशों में किरात लोग रहते हैं ४०॥

मू० तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तुङ्गनास्तथा।
शूलिकाः कुहकाश्चैव ऊर्णा दर्व्वास्तथैव च ४१॥

टी०। और तामस और हंसमार्ग और काश्मीर और तुङ्गन और शूलिक और कुहक और ऊर्ण और दर्व्व ४१॥

मू० एते देशा ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोध मे।
अध्रारका मुद्करा अन्तर्गिर्य्या बहिर्गिराः ४२॥

टी०। इतने देश भारतखण्ड के उत्तर में कहलाते हैं और पूर्व्व दिशा में जो जो देश हैं उनको कहताहूँ मुझसे सुनो अध्रारक और मुद्कर और अन्तर्गिर्य और बहिर्गिर ४२॥

मू० तथा प्रवङ्गा रङ्गेया मानदा मानवर्त्तिकाः।
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा ज्ञेयमल्लकाः ४३॥

टी०। इसी तरह प्रवङ्ग और रङ्गेय और मानद और मानवर्त्तिक और ब्रह्मोत्तर और प्रविजय और भार्गव और ज्ञेयमल्लक ४३॥

मू० प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
मल्ला मगधगोमन्ताः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ४४॥

टी०। और प्राग्ज्योतिष और मद्र और विदेह और ताम्रलिप्तक और मल्ल और मगध और गोमन्त ये सब देश पूर्व्व दिशा के कहेगये हैं ४४॥

मू० अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः।
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ४५॥

टी०। अब इसके बाद दक्षिण दिशा के देश कहताहूँ सुनो कि पुण्ड्र और केरल और गोलांगूल ४५॥

मू० शैलूषा मूषिकाश्चैव कुसुमा नामवासकाः।
महाराष्ट्रा माहिषकाःकलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ४६ ॥

टी०। और शैलूष और मूषिक और कुसुम और नामवासक और महाराष्ट्र और माहिषक और कलिङ्ग ये सब ४६ ॥

मू० आभीराश्चतु वैशिक्या आढक्याः शबराश्च ये।
पुलिन्दा विन्ध्यमौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ४७ ॥

टी०। और आभीर और वैशिक्य और आढक्य व शबर कि जहांपर शबर लोग बसते हैं और पुलिन्द और विन्ध्यमौलेय और वैदर्भ और दण्डक ४७ ॥

मू० पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः।
नैषिकाः कुन्तला अन्धा उद्भिदा वनदारकाः ४८ ॥

टी०। और पौरिक और मौलिक और अश्मक और भोगवर्द्धन और नैषिक और कुन्तल और अन्ध और उद्भिद और वनदारक ४८ ॥

मू० दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान् निबोध मे।
सूर्य्यारकाः कालिबला दुर्गाश्चानीकटैः सह ४९ ॥

टी०। इतने ये देश दक्षिण दिशा में हैं अब अपरान्तों के नाम कहता हूँ सुनो सूर्य्यारक और कालिबल और दुर्गा और आनीकट ४९ ॥

मू० पुलिन्दाश्च सुमीनाश्च रूपपाः श्वापदैः सह।
तथा कुरुमिणाश्चैव सर्व्वे चैव कटाक्षराः ५० ॥

टी०। और पुलिन्द और सुमीन और रूपप और श्वापद और कुरुमिण इन सब देशों में कटाक्षर लोग बहुत बसते हैं ५० ॥

मू० नासिक्याश्चापि ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्म्मदाः।
भीरुकच्छाश्च माहेयाः सह सारस्वतैरपि ५१ ॥

टी०। नासिक्य और नर्म्मदा के उत्तर तरफ़ जो और देशहैं उनको सुनो भीरु और कच्छ और माहेय और सारस्वत भी ५१ ॥

मू० काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च अवन्त्याश्चार्बुदैः सह।
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणु विन्ध्यनिवासिनः ५२ ॥

टी०। और काश्मीर और सुराष्ट्र और अवन्ति और अर्ब्बुद ये सब अपरान्त देश कहलाते हैं अब विन्ध्यनिवासियों के नाम सुनो ५२॥

मू० सरजाश्च करूषाश्च केरलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोज्याः किष्किन्धकैः सह ५३॥

टी०। सरज और करूष और केरल और उत्कल और उत्तमर्ण और दशार्ण और भोज्य और किष्किन्धक ५३॥

मू० तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशस्तथा।
तुम्बुरास्तुम्बुलाश्चैव पटवो नैषधैः सह ५४॥

टी०। और तोशल और कोशल और त्रैपुर और वैदिश और तुम्बुर और तुम्बुल और पटु और नैषध ५४

मू० अन्नजास्तुष्टिकाराश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः।
एते जनपदाः सर्व्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ५५॥

टी०। और अन्नज और तुष्टिकार और वीरहोत्र और अवन्ति ये सब देश विन्ध्यपर्व्वतकी पीठ पर के बसनेवाले हैं ५५॥

मू० अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये।
नीहारा हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खसाः ५६॥

टी०। अब उन देशों को जो पर्व्वत के आश्रयी हैं कहता हूँ सुनो नीहार और हंसमार्ग और कुरु और गुर्गण और खस ५६॥

मू० कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्व्वाः सकृत्रकाः।
त्रिगर्त्ता गालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ५७॥

टी०। और कुन्त और प्रावरण और ऊर्ण और दार्व्व और कृत्रक और त्रिगर्त्त और गालव और किरात और तामस ५७॥

मू० कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः।
एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ५८॥

टी०। और सत्ययुग और त्रेता इत्यादि चारों युगों की विधि इसी भारतवर्ष में रहती है और यह भारतवर्ष चार संस्थान करके संस्थित है ५८॥

मू० दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्व्वेण च महोदधिः।
हिमवानुत्तरेणास्य कार्म्मुकस्य यथा गुणः ५९॥

टी०। जिसके दक्षिण और पश्चिम और पूर्व भी समुद्र हैं और उत्तर तरफ़ हिमवान् पर्व्वत है जिसतरह धनुष का गुण होताहै ५९॥

मू० तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तम।
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतस्तथा ६०॥

टी०। हे द्विजोत्तम! इसलिये यह भारतवर्ष सब का बीज है क्योंकि इसी में कर्म्म करने के सबब से ब्रह्मत्व और इन्द्रत्व और देवत्व और पवनत्व ६०॥

मू० मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्व्वे सरीसृपाः।
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो ब्रह्मञ्शुभाशुभैः ६१॥

टी०। और हे ब्रह्मन्! मृग और पशु और अप्सरा इत्यादि की योनि और सब सरीसृप याने बिच्छू इत्यादि और सब स्थावरों की योनि में यहां से मनुष्य पुण्य पाप कर्मों करके ६१॥

मू० प्रयाति कर्म्मभूर्ब्रह्मन् नान्या लोकेषु विद्यते।
देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः ६२॥

टी०। प्राप्त होताहै हे द्विजोत्तम! इसी सबब से यह भारतवर्ष कर्म्मभूमि कहलाता है और लोकों में अन्यवर्ष जो हैं वे सब कर्म्मभूमि नहीं हैं हे विप्रर्षि! देवतों को भी सदा यह अभिलाषा रहती है ६२॥

मू० अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ।
मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ६३॥

टी०। कि हमलोग भी किसी तरह देवयोनि से छूटकर भारतवर्ष में जाकर मनुष्य होते तो अच्छाथा क्योंकि भारतवर्ष में मनुष्य के शरीर से जो कर्म्म होसक्ते हैं वे कर्म्म देवता या असुर इत्यादिकों से नहीं होसक्ते हैं ६३॥

मू० तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्म्मक्षपणोत्सुकैः।
न किञ्चित् क्रियते कर्म्म सुखलेशोपबृंहितैः ६४॥

टी०। और संसारी मनुष्य अपनेही किये हुये कर्म्मरूपी बेड़ी में बँधकर अपने कर्मों के नाश करने में उत्कण्ठितहैं व थोड़ेही सुख से बढ़े हुये वे कुछ कर्म नहीं करते हैं ६४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नद्यादिवर्णनोनाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

अथ अट्ठावनवां अध्याय॥

कौष्टुकिरुवाच॥

मू० भगवन् कथितं सम्यग् भवता भारतं मम।
सरितःपर्व्वता देशा ये च तत्र वसन्ति वै १॥

टी०। कौष्टुकि ने कहा कि हे भगवन्! भारतवर्ष को तो आपने मुझसे सम्यक् प्रकार से वर्णन किया और भारतवर्ष में जितनी नदी और पर्व्वत और देश बसते हैं उनको भी वर्णन किया १॥

मू० किन्तु कूर्म्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान् हरिः।
कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः २॥

टी०। परन्तु इस भारतवर्ष में जो कूर्म्म भगवान् को आपने कहा उनका संस्थान अर्थात् वास संपूर्णतासे सुनाचाहता हूँ कहिये २॥

मू० कथं स संस्थितो देवः कूर्म्मरूपी जनार्द्दनः।
शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यते च ततः कथम्॥
यथामुखं यथापादं तस्य तद् ब्रूह्यशेषतः ३॥

टी०। कूर्म्मरूपी जो जनार्द्दन हैं वह किसतरह इसमें वास करते हैं और उनसे मनुष्यों का शुभाशुभ किसतरह मालूम होता है और जैसा उनका मुख और पावँ है वह सब सम्पूर्णतासे कहिये ३॥

मार्कण्डेय उवाच॥

मू० प्राङ्मुखो भगवान् देवः कूर्म्मरूपी व्यवस्थितः।
आक्रम्य भारतं वर्षं नवभेदमिदं द्विज ४॥

टी०। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि हे ब्राह्मण! कूर्म्मरूपी भगवान् देव

इसमें पूर्व्व मुख विराजमान हैं और इस भारतवर्ष में नव भेद हैं उनको घेरकर स्थित हैं ४ ॥

मू० नवधा संस्थितान्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः।
विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ये सम्यक् तान्निबोध मे ५ ॥

टी०। और उन कूर्म्म भगवान् के चारों ओर सब नक्षत्र नव प्रकार से स्थित हैं और हे द्विजश्रेष्ठ! उनके चारों तरफ़ जो विषय याने देश हैं उनको भी मुझ से सम्यक् प्रकार से सुनो ५ ॥

मू० वेदमन्त्रा विमाण्डव्याः शाल्वनीयास्तथा शकाः।
उज्जिहानास्तथावत्स घोषसंख्यास्तथा खसाः ६ ॥

टी०। वेदमन्त्र और विमाण्डव्य और शाल्वनीय और शक और हे वत्स! उज्जिहान और घोषसंख्यक और उसीतरह खस ६ ॥

मू० मध्ये सारस्वता मत्स्याः सूरसेनाः समाथुराः।
धर्म्मारण्याज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः ७ ॥

टी०। और उसके मध्यमें सारस्वत और मत्स्य और सूरसेन और माथुर और धर्म्मारण्य और ज्योतिषिक और गौरग्रीव और गुडाश्मक ७ ॥

मू० वैदेहकाः सपाञ्चालाः संकेताः कङ्कमारुताः।
कालकोटिसपाषण्डाः पारियात्रनिवासिनः ८ ॥

टी०। और वैदेहक और पाञ्चाल और संकेत और कंकमारुत और कालकोटि और पाषण्ड ये सब देश पारियात्र पर्व्वत के निवासी अर्थात् आश्रयी हैं ८ ॥

मू० कापिङ्गलाः कुरुब्राह्मस्तथैवोदुम्बराजनाः।
गजाह्वयाश्च कूर्म्मस्य जलमध्यनिवासिनः ९ ॥

टी०। और कापिङ्गल और कुरु और ब्राह्म उदुम्बरवासी और हस्तिनापुर ये सब जलनिवासी कूर्म्म भगवान् के मध्य में हैं ९ ॥

मू० कृत्तिकारोहिणीसौम्या एतेषां मध्यवासिनाम्।
नक्षत्रत्रितयं विप्र शुभाशुभविपाकदम् १० ॥

टी०। और हे द्विज! कृत्तिका और रोहिणी और मृगशिरा ये तीनों नक्षत्र इन मध्यनिवासियों को शुभाशुभ फल देते रहते हैं १० ॥

मू० वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव पद्माख्यो मानसाचलः।
शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखः खर्मकः कर्वटाशनः ११॥

टी०। और वृषध्वज और अञ्जन और पद्माख्य और मानसोचल और शूर्पकर्ण और व्याघ्रमुख और खर्मक और कर्व्वटाशन ११॥

मू० तथा चन्द्रेश्वरश्चैव खसाश्च मगधास्तथा।
शिवयो मैथिलाः शुभ्रास्तथा वदनदन्तुराः १२॥

टी०। उसीतरह चन्द्रेश्वर और खस और मगध और शिवि और मैथिल और शुभ्र और वदनदन्तुर १२॥

मू० प्राग्ज्योतिषाः सलौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः।
पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज १३॥

टी०। और प्राग्ज्योतिष और लौहित्य और सामुद्र और पुरुषादक और पूर्णोत्कट और भद्रगौर और हे द्विज ! उसीतरह उदयगिरि १३।

मू० कशाया मेखला मुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः।
वर्द्धमानाः कोशलाश्च मुखे कूर्म्मस्य संस्थिताः १४॥

टी०। और कशाय और मेखला और मुष्ट और ताम्रलिप्त और एकपादप और वर्द्धमान और कोशल ये सब देश कूर्म्म भगवान् के मुख पर स्थित हैं १४॥

मू० रौद्रः पुनर्व्वसुः पुष्यो नक्षत्रत्रितयं मुखे।
पदे तु दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः शृणु १५॥

टी०। और आर्द्रा और पुनर्व्वसु और पुष्य ये तीनों नक्षत्र वहां मुख में रहकर उन मुखवासियों का सुख और दुःख बतलाते हैं ऐ क्रौष्टुकि अब कूर्म्म भगवान् के दक्षिण चरण पर जो देश हैं उनको कहते हुये मुझ से सुनो १५॥

मू० कलिङ्गवङ्गजठराः कोशला मूषिकास्तथा।
चेदयश्चोर्द्ध्वकर्णाश्च मत्स्याद्या विन्ध्यवासिनः १६॥

टी०। कलिंग और वङ्ग और जठर और कोशल और मूषिक और चेदि और ऊर्द्ध्वकर्ण और मत्स्यादि सम्पूर्ण विन्ध्यनिवासी देश हैं १६॥

मू० विदर्भा नारिकेलाश्च धर्म्मद्वीपास्तथैलिकाः।
व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराः श्मश्रुधारिणः १७॥

टी०। और विदर्भ और नारिकेल और धर्म्मद्वीप उसीतरह ऐलिक और व्याघ्रग्रीव और महाग्रीव और त्रैपुर और श्मश्रुधारी १७॥

मू० कैष्किन्ध्या हैमकटाश्च निषधाः कटकस्थलाः।
दशार्णा हारिका नग्ना निषादाः काकुलालकाः १८॥

टी०। और किष्किन्धा और हेमकूट और निषध और कटकस्थल और दशार्ण और हारिक और नग्न और निषाद और काकुलालक १८॥

मू० तथैव पर्णशबराः पादे वै पूर्व्वदक्षिणे।
आश्लेषर्क्षं तथा पैत्र्यं फाल्गुन्यः प्रथमास्तथा १९॥

टी०। उसीतरह पर्ण और शबर ये सब देश कूर्म्म भगवान् के दक्षिण पूर्व्व पांव पर विराजमान हैं और आश्लेषा और मघा और पूर्व्वा-फाल्गुनी १९॥

मू० नक्षत्रत्रितयम्पादमाश्रितं पूर्व्वदक्षिणम्।
लङ्काकालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा २०॥

टी०। ये तीनों नक्षत्र पूर्व्व और दक्षिण पांव पर स्थित रहकर उन देशवासियों को शुभाशुभ बतलाते रहते हैं और लङ्का और कालाजिन और शैलिक और निकट २०॥

मू० महेन्द्रमलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये।
कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः २१॥

टी०। और महेन्द्र और मलयाद्रि और दर्दुर पर्व्वत पर जो देश बसते हैं और कर्कोटक वनमें जो देश हैं और भृगुकच्छ और कोङ्कण २१॥

मू० सर्व्वाश्चैव तथाभीरा वेण्यास्तीरनिवासिनः।
अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकणिनोजनाः २२॥

टी०। ये सब देश और आभीर और वेणी नदी के किनारे के निवासी जो देश हैं और अवन्ती और दासपुर उसी तरह आकणी जन जिस देश में रहते हैं २२॥

मू० महाराष्ट्राःसकर्णाटा गोनर्द्धाश्चित्रकूटकाः ।
चोलाः कोलगिराश्चैव क्रौञ्चद्वीपजटाधराः२३ ॥

टी० । और महाराष्ट्र और कर्णाट और गोनर्द्ध और चित्रकूट और चोल और कोलगिर और क्रौञ्चद्वीप और जटाधर २३ ॥

मू० कावेरीऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः ।
शङ्खमुक्तादिवैडूर्य्यशैलप्रान्तचराश्च ये २४ ॥

टी० । और कावेरी और ऋष्यमूक के निकटवासी जो लोग हैं और जो लोग नासिक्य हैं और जो लोग शङ्ख और मुक्ता और वैडूर्य्य इत्यादि पर्व्वतों के समीप रहनेवाले हैं २४ ॥

मू० तथा वारिचराः कोलाश्चर्म्मपट्टनिवासिनः ।
गणबाह्याः पराः कृष्णद्वीपवासनिवासिनः २५ ॥

टी० । इसी तरह वारिचर और कोल और चर्म्मपट्टनिवासी और गणबाह्य और कृष्णद्वीप के रहनेवाले लोग २५ ॥

मू० सूर्य्याद्रौ कुमुदाद्रौ च ते वसन्ति तथा जनाः ।
औखावनाः सपिशिकास्तथा ये कर्म्मनायकाः २६ ॥

टी० । और सूर्य्याद्रि और कुमुदाद्रि पर जो लोग बसते हैं वह सब देश और ओखावन और पिशिक और जो कर्म्मनायक हैं २६ ॥

मू० दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ।
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः २७ ॥

टी० । और दक्षिणा और कौरुष और ऋषिक और तापसाश्रम और ऋषभ और सिंहल और काञ्चीनिवासी सब २७ ॥

मू० तिलङ्गकुञ्जरदरीकच्छवासाश्च ये जनाः ।
ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्म्मस्य दक्षिणः २८ ॥

टी० । और तिलङ्ग और कुञ्जरदरी और कच्छवासी जो लोग हैं और ताम्रपर्णी ये सब देश कूर्म्म भगवान् के दक्षिण कुक्षि में बसते हैं २८ ॥

मू० फाल्गुन्यश्चोत्तरा हस्तः चित्रा चर्क्षत्रयं द्विज ।
कूर्म्मस्य दक्षिणे कुक्षौ बाह्यपादस्तथापरम् २९ ॥

टी०। और हे द्विज ! उत्तराफाल्गुनी और हस्त और चित्रा ये तीनों नक्षत्र भी कूर्म्म भगवान् के दक्षिण कुक्षिमें स्थितहैं और उन सब लोगों के फलाफल बताते रहते हैं अब उन कूर्म्म भगवान् के बाह्यपांव पर जो स्थित हैं उनको सुनो २६ ॥

मू० काम्बोजाः प्रह्लवाश्चैव तथैव वडवामुखाः ।
तथा च सिन्धुसौवीराःसानर्त्तावनितामुखाः ३० ॥

टी०। काम्बोज और प्रह्लव और वडवामुख व सिन्धु और सौवीर और आनर्त्त और वनितामुख ३० ॥

मू० द्रावणा मार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेयवर्व्वराः ।
किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ३१ ॥

टी०। और द्रावण और मार्गिग व शूद्र और कर्णप्राधेय और वर्व्वर और किरात और पारद और पाण्ड्य और पारशव और कल ३१ ॥

मू० धूर्त्तका हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः ।
सौराष्ट्रा दरदाश्चैव द्राविडाश्च महार्णवाः ३२ ॥

टी०। और धूर्त्तक और हैमगिरिक और सिन्धुकालक व वैरत और सौराष्ट्र और दरद और द्राविड और महार्णव ३२ ॥

मू० एते जनपदाः पादे स्थिता वै दाक्षिणेऽपरे ।
स्वातिर्विशाखामैत्रञ्च नक्षत्रत्रयमेव च ३३ ॥

टी०। इतने देशवासी लोग कूर्म्म भगवान् के बाह्य के दक्षिण पांव पर स्थित हैं और स्वाती और विशाखा और अनुराधा ये तीनों नक्षत्रभी वहां रहते हैं ३३ ॥

मू० मणिमेघः क्षुराद्रिश्च खञ्जनोऽस्तगिरिस्तथा ।
अपरान्तिका हैहयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ३४ ॥

टी०। और मणिमेघ और क्षुराद्रि और खञ्जन और अस्तगिरि और अपरान्तिक और हैहय और शान्तिक और विप्रशस्तक ३४ ॥

मू० कौङ्कणाः पञ्चनदका वमना ह्यवरास्तथा ।
तारक्षुरा ह्यङ्गतकाः शर्कराः शालमवेश्मकाः ३५ ॥

टी०। और कोङ्कण और पञ्चनदक और वमन और अवर और तारक्षुर और अङ्गतक और शर्कर और शाल्मवेश्मक ३५ ॥

मू० गुरुस्वराः फाल्गुनका वेणुमत्याश्च ये जनाः।
तथा फल्गुलुका घोरा गुरुहाश्च कलास्तथा ३६ ॥

टी०। और गुरुस्वर और फाल्गुनक और जो लोग वेणुमती के वासी हैं और फल्गुलुक और घोर और गुरुह और कल ३६ ॥

मू० एकेक्षणा व्याघ्रकेशा दीर्घग्रीवाः सचूलिकाः।
अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्म्मस्य संस्थिताः ३७ ॥

टी०। और एकेक्षण और व्याघ्रकेश और दीर्घग्रीव और चूलिक और अश्वकेश ये सब देश कूर्म्म भगवान् के पुच्छभाग में स्थित हैं ३७ ॥

मू० ऐन्द्रं मूलन्तथाषाढानक्षत्रत्रयमेव च।
माण्डव्याश्चण्डखाराश्च अश्वकालनतास्तथा ३८ ॥

टी०। और ज्येष्ठा और मूल और पूर्वाषाढ़ ये तीनों नक्षत्र भी उस पुच्छभाग में रहकर उन सबका फलाफल बताते रहते हैं और माण्डव्य और चण्डखार और अश्वकालनत ३८ ॥

मू० कुन्यतालडहाश्चैव स्त्रीबाह्याबालिकास्तथा।
नृसिंहा वेणुमत्यां च बलावस्थास्तथापरे ३९ ॥

टी०। और कुन्यतालडह और स्त्रीबाह्य और बालिक और नृसिंह और वेणुमती के किनारे जो देश हैं और बलावस्थ ३९ ॥

मू० धर्म्मबद्धास्तथालूका उरुकर्मस्थिता जनाः।
वामपादे जनाः पार्श्वे स्थिताः कूर्म्मस्य भागुरे ४० ॥

टी०। और ऐ भागुरे! धर्म्मबद्ध और लूक और उरुकर्मवासी लोग कूर्म्म भगवान् के बायें पांवमें समीप स्थित हैं ४० ॥

मू० आषाढाःश्रवणश्चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता।
कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान् वसुमांस्तथा ४१ ॥

टी०। उत्तराषाढ़ और श्रवण और धनिष्ठा ये तीनों नक्षत्र भी जहां रहते हैं और कैलास और हिमवान् और धनुष्मान् और वसुमान् ४१ ॥

मू० क्रौञ्चाः कुरुवकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः।
रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ४२॥

टी०। और क्रौञ्च और कुरुवक और क्षुद्रवीण जो लोग हैं और रसालय और कैकेय और भोगप्रस्थ और यामुन ४२॥

मू० अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्नीज्याः सार्द्दनाजनाः।
तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिविडाः केशधारिणः ४३॥

टी०। और अन्तर्द्वीप और त्रिगर्त्त और अग्नीज्य और अर्द्दन और अश्वमुख और चिविड और केशधारी ४३॥

मू० दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च।
पुष्कलाधमकैरातास्तथातक्षशिलाश्रयाः ४४॥

टी०। और दासेरक और वाटधान और शवधान और पुष्कल और अधम और कैरात और तक्षशिलाश्रय ४४॥

मू० अम्बाला मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः।
पिङ्गला मानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ४५॥

टी०। और अम्बाला और मालवा और मद्र और वेणुक और सवदन्तिक और पिङ्गल और मानकलह और हूण और कोहलक ४५॥

मू० माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः।
यशोमत्याः सगान्धाराः खरसागरराशयः ४६॥

टी०। और माण्डव्य और भूतियुवक और शातक और हेमतारक और यशोमत्य और गान्धार और खरसागरराशि ४६॥

मू० यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः श्यामकास्तथा।
क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्म्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ४७॥

टी०। और यौधेय और दासमेय और राजन्य और श्यामक और क्षेमधूर्त्त ये सब देश कूर्म्म भगवान् की वाम कुक्षि में स्थित हैं ४७॥

मू० वारुणञ्च त्रिनक्षत्रं तत्र प्रौष्ठपदाद्वयम्।
येन किन्नरराज्यञ्च पशुपालं सकीचकम् ४८॥

टी०। और शतभिष और पूर्व्वाभाद्र और उत्तराभाद्र ये तीनों नक्षत्र

वहाँ रहतेहैं जिससे शुभाशुभ सूचित होताहै और किंनरराज्य और पशु-पाल और कीचक ४८ ॥

मू० काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा।
दवदास्त्वङ्गनाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ४९ ॥

टी०। और काश्मीरक राज्य और अभिसारजन और दवद व अंगना और कुलटा और वनराष्ट्रक ४९ ॥

मू० सौरिष्टा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनबाह्यकाः।
किरातकौशिका नन्दा जनाः पह्लवलोलनाः ५० ॥

टी०। और सौरिष्ट और ब्रह्मपुरक और वनबाह्यक और किरात और कौशिक और नन्दजन और पह्लवलोलन ५० ॥

मू० दार्वा दामरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः।
एकपादाः खसा घोषाः स्वर्गभौमानवद्यकाः ५१ ।

टी०। दार्व्व और दामरक और कुरट और अन्नदारक और एकपाद और खस और घोष और स्वर्गभौम और अनवद्यक ५१ ॥

मू० तथा च यवना हिङ्गा चीरप्रावरणाश्च ये।
त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्व्वाश्च द्विजोत्तम ५२ ॥

टी०। और हे द्विजोत्तम! वैसेही यवन और हिंग और चीरप्रावरण और त्रिनेत्र और पौरव और गन्धर्व्व इत्यादि ५२ ॥

मू० पूर्व्वोत्तरन्तु कूर्म्मस्य पादमेते समाश्रिताः।
रेवत्याश्चाश्विदैवत्यं याम्यं चर्क्षमितित्रयम् ५३ ॥

टी०। ये सबलोग कूर्म्मभगवान् के पूर्व्व और उत्तर के चरण पर स्थित हैं और रेवती और अश्विनी और भरणी ये तीनों नक्षत्र भी वहाँ रहते हैं ५३ ॥

मू० तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम।
देशेष्वेतेषु चैतानि नक्षत्राण्यपि वै द्विज ५४ ॥

टी०। हे मुनिसत्तम! उसी चरण में शुभाशुभ फलके लिये कहेगये हैं

और इतने ही देशों में इतनेही नक्षत्र और इतने ही लोग और इतनेही पर्व्वत हैं हे द्विज ! जो मैं ने तुमसे कहा ५४ ॥

मू० एतत्पीडा अमी देशाः पीड्यन्ते ये क्रमोदिताः ।
यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यगवस्थितैः ५५ ॥

टी०। और जो क्रमसे कहेगये हैं इन्हीं देशों में इन्हीं नक्षत्रों के बिगड़ने से मनुष्यों को दुःख प्राप्त होताहै और हे विप्र ! वही नक्षत्र जब अच्छे ग्रहके साथ स्थितहोते हैं तब लोगों को सुख प्राप्तहोता है ५५ ॥

मू० यस्यर्क्षस्य पतिर्योवै ग्रहस्तद्भावितोभयम् ।
तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठ तदुत्कर्षे शुभागमः ५६ ॥

टी०। जिस नक्षत्र का जो ग्रह स्वामी है उसके बिगड़ने से उस देश में हे मुनिश्रेष्ठ ! लोगोंको दुःख या भय प्राप्त होताहै और उसी के उत्कर्ष यानी उत्तमस्थान पर होने से लोगों का कल्याण होताहै ५६ ॥

मू० प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् ।
भयं लोकस्य भवति शोभनं वा द्विजोत्तम ५७ ॥

टी०। हे द्विजोत्तम ! सब देशों में पृथक् पृथक् नक्षत्र और ग्रह करके संसारको भय या कल्याण होता है ५७ ॥

मू० स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमतिभीतिदम् ।
ग्रहैर्भवति पीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ५८ ॥

टी०। और सब देशों में अपने अपने नक्षत्रों के बिगड़ने से सब लोगों को पीड़ा से उत्पन्न अत्यन्त भय और कुछ परिश्रम व दुःख उत्पन्न होता है ५८ ॥

मू० तथैव शोभनः पाको दुःस्थितैश्च तथा ग्रहैः ।
अल्पोपकाराय नृणां देशज्ञैश्चात्मनो बुधैः ५९ ॥

टी०। और हे ब्रह्मन ! ग्रहों के बिगड़ने पर जो भय होता है उस भय के दूर होने के वास्ते अच्छे ज्योतिषी मनुष्यों के जप और दान करने से उत्तम फल होजाता है ५९ ॥

मू० द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सु तनयेषु वा ।

भार्य्यायाञ्च ग्रहे दुःस्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ६० ॥

टी० । ग्रहके विगड़ने से द्रव्य और गोष्ठ और भृत्य और मित्र और पुत्र और स्त्री इत्यादि करके भय पुण्यवान् लोगोंको भी होताहै ६० ॥

मू० आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्व्वत्रैवातिपापिनाम् ।
नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ६१ ॥

टी० । और जिनको थोड़ा पुण्य है उनको अपनेही शरीर में व जो कोई अत्यन्त पापी हैं उनको सब कहीं डर है व जो कोई निष्पाप हैं उन को कहीं दुःख नहीं होसक्ता ६१ ॥

मू० दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् ।
नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम् ६२ ॥

टी० । दिशा और देश और मनुष्यों के समान और राजा व नक्षत्र और ग्रह के अनुसार आपना से उपजा हुआ मनुष्योंको शुभाशुभ फल प्राप्त होताहै ६२ ॥

मू० परस्पराभिरक्षा च ग्रहदौःस्थ्येन जायते ।
एतेभ्यएव विप्रेन्द्र शुभहानिस्तथाशुभैः ६३ ॥

टी० । और ग्रहों के अशुभ स्थान में रहने से मनुष्योंको शुभ नहीं होता है और हे द्विजेन्द्र ! ग्रहही के दुःस्थ रहने से अशुभ होताहै व शुभ ग्रहों से उत्तम फल होताहै ६३ ॥

मू० यदेतत्कूर्म्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् ।
एतत्तु देशसामान्यमशुभं शुभमेव च ६४ ॥

टी० । नक्षत्र सहित कूर्म्म का संस्थान जो यह मैं कह आयाहूँ यह सब देशों के समान शुभाशुभ का देनेवाला है ६४ ॥

मू० तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षं ग्रहपीडान्तथात्मनः ।
कुर्व्वीत शान्तिं मेधावी लोकवादांश्च सत्तम ६५ ॥

टी० । हे ब्रह्मन्! इस वास्ते देश और नक्षत्र और ग्रहकृत पीड़ा अपनी जानकर बुद्धिमानों को चाहिये कि उसकी शान्ति और लोकवादों की शान्तिको करें ६५ ॥

मू० आकाशाद्देवतानाञ्च दैत्यादीनाञ्च दौर्हृदाः।
पृथिव्यां पतन्ति ते लोके लोकवादा इति श्रुताः ६६ ॥

टी०। और आकाश से देवतों और दैत्यों इत्यादि का जो शत्रु है वह जमीन में जब गिरता है यानी जिसको लूक कहते हैं उसी को लोक में लोकवाद भी कहते हैं ६६ ॥

मू० तां तथैव बुधः कुर्य्याल्लोकवादान्नहापयेत्।
तेषां तत्करणान्नृणां युक्तो दुष्टागमक्षयः ६७ ॥

टी०। इस वास्ते ग्रह और लोकवाद दोनों की वैसीही शान्ति करना चाहिये लोकवादों को छोड़ै नहीं क्योंकि मनुष्यों को उन्हीं सबकी शान्ति करने से यहां अशुभ फलका नाश होताहै ६७ ॥

मू० शुभोदयं ग्रहानिञ्च पापानां द्विजसत्तम।
प्रज्ञाहानिं प्रकुर्य्युस्ते द्रव्यादीनाञ्च कुर्वते ६८ ॥

टी०। और हे द्विजसत्तम ! वही ग्रहादि सानुकूल रहनेपर शुभका उदय और पाप की हानि करते हैं और वही ग्रहादिक जब बिगड़ते हैं तब बुद्धि और द्रव्यादि की हानि करते हैं ६८ ॥

मू० तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा।
लोकवादांश्च शान्तीश्च ग्रहपीडासु कारयेत् ६९ ॥

टी०। इसवास्ते लोकवाद में तत्पर व शान्तिमें लगे हुये बुद्धिमान् लोगों को चाहिये कि लोकवाद और शान्ति ग्रहकी पीड़ा के समय अवश्य करावैं ६९ ॥

मू० अद्रोहानुपवासांश्च शस्तं चैत्यादिवन्दनम्।
जपं होमं तथा दानं स्नानं क्रोधादिवर्जनम् ७० ॥

टी०। और आप अद्रोह रहैं यानी किसी से द्रोह न करैं और उपवास अर्थात् व्रतादिक करैं और यज्ञशालादि का प्रणाम शुभ है और जप और होम और स्नान और दान करैं और क्रोधादिकसे दूर रहैं ७० ॥

मू० अद्रोहः सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्य्याच्च पण्डितः।
वर्जयेदसतीं वाचमतिवादांस्तथैव च ७१ ॥

टी०। और किसी प्राणी से द्रोह न करके पण्डित सब से प्रीतिकरै और झूँठ वचन न बोलै और अत्यन्त विवाद न करै ७१ ॥

मू० ग्रहपूजाञ्च कुर्व्वीत सर्वपीडासु मानवः।
एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ७२ ॥

टी०। और हे द्विजोत्तम! ग्रहकी पूजा मनुष्योंको सब दुःखों में करना चाहिये क्योंकि इसतरह पूजा और शान्ति करने से बड़ी भयंकर पीड़ा भी सब मिटजाती है ७२ ॥

मू० प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः।
एष कूर्म्मो मयाख्यातो भारते भगवान् विभुः ७३ ॥

टी०। और जो मनुष्य पवित्र हैं उनको भी ग्रहों के सबब से सब शुभाशुभ प्राप्त होताहै हे द्विजसत्तम! यह कूर्म्म भगवान् का वृत्तान्त जो भरतखण्ड में विद्यमान रहते हैं मैंने तुमसे कहा ७३ ॥

मू० नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा यत्र सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
तत्र देवाः स्थिताः सर्व्वे प्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ७४ ॥

टी०। यह कूर्म्म भगवान् अचिन्त्यात्माहैं जिनमें सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठितहै और इन्हींमें सम्पूर्ण देव नक्षत्रों के स्वामी होकर स्थितरहतेहैं ७४ ॥

मू० तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज।
मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ७५ ॥

टी०। हे द्विजोत्तम! इसीतरह अग्नि और पृथ्वी और चन्द्रमा जो कूर्म्म के मध्य में हैं और वृष और मेष व मिथुन तीनों राशि भी कूर्म्म के मध्य में हैं और कर्क और मिथुन दोनों राशि मुखमें रहती हैं ७५ ॥

मू० प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्कसिंहौ व्यवस्थितौ।
सिंहकन्यातुलाश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्थितम् ७६ ॥

टी०। और कर्क और सिंह पूर्व दक्षिणपादमें रहती हैं और सिंह और कन्या और तुला ये तीनों राशि कुक्षि में रहती हैं ७६ ॥

मू० तुलाथ वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे।

पृष्ठे च वृश्चिकेनैव सह धन्वी व्यवस्थितः ७७ ॥

टी०। और तुला और वृश्चिक दोनों दक्षिण पश्चिम पावँ में रहती हैं और पीठ में वृश्चिक समेत धनु रहती है ७७ ॥

मू० वायव्ये चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम्।
कुम्भमीनौ तथैवास्य उत्तरां कुक्षिमाश्रितौ ७८ ॥

टी०। और धन मकर कुम्भ तीन राशि इसके वायव्य कोणके पावँमें रहती हैं और कुम्भ मीन इस कूर्म के उत्तर कुक्षि में रहती हैं ७८ ॥

मू० मीनमेषौ द्विजश्रेष्ठ पादे पूर्व्वोत्तरे स्थितौ।
कूर्म्मे देशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषु वै द्विज ७९ ॥

टी०। और हे द्विज! मीन मेष पूर्व्वोत्तर पावँ में स्थित रहती हैं और हे द्विजश्रेष्ठ! इस कूर्म्म में देश और इन देशों में नक्षत्र ७९ ॥

मू० राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहाराशिष्ववस्थिताः।
तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडां विनिर्दिशेत् ८० ॥

टी०। और नक्षत्रों में राशि और ग्रह राशियों में स्थितहैं इसवास्ते ग्रह व नक्षत्र की पीड़ा में देशपीड़ा समझना चाहिये ८० ॥

मू० तत्र स्नात्वा प्रकुर्वीत दानहोमादिकं विधिम्।
स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मन् मध्ये ग्रहस्य यः ८१ ॥

टी०। ऐसी दशा में स्नान करके दान और होम इत्यादि विधि करना चाहिये इसीको वैष्णव पाद कहतेहैं हे ब्रह्मन्! जो ग्रह के मध्यमेंहै ८१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकूर्म्मनिवेशोनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८ ॥

अथ उनसठवां अध्याय ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥

मू० एवन्तु भारतं वर्षं यथावत् कथितं मुने।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च तथा तिष्यं चतुष्टयम् १ ॥

टी०। मार्कण्डेयजी कहते हैं कि हे मुनि! इसतरह जो भारतवर्ष है उसको हम यथार्थ वर्णन करचुके और सत्ययुग और त्रेता और द्वापर और कलियुग चारों को भी कहचुके १ ॥

मू० अत्रैवैतद्युगानान्तु चातुर्वर्ण्यं च वै द्विज।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैव तथैकञ्च शरच्छतम् २ ॥

टी०। और हे ब्राह्मण! इसी पृथ्वी पे इन युगों में मनुष्यों का आयुर्वल चार सौ और तीनसौ और दो सौ और एकसौ वर्ष चारों वर्णों का है अर्थात् सत्ययुग में चारसौ वर्ष और त्रेता में तीनसौ वर्ष और द्वापरमें दो सौ वर्ष और कलियुग में सौ वर्ष है और ये चारों युग चार वर्ण हैं २ ॥

मू० जीवन्त्यत्र नरा ब्रह्मन् कृतत्रेतादिके क्रमात्।
देवकूटस्य पूर्व्वस्य शैलेन्द्रस्य महात्मनः ३ ॥

टी०। इसी क्रम से सत्ययुगादि चारों युगों में मनुष्य लोग जीते थे और हे ब्रह्मन्! देवकूट नाम पूर्वका शैलराज जो सब पर्व्वतोंमें उत्तमहै३॥

मू० पूर्व्वेण यत् स्थितं वर्षं भद्राश्वं तन्निबोध मे।
श्वेतपर्णश्च नीलश्च शैवालश्चाचलोत्तमः ४ ॥

टी०। उसके पूर्व्वदिशा में जो भद्राश्ववर्ष है उसको कहताहूं मुझसे सुनो कि श्वेतपर्ण और नील और शैवाल नाम पहाड़ों में उत्तम ४ ॥

मू० कौरञ्जः पर्णशालाग्रः पञ्चैते तु कुलाचलाः।
तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्व्वताः ५ ॥

टी०। और कौरञ्ज और पर्णशालाग्र ये पांच पर्व्वत उसमें कुलाचल

हैं अर्थात् किनारे के पर्वत हैं और इन्हीं पर्व्वतों से और और भी कितने छोटे छोटे पर्व्वत उत्पन्न हुये हैं ५ ॥

मू० तैर्विशिष्टा जनपदा नाना रूपाः सहस्रशः।
ततः कुमुदसंकाशाः शुद्धसानुसमङ्गलाः ६ ॥

टी०। इन पर्व्वतों सहित हरएक तरह के हजारों देश उस वर्ष में हैं और सिवाय इसके उस वर्षमें कुमुद की तरह श्वेत और शुद्ध और मङ्गलयुक्त जिनके शिखर हैं ६ ॥

मू० इत्येवमादयोऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः।
सीता शङ्खावती भद्रा चक्रावर्त्तादिकास्तथा ७ ॥

टी०। ऐसे ऐसे और और भी सैकड़ों हजारों पर्व्वत हैं और सीता और शंखावती और भद्रा और चक्रावर्त्ता इत्यादि ७ ॥

मू० नद्योऽथ बह्वयोविस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः।
अत्र वर्षे नराः शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ८ ॥

टी०। बहुत विस्तार और शीतल जल की बहुतसी नदियां बहती हैं और इस वर्ष में सब मनुष्य शंख और शुद्ध सुवर्ण के समान कान्तिमान् हैं ८ ॥

मू० दिव्यसङ्गमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः।
अधमोत्तमौ न तेषु स्तः सर्वे ते समदर्शनाः ९ ॥

टी०। और उन सबों का संयोग देवोंसे होताहै और पुण्यात्मा हैं और दश सौ वर्ष का उनलोगों का आयुर्बल है और उनमें न कोई उत्तम है न अधम है सब एक तरह के देख पड़ते हैं ९ ॥

मू० तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्या ते गुणैर्युताः।
तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्ज्जनार्दनः १० ॥

टी०। और स्वभाव ही करके तितिक्षा आदि आठों गुणों से वे लोग सदा युक्त रहते हैं और उस वर्षमें अश्वशिरा (हयग्रीव) चतुर्बाहु जनार्दन भगवान् रहते हैं १० ॥

मू० शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः।
तस्याप्यथैवं विषया विज्ञेया जगतः प्रभोः ११॥

टी०। और शिर और हृदय और मेढ्र अर्थात् लिङ्ग और अंघ्रि यानी चरण और हाथ और तीन नेत्र उनके हैं और उन जगत्पति के भी वे सब विषय हैं यानी उन्हीं के प्रभाव से उस वर्ष में वह सब विभव है ११॥

मू० केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम्।
विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्व्वतः १२॥

टी०। अब केतुमाल नाम वर्ष जो पश्चिम तरफ़ है उसका वृत्तान्त कहता हूँ मुझसे सुनो कि विशाल और कम्बल और कृष्ण आर जयन्त और हरिपर्व्वत १२॥

मू० विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्व्वताः।
अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः १३॥

टी०। और विशोक और वर्द्धमान ये सात पर्व्वत उस वर्ष में कुलाचलहैं और और भी हज़ारों छोटे छोटे पर्व्वत हैं कि जिनके ऊपर कितनेही लोग बसते हैं १३॥

मू० मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः।
अङ्गुलप्रमुखाश्चापि वसन्ति शतशो जनाः १४॥

टी०। और उन सबों के बड़े बड़े डील और बड़े बड़े शिर हैं और शाक और पोतक और रम्भक और अंगुल इत्यादि मुख्य मुख्य सैकड़ों मनुष्य असंख्य वहां बसते हैं १४॥

मू० ये पिबन्ति महानद्यां चक्षुं श्यामां स्वकम्बलाम्।
अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः १५॥

टी०। ये लोग जिन महानदियों का जल पीते हैं उन नदियों के नाम सुनो चक्षु और श्यामा और स्वकम्बला और अमोघा और कामिनी और सुमेधा व दूसरी श्यामा इसी तरह और और भी हज़ारों नदियां बहती हैं १५॥

मू० अत्राप्यायुः समं पूर्व्वैरत्रापि भगवान् हरिः।

वाराहरूपी पादास्य हृत्पृष्ठपार्श्वतस्तथा १६॥

टी०। वहां भी मनुष्यों का आयुर्बल पहले के बराबर याने दश सौ वर्ष का है और उस देश में वाराहरूप भगवान् रहते हैं उनके चरण और हृदय और मुख और पीठ और पँसुरी पर १६॥

मू० त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राणि शुभानि च।

इत्येतत्केतुमालन्ते कथितं मुनिसत्तम १७॥

टी०। तीन तीन नक्षत्रों के साथ सब देश स्थित हैं और वहां भी नक्षत्रों से शुभाशुभ जानाजाता है हे मुनिसत्तम! इस तरहका जो केतुमाल नाम वर्ष है वह भी मैंने आप से वर्णन किया १७॥

मू० अतः परं कुरून् वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान्।

तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः १८॥

टी०। अब उत्तर तरफ जो कुरुनाम वर्ष है उसका हाल भी कहताहूँ मुझ से सुनो कि वहां के वृक्ष सब सदैव फूल और मीठे २ फलों से सदा फले रहते हैं १८॥

मू० वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च।

सर्व्वकामप्रदास्ते हि सर्व्वकामफलप्रदाः १९॥

टी०। और वृक्षही में सब तरहके वस्त्र पैदा होते हैं और फलों में भूषण लगते हैं और वहां के लोगों की सब कामना भी सब मनोरथों को देनेवाले वृक्षोंही से पूर्ण होती है १९॥

मू० भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धी सर्व्वदा सुखः।

जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः २०॥

टी०। और वहां की पृथ्वी सम्पूर्ण मणिमयी है और वहांपर शीतल और मन्द सुगन्ध सहित वायु सदा सुखदायक बहती है और जो लोग देवलोक से गिरते हैं वही लोग उस वर्ष में पैदा होते हैं २०॥

मू० मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै।

अन्योऽन्यमनुरक्तानि चक्रवाकोपमानि च २१॥

टी०। स्त्री और पुरुष उस वर्ष में साथही पैदा होते हैं और चकवा

चकई की तरह आपुस में सदा प्रीति रखते हैं और कभी उनको वियोग यानी जुदाई नहीं होती है २१ ॥

मू० चतुर्द्दशसहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः।
चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्य्यकान्तस्तथापरः २२ ॥

टी०। और साढ़े चौदह हजार वर्ष वहां के लोग जीते हैं और चन्द्रकान्त और दूसरा सूर्य्यकान्त नाम पर्व्वत २२ ॥

मू० तस्मिन् कुलाचलौ वर्षे तन्मध्ये च महानदी।
भद्रसोमा प्रयात्युर्व्यां पुण्यामलजलौघिनी २३ ॥

टी०। उस वर्ष में दो कुलाचल हैं और उस वर्ष के बीच में पृथ्वीपर महानदी भद्रसोमा नाम पवित्र व साफ़ जल से बहनेवाली है २३ ॥

मू० सहस्रशस्तथैवान्या नद्योवर्षेऽपि चोत्तरे।
तथान्याः क्षीरवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च २४ ॥

टी०। और और भी उत्तर वर्ष में हजारों नदियां वहां बहती हैं और उस वर्ष में क्षीरवाहिनी और घृतवाहिनी नदियां भी बहती हैं २४ ॥

मू० दध्नोह्रदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपर्व्वताः।
अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च २५ ॥

टी०। और इसीतरह अन्य कितने कुण्ड दही के भी वहां हैं और कितने रमणीय पहाड़ भी हैं और तरह तरह के सब फल भी सदा बने रहते हैं कि जिनका स्वाद अमृत के समान है २५ ॥

मू० वनेषु तेषु वर्षेषु शतशोऽथ सहस्रशः।
तत्रापि भगवान् विष्णुः प्राक्छिरा मत्स्यरूपवान् २६ ॥

टी०। ऐसे वृक्ष उस वर्ष के उन वनों में हज़ारोंही हैं और वहां भी मत्स्यरूप वाले भगवान् हैं कि जिनका शिर पूर्व्व तरफ़ है २६ ॥

मू० विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम्।
दिशस्तथापि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम २७ ॥

टी०। और हे मुनिसत्तम! उस वर्ष में भी तीन तीन नक्षत्रों के नव विभाग हैं और वहां की दिशाओं के भी नव विभाग हैं २७॥

मू० चन्द्रद्वीपः समुद्रे च भद्रद्वीपस्तथापरः।
तत्रापि पुण्यो विख्यातः समुद्रान्तर्महामुने २८॥

टी०। और हे महामुने! चन्द्रद्वीप व दूसरा समुद्र के बीचवाला भद्रद्वीप भी बहुत पवित्र है जिसके चारों तरफ़ समुद्र है २८॥

मू० इत्येतत्कथितं ब्रह्मन् कुरुवर्षं मयोत्तरम्।
शृणु किम्पुरुषादीनि वर्षाणि गदतो मम २९॥

टी०। हे ब्रह्मन्! इसतरह का जो उत्तर तरफ़ कुरुवर्ष है उस को तो मैंने कहा अब किम्पुरुषादि वर्षोंका वृत्तान्त वर्णन करताहूँ उस को मुझ से सुनो २९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेउत्तरकुरुकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९॥

इति मार्कण्डेयपुराणसटीकस्य
प्रथमोभागः॥



इश्तिहार

महाभारत सटीक ॥

जो कि सम्पूर्ण पुराणों में श्रेष्ठ है जिसको पंचम वेद भी कहते हैं जिसमें आदि १ सभा २ वन ३ विराट ४ उद्योग ५ भीष्म ६ द्रोण ७ कर्ण ८ शल्य ९ सौप्तिक १० विशोक ११ स्त्री १२ शान्ति १३ अनुशासन १४ अश्वमेध १५ आश्रमवासिक १६ मुसल १७ स्वर्गारोहण १८ और हरिवंशपर्व १९ हैं—जिसको आगरापुर पीपलमण्डी निवासि चौरासिया गौड़ वंशावतंस प्रधान पण्डित कालीचरणजी संस्कृताध्यापक केनिंगकालेज लखनऊ ने संस्कृत महाभारत से प्रत्यक्षर का भाषा में उल्था किया है इसके पृथक् २ पर्व भी ख़रीदारों को मिल सके हैं—यह पुस्तक भी अवश्यही अवलोकन करनीचाहिये ॥

भविष्यपुराण भाषा ॥

जिसमें भविष्य अर्थात् जो आगे होवेंगी उन्हीं वस्तुओं का वर्णन और अनेक प्रकार के देवी और देवताओं के व्रतादिक और उद्यापनादि वर्णित हैं—जिसको जयपुरनिवासि पण्डित दुर्गाप्रसादजीने भाषान्तर किया है ॥

वाराहपुराण भाषा ॥

जिसमें भगवान् वाराहजीने पृथ्वी से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सिद्ध होने के लिये इतिहाससंयुक्त कथायें वर्णन की हैं—जिसको जयपुरनिवासि पण्डित माधवप्रसादजीने भाषान्तर किया और पण्डित सरयूप्रसाद और दुर्गाप्रसादजीने उसी उल्थे को शुद्ध किया था वह अच्छी तरह से छपाहुआ वर्त्तमान है ॥

विष्णुपुराण भाषा ॥

जिसमें जगदुत्पत्ति, स्थिति, पालन और सोमवंशी और चंद्रवंशी राजाओंका कथन वा श्रीकृष्णजीका परिपूर्ण चरित्रादि कथा वर्णित हैं जिसको वारहबंकीप्रदेशीय धनावलीग्रामनिवासि पण्डित महेशदत्तजीने प्रत्यक्षर का भाषा में अर्थ किया है ॥

मैनेजर अवधअख़बार प्रेस
हजरतगंज—लखनऊ.